

गुरुकुल पत्रिका

भाद्रपद
२००८

वर्ष ४
अङ्क १



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ४
अङ्क १

गुरुकुल-पत्रिका

भाद्रपद
२००८

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव
दर्शनवाचस्पति

श्री रामेश बेदी
आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

वेदों का अर्थ करने के मूलभूत सिद्धान्त	श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु
ईश्वर प्राप्ति और श्रद्धा	श्री स्वामी कृष्णानन्द
इक्कीस करोड़ लोगों की भाषा—अंग्रेजी	श्री दीनदयालु शास्त्री

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

'गुरुकुल पत्रिका' का नया वर्ष

गुरुकुल विश्वविद्यालय के कुलपति का

शुभ सन्देश—

'गुरुकुल पत्रिका के लिये चतुर्थ वर्ष का प्रारम्भ शुभ हो।

इस पत्रिका का उद्देश्य सामान्य पत्र-पत्रिकाओं की भांति न आर्थिक लाभ प्राप्त करना है और न केवल पाठकों का मनोरंजन है। इसका उद्देश्य शिक्षा और संस्कृति के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण की व्याख्या करना, और संसार को गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की श्रेष्ठता दरशाना है। ऐसी पत्रिका केवल कहानियों या हल्के लेखों पर जीवित नहीं रह सकती। उसे ऐसी सामग्री से भरपूर होना चाहिये, जो गम्भीर होने के साथ साथ चेतन भी हो, और अन्वेषण पूर्ण होने के साथ-साथ सामयिक भी हो। यह कार्य कठिन अवश्य है, परन्तु उत्तम और उपादेय वस्तु को बनाने के लिये कठिनाइयों का सामना तो करना ही पड़ता है। मुझे पूर्ण आशा है कि गुरुकुल पत्रिका का सम्पादक मण्डल, पत्रिका के ऊंचे लक्ष्य और पत्रकारिता के विशुद्ध आदर्श को सामने रखता हुआ इसे ऐसी रीति से चलायगा, जिससे भारत की प्रमुख राष्ट्रिय-संस्था गुरुकुल विश्वविद्यालय के सम्मान में वृद्धि हो।'

—इन्द्र।



अध्यात्मिक उन्नति में दम का साधन

श्री स्वामी कृष्णानन्द

दम के दो अर्थ हो सकते हैं। (१) अभावात्मक-बाह्य इन्द्रियों को विषय भोग की दृष्टि से विषय सेवन से पृथक् रखना (२) बाह्य इन्द्रियों को खान-पान आदि के लिए केवल उतना ही उपयोग में लाना जिस से शरीर का निर्वाह हो सके और परमात्मा प्राप्ति रूपी परम लक्ष्यकी सिद्धि के साधन श्रवण मनन आदि के लिए उपयुक्त सामर्थ्य बनी रहे। तथा इनका उपयोग श्रवणादि के सहायक रूप से ही करना। जिन इन्द्रिय व्यापारों का अन्तिम लक्ष्य की सिद्धि से किसी प्रकार का सम्बन्ध न हो, ऐसे व्यर्थ तथा हानिप्रद व्यापारों (चेष्टाओं) से पृथक रहना। इसप्रकार जहां प्रथम भाग में इन्द्रियों का केवल विषय भोग रूप (परम लक्ष्यसिद्धि में बाधा) त्याग है। वहां द्वितीय भाग से उपर्युक्त इन्द्रि दुरुपयोग त्याग सहित इन्द्रियों का श्रवण मनन के लिए सदुपयोग भी सम्मिलित है।

जब यह उपनिषद् शिक्षा का अधिकारी सब इन्द्रियों को उनके अर्थों विषयों से पृथक् कर लेता है, विषयों की ओर नहीं जाने देता जैसे कि कछुआ भय के समय अपने सम्पूर्ण अंगों को भीतर सिकोड़ लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर हो सकती है, अन्यथा पदच्युत हो जाती है। इस विषय में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। क्योंकि यह इन्द्रियां अतिबलवान हैं ये विवेकी तथा यत्नशील मनुष्यों के मन में भी अत्यन्त वेग तथा चञ्चलता उत्पन्न कर देती हैं और बलात् विषय भोग में प्रवृत्त कर देती हैं जो मन विषयों में व्यापार करने वाली इन्द्रियों के पीछे लग जाता है, वह उसकी बुद्धि के आत्मा न्तात्म विवेक को ऐसे हर लेती है। जैसे वायु नाव को बलात् सन्मार्ग से कुमार्ग में ले जाकर यात्रियों का सर्वनाश करदेती है। (गीता २, ५८, ६०, ६७)

हिरण, हाथी, पतंग, भंवरा, तथा मछली, कान (बंसरी), स्पर्श (कागज की हथनी) चक्षु (दीपक का रूप), घ्राण (पुष्पगन्ध) तथा रसना (रस आटे की गोली) में से क्रम से एक एक इन्द्रिय के वश में होने से सर्वनाश को प्राप्त हुए हैं। फिर जो अकेला ही इन पांचों के ही वश में है, वे कैसे बचेगा। परन्तु एक भी बलवान् इन्द्रिय महान् अनर्थ कर सकती है। यदि सब इन्द्रियों में से कोई एक भी इन्द्रिय वेग से, बिना रोकथाम के विषय की ओर स्वच्छन्द रूप से विचरे तो वही पुरुष के तत्त्व ज्ञान का नाश कर देती है जैसे चर्म के पात्र में यदि एक छोटा सा अति क्षुद्र छेद भी हो तो वह ही सब जल को बहा देता है।

उपर्युक्त शास्त्र तथा महापुरुषों के अनुभव के वचनों से यह तथ्य असंदिग्ध रूप से निर्धारित होता है कि यद्यपि इन्द्रियां संसार यात्रा के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं, इन के बिना मनुष्य अपने इहलौकिक तथा पारलौकिक हित साधन में असमर्थ हो जाता है उसका जीवन अपने तथा दूसरों के लिए भार रूप हो जाता है, तथापि इन्द्रियों का यह महत्त्व तभी तक है जब यह मनुष्य के आधीन हों, मनुष्य इनका स्वामी हो। जब यह इन्द्रियां सहज ही विवेक द्वारा निर्धारित लक्ष्य की ओर चल पड़ें। परन्तु इनका प्रवाह सांसारिक विषयों की ओर बिना किसी रोक थाम

(B ke) के चलता है; जब यह अपने अधिकारोचित सेवक के स्वभाव तथा कार्य को त्याग कर स्वामी के पद को छीन कर उसपर आरूढ़ हो जाती है, मनुष्य पर शासन करने लगती हैं। पथिक को विवेक पथ से भ्रष्ट कर विषय भोग रूपी कुमार्ग में बलात् ले जाती हैं। उस समय ऐसी उन्मत्त, विषय लोलुप इन्द्रियां महान् अनर्थ का हेतु बन जाती हैं, और तब मनुष्य का जीवन साक्षात् नरक का रूप धारण कर लेता है। किसी अनुभवी वैद्य ने सत्य कहा है कि मनुष्य अपने दांतों से अपनी कबर खोदता है। अर्थात् रसना इन्द्रिय के आधीन होकर अनुचित और अमर्यादित आहार का सेवन करता है और इसलिए अनेक रोगों से ग्रस्त होकर अन्त में मृत्यु के मुख में चला जाता है। किसी कवि ने उपर्युक्त कैसे सुन्दर रूप से इस विषय का वर्णन किया है कि हिरण आदि श्रवणादि एक एक इन्द्रिय के वश में होकर अपने प्राणों तक से हाथ धो बैठते हैं। इसलिए जहां इन्द्रियां सेवक रूप से शरीर यात्रा के लिए अत्यन्त उपयोगी है वहां यही उन्मत तथा स्वतन्त्र होने पर प्राणी के सुख सम्पत्ति तथा जीवन के हेतु प्राणों को भी क्षण भर में हर लेती है। सांसारिक धन, धान्य, भूमि ऐश्वर्य, मान, राज्य तथा दीर्घायु आदि भी उन शूरवीरों को ही सुख से प्राप्त होते हैं जिन की इन्द्रियां वश में होती हैं जो इन्द्रियों को उपयुक्त मर्यादा में रख सकते हैं इन्द्रियों के दास तो पग पग पर ठोकरें खाते हैं।

श्रेय तथा प्रेय अत्यन्त भिन्न तथा परस्पर विरोधी हैं। जब इन्द्रियों के दास को सांसारिक वैभव, मानादि ही दुर्लभ हैं, तो उस को आध्यात्मिक शान्ति तथा आनन्द की क्या आशा हो सकती है। इन्द्रियों के पीछे चलने वाला मन अत्यन्त चञ्चल तथा अशान्त रहता है। उसकी भोग द्वारा कदापि तृप्ति नहीं हो सकती, प्रत्युत भोग से उसकी लालसा प्रति दिन बढ़ती जाती है। और ऐसे पामर प्राणी दिन रात तृष्णा की ज्वाला में जला करता है।

जो मन बहिर्मुखी है, सदा इन्द्रियों तथा उनके विषयों के पीछे मारा मारा फिरता है, वह अत्यन्त सूक्ष्म अन्तिम आनन्द स्वरूप परमात्म तत्त्व की रेखा को कैसे निहार सकता है। सब इन्द्रिय भोग तथा आत्मानन्द, तम तथा प्रकाश के समान अत्यन्त विरोधी हैं।

किसी नौका के जल में डूबने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह कई स्थलों से टूटी फूटी हो अथवा उसके पैंदे में अनेक बड़े २ छेद हों, प्रत्युत एक क्षुद्र छिद्र भी उसको डुबा देने के लिए पर्याप्त है। अन्तर केवल इतना है कि ऐसी दशा में नौका में जल भरने के लिए समय कुछ अधिक चाहिए, समय पाकर डूब तो वह अवश्य जाएगी ही। इसी प्रकार मनुष्य के अधः पतन तथा सर्वनाश के लिए यह जरूरी नहीं कि वह सब इन्द्रियों का दास हो; एक ही उन्मत तथा अवश हुई इन्द्रिय इसको आध्यात्मिक लक्ष्य से भ्रष्ट करने के लिए पर्याप्त है। अन्य इन्द्रियों पर इसका विजय पाना अन्ततः इसके किसी काम नहीं आएगा एक ही स्वाधीन अवश इन्द्रिय इसके किये कराए पर पानी फेर देती है, इस लिए परमानन्द तथा आध्यात्मिक जीवन के अभिलाषी को चाहिए, कि वह बहुत सावधानी से सम्पूर्ण इन्द्रियों पर अपना अखण्ड शासन स्थापित करे।

मनुष्य में दैवीय तथा पाशविक अर्थात् आसुरी स्वभाव मिले जुले पाये जाते हैं। यद्यपि मनुष्य मात्र में दैवी वृत्तियों के विकास के लिए

वर्षाऋतु का अमर काव्य—मेघदूत

श्री हरिदत्त वेदालंकार

ग्रीष्म काल के अन्त में जब पहली बार आकाश मेघमालाओं से आच्छन्न हो उठता है, उस समय संस्कृत साहित्य के रसिकों और कला-मर्मज्ञों को कालिदास के अमर गीतिकाव्य मेघदूत का सहसा स्मरण आ जाता है। न केवल संस्कृत में अपितु विश्वसाहित्य में मेघदूत अद्वितीय रचना है। प्रसिद्ध फ्रेंच संस्कृतज्ञ फूशे ने यह सर्वथा सत्य लिखा है कि यूरोप के करुण रस के साहित्य में कोई कृति मेघदूत जितनी निर्दोष और पूर्ण नहीं है। उदात्त और रमणीय कल्पना, रसानुकूल भावव्यंजना, प्राकृतिक घटनाओं के बिम्ब ग्राही वर्णन, विरहावस्था के मनोभावों के मार्मिक और प्रभावग्राही चित्रण में दुनिया की कोई रचना इससे टक्कर नहीं ले सकती। संस्कृत वाङ्मय में किसी अन्य काव्य में इतनी प्रांजल भाषा परिमार्जित शैली, सुललित और प्रसाद पूर्ण पदविन्यास नहीं है और न ही अन्यत्र भावों की इतनी सुकुमारता, वर्णन का वैशिष्ट्य और अलंकारों की छटा देखने में आती है। विभिन्न काव्यों में यह सब गुण पृथक् रूप से अवश्य पाये जाते हैं, किन्तु एक जगह केवल मेघदूत में ही मिलते हैं। यद्यपि कालिदास 'नैकत्र सर्वो गुण सन्निपातः' (एक जगह सब गुण इकट्ठे नहीं होते कु० सं०) में विश्वास रखते थे, किन्तु उन्होंने अपनी इस कृति में काव्य के सब गुण एकत्र कर इस उक्ति को मिथ्या सिद्ध कर दिया है। लगभग एकसौ बीस श्लोकों के छोटे से खण्ड काव्य में कालिदास ने अपनी सारी शक्ति खर्च कर डाली है। इसमें कोई शक नहीं कि यदि वे शाकुन्तल, रघुवंश आदि कोई नाटक या काव्य न लिखते तो भी इसी एक सरस और अत्युत्कृष्ट गीति काव्य से ही विश्व के महा-

---

अवकाश ज़रूर होता है। उस में शक्ति तथा बीज रूपेण यह विद्यमान् अवश्य होते हैं। परन्तु साधारणतया जन्म काल से ही पाशविक स्वभाव का प्रभुत्व होता है, जो दैवीय स्वभाव के बीज को पनपने नहीं देता। शिक्षा तथा अपने श्रम के बिना मनुष्य खड़ा होना भी नहीं सीख सकता। इसी प्रकार पाशविक वृत्तियों को नियन्त्रित करने के लिए सामाजिक शिक्षा महान् प्रयत्न तथा अदम्य धैर्य की आवश्यकता होती है। इन्द्रियों को विजय करने का कार्य किसी राजनैतिक युद्ध से अधिक कठिन है। नीति निपुण विद्वान् शास्त्र निष्णात पण्डित, जगत् विख्यात राजा महाराजा शत्रुओं का मानमर्दन करने वाले शूरवीर तथा सहस्रों के साथ अकेले लड़ने वाले योद्धा इन्द्रियों की दासता का कड़ियों में जकड़े हुए होते हैं। इन निकटतम शत्रुओं का जीतना किसी बिरले भाग्यवान् धीर पुरुष का ही काम है। इस युद्ध में विजय पाना दिनों, महीनों या वर्षों का काम नहीं है, यह तो जन्म जन्मान्तर का खेल है। जो धीर पुरुष चोट पर चोट खाता है, परन्तु इनके साथ किसी प्रकार की संधि या सहयोग करना स्वीकार नहीं करता, वही इन को जीत कर सच्चा, स्थिर स्वराज्य प्राप्त कर सकता है। इन उन्मत्त इन्द्रियों के साथ असहयोग अर्थात् विषय लालसा पूर्वक इनका उपयोग न करना ही यथार्थ उपाय है जो यहां सफलता प्राप्त कर सकता है, वह कहीं विफल मनोरथ नहीं होता, बाह्य साम्राज्य उसके लिए एक खेल सा हो जाता है।

★

कवियों की श्रेणी में उच्चस्थान पा सकते थे।

मेघदूत का कथानक सुविदित है। अलकाधिपति कुबेर के सेवक यक्ष ने अपने कर्त्तव्य के पालन में कुछ प्रमाद किया, कुबेर ने इस इस अपराध में उसे एक वर्ष के निर्वासन का दण्ड दिया। महाकवि ने यह स्पष्ट नहीं किया कि यक्ष का क्या अपराध था। संस्कृत टीकाकारों ने इस सम्बन्ध में दो कल्पनायें की हैं। कुबेर ने यक्ष को अपने उद्यान की रक्षा की आज्ञा दी थी, यक्ष ने इस कार्य में प्रमाद किया, वह और कहीं चला गया। पीछे से ऐरावत ने बगीचे में प्रवेश कर फूलों के पौधों को रौंद डाला और फलों के पेड़ों को उखाड़ डाला। दूसरी कल्पना यह है कि कुबेर ने प्रतिदिन पूजा के लिए फूल लाने का काम यक्ष को सौंपा था। एक बार यक्ष ने रात को ही किसी से मुकुलित कमल मंगवाये, सवेरे देर से उठा और वे ही कमल कुबेर की सेवा में उपस्थित कर दिये। कमलों में भौंरे थे, फूलों के खिलते ही वे बाहर निकले और उन्होंने धनपति को दंश से पीडित किया। क्रुद्ध होकर कुबेर ने यक्ष को शाप दिया। इन इन दोनों कल्पनाओं में से मेघदूत की सामान्य योजना और रचना पद्धति को ध्यान में रखते हुए दूसरी कल्पना के सत्य होने की अधिक सम्भावना प्रतीत होती है।

(२)

निर्वासित यक्ष सीता जी के स्नान से पुण्य जल वाले रामगिरि (नागपुर के पास रामटेक पहाड़ी) पर रहने लगा। जिस किसी तरह उसने आठ मास व्यतीत किये। आषाढ़ का महीना आया, आकाश में बादल घिर आये, प्रियतमा भार्या के विरह का दुःख प्रबल और असह्य हो उठा। उसके मन में विचार आया कि मेरी भार्या की भी यही दशा होगी, अतः उसने उसकी सान्त्वना के लिए अपना कुशलवार्त्ता भेजने का निश्चय किया। उस जमाने में संवाद प्रेषण की वर्त्तमान सुविधायें - हवाई डाक और बेतार की तार नहीं थीं। अतः उसने आषाढ़ के पहले दिन दृष्टि पथ में आये मेघ को दूत बनाकर प्रियतमा के पास भेजने का विचार किया। अचेतन मेघ उस का सन्देश किस प्रकार ले जा सकेगा यह बात कामार्त्त यक्ष को समझ में नहीं आई। उसने नवविकसित कुटज कुसुमों से मेघ को अर्घ्य प्रदान कर पूजा की, उसे अलका नगरी जाने का मार्ग और वहां अपने घर की पहिचान बताई तथा प्रियतमा को दिया जाने वाला सन्देश भी सुनाया। मेघदूत दो विभागों में विभक्त है — पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। पूर्व मेघ का विषय अलका जाने के मार्ग का वर्णन है। उत्तर मेघ में कवि अलका, यक्ष के घर, विरहिणी यक्षिणी की सम्भावित दशा और सन्देश का वर्णन करता है।

यक्ष ने मेघ को दूत का गुरुतर कार्य करने के लिए जो प्रलोभन दिये हैं, वे किसी भी सहृदय और रसिक व्यक्ति को सुदीर्घ और कष्टपूर्ण यात्रा पर जाने की प्रेरणा देने के लिए पर्याप्त हैं। मार्ग में वह नयनाभिराम नगों, नगरियों और नदियों की सुन्दर दृश्यावलियां देखता हुआ जायगा, उज्जयिनी में चन्द्रमुखी पौरांगनाओं के लोलापांगों से उसका रमण होगा; जिसने इस का सौभाग्य नहीं मिला उसका तो जीवन ही व्यर्थ है (पू. मे. २७)। महाकाल के मन्दिर में नृत्य करती हुई देवदासियां उसपर लम्बे कटाक्षपात करेंगी पू. मे. ३७)। यह क्या कम सौभाग्य की बात है कि मेघ को उस नीचैः पर्वत पर बैठने का सौभाग्य मिलेगा, जिस के

शिलातल नागरों द्वारा पण्यस्त्रियों के साथ रति से प्राप्त परिमल का उद्गिरण करने वाले हैं पू. मे. २५)। मेघ की थकावट को दूर करने के लिए ललित वनिताओं के पाद राग से सुशोभित, कुसुमों से सुरभित उज्जयिनी के प्रसाद हैं, जिन में मोर नाच नाच कर उसका स्वागत करेंगे। मेघ को इस बातकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि वह एकाकी इस सुदीर्घ पथ को कैसे पार करेगा, क्योंकि अपनी चञ्चुओं में कमल नाल थामे राजहंस मानसरोवर तक उसका साथ देंगे। कवि ने मेघ को मार्ग के सुन्दर दृश्यों से ही प्रलोभित नहीं किया अपितु उसमें कर्त्तव्य की ऊंची भावना का जागृत कर उस से लाभ उठाने का प्रयत्न भी किया है। 'हे पयोद ! तुम संतप्तों की शरण हो अतः तुम्हें विरह पीड़ित यक्ष का संदेश प्रिया तक पहुंचाना ही चाहिए' (पू० मे० ७)।

सारा मेघदूत एक सुन्दर चित्रशाला है। कुशल चित्रकार जिस प्रकार तूलिका की चार छः रेखाओं में ही सुन्दर चित्रों का निर्माण कर डालता है वैसे ही कालिदास ने बहुत ही कम शब्दों में अतीव मनोरम शब्द-चित्रों का अंकन किया है। उस के प्रायः प्रत्येक पद्य के आधार पर चतुर चितेरा भावपूर्ण चित्र तैयार कर सकता है। वर्षा काल के आगमन से हमारे देश के भूपृष्ठ पर जो परिवर्तन होते हैं, उनका इस में बड़ा मनोहारी चित्रण है। पावस में केतकी के फूलों के खिलने से उद्यानों की बाढ़ें सफेद हो गई हैं, वर्षा से रक्षा के लिए कौआं और अन्य पक्षियों ने चैत्यों में घोंसले बनाने शुरू कर दिये हैं, जंगल पके फल वाले जामुन के पेड़ों से श्याम हो रहे हैं (पू० मे० २३)। कहीं पर्वत विकसित कदम्बों से पुलकित हो रहे हैं (पू०मे० २५), कहीं प्रथम वृष्टि के बाद जुते हुए खेतों से मिट्टी की सोंधी महक उठ रही है, कहीं हिरण चौकड़ी भर रहे हैं कहीं मत्त मयूर हर्ष से नाच रहे हैं, कहीं पपीहा 'पी कहां' की रट लगा रहा है। कहीं राजहंस पाथेय के लिए कमल के कोमल नालों को चोंचों में दबाये जा रहे हैं। वर्षा ऋतु का इतना विशद और सुन्दर वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

उत्तरी भारत के भूगोल और इतिहास का इस में बड़ा सरस वर्णन है। पूर्वमेघ में रामगिरि (मध्य प्रान्त) से अलका नगरी तक मार्ग में आने वाली रेवा, वेत्रवती, निर्विन्ध्या, शिप्रा, गम्भीरा, सिन्धु चर्मण्वती, यमुना, गंगा आदि नदियां, आम्रकूट, नीचैः, विन्ध्य, देवगिरि क्रौंच, कैलास प्रभृति पर्वतों तथा विदिशा, उज्जयिनी, दशपुर, ब्रह्मावर्त्त, कनखल के नगरों और तीर्थों का उल्लेख है। कालिदास की यह विशेषता है कि उसने इस भूगोल को इतिहास और काव्य से सजीव कर दिया है और उस समय के रसमय लोक जीवन के अविस्मरणीय चित्र उपस्थित किये हैं। चर्मण्वती (चम्बल) रन्तिदेव की मूर्त्तिमती कीर्ति है। कुरुक्षेत्र यह स्थान है जहां कौरव पाण्डवों के युद्ध में गाण्डीव धारी अर्जुन बाणों की बौछार करते थे। सरस्वती नदी का जल इतना पवित्र है कि बलराम ने अपनी प्रियतमा रेवती के लोचनों से अंकित अभीष्ट मदिरा त्याग कर उसका सेवन किया था। शैलराज हिमालय से उतरने वाली जह्नु कन्या (गंगा) सगर के पुत्रों की 'स्वर्ग सोपान पंक्ति' है। क्रौञ्चरंध्र भगवान परशुराम की उज्वल कीर्ति स्मरण कराने वाला है।

मेघदूत में प्राचीन भारत के उल्लास पूर्ण और आमोद-मय जीवन की जो झांकियां हैं वे बहुत ही हृदय ग्राही हैं। उन से हमारे देश का अतीत चित्र-पट के चित्र की भांति हमारे सामने नाचने लगता है। कहीं राजमहल ललित वनिताओं के पदराग से अंकित हो रहे हैं, कहीं सूची-भेद्य अन्धकार में अभिसारिकायें प्रियतम की बस्ती की ओर प्रयाण कर रही हैं, कहीं देव-दासियों का नृत्य हो रहा है, कहीं तोयक्रीडा-निरत युवतियों के स्नान से शिप्रा का जल सुवासित हो रहा है। कहीं गांवों में बड़े बूढ़े लोग उदयन की कथा सुना रहे हैं, कहीं झरोखों से नगर ललनाओं के केश-संस्कार का धुंआ निकल रहा है, कहीं भगवान पशुपति की संध्याकाल की पूजा का पटह बज रहा है, कहीं महादेव के चरण चिन्हों पर सिद्ध जन भेंटें चढा रहे हैं। कहीं फूल चुनने वाली स्त्रियों को श्रम से इतना पसीना आ रहा है कि उस से उन के कानों में लगे हुए फूल कुम्हला गये हैं।

मेघदूत की अलका यद्यपि बिलकुल काल्पनिक नगरी है किन्तु कालिदास ने अपने वर्णन कौशल से उसे यथार्थ बना दिया है। मेघदूत पढ़ते हुए हम वस्तुतः उस के उन विशाल अभ्रंलिह प्रासादों का साक्षात्कार करते हैं, जिन में संगीत की गोष्ठियां हो रही हैं, जो ललित वनिताओं और मनोरम चित्रों से सुशोभित हैं, जहां युवतियां हाथ में क्रीड़ा कमल लिए हैं। इन "ललित वनिताओं' के श्याम केशपाश में कुन्द के कुसुम अनुविद्ध हैं, उन्होंने अपने मुंह लोध्रपुष्प के पराग का पाउडर मल कर सफेद कर लिये हैं। कान में शिरीष का कुसुम खस रखा है और मांग में नीप का। यहां यक्षणियों के साथ यक्ष सुरापान की गोष्ठियों का आनन्द सदा तरुण रहते हुए ही लेते हैं। यहां विचित्र तथा बढिया वस्त्र, अलंकारों के लिए पुष्प, पैर में लगाने का लाक्षाराग आदि स्त्रियों के सभी शृंगार साधन कल्पवृक्ष से ही मिल जाते हैं। अलका में भगवान शंकर का निवास होने से कामदेव अपने धनुष का प्रयोग नहीं करते, फिर भी चतुर सुन्दरियां अपने अमोघ कटाक्षों से मदन के कार्य को पूरा कर देती हैं।

मेघदूत का सरसतम भाग वह है जिस में यक्ष अपनी प्रियतमा की सम्भावित अवस्था और अपनी दशा का वर्णन करता है। जिस समय तू मेरे घर पहुंचेगा उस समय मेरी प्रियतमा या तो मेरी मंगल कामना के लिए देवाराधना में तत्पर होगी, अथवा विरह व्यथा से दुर्बल मेरे शरीर का अनुमान कर उसी भाव को व्यक्त करने वाला चित्र बना रही होगी, या पिंजड़े में बैठी हुई मीठा बोलने वाली मैना से कह रही होगी—'अरी रसिके क्या तुझे भी कभी स्वामी का स्मरण आता है, तुझे तो वे बड़ा प्यार करते थे।' हो सकता है वह मैले कपड़े पहिने, वीणा गोद में लेकर मेरे नाम वाले किसी गीत को गाते हुए आंसुओं की झड़ी से भीगे हुए तारों को पोंछ कर पहले निकाली हुई तानों को भूल गई हो। वह देहली पर रखे हुए पुष्पों की गणना कर मेरे शाप की अवधि के शेष दिन गिन रही होगी। विरह से सूख कर कांटा हो जाने के कारण वह कृष्ण पक्ष की क्षीण चन्द्रकला सी होगी।

यक्ष का संदेश बड़ा हृदयद्रावक है—'प्रिये, मैं सदा प्रकृति में तेरी समता ढूंढने में लगा रहता हूं। तेरे कोमल अंगों की समता प्रियंगु लता में है, तेरे दृष्टिपात का सादृश्य चकित

हरिणियों के चञ्चल चितवन में प्राप्त होता है, स्वच्छ कपोलों की समता चन्द्रमा में है, तेरे भ्रूविलास की समता नदी की पतली पतली चञ्चल लहरों में उपलब्ध होती है। लेकिन तेरे सर्वांग की समता किसी एक वस्तु में कहीं भी नहीं दिखाई देती। (उ० मे० १०६)। हे प्रिये कभी कभी मैं यह अनुमान करता हूं, तुम रूठ कर मानिनी बन बैठी हो। तुम्हें मनाने के लिए मैं पत्थर पर गेरू से तुम्हारा चित्र खींचता हूं, परन्तु ज्यों ही मैं अपना मस्तक तुम्हारे चरणों में रखना चाहता हूं, त्यों ही अश्रुप्रवाह मेरी आंखों में उमड़ पड़ता है, मेरी दृष्टि रुंध जाती है, मुझे तेरा चित्र भी दिखाई नहीं देता। मुझे मालूम न था कि कृतान्त इतना क्रूर है। वह हम दोनों के इस काल्पनिक संयोग को भी नहीं सह सकता (उ० मे० ११०)। स्वप्न में तेरा दर्शन होते ही तेरे आलिंगन सुख के लिए मैं हाथ फैला देता हूं। मेरी यह करुणाजनक अवस्था देख कर बन देवताओं के नेत्रों से भी ओस के रूप में मोतियों जैसे बड़े बड़े अश्रुकण ढुलकते हैं।

विरही यक्ष उत्तर से आने वाले हिमालय के समीर का इस लिए प्रेम से आलिंगन करता है कि शायद इसने प्रियतमा के अंगों का स्पर्श किया है। विरह के इस दारुण दुःख को वह इसी लिए धैर्य से सहन कर रहा है कि सुख दुःख सदा एक से नहीं रहते। रथ के पहिए की तरह ये फिरा करते हैं। कभी सुख सामने आता है और कभी दुःख।

प्रकृति को प्रायः जड़ माना जाता है किन्तु कालिदास उसे चेतन मानता है और सर्वत्र उस में प्रेम की स्निग्ध और शीतल छाया को प्रसृत पाता है। यक्ष का संदेश ले जाने वाला मेघ वाष्प, पवन, पानी और पावक का भौतिक संघात ही नहीं, किन्तु विनोद प्रिय, रसिक और सजीव प्राणी है। वह उज्जयिनी की वीरांगनाओं के चञ्चल कटाक्षों से रमण करने वाला है, थक जाने पर रात को रुचिर रमणियों के पदराग से अंकित सुरम्य महलों की अटारियों में विश्राम करने वाला है। फूल बटोरने वाली मालिनों के मुखड़ों पर छाया कर उन से परिचय प्राप्त करता है, पण्य स्त्रियों के रति परिमल का उद्गिरण करने वाले नीचैः पर्वत के शिला तलों पर विश्राम के लिए रूकता है। अपनी रसिकता के कारण ही वह रात को अपने गम्भीर गर्जन से अभिसारिकाओं को भयभीत नहीं करता अपितु हल्की चमक से रास्ता दिखा कर उन का सहायक होता है। सहृदय सखा की भांति मेघ अपने प्रिय मित्र पर्वत से विदा मांगता है। मेघदूत की नदियां मानिनी नायकाओं के रूप में हैं। वेत्रवती इठला कर अपनी लहर रूपी भौंहें तान लेती है। गम्भीरा विशुद्ध हृदया है। मछली के रूप में चंचल कटाक्ष करने वाली उस नदी के प्रति मेघ को निष्ठुर न होने की हिदायत दी गई है। समूची प्रकृति प्रेम के भाव से ओत-प्रोत है। शिप्रा नदी का समीर चाटुकार प्रियतम की भांति कामनियों के गात्र का स्पर्श करता है। सूर्य प्रातःकाल अपने करों से खण्डिता प्रेयसी पद्मिनी के ओस रूपी आंसू पोंछता है।

कालिदास अपनी उपमाओं के लिए प्रसिद्ध है। मेघदूत में भी उन्होंने कई सुन्दर उपमायें दी हैं। चर्मण्वती के शुभ्र जल प्रवाह पर पानी के लिए झुके काले मेघ की इन्द्रनीलमध्यमणि युक्त मुक्ताहार की सुन्दर उत्प्रेक्षा बड़ी मनोरम है। चर्मण्वती का प्रवाह बहुत चौड़ा है, किन्तु

साम्यवाद

आचार्य विद्यानन्द विदेह

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा
नाभिमिवाभितः ॥ (अ०३ ३०.६)

१—(वः) तुम्हारी (प्रपा) जलशाला (समानी) एक ही हो ।

२—तुम्हारा (अन्नभागः) अन्न का भाग भोजन (सह) साथ साथ हो ।

३—मैं (वः) तुम्हें (समाने योक्त्रे) एक ही जूये में (सह) साथ साथ (युनज्मि) युक्त करता हूं ।

४—(नाभिं अभितः अराः इव) नाभि में सब ओर जुड़े अरों के समान (सम्यञ्चः) मिलकर (अग्निं) प्रकाशस्वरूप प्रभु को (सपर्यत) पूजो ।

× × ×

साम्यवाद कोई नवीन आविष्कार नहीं है। साम्यवाद तो मानवधर्म और समाज व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण और आवश्यक अंग है । साम्य से मानव समाज में सुख, संतोष, शांति और सुचारित्र्य की स्थापना होती है। असाम्य से दुःख; असन्तोष, अशांति और दुश्चारित्र्य फैलते हैं। समाज और सामाजिक जीवन की रचना ही असाम्य के निराकरण और साम्य के व्याकरण [वि० आ० करण] के लिए की गई है। राष्ट्रव्यवस्था अथवा समाज संस्था का

आकाशचारी देवताओं को वह दूर से पाताल ही जान पड़ता है। उन्हें उसकी पतली धार पृथ्वी के कण्ठ में पड़ी मोतियों की माला के सदृश दिखाई देती है। जब श्यामल वर्ण मेघ उस में पानी पीने के लिये झुकता है तो गगनचारी देवताओं को ऐसा प्रतीत होता है मानो मोतियों की माला के बीच में नीलम जड़ दिया गया हो। इसी प्रकार कैलाश की गोद में बसी अलका की प्रियतम के क्रोड़ में बैठी रमणी से तुलना बड़ी हृदयग्राही है। कैलाश की हिमाच्छादित शुभ्रता को महाकवि ने भगवान शंकर का पुंजीभूत अट्टहास माना है।

मेघदूत में भावानुकूल शब्दों के द्वारा रसोद्रेक की अपूर्व शक्ति है । उस में जब यक्षपत्नी कंकणमुक्त करों से ताल देकर अपने बालमयूर को नचाती है तो केवल यक्ष का मोर ही नहीं नाचता अपितु हमारा मनमयूर भी नाच उठता है। स्वप्न में प्रियतमा से मिलने के लिए भुजायें फैलाये हुए यक्ष की दुरवस्था पर केवल वन देवताओं के ही आंसू नहीं निकलते अपितु हमारी आंखें भी डबडबा आती हैं।

मेघदूत के पाठक की इच्छा होती है कि वह भी मेघ के साथ उड़ सकता, इस के साथ प्राचीन भारत के उन नगरों, नदियों और पर्वतों को देख पाता, उस उल्लासमय जीवन के दर्शन कर पाता और अलका के आनन्दों का अनुभव कर सकता। किन्तु, ऐसा प्रतीत होता है कि यक्ष की भांति हम काल की अलका से निर्वासित कर दिए गए हैं। यक्ष के निर्वासन की अवधि एक वर्ष थी, पर हमारी अनन्त है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ने ठीक ही लिखा है—'विरह-विच्छिन्न इस वर्त्तमान मर्त्य लोक से अतीत काल के अमर सौंदर्य की अलकापुरी में हम केवल कल्पना के मेघदूत ही भेज सकते हैं।'

उद्देश्य ही विषमता का शमन और समता का प्रवहन है।

जिस प्रकार प्रकृति में प्रत्येक प्राणी के लिए सूर्यप्रकाश, चन्द्रिका, जल, पवन, आकाश, पृथ्वी की विपुल प्रचुरता तथा व्यापक प्रसन्नता है, वैसे ही समाज में मनुष्य मात्र के लिए खान, पान, निवास तथा जीवनोपयोगी पदार्थ प्रचुरता के साथ उपलब्ध होने चाहिएं। जिस प्रकार एक शकट में जुते हुए समस्त बैलों को समान श्रम व सुभीते उपलब्ध होते हैं, वैसे ही राष्ट्रशकट में नियुक्त समस्त नागरिकों को राष्ट्र की सेवा तथा आत्मोन्नति के अवसर समानता के साथ प्रदान किये जाने चाहियें। निस्सन्देह, परिवार की भांति एक जनपद में भी ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिये और की जा सकती है कि प्रत्येक परिवार या व्यक्ति के लिये विपुल जल, खाद्यान्न, घी, दुग्ध, तक्र, मक्खन, फल, रहने के लिये वृक्षों और लताओं से सुशोभित स्वास्थ्य-प्रद खुले फैले आवास और पहिनने के लिये सुन्दर स्वच्छ वस्त्र हों।

यह तर्क कि योग्यता वा क्षमता के अन्तर के अनुपात से मनुष्यों के भोगों में भेद होना अनिवार्य है, मूर्खतापूर्ण और हास्यास्पद है। यह एक बड़ी ही भ्रान्तधारणा है कि योग्यता अथवा क्षमता का स्तर सम नहीं किया जा सकता। शिक्षा, संस्कार और साधना के द्वारा किसी भी राष्ट्र के समस्त नागरिकों का क्षमता स्तर उसी प्रकार ऊंचा किया जा सकता है, जिस प्रकार जीवन स्तर (Standard of living) या नैतिक स्तर (Standard of morality) को उन्नत किया जाता है।

सुचारुता के साथ वही रथ गति करता है, जिसके पहियों की नाभियों के सब ओर के सम्पूर्ण अरे समाकार और समदृढ़ होते हैं। वही जनपद अथवा राष्ट्र प्रगतिशील होगा, जिसके सब ही नागरिक क्षमता, नैतिकता, रहन सहन आदि में समस्तर होंगे। कभी इस आर्यावर्त के सब नागरिक 'देव' कहलाते थे, जो सर्वांगीण समतामय वैदिक साम्यवाद का प्रत्यक्ष द्योतक था।

आधुनिक साम्यवाद शिखर से मूल की ओर आता है। वह राजाओं को रंक और धनिकों को निर्धन बनाने के लिये कहता है। वह राजाओं के महलों और धनिकों की हवेलियों को ढाकर साम्यवाद की स्थापना करता है। उस में डाह है, ईर्ष्या है, द्वेष है। आधुनिक साम्यवाद ईशोपासना का निषेध करके अधर्म और अनैतिकता का बीजवपन करता हुआ जनता को नग्न भोग और निष्ठुर प्रतिशोध की ओर प्रवृत्त करता है।

वैदिक साम्यवाद मूल को सींचता हुआ शिखर प्रसार करता है। वह रंकों को राजा और निर्धनों को धनिक बना कर साम्यता का निष्पादन करता है। वैदिक साम्यवाद कहता है, 'वयं स्याम पतयो रयीणाम्', 'हम सब ऐश्वर्य-शाली हों।' वैदिक साम्यवाद रंकों को राजा और निर्धनों को धनिक बनाता है। वैदिक साम्यवाद झोंपड़ियों को महलों और हवेलियों में परिवर्तित करने को कहता है। वैदिक साम्यवाद में डाह, ईर्ष्या, द्वेष के स्थान में विश्वमंगल की भावना है। वेद कहता है, 'विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु', 'हमारा विश्व सुवैभवशाली और ज्ञानपूर्ण हो।' वैदिक साम्यवाद ईशोपासना का प्रतिपादन करके धर्म और नैतिकता की प्रस्थापना करता हुआ मिताचार और मानवता की ओर

११ करोड़ लोगों की भाषा—स्पेनी

श्री दीनदयालु शास्त्री

प्रसिद्ध पत्रकार श्री शास्त्री जी ने संसार की प्रमुख भाषाओं पर एक लेखमाला लिखी है। गुरुकुल पत्रिका के पाठकों के लिए संसार की भाषाओं का यह संक्षिप्त परिचय रोचक तथा ज्ञानवर्द्धक होगा। लेखमाला का यह पहला लेख है।

—सम्पादक।

धीरे-धीरे यह संसार राष्ट्रीयता के संकुचित दायरे से निकल कर विश्वबन्धुता के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रवेश कर रहा है। राष्ट्रीयता में प्रत्येक देश का निवासी अपनी भाषा के मोह-जाल में पड़ा रहता है। अब इसका स्थान संसार की केवल प्रमुख भाषायें ले सकती हैं जिनका प्रभाव या विस्तार एक या दो देशों तक सीमित नहीं है अपितु जो इस संसार के काफी बड़े भाग में व्याप्त हैं। अन्तर्राष्ट्रीयता में भाषाओं के इस महत्व का पहले पहल सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के बाद पता चला। संसार के अधिकतम देशों ने अपनी व्यथा व चिन्ता के निवारण हेतु राष्ट्रसंघ का निर्माण किया।

राष्ट्रसंघ की भाषा क्या हो?

प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि संसारभर के राष्ट्रों के इस संघ में भाषा की समस्या का क्या हल हो? बहुत सोचने के बाद तय पाया कि क्योंकि अंग्रेजी, फ्रांसीसी और स्पेनी भाषाओं से परिचय अधिक देशों का है अतः इन तीन भाषाओं को राष्ट्रसंघ की मुख्य भाषायें माना जाए। पराजित जर्मनी जब राष्ट्र संघ का सदस्य बना तो योरोप के अनेक देशों में व्याप्त होने के कारण जर्मन भाषा को भी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा मान लिया गया। हां, उन लोगों के लिए जो इन चारों भाषाओं से अनभिज्ञ थे, अपनी भाषा में विचार प्रकट करने की सुविधा भी दे दी गई।

समय बदला। सन् १९३९-४५ के युद्ध में पहले राष्ट्रसंघ को समाप्ति हो गई। उसका कार्यालय स्विटजरलैंड के जेनवा नगर में था। इस दूसरे युद्ध के बाद जो नया संघ बना उसका नाम संयुक्तराष्ट्रों की परिषद् हुआ और उसका कार्यालय अमरीका के न्यूयार्क नगर के निकट लेकसक्सेस तथा फ्लशिंग मीडो में स्थापित हुआ। इस नये राष्ट्रसंघ में पांच भाषाएं प्रमुख मानी गई हैं। इन में से पहली तीन तो वही अंग्रेजी, फ्रांसीसी और स्पेनी हैं एवं शेष दो रूसी और चीनी हैं। पिछले युद्ध विजेताओं की भाषाओं को प्रमुख पद मिलना

मानवता की ओर प्रवृत्त करता है। 'अग्निं सपर्यंत', 'सब अग्नि प्रभु की उपासना करो।

हमें आधुनिक साम्यवाद से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। यदि वह आता है तो आने दीजिये और वैदिक संस्कारों से सुसंस्कृत करके उसे वैदिक साम्यवाद में परिणत कीजिये।



मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समझ में आजाता है किन्तु हर बार स्पेनी भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय महत्व मिलने का अर्थ है यथार्थ में उसका विस्तार और प्रभाव।

स्पेनी भाषा के देश

यह एकान्त सत्य है कि साम्राज्यवादी देश जब अपने साम्राज्य का विस्तार करते हैं तो अपने अधीन देशों में अपनी भाषा का बाधित तौर पर प्रसार चाहते हैं। बहुधा यह भी होता है कि इन साम्राज्यों के खाली भागों में साम्राज्य के स्वामी नागरिक धन-भूमि की लिप्सा से या साहस की भावना से आबाद हो जाते हैं और अपनी प्यारी मातृभाषा को सुदूर देशों में पहुंचा देते हैं। यूरोप के राष्ट्रों में स्पेन और पुर्तगाल ऐसे देश हैं जिन्होंने आज से पांच सदी पूर्व साम्राज्य-विस्तार की कल्पना की थी। परिणामस्वरूप मध्य एवं दक्षिण अमरीका में ये दोनों पूर्णतया फैल गये थे और उत्तरी अमरीका के भी पर्याप्त बड़े भाग पर स्पेन का अधिकार था। इस के अतिरिक्त अफ्रीका और एशिया के भी विभिन्न देशों के स्पेन और पुर्तगाल स्वामी बने थे। भेद केवल यह रहा कि अफ्रीका और एशिया में मूल आबादी थी। और अमरीका एक तरह से खाली था। परिणाम यह हुआ कि तीन-चार सदी के निरन्तर साम्राज्य के बाद मध्य और दक्षिण अमरिका के जो देश स्पेनी साम्राज्यसे स्वतंत्र हुएवे स्पेनी भाषा को अपने में से हटा न सके।

आज मध्य और दक्षिण अमरीका के १६ देशों की मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा स्पेनी है यद्यपि सौ सवा सौ सालों से इन देशों में स्वतंत्र सरकारें कायम हैं। इन १६ देशों में पोर्टोरिको अमरीका का वशवर्त्ती देश है। अतः वह राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं बन सकता किन्तु उसकी राष्ट्र-भाषा अंग्रेजी नहीं आज भी स्पेनी है। ३,४३५ वर्गमील और १८ लाख आबादी के इस टापू के विश्वविद्यालय द्वारा अमरीका ऐसे लोगों का संचय करता है जो स्पेनी भाषा के विद्वान् होते हैं और अमरीकी राजनीति का मध्य और दक्षिण अमरीका में प्रचार करने में सफल होते हैं। स्पेनी भाषाभाषी ये देश संयुक्त राष्ट्र अमरीका की दक्षिणी सीमा से प्रारम्भ होकर ठेठ दक्षिणी ध्रुव के पड़ोस तक फैले हुए हैं। उत्तर में इन में मैक्सिको प्रधान है एवं दक्षिण में चिली और आर्जेण्टाइन। केवल क्यूबा, डोमेनियन जनतंत्र और पोर्टोरिको द्वीप ऐसे हैं जो मैक्सिको की खाड़ी में अवस्थित हैं। शेष १६ स्पेनी भाषा-भाषी देश एक ही शृंखला में आबद्ध हैं। यह अचरज की बात है कि एकत्र रहते और एक भाषा-भाषी होते हुए भी ये १६ देश संयुक्त क्यों नहीं हो जाते। जब अनेक भाषा-भाषी रूस एक संयुक्त राष्ट्र बन सकता है, जब अंग्रेजी भाषा-भाषी देश दूर दूर रहते हुए भी परस्पर मिल सकते हैं, तो क्यों नहीं स्पेनी भाषा-भाषी १६ देश अपना संगठन बना लेते? संभवतः मध्य-युग के साम्राज्यवादी अरबों तथा स्पेनियों में कुछ कमियां थीं जिसका ही यह विघटन परिणाम है। बहरहाल गिनती में ये स्पेनी भाषा वाले देश इस संसार में सब से अधिक हैं अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अंग्रेजी होते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में अपनी भाषा को सब से आगे कर लेते हैं। आज के सभी देश

संयुक्त राष्ट्रों की परिषद के सदस्य हैं अतः वहां स्पेनी भाषा का बोलबाला है। स्पेनी भाषा का मूल देश स्पेन स्वयं इस परिषद् का सदस्य नहीं है; है भी वह अमरिका में नहीं यूरोप में। फिर भी इस के प्रति अमरीका जो सद्भावना कभी कभी व्यक्त करता है उसका कारण यही अमरीकावर्त्ती स्पेनी भाषा-भाषी देश हैं।

विस्तार और प्रभाव

संसार में स्पेनी भाषा-भाषी देशों की कुल संख्या २० है। इस के अतिरिक्त अफ्रीका के विभिन्न देशों और फिलिपाइन में भी इस भाषा की पहुँच है। अमरीका के आर्जण्टाइन, चिली, युरुग्वे, पैराग्वे, बोलीविया, पेरू, इक्वेडर, वेनेजुएला, कोलम्बिया, पनामा, निकारागुआ, कोस्टारीका, हांडुरास, सालवेडर, ग्वाटेमाला, मैक्सिको, क्यूबा, डोमिनियन और पोर्टोरिको आदि १९ देशों एवं यूरोप के स्पेन का कुल क्षेत्रफल ४७,५६,८८३ वर्गमील है किन्तु आबादी केवल ११ करोड़ है। स्पष्ट है कि स्पेनी भाषा-भाषी देश आबादी की दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए देश हैं। अमरीका, रूस, चीन और भारत की व्यक्तिशः आबादियां भी इन बीस देशों के कुल योग से अधिक हैं। ऐसी हालत में स्पेनी भाषा का आबादी की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय जगत में कोई अधिक महत्व नहीं है। महत्व है उन के विस्तार, संख्या और भविष्य में। स्पेनी भाषा-भाषी ये देश क्षेत्रफल की दृष्टि से संसार के आठवें हिस्से में व्याप्त हैं यद्यपि आबादी की दृष्टि से वे बीसवें भाग से भी कम हैं। चीन और भारत आबादी के ऊंचे स्तर पर पहुँच चुके हैं। उनकी जनसंख्या में अव्वल तो अधिक वृद्धि की गुंजाइश नहीं है। यदि हो भी तो उस बढ़ी हुई आबादी को विदेश जाने का संकल्प करना पड़ेगा। रह जाते हैं अमरीका और रूस। इन दोनों में साधन, सुविधा विद्यमान हैं अतः भविष्य में इनकी जनसंख्या निरन्तर बढ़े यह सदा सम्भावित है। यही हाल स्पेनी भाषा-भाषी देशों का है। अभी ये शिशु देश हैं किन्तु खनिज, खेती विस्तार में ये कहीं अधिक उज्ज्वल भविष्य रखते हैं। ऐसा होने पर इनकी आबादी भी बढ़ेगी, तो फिर स्वयं ही स्पेनी भाषा का विस्तार भी बढ़ेगा। इन सब कारणों से हम समझते हैं कि स्पेनी भाषा का आज जो उत्तरी द्वीप में महत्व है उस में कमी न आएगी अपितु वह और अधिक बढ़ेगा।

स्पेनी भाषा-भाषी इन देशों में एक कमी भी है। ये देश कमजोर हैं, आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों दृष्टियों से। धनी अमरीका अपने वित्त द्वारा इनकी समृद्धि को बनाए रखता है। परिणाम यह है कि कहने को ये स्वतन्त्र हैं किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय न्याय में अमरीका के साथी हैं। आज संयुक्त राष्ट्रों की परिषद में अमरीका का जो बोलबाला है उसका कारण इन स्पेनी भाषा-भाषी देशों के मत ही हैं। आगे चलकर ऐसा समय आ सकता है कि ये स्पेनी भाषा के देश परमुखापेक्षी न रहें और अपने स्वतन्त्र मत का प्रयोग कर सकें। तब स्पेनी भाषा का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में और अधिक महत्व बढ़ जाएगा ऐसा मानने में हमें संकोच न करना चाहिए।



कण्ववंशी ऋषि

श्री भगवद्दत्त वेदालंकार

वेदों में कण्ववंशी ऋषियों का वर्णन आता है। इन में कई ऋषि तो केवल मन्त्रद्रष्टा के रूप में सूक्त के आदि में दिये गये हैं, परन्तु कई ऋषियों का नाम व वर्णन मन्त्रों में भी आया है। इस वंश का प्रारम्भिक ऋषि कण्व है यह इस वंश के कण्व नाम से ही स्पष्ट है। इसलिये कण्ववंशी ऋषियों के स्वरूप निर्णय के लिये सब से प्रथम हमें कण्व पर विचार करना चाहिये। परन्तु वेद में हमें कण्व के पिता का भी नाम मिलता है, इसलिये पूर्ण स्पष्टीकरण के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि कण्व के पिता पर भी कुछ विचार कर लिया जाये। कई विद्वानों का यह कहना है कि कण्व नाम के अनेक ऋषि समय २ पर हो चुके हैं। अतः उन के पिताओं के नाम भी वैदिक साहित्य में हमें मिलते हैं। उदाहरणार्थ—कण्व नार्षद१ कण्व श्रायस २ कण्वाः सौश्रवसाः ३ कण्वघौर ४ आदि।

अब विचारणीय यह है कि क्या यह एक ही कण्व है, जिसको कि विभिन्न गुणों, व विशेषताओं के आधार पर विभिन्न विशेषण दे दिये गये हैं या समय २ पर होने वाले ये कण्व नाम के कई ऋषि हैं? इस तथ्य के निर्णय के लिये अब हम कण्वों के पिता कहे जाने वाले इन नृषत आदि शब्दों पर विचार करते हैं।

१—ऋ० १० । ३१ । ११

२—तै० सं० ५ । ४ । ७ । ५ काठ, २१ । ८, मै० सं०, ३ । ३ । ६

३—काठ, सं० १३ । १२

४—ऋ० १ । ३७ आदि सूक्तों का ऋषि

कण्व का पिता नृषत्:—

वेदों में नृषत का बहुत वर्णन नहीं है। चारों वेदों में केवल चार मन्त्रों १ में ही नृषत् यह पद प्रयुक्त हुआ है। इन चार मन्त्रों में भी केवल एक मन्त्र में ऐसा निर्देश मिलता है जहां कि कण्व को 'नृषत्' का पुत्र२ बताया गया है। इस से यह स्पष्ट है कि वेदों की दृष्टि में कण्व की अपेक्षा नृषत् का विशेष महत्व नहीं है। इसीलिये नृषत् से गोत्र न चलाकर कण्व से गोत्र चलाया है। कुछ स्थलों पर कण्व के विशेषण रूप में 'नार्षद' पद का भी प्रयोग हुआ है। परन्तु स्वयं नृषत् के स्वरूप स्पष्टीकरण में इस से अधिक सहायता नहीं मिलती कि वह कण्व का पिता है।

अब विचारणीय यह है कि इन चार मन्त्रों द्वारा नृषत् के सम्बन्ध में हमें क्या पता चलता है? तीन मन्त्रों में प्रयुक्त नृषद् शब्द व्यक्ति वाचा नहीं है ऐसा हम निश्चय से कह सकते हैं। क्योंकि इन तीन मन्त्रों में नृषत् के अतिरिक्त तत्सदृश शब्द और आये हैं जो कि यह सिद्ध करते हैं कि ये सब यौगिक हैं। उदाहरण के रूप में कुछ शब्द इस प्रकार हैं।

ध्रुवसद्, मनःसद्, अप्सुषद्, घृतसद्, व्योमसद्, पृथिविषद्, अन्तरिक्षसद्, दिविषद्, देवसद्, नाकसद्, इत्यादि।

१—क यजु० ६ । २, ख० १० । २४, ऋ४ । ४० ५, ग० यजु० १७ । १२, घ० ऋ० १० । ३१ । ११

२—उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहुः ० ऋ १० । ३१ । ११

इन उपर्युक्त पदों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं जिन में 'सद्' यह सामान्य रूप से सब में आगत है। जिसका अर्थ है बैठना या विराजमान होना। अब यदि हम इन शब्दों के अर्थ करें तो यह कह सकते हैं कि 'पृथिविसद्' पृथिवी पर विद्यमान, 'अन्तरिक्षसद्' अन्तरिक्ष में विद्यमान, 'दिविषद्' द्युलोक में विराजमान और नृषत् मनुष्य में विद्यमान इत्यादि। जिस प्रकार ये सब शब्द स्पष्ट रूप से यह निर्देश कर रहे हैं कि ये किसी व्यक्ति विशेष के नाम नहीं हैं तो इसी प्रकार इन मन्त्रों में प्रयुक्त नृषद् शब्द भी साहचर्य धर्म से बता रहा है कि यह भी किसी व्यक्ति का नाम नहीं है।

अब हम उस मन्त्र पर विचार करते हैं जिस में कण्व को नृषत् का पुत्र बताया गया है।

इस सम्बन्ध में सब से प्रथम हमें यह कहना है कि वेद में आये पिता माता पुत्र आदि शब्दों को देख कर यह कल्पना करना कि यह मानवीय व्यक्तियों का वर्णन है ठीक न होगा। क्योंकि पिता पुत्रादि सम्बन्ध से वर्णन करना वेद की अपनी निराली शैली है। दृष्टांत१ के रूप में बहुत कुछ दिखाया जा सकता है। भौतिक आदि शक्तियों में जो पूर्ववर्ती है वह पिता हो जाता है तो उत्तरवर्ती पुत्र। कारण पिता है तो कार्य पुत्र। किसी गुण व शक्ति का मनुष्य में आधिक्य हो तो वह मनुष्य वेद की परिभाषा में उस गुण व उस शक्ति का पुत्र हो जाता है।

इस प्रकार वेदों में कई दृष्टियों से पिता पुत्र आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसलिये पिता पुत्र आदि सम्बन्ध वाचक शब्दों द्वारा निर्दिष्ट नृषत् व कण्व आदि शब्दों को व्यक्ति विशेष का नाम मानने में यह युक्ति सही नहीं है। दूसरी बात इस सम्बन्ध में यह कही जा सकती है कि इस सूक्त में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक प्राकृतिक तत्वों का वर्णन प्रतीत होता है। प्रारम्भिक मन्त्रों में वह इतना स्पष्ट नहीं है परन्तु अन्त के ४, ५ मन्त्रों में वह अत्यधिक स्पष्ट है। इसलिए प्रकरण की दृष्टि से इन मन्त्रों को अनित्य ऐतिहासिक व्यक्तियों में न घटा कर प्राकृतिक क्षेत्र में ही घटाना चाहिये और फिर स्वयं मन्त्र भी इस बात की ओर निर्देश कर रहा है कि इस सूक्त में पिता पुत्र आदि शब्द भौतिक शक्तियों में ही चारितार्थ हो सकते हैं। उदाहरण के रूप में यह दिखाया जा सकता है कि इस नृषत् सम्बन्धी मन्त्र से पूर्व१ के मन्त्र में भी पिता पुत्र आदि शब्द आये हैं। उस स्थल पर सायणाचार्य ने पितृ व पुत्र शब्द से पितृ स्थानीय अरणियों व पुत्र स्थानीय अग्नि का ग्रहण किया है और मन्त्र को देखते हुए इसी ही क्षेत्र में इनकी सार्थकता प्रतीत होती है, तो अब प्रश्न यह है कि अगले मन्त्र में पिता पुत्र आदि सम्बन्धों द्वारा निर्दिष्ट नृषत् व कण्व को हम किस क्षेत्र का मानें प्रकरण तो यही बता रहा है कि ये नृषत् व कण्व आदि भी पिता पुत्र सम्बन्ध से भौतिक शक्तियां ही हैं या आध्यात्मिक शक्तियां हो सकती हैं, परन्तु

१: द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्रबन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्। सहसः सूनुः, सहसस्पुत्र,

१ पुत्रो यत् पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्ध पृच्छान् ऋ० १०।३१।१०

गुरुकुल के मूल सिद्धान्तों की विजय

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

गुरुकुल के मूल सिद्धान्त जिन्हें हम व्यवच्छेदक कह सकते हैं, जिनके कारण वह अन्य शिक्षण संस्थाओं से भिन्न किया जा सकता है, निम्न लिखित हैं—

१—शिक्षण संस्था का सरकारी नियन्त्रण से स्वाधीन होना। २—शिक्षा में राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय शिक्षा की मुख्यता। ३—गुरु शिष्य सान्निध्य और आश्रम प्रणाली द्वारा चरित्र निर्माण को शिक्षा का आवश्यक और प्रमुख अंग मानना।

गत ५० वर्षों में ऐसे अनेक बड़े छोटे शिक्षणालय और विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई है, जिन में पूर्णरूप से अथवा आंशिक रूप में गुरुकुल के मूलतत्वों को कार्य में परिणत करने का यत्न किया गया है। हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, जामिया मिल्लिया आदि सब संस्थायें गुरुकुल के पश्चात् स्थापित हुईं। उसी काल में दर्जनों गुरुकुल और शायद बीसियों राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित हुए। जिन विचारों को प्रारम्भ में केवल एक सनकी की सनक समझा जाता था। उन्हें गुरुकुलके प्रारम्भिक सफल संचालन के पश्चात् देश के बड़े बड़े दिमाग एक सुहावना स्वप्न समझने लगे, और धीरे धीरे वे स्थूल सचाइयों के रूप में परिणत होने लगे। किसी संस्था ने गुरुकुल की एक सचाई को अपनाया और किसी ने दूसरी को, परन्तु हम गुरुकुल के समर्थक और स्नातक यह सन्तोषपूर्वक कह सकते हैं कि आज भी उपर्युक्त तीनों मूलतत्वों का एकीकरण केवल गुरुकुल में ही प्राप्त हो सकता है। गत ५० वर्षों में सरकार द्वारा या गैर सरकारी तौर से शिक्षा सम्बन्धी जो कमीशन बिठाये गये हैं उन की रिपोर्ट के अध्ययन से आप इस

अनित्य इतिहास को दर्शाने वाले मानव व्यक्ति नहीं हो सकते। जब पिता पुत्र सम्बन्ध से भौतिक शक्तियों का वर्णन चला आरहा हो तो अगले मन्त्र में "उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहुः" इस वाक्य के आधार पर नृषद् और कण्व नाम के मानव व्यक्तियों की कल्पना अप्रासंगिक व प्रकरण विरुद्ध बात होगी। इसलिये न्याय्य यह है कि इस स्थल पर भी नृषद् और कण्व को प्राकृतिक शक्तियों में ही घटाया जाये। और फिर अनित्य इतिहास की संभावना तब हो सकती थी यदि नृषत् व कण्व के भौतिक अर्थ वेद में न होते। वेद में नृषत व कण्व को अग्नि माना है। एक मन्त्र में आता है कि 'स इदग्निः कण्वतमः कण्वसखा' ऋ० १०। ११५। ५ अर्थात वह अग्नि ही निश्चय से सर्व श्रेष्ठ कण्व है और कण्वों की सखा है यहां पर सर्वश्रेष्ठ कण्व अग्नि को माना है। इसलिए वेद में नृषत व कण्व आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम नहीं है ऐसा हम निम्न हेतुओं के आधार पर कह सकते हैं—

(१) प्रकरण का विरोध होना।
(२) कण्व के साथ अतिशय अर्थ में तमप् प्रत्यय (Superlative Degree) का लगना (कण्व तम)
(३) नृषत व कण्व के वेद में अग्नि अर्थ होना।



परिणाम पर पहुँचते हैं कि देश के प्रायः सभी शिक्षाविज्ञ लार्ड मैकाले की रिपोर्ट के आधार पर बनाई हुई सरकारी शिक्षापद्धति से असंतुष्ट थे और उसे भारतवासियों के लिये अनुपयुक्त और मनुष्यता की सम्पूर्ण उन्नति का विरोधी समझते थे। जो सुधारणायें प्रस्तुत की गई हैं उन का विश्लेषण करने से प्रतीत होगा कि उन का झुकाव उन्हीं मूलतत्वों की ओर है जिन के आधार पर गुरुकुल की स्थापना की गई थी।

बहुत से विचार जो ५० वर्ष पूर्व हवाई स्वप्न प्रतीत होते थे आज स्थूल तत्व का रूप धारण किये दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उस दिन मातृभाषा द्वारा शिक्षा देना एक ख्याली पुलाव मालूम होता था, आज सरकारी यूनिवर्सिटियों में भी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को बनाया जा रहा है, और प्रान्तीय धारा-सभाओं और केन्द्रीय धारा-सभा में देशी भाषा की तूती बोल रही है। उस दिन राष्ट्रीय शिक्षणालयों को राजद्रोह के केन्द्र माना जाता था, आज सरकारें उन्हें सहायता देने को उत्सुक हैं।

५० वर्ष अंग्रेजी सरकार के घर में संस्कृत की छाया भी असम्भव थी, आज आप केन्द्रीय धारा सभा के भवन में प्रवेश करके छत की ओर दृष्टि डालिये तो आपको संस्कृत का यह नीति वाक्य लिखा मिलेगा 'न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः'। उस दिन गुरुकुलीय वेषभूषा को उपहास के योग्य समझा जाता था आज सरकार के गृह सदस्य केवल धोती कुर्त्ता पहन कर इस महादेश के गोरे और देशी अफसरों पर अपना शासन चक्र चला रहे हैं, और उन शासन चक्र चलाने वालों पर भी आध्यात्म शासन कर रहा है। जो रहन सहन और शोषण के आदर्श १६५१ में उपहासास्पद समझे जाते थे, वे १६४६ में सर्वोपरि सम्मान योग्य हो गये हैं। मैं यह तो नहीं कहूँगा कि यह सम्पूर्ण परिवर्तन केवल गुरुकुल के कारण हुये हैं, परन्तु इतना कहने का साहस अवश्य करूंगा कि इन परिवर्तनों में गुरुकुल की प्रेरणा और गुरुकुल का दृष्टान्त दोनों ही सहायक हुए हैं। इस में तो कोई संदेह नहीं हो सकता कि ये सब परिवर्तन गुरुकुल के आधार भूत तत्वों का पूर्ण रूप से समर्थन करते हैं, यही कारण है कि मैंने वर्तमान समय को गुरुकुल के मूल सिद्धान्तों की विजय घोषणा का समय कहा है। यह समय एक दूसरे कारण से भी अपूर्व है। हमारी मातृ-भूमि सदियों के मायाजाल को छिन्न-भिन्न करके प्रकाशमय स्वतंत्र जीवन में प्रवेश कर चुकी है, यह बड़ी शुभ घड़ी है, जब हमारे स्वाधीनता के महायज्ञ की पूर्ति हो चुकी है और जैसे प्रत्येक महायज्ञ की पूर्ति में भी विघ्न बाधाओं की कमी नहीं है, ज्यों ज्यों यज्ञ की पूर्ति का समय निकट आता जा रहा है, त्यों त्यों विघ्नबाधाओं का जोर बढ़ता जा रहा है। ऐसे समय में ऐसे संरक्षकों की आवश्यकता है जिन में बल हो, साहस हो, और मर मिटने की भावना हो। गुरुकुल का जीवन और शिक्षण यदि कुछ सिखाता है तो यही कुछ। उस ने आप लोगों को अपने देश भारत और उस की संस्कृति से प्रेम करना सिखाया है, और सिखाया है उन के लिये

सिक्किम के सघन वन में

श्री मनोहर विद्यालंकार

अन्तिम डाकघर गेजिंग

चिकनी मिट्टी की पक्की जमीन के उस फिसलन भरे रास्ते पर हम जमा-जमा कर पैर बढ़ाते रहे। और आखिर एक तिब्बती ढंग की मणि-दीवार के पास पहुंच गये। इस मणि-दीवार के सामने चौरस मैदान फैला हुआ था। जिसके तीन तरफ दुकानें थीं और एक तरफ जंगलात का दफ्तर, डाकखाना और थाना था। मैदान के नीचे चारों ओर पहाड़ के ढलाव पर बस्ती बसी हुई थी। यह गेजिंग था—इस मार्ग का अन्तिम डाकघर।

गेजिंग का अर्थ है, राजा की बाड़ी। स्थान अपने नाम के अनुरूप है। गंगटोक से पहले यही स्थान सिक्किम की राजधानी थी और लगभग ७०० वर्ष तक इसने अपने सौभाग्य को अक्षुण्ण रखा। यहां से दो मील दूर ७ हजार फीट की ऊंचाई जो पेमियांची की प्रसिद्ध गोम्पा (मठ) बनी हुई है, वह इस के प्राचीन गौरव को बताने के लिए पर्याप्त है। पेमियांची का मठ न केवल सिक्किम का सब से बड़ा मठ है, प्रत्युत राज्य की अधिकांश आय उसी पर व्यय हो जाती है। सिक्किम का राजगुरू भी पेमीयांची में ही रहता है।

गेजिंग में नारंगी और बड़ी इलायची की पैदावार बहुत काफी है। यहां सब से बड़ा व्यापार इलायची का ही है। यहां जो भाव इलायची का है (५० रु० मन) वही चने का। कारण, पहली चीज सुलभ है, दूसरी दुर्लभ। यही हाल घी और तेल का है। चंवर गाय का बढ़िया घी ३॥) सेर है, तो तेल भी इसी भाव। इधर का चावल बहुत अच्छा है। धान का भाव १६) मन है। शुक्रवार को पैंठ लगती है, जिस में आस-पास के देहाती अपने यहां की पैदावार बेच जाते हैं और अपनी जरूरत का सामान ले जाते हैं।

अगले दिन चले तो चिलौना का जंगल मिला, खूब घना! इधर के जंगलों में नमी तो वैसे ही है, फिर जब जंगल इतना घना हो कि भगवान् मरीचिमाली अपने तेजस्वी

अपने तन मन की आहुति देना। आर्य जाति के इस मान्य पूर्ण समय में जाति के पुत्रों में जिन गुणों की आवश्यकता है गुरुकुल की दीक्षा का ध्येय उन गुणों से युक्त युवकों को तैयार करना है।



★

करों से आंतरिक भू-भाग को छू भी न सकें, तो फिर आर्द्रता का क्या कहना ? दो मील की लगातार चढ़ाई के बाद हम पेमियांची के डाक बंगले पर पहुँचे । यह इस मार्ग का अन्तिम डाक बंगला है। इसके ऐन सामने महान् कांचन-शृंग की शुभ्र हिमावती का अलौकिक दृश्य दिखाई देता है।

आगे तीन मील तक लगातार उतार है। पेमियांची तक अच्छी सड़क है, मोटर के लायक तो नहीं, किन्तु खच्चरों के लायक अवश्य । पर उसके बाद रास्ता खच्चरों लायक भी नहीं रह जाता । इस संकीर्ण रास्ते पर उतरते-उतरते हम राथोंग छू (छू नदी) के पुल पर पहुँचे । पुल के पार फिर चढ़ाई आरम्भ हुई।

दो मील की चढ़ाई के बाद थिंगलिन की जरा सी बस्ती और दो मील की उतराई।

फिर नदी का पुल और फिर चढाई।

यकसोम की आखिरी बस्ती

धीरे धीरे शाम सरकती आ रही है। सूर्य अस्ताचल की ओर भागता चला जा रहा है । कुली पीछे रह गये हैं । हम यथासंभव जल्दी चल रहे हैं। पर चढ़ाई में जल्दी कहां चला जाता है ? बार बार चढ़ाई चढ़ते और लम्बा उतार पार करते करते पैरों का कचूमर निकल गया है। किन्तु मंजिल अभी दूर है।

हमने जब यकसोम की सीमा में पांव रखा तो अच्छी तरह अन्धेरा हो चुका था । सब साथी थक कर चूर हो गये थे। बस्ती का पहला मकान मिलते ही सब वहीं बैठ गये । साथी क्षितीश नीमा को साथ लेकर अन्धेरे में रिंगजिंग येगडोंग लामा—यकसोम के सब से बड़े अफसर—का मकान तलाश करने निकला। लामा ने अपना आदमी भेज कर बाकी सब साथियों को भी वहां बुला लिया।

बारबार कठिन चढाई उतराई के कारण आज हमारे कुली पीछे रह गये थे। खाने-पीने और ओढ़ने-बिछाने का सब सामान उन्हीं के साथ था । किन्तु उन के पड़ाव पर न पहुँच सकने के कारण लामा ने तथा उस के सारे परिवार ने जिस तत्परता से हमारा आतिथ्य किया वह इस दूर देश में धन से नहीं केवल मनुष्यता से ही सम्भव है। यकसोम आखिरी बस्ती है और हमारे लिए मकान की यह आखिरी छत है। रात को सोते समय क्षितीश ने सबसे कहा—'आज जी भर कर मकान के अन्दर सो लो, हमारी यात्रा का यह आखिरी मकान है।"

यहां बांस का जितना विस्तृत जंगल है उतना ही विस्तृत उसका उपयोग भी है। घरों की छतों में, छज्जों में, खेती की बाड़ में उसका आम उपयोग है। किन्तु जब मोटे मोटे खोखले बांसों को पानी की टंकियों के रूप में भी प्रयुक्त होते हुए देखा या

बांसों के ही नलों से मीलों तक खेतों में पानी पहुँचते हुए देखा तो मनुष्य की आविष्कारक बुद्धि पर आश्चर्य हुये बिना नहीं रहा।

हे भगवान्, इन जोंकों से बचाओ

आगे के रास्ते में एक और मुसीबत का सामना करना पड़ा। इस का नाम है जोंक। रास्ते भर में जोंक ही जोंक और कितने ही प्रकार की। काली से चितकबरी तक, आध इञ्च से तीन इञ्च तक, घोड़े के बाल से ले कर दीये की बत्ती तक, नाना वर्ण, नाना आकार, नाना परिमाण। वर्षा के कारण फिसलन भी बढ़ गई है। पगडण्डी अत्यन्त सकरी है। लगातार चढ़ाई उतराई। फिर भी मार्ग ऊपर ही ऊपर चढ़ता चला जाता है। जंगल घना है। साथ ही भयकर भी। और इधर ये जोंकें भूमि पर, झोंपड़ियों पर और वृक्षों की शाखाओं पर— नीचे, पार्श्व में और ऊपर। इन से बचा नहीं जा सकता। आदमी को देखते ही चिपट जाती हैं। पैरों में, पीठ में, सिर में, शरीर के किसी भी भाग में न जाने किधर से घुस जाती हैं और चुपचाप रक्त पीने लगती हैं। जब रक्त पी कर खूब मोटी हो जाती हैं तो अपने आप छूट कर गिर पड़ती हैं। कैसा शान्त और सर्वग्रासी शोषण है इन का!

मध्यान्ह के दो बजे के लगभग हम शाचिंग पहुंचे। घने जंगल के बीच एक छोटी सी फूंस की छत खड़ी है—एकाकी और सुनसान। और कहीं किसी बस्ती का नाम-निशान नहीं। पहुंचते ही वर्षा शुरू हो गई, सिक्किम की भयंकर वर्षा जिस में छाते और बरसाती तक सब बेकार होते हैं। अब तो रात का यहीं पड़ाव पड़ेगा। यह भी अच्छा हुआ कि वर्षा होने से पहले ही यहां पहुँच गये। यदि इस भयंक वर्षा के समय फिसलन भरी उस पगडण्डी प होते तो न जाने क्या होता? एक-एक कद सम्हाल कर रखने पर भी बार बार फिसलने का डर। एक खतरनाक स्थान से गुजरते हु कुसांगशेशी जैसे सधे हुये शेरपा का भी पां फिसल गया और एक बोझ नीचे नाले में गि गया। एक दूसरे से गुथे हुए वृक्षों से टकर कर 'बोझ' कुछ फीट नीचे लुढ़क कर ही अटक गया। यदि जंगल इतना घना न होता तो पत नहीं कितने हजार फीट नीचे जाकर गिरता।

चढाई की मुसीबत

अगले दिन लगातार चढ़ाई। उतराई का नाम नहीं। हम ८ हजार फीट से ऊँचे चल रहे हैं। रास्ता कल जैसा भयप्रद नहीं है पांव फिसलने से खड्ड में गिरने की शंका भी नहीं है, क्योंकि अब पगडण्डी पहाड़ की बगल पर नहीं, उसकी पीठ पर चल रही है। जिस तरह रीढ़ की हड्डी ऊपर होते होते सिर के मूल तक पहुँच जाती है उसी तरह इस पगडण्डी ने भी हमें पर्वत के शिखर तक पहुँचा दिया सोचा था—शिखर आया, चढ़ाई समाप्त होगी परन्तु यह क्या—एक शिखर पहुँचने के बा दूसरा शिखर सामने आ गया, फिर तीसर फिर चौथा। इस तरह यह सिलसिला लगाता आगे बढ़ता गया। ज्यों-ज्यों बढ़ते गये त्य त्यों सुरसा के शरी की तरह चढ़ाई और बढ़त गई।

इस चढ़ाई की मुसीबत से छुटकारा न है। पर जरा पथ के दोनों ओर के इस घ जंगल पर तो दृष्टि डालें। १० हजार फीट

अर्थशास्त्रीय चिन्तन का इतिहास

श्री अविनाश वेदालंकार

अर्थशास्त्रीय चिन्तन का इतिहास अत्यन्त मनोरञ्जक, शिक्षाप्रद और प्रगतिशील प्रवृत्तियों के लिए प्रोत्साहन वर्धक है। वह इतिहास भिन्न-भिन्न युगों के आर्थिक जीवन की मानों सजीव प्रतिकृति है। निस्सन्देह आर्थिक घटना-चक्रों और आर्थिक-दृष्टि विषयों की वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति क आधुनिक कहा जा सकता है किन्तु इस का आशय यह नहीं कि आधुनिक युग से पूर्व आर्थिक-घटनाचक्रों और आर्थिक-दृष्टि विषयों का अस्तित्व ही न था। मानव को जिस समय ज्योतिष के सिद्धान्तों की कल्पना तक न थी नभो-मण्डल में नक्षत्र और ग्रह-उपग्रह उस समय भी नियत नियमों के अधीन, गति कर रहे थे। इसी प्रकार एक आधुनिक विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र से पूर्व भी आर्थिक-घटनाचक्रों और आर्थिक-दृष्टि विषयों का प्रबल प्रभावपूर्ण अस्तित्व विद्यमान था और वह मानव मस्तिष्क को तत्युगीन आर्थिक-विकास स्तर पर चिन्तन के लिए आमन्त्रित कर रहा था। अर्थशास्त्र का एक अत्यन्त मान्य लक्षण है—'अर्थशास्त्र मानव समाज की सामान्य अर्थ-चर्चा का अध्ययन है। अर्थशास्त्र व्यक्ति और समष्टि की क्रियाओं के उन अंगों की—जिन का कि मानव की सुख-समृद्धि के भौतिक उपादानों की उपलब्धि और उपयोग से सम्बन्ध है—समीक्षा करता है।'[1] इस लिये स्वभावतः 'मानव मस्तिष्क के चिन्तन-योग्य होने के काल के साथ-साथ ज्ञान के सब से अधिक प्रभावशाली क्षेत्र—आर्थिक क्षेत्र में प्रारम्भ से ही अस्फुट और यत्र तत्र बिखरे हुये विचारों का मिलना अनिवार्य है।'[2] आर्थिक क्षेत्र के प्रारम्भिक विचार कवियों की क्रान्तदर्शी कल्पनाओं; दार्शनिकों की अनोखी सूझ और समाधानों; तथा मानव के विविध रस्म रिवाजों, संस्थाओं और कानूनों में हम को देखने में आते हैं।

आदि स्रोत

अर्थशास्त्री सैलिगमैन ने लिखा है—'आर्थिक-घटना चक्रों और आर्थिक दृष्टिविषयों के सम्बन्ध में आदिम काल्पनिक सिद्धान्त यूनान में मिलते

---

१ मार्शल, एलिमेण्ट्स ऑफ़ इकॉनोमिक्स, बुक १, ५४१।

एलेग्जेण्डर, ग्रे दि डिवेलेपमेण्ट आफ इकौनोमिक डॉक्टरीन, पृ० ११।

भी अधिक ऊंचाई पर यह बुरांस का जगल और टेसू को मात करने वाले उस के लाल फूल। जंगली गुलाब के पौधों पर लगी ये एक दम सुर्ख कलियां—मानो किलकारी भरते हुए अबोध बच्चे के दांत चमक रहे हों!

धीरे धीरे वृक्ष-श्रेणी विरल हो गई। पथ और बढ़ता चला गया और ३ बजे हम लगभग १३,००० फीट ऊंचे मोनलापचा पड़ाव पर पहुँच गये। आज पहली बार तम्बू गाड़ने पड़े।



हैं। यूनानियों से पूर्व पूर्वीय राष्ट्रों के सदृश सामाजिक सुधारों के सम्बन्ध में हम को केवल आचारशास्त्र के उपदेश व विधि विधान अथवा कार्थेजियन्स के सदृश कृषि-विज्ञान पर व्यवहार्य पहलू से लिखे गए निबन्ध मिलते हैं। किन्तु यूनान में अरिस्टोटल और एक्सनाफन ने अर्थशास्त्र पर पृथक निबन्ध और ग्रन्थ लिखे हैं। [1] "कोसा नाम के अन्य विद्वान लिखते हैं, "पूर्व की प्राचीन जातियों की आर्थिक विचारणा का जिसका संकलन उन के धर्म ग्रन्थों से किया जा सकता है—आधुनिक विज्ञान के दृष्टिकोण से कोई महत्व नहीं है। उन विचारणाओं को कुछ ही नैतिक विधानों में ग्रथित किया जा सकता है। कृषि की तुलना में व्यापार-वाणिज्य और शिल्पहीनवृत्ति समझे जाते थे।" [2] हैने ने अपनी पुस्तक में हिब्रू और हिन्दू अर्थ-शास्त्रीय चिन्तन की विशेषता का उल्लेख करते हुए लिखा है, "वह चिन्तन साधारण है, उस पर धार्मिक और नैतिक विचारों का प्रभुत्व है, वह चिन्तन नियामक है, उस में व्यवहार्य दृष्टिकोण का अभाव है, वह स्वाधीनता और प्रगति विरोधी है।"[3] इसी प्रकार इनग्राम ने अपनी पुस्तक (History of Political economy, १८८८) में पूर्वीय अर्थशास्त्रीय चिन्तन को केवल एक पृष्ठ अर्पित करते हुए लिखा है, "उस चित्रण में उन्नत विकास युग की छाप कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती।"

सैलिगमैन, कोसा, हैने, और इनग्राम ही नहीं प्रायः सभी विदेशी लेखक यूनान और रोम को न केवल अर्थशास्त्रीय चिन्तन का अपितु प्राचीन सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का आदिमस्रोत मान कर लेखन में प्रवृत्त होते हैं। क्या वस्तुस्थिति, इतिहास, चिन्तन के तुलनात्मक अध्ययन और भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य की अन्तरंग परीक्षा के दृष्टिकोण से यूनान और रोम को अर्थशास्त्रीय चिन्तन और सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान का आदिमस्रोत मानना युक्तियुक्त और न्यायसंगत कहा जा सकता है?

वस्तुस्थिति

अन्य विषयों के ज्ञान विज्ञान का प्राचीन आदिमस्रोत हमारा आलोच्य विषय नहीं है। जहां तक अर्थशास्त्रीय चिन्तन का वस्तुस्थिति से सम्बन्ध है यूनान में उस चिन्तन के फलने-फूलने के अवसर पर्याप्त न थे। अलक्जेण्डर ग्रे लिखते हैं। "एथेन्स को प्राचीन संसार का प्रतिनिधि मान लें तो भी एथेन्स के नगर-राज्य की भूमि को हम आर्थिक-सिद्धान्तों के निर्माण के लिए उर्वर नहीं कह सकते। दो सामान्य कारणों से—जिन में अन्य अनेक प्रभावों का अन्तर्भाव होता है—यूनान में अन्य विचारणाओं के क्षेत्रों और बौद्धिक प्रक्रमों की महिमा की

१—प्रिंसिपल्स औफ इकौनोमिक्स, पृ० १०६-११०
२—कोसा, इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी औफ पौलिटिकल इकोनोमी. पृ० १२८-१२६
३—हिस्ट्री औफ इकोनोमिक थौट, १६२४-५४, ३५-५६।

तुलना में अर्थशास्त्रीय चिन्तन अत्यन्त साधारण परिमाण और अवस्था में उपलब्ध होता है। प्रथम प्राचीन, राज्य सामान्यतः एक अद्भुत सर्वव्यापी संस्था थी। मानव और नागरिक दोनों पृथक भावसूचक न होकर समानार्थक थे। धर्म राज्य के तन्त्र का अनिवार्य अंग था। इस प्रकार आचारशास्त्र राज्यशास्त्र परस्पर एक दूसरे के साथ घनिष्ट रूप में सम्बद्ध थे। यद्यपि अर्थशास्त्र के प्रति सर्वथा उपेक्षा प्रदर्शित नहीं की गई तथापि उसको आचारशास्त्रीय गवेषणा का गौण अंग समझा गया। दो सहस्त्र वर्ष उपरान्त आदमस्मिथ ने धर्मशास्त्र को आचारशास्त्र के बन्धन से मुक्त किया। यूनान की तात्कालिक अवस्थाओं में वह मुक्ति सम्भव न थी। द्वितीय सामान्य कारण, सम्पूर्ण प्राचीन संसार के संघटन का आधार जन्माधार जाति था। एथेन्स भी उस संस्था के उत्तराधिकार के प्रभावों से मुक्त न था। यूनान के नगर-राज्य की आधार शिला दासप्रथा थी। जहां दास श्रेणी विद्यमान है वहां दासों के लिए नियत श्रम को अनिवार्य रूप से प्रतिष्ठाहीन समझा जाता है।... श्रम करने के लिए दास सुलभ हों तो स्वभावतः श्रम दासत्व का चिन्ह हो जाता है। जीवन की सामान्य अर्थचर्या के प्रति घृणा के ऐसे भावों में अर्थशास्त्र के पृथक् अध्ययन की कैसे आशा की जा सकती है। १

१—दि डिवेलेपमेण्ट ऑफ इकोनोमिक डॉक्टरीन, पृ० १३-१४।

इतिहास के प्रकाश में

इतिहास के प्रकाश में तो अर्थशास्त्रीय चिन्तन के आदिम कालिकस्रोत की खोज में यूनान तथा रोम की प्रादेशिक सीमाओं को लांघ कर हमको उन से अधिक प्राचीन और अज्ञान-तमराशि को विदीर्ण करने वाले एक अन्य महिमामय प्रदेश भारतवर्ष में प्रवेश करना होगा। सभ्यता एवं संस्कृति के प्रथम प्रभात का उदय उसी प्रदेश के उन्मुक्त गगन में हुआ था और सामरव की ध्वनि ने उसी प्रदेश के तपोवनों को सब से प्रथम मुखरित किया था। प्राचीन यूनान के चिन्तन के मुख्य प्रतिनिधि प्लेटो और अरिस्टोटल हैं। अपने गुरु सुकरात को कारावास से भगाने के षड्यन्त्र खुलजाने के दण्डभय से प्लेटो ने अपनी विश्वयात्रा में उस प्रदेश की पुण्यतोया स्रोतस्विनी गंगा तक यात्रा की थी। उस स्रोतस्विनी के तटों और परिवर्त्ती तपोवनों में प्लेटो ने जो ज्ञान ग्रहण किया वह उस के ग्रन्थों में स्पष्टरूप में प्रतिबिम्बित होता है।

तुलनात्मक उत्कृष्टता

प्लेटो के प्रत्यक्ष और अरिस्टोटल के परोक्ष भारतीय सम्पर्क के ऐतिहासिक तथ्य को छोड़ते हुए यदि हम दोनों देशों के प्राचीन अर्थशास्त्रीय चिन्तन की तुलना करें तो हम को भारतीय चिन्तन की आपेक्षिक उत्कृष्टता स्वीकृत करनी होगी। उस उत्कृष्टता के सम्बन्ध में रंगास्वामी ऐयंगर लिखते हैं;

२—विल डुरान्ट दि स्टोरी ऑफ फिलासफी पृ० २०

"हाल ही में आंगल भाषा में प्राचीन यूनान के अर्थशास्त्रीय चिन्तन पर गम्भीर अध्ययन के उपरान्त अनेक उत्तम ग्रन्थ लिखे गए हैं। उन ग्रन्थों में सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थों के अनुसार प्राचीन यूनानी अर्थशास्त्रीय चिन्तन की निम्न ५ विशेष बातें थी। १—चिन्तन की सरलता २—सार्वजनिक और व्यक्तिगत अर्थव्यवस्था में अभेदबुद्धि। ३—अर्थशास्त्र, आचारशास्त्र और राज्य-शास्त्र में भेदबुद्धि का अभाव। ४—चिन्तन में तापसी प्रवृत्तियों का प्राधान्य ५—और समाजवादी विचार प्रवाह। दूसरी ओर जब हम पुरातन भारतीय अर्थशास्त्रीय चिन्तन का अध्ययन करते हैं तो हमको ज्ञात होता है कि वह चिन्तन विचार-दरिद्र न होकर विचार-सम्पन्न और सरल न होकर अधिक जटिल है। यूनान में नगर-राज्य को सर्वेसर्वा मान लेने से राज्य की तुलना में व्यक्ति के अस्तित्व को नगण्य समझने के कारण सार्वजनिक और व्यक्तिगत अर्थव्यवस्था में अन्तर न कर सकने की असामर्थ्य तथा वर्गकलह के आधार पर समाजवाद की प्रवृत्तियां हम को भारतवर्ष में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। भारतवर्ष के प्राचीन चिन्तन में मानव के व्यक्तिगत अधिकारों को स्पष्टरूप में स्वीकृत किया गया है। और वह स्वीकृति आचारशास्त्र राज्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र और धर्मशास्त्र के क्षेत्रों में समान रूप से लागू होती है। भारतीय आर्थिक चिन्तन एक विशाल विचार-योजना का अंग है। उस योजना में आचारशास्त्र, न्यायशास्त्र, राज्यशास्त्र सब का अपना नियत स्थान है। इसके विपरीत प्लेटो के ग्रन्थों में अर्थशास्त्र, राज्यशास्त्र और आचारशास्त्र के विचार क्षेत्रों में अभेदबुद्धि का प्रयोग किया गया है। ...... आधुनिक काल के सदृश प्राचीन भारतीय चिन्तन ज्ञान की परस्पर अन्तः निर्भरता को स्वीकृत करता है। ...... निस्संदेह यूनान की अपेक्षा भारतवर्ष में जीवन के तापस आदर्श अधिक आकर्षक रहे हैं किन्तु यूनान के सदृश भारतीय जनता में न तो हम को जन्मजात दुःखवाद और न उत्पादन क्रियाशीलता के निम्न स्तर के दर्शन होते हैं। जैसा कि हम आगे चल कर प्रदर्शित करेंगे भारतीय अर्थशास्त्र वेत्ताओं ने तापसवाद की कठोर आलोचना करने में कभी संकोच अनुभव नहीं किया। कर्त्तव्यपालन न कर प्रव्रज्या ग्रहण करने वाले की आलोचना मात्र से सन्तुष्ट न रह कर उन्होंने उन के लिए दण्ड व्यवस्था का भी सुझाव प्रस्तुत किया है। १

ऐतिहासिक कालक्रम में सम्राट चन्द्रगुप्त का महामात्य कौटिल्य अरिस्टोटल का—जो कि यूरोपियन अर्थशास्त्र और राज्यशास्त्र का पितामह कहा जाता है—समसामयिक है। आर्थिक क्षेत्र में उस के विचार अरिस्टोटल की अपेक्षा बहुत अधिक उन्नत थे। इस सम्बन्ध में मणिमोहन सेन ने लिखा है, 'यूनान के विद्वानों ने ब्याज, व्यापार-वाणिज्य और विनिमय को गर्ह्य घोषित किया।

१ के० वी० रंगा एयंगर, एनशियण्ट इण्डियन इकॉनॉमिक थौट पृ० २८–२९

★

आर्य समाज तथा वेदपाठ

श्री वैद्य ठाकुरदत्त शर्मा,

प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब।

ऋषि दयानन्द ने वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना आर्यों का परम धर्म लिखा है। परम धर्म तो अभी आर्यों ने बनाया नहीं, फिर भी कुछ ध्यान तो आर्य लोग रखते ही हैं। प्रायः आर्यसमाजियों को प्रार्थना, स्वस्तिवाचन, शांन्ति प्रकरण संध्या और हवन के मन्त्र बोलने आते हैं बल्कि कइयों को तो मौखिक याद हैं, यह जान कर प्रसन्नता होती है परन्तु इस के साथ एक दुःख भी है वह यह कि ये मंत्र न तो वेद की जैसी स्वर होनी चाहिए उस स्वर से पढ़े जाते हैं न शुद्ध पढ़े जाते हैं। आर्यसमाज के संस्कृत के विद्वान भी जब वेद-मन्त्र पढ़ते हैं तो वेदपाठी कानों पर उंगलियां धरते हैं।

समाज में संस्कारों के अवसर पर जब सब मिल कर ये मन्त्र पढ़ते हैं तो दूर से ही सुन कर हर कोई कह सकता है कि ये आर्यसमाजी बोल रहे हैं। लम्बे २ बेतुके राग की भांति स्वरें निकालते हैं। न विसर्ग का ध्यान, न विराम का विचार। शांतिपाठ हर समय बोला जाता है। फिर भी इस मन्त्र का उच्चारण अशुद्ध होता है! मैं स्वयं वेदपाठी नहीं हूँ परन्तु वेदपाठियों से प्रायः वेदपाठ सुनते रहने से मुझ को कई बातें ज्ञात हैं। इन्हीं के आधार पर ऐसा लिखने का साहस कर रहा हूँ।

अब आर्यसमाजी भी वेद का पाठ ठीक करें, इस के वास्ते क्या करना चाहिये। मैंने ऐसा विचार किया है कि एक वेदपाठी को सभा में उपदेशक ही रख लिया जाय। वह आर्यसमाजों में जा कर कुछ दिन ठहरे और सदस्यों को एकत्र कर के वेदपाठ सिखाता जाय। इस प्रकार वह वर्ष में दस-बीस समाजों में घूम कर शुद्ध वेदपाठ का ज्ञान करा सकेगा।

मैंने वेदपाठी सज्जन को ढूंढने का यत्न आरम्भ कर दिया है। यदि कोई मिल गया तो उत्तम, नहीं तो किसी पण्डित को कुछ समय के वास्ते किसी जगह वेदपाठ सीखने के लिये भेजने का विचार है।

आर्यसमाजों से निवेदन है कि सभा के कार्यालय में इस बात की सूचना दें कि वे इस योजना को पसन्द करते हैं और ऐसा प्रबन्ध हो जाने पर वे वेदपाठी को बुला कर दस-पन्द्रह-बीस दिन रख कर सदस्यों को वेदपाठ सिखलाना पसंद करेंगे।



रीढ़ वाले जन्तुओं में जनयिता-संरक्षण

श्री चम्पत स्वरूप गुप्त

मछलियों में

मछलियों की सन्तान बहुत अधिक संख्या में उत्पन्न होती है, इसलिये संरक्षण की आवश्यकता कम है। उन के जीवन की अन्य अवस्थाएं भी संरक्षण के अनुकूल नहीं है। जहां कहीं संरक्षण का दृश्य दिखाई भी देता है उस में अधिकतर कार्य नर के द्वारा होता है। उदाहरण ये हैं—

१—शूक पृष्ठ (स्टिकिल बेक) नामक मछली का नर पानी की घास तथा अन्य पदार्थों का मिलाकर एक घोंसला बनाता है। इस घोंसले में एक द्वार आगे और एक पीछे की ओर होता है। घोंसला बनाने का काम समाप्त करने के पश्चात् वह किसी मादा की खोज में निकलता है जिस के मिल जाने पर वह उसको घोंसले में प्रवेश करने के लिये तथा अंडे देने के लिये प्रेरित करता है। अंडे रख कर ज्यों ही मादा पिछले द्वार से बाहर निकलती है, नर सामने के द्वार से घोंसले में जाकर अंडों को फलप्रद करता है (फरटिलाइज़)। इसी प्रकार कितनी ही मादाएं घोंसले के भीतर जाकर अंडे रखती हैं। नर इस घोंसले की रक्षा करता है और उस के चारों ओर पानी को हिला डुला कर ताजा बनाये रखता है। जब बच्चे अंडों से बाहर निकलते हैं तो वह उनकी शत्रुओं से रक्षा करता है। यदि बच्चे घोंसले से बहुत दूर भाग जाते हैं तो वह उनको अपने मुंह में पकड़ कर रक्षित स्थान पर ले आता है। नर के द्वारा यह संरक्षण लगभग तीन या चार सप्ताह तक जारी रहता है।

२—रास नामक मछलियां समुद्री पौदे और जन्तुओं के खोलों को मिला कर एक बड़ा गेंद जैसा घोंसला बनाती हैं।

कुड़किया (सालमन) और कुतरिया (ट्राउट) नामक मछलियां नदियों में पानी के नीचे अपनी पूंछ की सहायता से स्थान बना कर गढ़हों में अंडे रखती हैं और उनको रेत तथा बजरी से ढक देती हैं।

४—बाओफिन नामक मछलियां मुश्कबेलों के बीच स्थान साफ कर के एक गढ़हा बनाती हैं। उस गढ़हे में ये मछलियां अंडे रखती हैं। नर उनकी रक्षा करता है। अंडों से बाहर निकलने पर भी रक्षा के लिये बच्चों की प्रवृत्ति अपने पिता के पास ठहरने की होती है।

५—समुद्री घोड़ा नामक मछलियां समुद्र तल पर अंडे देती हैं। फलप्रद करने के पश्चात् नर इन अंडों को अपने उदर पर स्थित एक थैली में रख लेता है। अण्डों से निकलने पर बच्चे यद्यपि स्वतन्त्र रूप से विचरने लगते हैं किन्तु तनिक सा

भी भय होने पर वे तुरन्त पिता के पास लौट कर थैली में शरण लेते हैं। नाल-मछलियों (पाइपफिश) के जीवन में भी इसी प्रकार का दृश्य देखने को मिलता है।

६—मक्खन मछलियां (बटरफिश) छिद्रों में या किसी जन्तु के खोल में अंडे रखती हैं। इन अंडों के चारों ओर नर या मादा, किन्तु अधिकतर नर अपने शरीर की कुण्डली बना कर अंडों की रक्षा करता है।

७—एरियस एक बिडाल मछली का नाम है। अंडों को नर अपने गल (फेरिंक्स) में रखता है!

८—मादा एसप्रेडो अंडों को अपने शरीर के औदरिक तल पर उसी प्रकार धारण किये रहती है जिस प्रकार एक सरिनम दादुर अंडों को अपनी पीठ पर रखता है।

उभयचरों (एम्फीबियन्स)

साधारणतः उभयचरों में जनयिता संरक्षण बहुत कम देखने को मिलता है और इसलिये अंडे बहुत अधिक संख्या में पैदा होते हैं ताकि कम से कम कुछ तो अवश्य ही जीवन संघर्ष में सफल हो सकें। फिर भी संरक्षण के जितने दृश्य उभयचरों में दिखलाई देते हैं वे बड़े ही विचित्र हैं। अधिकांश में माता किन्तु कुछ थोड़ों में पिता संरक्षक बनता है। उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(क) मादा के द्वारा—

१—भारतवर्ष, लंका तथा मलय प्रदेश में कृमि या सर्प की आकृति जैसा एक उभयचर पाया जाता है जिसका नाम इचथियोफिस है। मादा उथले पानी के किनारे सुराख बना कर अंडे रखती है और अंडों के चारों ओर अपने शरीर की कुण्डली बना कर उन की रक्षा करती है। जिस समय बच्चे अंडों से बाहर आने को होते हैं; मादा अंडों को पानी में ले जाती है क्योंकि बच्चे जल में रहने वाले जन्तु हैं।

२—सरिनम दादुर का नर मादा के शरीर के पीछे वाले भाग को पकड़ लेता है। मादा की अंडप्रणाली लगभग एक इंच की लम्बाई तक शरीर के बाहर आ जाती है। यह निकला हुआ भाग नर के औदरिक तल और मादा के पृष्ठतल के बीच में से होकर उलटता हुआ मादा की पीठ पर पहुँच जाता है। नर इस भाग को दबाता है और अंडे एक एक कर के बाहर निकल कर मादा की पीठ पर आ जाते हैं। प्रत्येक अंडे के लिये मादा की पीठ पर एक पृथक् ढकने दार जेब बन जाती है। अंडों का पूरा क्रम-वर्द्धन इन जेबों में रक्षित रह कर होता है।

३—शिशुधानिक दादुर (मारसूपियल टोड) के अण्डों का समूह मादा की पीठ

पर स्थित एक थैली में रक्षा ग्रहण करता है।

४—(हाइला फेबर) ब्रेजील का एक वृक्ष मेंढक है। अंडों और बच्चों के लिये मादा किसी उथली तलैया में टब या प्याले जैसे घर बनाती है। इस घर के भीतर की मिट्टी की दीवार को वह अपने उदर से घिस कर चिकना कर देती है।

५—हाइला गोयलडाइ नामक वृक्ष मेंढक की मादा अंडों को अपनी पीठ पर रखती है।

रहेकोफोरस रेटीक्यूलेटस नामक मेंढक की मादा अंडों को अपने उदर पर रखती है जहां पर अंडों के पृथक् हो जाने के बाद भी कोष्ठ जैसे अवशिष्ट चिन्ह रह जाते है।

७— डेस्मोग्नेथस फुसकस अमेरिका का साधारण फुप्फुस रहित जल सेलेमेन्डर है। मादा माला के रूप में अंडों को बाहर निकालती है और माला को शरीर के चारों ओर लपेट लेती है। इस के पश्चात् किसी छिपे हुए स्थान में स्थित गढ़हे में चली जाती है।

(ख) नर के द्वारा—

१—नर दाईदादुर (मिडवाइफ टोड) अंडों को मादा के शरीर से बाहर आने पर फलप्रद करता है और फिर उनको अपनी टांगों पर ले लेता है। कुछ समय बाद वह इन अंडों को पृथ्वी के भीतर सूराख बना कर रखता है। कभी कभी इन को गीला करने के लिये टांगों पर रख कर पानी में भी ले जाता है। जब बच्चों का अंडों से बाहर निकलने का समय आता है तो वह पानी में चला जाता है।

२—(रहाइनोडरमा) के अंडों का पूर्ण क्रमवर्द्धन नर के स्वर कोषों (वोकल-सेक्स में स्थित रह कर होता है।

३—(डेन्डोबेटूस) नामक जंगली दादुर का नर अंडों को अपनी पीठ पर रखता है।

उरोगामियों (रेप्टाइल्स) में

अधिकांश उरोगामी अपने अंडे बच्चों की कुछ विशेष चिन्ता नहीं करते। केवल वे अंडों को ऐसे स्थान पर रख देते हैं जहां उन्हें पर्याप्त गर्मी मिल सके। कुछ सर्पों के बच्चे अंडों से निकलने के बाद थोड़े समय के लिये अपने जनयिताओं के पास रहना पसन्द करते हैं। अजगर अंडों के चारों ओर अपने शरीर की कुण्डली बनाकर लगभग दो मास तक उनकी रक्षा करते हैं। मगर अंडों के लिये साधारण घर बनाते हैं और जब तक बच्चे बाहर न निकल आयें वे अंडों के पास रहते हैं।

चिड़ियों में

चिड़ियां अपने अंडों और बच्चों की बहुत अधिक रक्षा करती है। प्रत्येक चिड़ियां विशेष प्रकार का घोंसला बनाती हैं। यह घोंसला किसी एकान्त तथा छिपी हुई सुरक्षित जगह पर होता है। अधिकांश में घोंसले बनाने तथा बच्चों की रक्षा करने का काम मादा करती है किन्तु कुछ उदाहरण

ऐसे भी मिलेंगे जिन में इस कार्य का उत्तरदायित्व नर के ऊपर आ गया है। घोंसले का विशेष उपयोग अंडों और बच्चों को गर्मी तथा रक्षित रखने का है।

घोंसला बनाने के बाद अंडे सेने का कार्य प्रारम्भ होता है। इस कार्य के लिये साधारणतः मादा अंडों पर बैठती है। नर बाहर से भोजन लाता है और शत्रुओं को दूर रखता है। (ईम्यू) और शत्रु शुतुरमुर्ग आदि कुछ चिड़ियों में अंडे सेने का काम नर ने ले लिया है। इन चिड़ियों में बहुत सी मादाओं द्वारा रखे हुए अंडे एक ही नर के पक्षों (विंग्स) के नीचे स्थान पाते हैं। शुतुरमुर्ग के तथा अन्य पृथ्वी पर घोंसले बनाने वाली चिड़ियों के बच्चे रोवेंदार परों से ढके हुए अंडों के बाहर निकलते हैं। वे दौड़ सकते हैं और स्वयं भोजन ग्रहण कर सकते हैं। किन्तु जिन चिड़ियों के घोसले पेड़ों पर रखे होते हैं उन के बच्चे इतनी अधिक पूर्ण अवस्था में अंडों से बाहर नहीं निकलते। ऐसी अवस्था में जनयिता संरक्षण की विशेष आवश्यकता होती है उन के माता पिता गर्मी, सर्दी तथा शत्रुओं से उनकी रक्षा करते हैं, उन को भोजन लाकर देते हैं और घोंसलों की सफाई करते हैं। थोड़ा समय बीतने पर वे बच्चों को उड़ना सिखाते हैं। शिकारी चिड़ियां अपने बच्चों को शिकार करना सिखाती हैं।

स्तन धारी जन्तुओं में

स्तनधारी जन्तुओं में जनयिता संरक्षण सब से अधिक विकसित अवस्था को पहुँचा हुआ है। सन्तान संख्या में कम होती है इसलिये माता पिता व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक बच्चे की रक्षा पर पूरा ध्यान दे सकते हैं। बच्चों को भोजन खिलाना, रक्षा के लिये अपने साथ रखना तथा शिक्षा देना आदि संरक्षण के विभिन्न कार्य हैं जिन के अत्यन्त मनोरञ्जक उदाहरण स्तनधारियों में देखने को मिल सकते हैं। किन्हीं किन्हीं में संरक्षण का भार माता की अपेक्षा पिता के ऊपर अधिक होता है।

(क) भोजन देना—पैदा होने के बाद बच्चे बहुत समय तक भोजन के लिये माता के ऊपर आश्रित रहते हैं। माता उन को दूध पिलाती है। दूध बच्चों के लिये एक बहुत ही अच्छा और पूर्ण पोषण युक्त पदार्थ है जिसके क्षरण की शक्ति केवल स्तनधारियों में ही होती है।

(ख) बच्चों को साथ रखना—

१—थैली वाले स्तनधारी जन्तुओं जैसे कांगरू के बच्चे एक बहुत ही असहाय अवस्था में माता के शरीर से बाहर आ जाते हैं। समर्थ होने तक वे माता की थैली में रक्षा पाते हैं। माता इनको तब तक अपने शरीर की थैली में रखती है जब तक वे अच्छी प्रकार से कूदने और दौड़ने के योग्य नहीं हो जाते।

२—कोआला का बच्चा माता की पद्दी चढ़ता है।



गुरुकुल समाचार

ऋतु—इस मास वर्षाऋतु अपने पूरे जोर पर रही है। वन उपवन लहलहा उठे हैं। नदी नाले और ताल-तलैया छलछला गए हैं। देशी आमों की बहार इस साल श्रावण के अन्त तक चालू रही। अभी तक कुलउपवन में मच्छरों का प्रकोप प्रारम्भ नहीं हुआ है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य सामान्यतया अच्छा है। मनोहर दिनों के अवकाशों में छात्रों की टोलियां बड़ी गंगा के नवनिर्मित बांध का अवलोकन करने प्रायः जाती रहती हैं। वर्षा की बहार में चातक वृन्द के आमोद पूर्ण कलरवों से वननिकुञ्ज गूंजते रहते हैं।

स्वाधीनता दिवस

कुलवासियों ने स्वाधीनता दिवस (१५ अगस्त) बड़े स्नेह और उल्लास के साथ मनाया। वाद्य-निर्घोषों के साथ सब कुलवासी झण्डा चौक में समवेत हुए। क्रमशः वन्देमातरम् और जनगणमन गीत गाए गए। श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने नवीन राष्ट्र पताका फहराई और पताका के रंगों के संकेतों का महत्व समझाते हुए छात्रों को राष्ट्र की स्वाधीनता का गौरव बतलाया। ध्वज-वन्दन की विधि हो जाने पर विविध जयकारों के साथ प्रातःकाल का कार्य समाप्त हुआ। अपराह्न में छात्रों की क्रीडाएं हुई। और रात को साहित्योपाध्याय श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार के सभापतित्व में साहित्य गोष्ठी का विशेष अधिवेशन संपन्न हुआ। इस में छात्रों तथा गुरुजनों ने अपनी कविताएँ कहानियां और रचनाएं सुनाकर श्रोताओं को तृप्त किया।

मान्यअतिथि

भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष श्रीयुक्त माधव स्वरूप जी वत्स उस दिन गुरुकुल में पधारे। आपने गुरुकुल के सब विभागों का अवलोकन किया। गुरुकुल के पुरातत्व संग्रहालय को आपने बड़ी दिलचस्पी से देखा। गुरुकुल के कार्यकलाप और संग्रहालय के विकास को देख कर आप बहुत प्रसन्न हुए।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी

कुलवासियों ने वेदमन्दिर में एकत्र हो कर उपाचार्य श्री प्रो० बालचन्द जी के सभापतित्व में कृष्ण जन्माष्टमी उत्सव मनाया। ब्र० विश्वबन्धु, ब्र० नारायणदत्त तथा श्री शंकरदेव विद्यालंकार आदि वक्ताओं ने कृष्णचरित्र के विविध प्रसंगों पर प्रकाश डालते हुए चरित्रनायक का गुण कीर्तन किया। श्री उपाचार्य जी ने श्रीकृष्ण के लोकनायकत्व और उन के चरित्र की आकर्षकता पर विशेष रूप से प्रकाश डाला। इसी दिन सायंकाल को आर्यसमाज मन्दिर में भी कृष्णजन्मोत्सव मनाया गया।

संग्रहालय

गतमास डा० शिवनाथराय जी ने देहरादून जिले का भ्रमण कर अपने अनथक उद्योग एवं परिश्रम से काफी बहुमूल्य सामग्री संगृहीत की। इस कार्य में उन्हें श्री धर्मदेव जी शास्त्री दर्शन केशरी, अशोकाश्रम, कालसी तथा श्री महाराज कुंवर बहादुर जंग शमशेर राणा कटापत्थर कालसी से बहुमूल्य सहायता मिली थी। धर्मदेव जी ने जौनसारी घर की लकड़ी का एक सुन्दर माडल दिया। तथा

राणा जी से एक बहुत पुराना शंख, मकर का मुंह तथा नृसिंह की कांस्य-मूर्ति प्राप्त हुई। आशा है, इनका सहयोग संग्रहालय को सदैव मिलता रहेगा। चूहड़पुर से भी अनेक मूर्तियां मिली हैं।

जून में संग्रहालय से १७१४ व्यक्तियों ने लाभ उठाया।

माननीय श्री आत्माराम जी गोविन्द खेर मन्त्री स्वायत्त-शासन विभाग ने संग्रहालय का निरीक्षण किया था, इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने एक पत्र में निम्न विचार प्रकट किये हैं—गत १४ अप्रैल को मुझे गुरुकुल कांगड़ी के संग्रहालय को देखने का अवसर मिला था। हरिद्वार के महत्व-पूर्ण तीर्थ स्थान में यह संग्रहालय प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति का अन्वेषण कार्य कर रहा है। इस के अनुसंधान एवं लोकशिक्षण के कार्य की प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञों ने बड़ी सराहना की है। निकट भविष्य में यह संस्था भारतीय संस्कृति के प्रसार में शक्तिशाली साधन सिद्ध होगी। मेरी शुभकामनाएं इस संस्था के साथ हैं।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में निम्न कार्यों के लिए योग्य अध्यापकों की आवश्यकता है—

एक शिक्षक—जो द्वितीय श्रेणी तक हिन्दी, संस्कृत, गणित, इतिहास, भूगोल आदि विषयों को पढ़ा सके, और बच्चों की देखरेख प्रेमपूर्वक कर सके।

दूसरा शिक्षक—जो षष्ठ श्रेणी तक संस्कृत, व्याकरण गणित, सायन्स आदि विषय पढ़ा सकें। चिकित्सा कार्य भी यथा समय पर कर सकें तो अच्छा है।

शिक्षकों का सुधारक विचार का और धर्म का प्रेमी होना आवश्यक है। आलेख्य, व्यायाम और चिकित्सा आदि किसी कार्य को जानने वाले को प्राथमिकता दी जायेगी।

आवश्यकता है

जीन्द में देर से चल रहे एक धर्मार्थ औषधालय के लिये आयुर्वेदालंकार स्नातक की आवश्यकता है। कुशल चिकित्सक अपने अनुभवों और योग्यता के प्रमाणपत्रों के साथ पत्र व्यवहार करें। पता—श्री सेठ बनवारीलाल, आर्यवानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार।

वैज्ञानिक संग्रहालय

वैज्ञानिक संग्रहालय में कीड़ों, पतंगों तितलियों तथा अन्य नये-नये जीव जन्तुओं का संग्रह तेजी से बढ़ रहा है। जीव-विज्ञान के विद्यार्थी विशेष रूप से और सामान्यतया अन्य विद्यार्थी भी इस में विशेष अभिरुचि ले रहे हैं! इन दिनों लगभग चार सौ नये नमूने एकत्रित कर लिये गये हैं। बाघ, संसार आदि के कपालों की संग्रहालय में इसी मास वृद्धि हुई है।

हम चाहते हैं कि जनता अपना प्रेमपूर्ण सहयोग हमें सक्रिय रूप में अधिकाधिक प्रदान करती रहे जिस से यह एक उच्च कोटि का आदर्श वैज्ञानिक संग्रहालय बन जाय जो जन साधारण में वैज्ञानिक विषयों के अध्ययन के प्रति अनुराग बढ़ाने की सतत प्रेरणा देता रहे।

विशेष व्याख्यान

ग्रीष्मकालीन व्याख्यान माला के सिलसिले में आर्यजगत् के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के तीन व्याख्यान हुए। पहले व्याख्यान में आपने वेदार्थ में स्वरों का महत्व बताया। दूसरे व्याख्यान में आपने वेदार्थ करते

हुए वेदों की अन्तः-साक्षी बहुत सहायक होती है, यह बात उदाहरणों द्वारा स्पष्ट की। तीसरे व्याख्यान में आपने संस्कृत व्याकरण पढ़ने की आर्ष प्रणाली के लाभ बताये। गुरुकुल के विद्यालय-विभाग में भी आपने व्याकरण शिक्षा की सरल और सुबाध रीति पर प्रकाश डाला।

आयुर्वेद परिषद् के तत्वावधान में पाश्चात्यचिकित्सा-विज्ञान के प्रोफेसर श्री डा० सन्तराम जी का मलेरिया पर एक खोजपूर्ण व्याख्यान हुआ और प्राणी-शास्त्र के उपाध्याय श्री चम्पतस्वरूप गुप्त ने,'जन्तुओं में जनयिता संरक्षण' पर एक जानकारी पूर्ण रोचक व्याख्यान दिया। एपिडायस्कोप से विषय को स्पष्ट और सुबोध कराते हुए वक्ता महोदय ने अनेक चित्रों को श्रोताओं के सामने उपस्थित किया। व्याख्यान का संक्षिप्त रूप गुरुकुल पत्रिका में प्रकाशित किया जा रहा है।

स्वास्थ्य समाचार, श्रावण २००८

श्रेणी नाम रोगी ब्रह्मचारी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा
१५ विश्वदेव	टौन्सिल	८ दिन
१५ विपिनचन्द्र	आमातिसार	४ दिन
१४ महेन्द्रप्रताप	आंत्रशूल	१३ दिन
१४ मदनलाल	प्रतिश्याय	३ दिन
१३ विश्वनाथ	ज्वरातिसार	१२ दिन
१२ बालकृष्ण	आंत्रशूल	२ दिन
१२ भूदेव	व्रण	६ दिन
१४ श्रुतिकान्त	व्रण	३ दिन
११ राजबहादुर	मोच	६ दिन
६ योगेन्द्र	आंत्रशूल	५ दिन
८ जयवीर	ज्वर	३ दिन
८ कृष्णकान्त	ज्वर	४ दिन
७ रमेश	चोट	२ दिन
७ सत्यपाल	नेत्राभिश्यन्द	१२ दिन
६ हरिश्चन्द्र	ज्वर	३ दिन
६ पूर्णचन्द्र	,,	३ दिन
६ सुभाष	,,	५ दिन
५ नन्दकिशोर	,,	२ दिन
५ विनोद	,,	५ दिन
४ त्रिपुरेन्द्र	,,	४ दिन
४ वेंकटराम	,,	३ दिन
३ शिवराज	,,	३ दिन
३ सुरेश	,,	४ दिन
३ जुगलकिशोर	,,	४ दिन
३ कौशलकिशोर	,,	३ दिन
३ सुभाष	,,	५ दिन
२ युद्धवीर	,,	३ दिन
२ रवीन्द्र	,,	३ दिन
२ उमेश	,,	४ दिन
२ अशोक	निमोनिया	१५ दिन

रीढ़ वाले जन्तुओं में जनयिता संरक्षण

(पृ० २६ का शेष)

३—आपोसम के छः नवजात शिशु एक ही साथ माता की पीठ पर चढ़ कर अपनी पूंछें माता की पूंछ पर लपेट लेते हैं ताकि गिर न जायें।

४—चिमगादड़ के बच्चे भी जब तक उड़ने योग्य नहीं होते माता के शरीर पर लटके रहते हैं।

५—बन्दरों के बच्चे भी माता के शरीर

से चिपटे हुए प्राय देखे जाते हैं।

६—मनुष्य के बच्चे गोद में कन्धों पर या बच्चागाड़ियों में रहते हैं।

७—दरियाई घोड़े (हिफोपोटेमस) का बच्चा माता की गर्दन या पीठ पर सवारी करता है।

(ग) शिक्षा देना

१—बन्दर अपने बच्चों को पेड़ पर चढ़ना सिखलाते हैं। इस कार्य के लिये कभी कभी बच्चों को अपने माता पिता की पूंछ का आश्रय लेना पड़ता है। त्रुटि हो तो जनयिता बच्चों को शुद्ध भी करते हैं।

२—शेरनी अपने बच्चों को शिकार करना सिखाती है। कभी वह अपनी पूंछ पर ही बच्चों को शिकार का अभ्यास करने देती है और कभी वह किसी छोटे जन्तु को लाकर इस प्रकार अंग रहित कर देती है कि वह भाग न सके। इस अंगहीन जन्तु पर बच्चे शिकार का अभ्यास करते हैं।

३—माता के शरीर के सहारे बकरी के बच्चे पहाड़ों पर चढ़ना सीखते हैं।

४—समुद्री शेर टापुओं के चटानों पर बच्चे देते हैं। समय समय पर बच्चों को तैरना सिखाने के लिये पानी के किनारे ले जाते हैं।

५—मनुष्य समाज में शिक्षा की व्यवस्था से प्रत्येक पाठक परिचित हैं।

(घ) पिता संरक्षक

नर मारमोजेट पैदा होते ही बच्चे को अपने पास ले लेता है। बच्चे को साथ लिये वह पेड़ की एक शाखा से दूसरी शाखा पर घूमता फिरता है। केवल दूध पीने के लिये ही बच्चा माता के पास जाता है।



मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल पत्रिका

आश्विन

२००८



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरि

वर्ष ४
अङ्क २

गुरुकुल-पत्रिका

आश्विन
२००८

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

अथ सुवर्णद्वीपात् — डॉक्टर रघुवीर पी० एच० डी०
ईश्वर प्राप्ति और श्रद्धा — श्री स्वामी कृष्णानन्द

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

आत्म-विश्वास

ऋषिः—वसुक्र ऐन्द्रः । देवता इन्द्रः । त्रिष्टुप् छन्दः ।

न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये।
मम स्वनात्कृधुकर्णो भयाते एवेदनु द्यून्किरणः समेजात् ॥

ऋक० १०-२७-५

मैं इन्द्र हूँ ऐश्वर्यशाली हूँ । जब तक कोई निश्चय नहीं करता, किसी संघर्ष में नहीं पड़ता, लोग मेरे सामर्थ्य से अनजान रहते हैं ।

किन्तु जब मैं किसी संघर्ष में जूझ पड़ता हूँ, किसी काम को करने का मन बना लेता हूं, तब मुझे कोई रोक नहीं सकता; किसी प्रकार का पाप या प्रलोभन पथ भ्रष्ट नहीं कर पाता और पर्वततुल्य बड़े से बड़ा कष्ट बाधक नहीं बन सकता ।

मैं जब अपने मनोरथ की—निश्चय की—गर्जना करता हूँ, तो बधिर भी डर जाते हैं, दूसरों की तो बात क्या ?

परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि आत्मविश्वास व आत्मसामर्थ्य के ज्ञान की यह किरण मुझे प्रतिदिन प्रेरणा देती रहे । मैं सदा संकल्प और सत्कर्म का मन बनाये रहूं, कभी निष्कर्मण्य न बनूं, और अपने सामर्थ्य को न भूलूं ।

अर्थ—वृजनम्—(१) युद्ध, संघर्ष (२) पाप (३) आपत्ति—कष्ट कृधुकर्णः—बधिर। समेजात्—प्रेरित करे। अनुद्यून्—प्रतिदिन । एवेत्—सदा।

—श्री मनोहर विद्यालंकार।



वेदों का अर्थ करने के मूलभूत सिद्धान्त

श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

वेदों का अर्थ शताब्दियों से लुप्त है। अब से १५०० वर्ष से भी पूर्व का कोई वेद-भाष्य हमारे सामने नहीं है। इस बीच में केवल सायण का ही वेदभाष्य सर्व प्रसिद्ध और सर्वमान्य बना हुआ है, जो केवल यज्ञ परक है जिसे देख कर या पढ़कर वेद का गौरव पाठक के हृदय में नहीं बैठ सकता। ऐसी स्थिति में यदि हम किसी प्रामाणिक वेद भाष्य के आधार पर वेदार्थ प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धान्तों का निर्णय कर सकें तभी हम वेदार्थ के विषय में कुछ अंश तक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। वेदार्थ के मूलभूत सिद्धान्त विविध प्रक्रिया अर्थात् मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं, आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक। दूसरा यौगिक-वाद अर्थात् प्रकृति प्रत्यय के सम्बन्ध से निर्वचन द्वारा वेद के शब्दों का अर्थ जाना जा सकता है और उस में भी जो धातुओं के अर्थ पाये गये हैं वे उपलक्षण मात्र हैं। उन मन्त्रों से भिन्न भी अर्थ धातुओं के होते हैं यह भी एक मौलिक सिद्धान्त है। तीसरा पदपाठकारों को वेदों के प्रथम भाष्यकार कहना चाहिए। चौथा मन्त्रों के देवता का स्वरूप क्या है। क्या विग्रहवान् (शरीरधारी) का ही नाम देवता है अथवा ऋषि दयानन्द के विचारानुसार मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय का नाम देवता है, दोनों में कौन ठीक है। पांचवां कण्व आदि नाम ऋषियों के हैं, तो वेद में इतिहास स्पष्ट सिद्ध होता है। यदि ये पद विशेषण वाची हैं तो इस में प्रमाण क्या है निरुक्तकार पदेर लिखते हैं कुरंगो राजा बभूव इत्यादि बचनों से इतिहास सिद्ध है। इसलिये इतिहास वाद का मूलसिद्धान्त क्या है इसका पता लगना चाहिए। छठा व्यत्यय का सिद्धान्त कहां तक सप्रमाण और ग्राह्य है इत्यादि सिद्धान्तों पर जब तक हम गहरा विचार नहीं करते तब तक यथार्थ वेदार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता। अधिक अच्छा यह होता कि इन पर एक-एक दिन पृथक विचार किया जाता पर समयाभाव से संक्षेप से ही हम इस पर विचार करते हैं।

१—वेद का अर्थ समझने के लिये, शब्द २ प्रकार के होते हैं लौकिक और वैदिक. यह बात हमें पहले समझ लेनी चाहिए। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अथ शब्दानुशासनम् के भाष्य में "अथ केषां शब्दानां लौकिकानां वैदिकानां च यह कह कर स्पष्ट कर दिया कि लौकिक शब्द वैदिक शब्दों से भिन्न होते हैं। लौकिक कोषों में अहि सांप का कहते हैं वैदिक कोष निघण्टु में अहि मेघ का नाम है। लोक में पर्वत और गिरि पहाड़ को कहते हैं परन्तु निघण्टु में ये दोनों ही मेघ के नामों में पढ़े हैं, इसलिए ऋषि दयानन्द से पहले वेद के शब्दों का अर्थ लौकिक शब्दों के आधार पर किया जाता था इस लिए सब लोग भ्रांति में थे जिसे ऋषि दयानन्द ने दूर किया।

साधारण लोगों की ही यह बात हो ऐसा नहीं है। बड़े २ विद्वान भी इस भ्रांति में निमग्न थे। कलकत्ता युनिवर्सिटी के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष महेन्द्रचन्द्र न्यायरत्न ने

(भ्रान्ति निवारण) के पृष्ठ ६ तथा १३ पर यहां तक कह दिया जो लिखित शास्त्रार्थ ऋषि दयानन्द के साथ हुआ था कि 'अग्निमीडे पुरोहित' इस अग्नि शब्द से सिवाय आग के दूसरे अर्थ नहीं ले सकते । तथा वेद भाष्यकार सायणाचार्य की भी इसी पक्ष में साक्षी वर्तमान है ।

पूर्वोक्त बात से निश्चय होता है कि अग्नि शब्द से सिवाय आग के दूसरे अर्थ नहीं होते । बड़े २ विद्वान कैसी २ भ्रान्ति में पड़े हैं। मैं आपके सम्मुख सायण से भी पुराना प्रमाण उपस्थित करता हूं जो आज से १५०० वर्ष की परम्परा को बताता है कि वेद के सब मन्त्रों के अर्थ आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक तीनों प्रकार के होते हैं । जिस परम्परा को या तो सायण समझ नहीं सका, उनकी बुद्धि में निश्चयात्मक ज्ञान नहीं हो सका अथवा इस परम्परा को नष्ट कर दिया । देखिये १५०० वर्ष पूर्व का स्कन्द स्वामी लिखता है 'सर्व दर्शनेषु च सर्वे मन्त्रा योजनीया' कुतः—स्वयमेव भाष्यकारेण सर्व मन्त्राणां त्रिप्रकारस्य विषयस्य प्रदर्शनाय अर्थं वाचः पुष्पफलमाह इति यज्ञादीनां पुष्प फलत्वेन प्रतिज्ञानाह् । इस उद्धरण से स्पष्ट है कि यास्क सब मन्त्रों के तीनों प्रकार के अर्थ मानते हैं । इस प्रकार सायणाचार्य का वेदों का सम्पूर्ण भाष्य केवल यज्ञ परक होने से तृतीयांश (सो भी कहीं २ अधूरा) ही कहा जा सकता है शेष उस से दुगना आध्यात्मिक और आधिदैविक तो लुप्त ही कहा जायगा । जिसे ऋषि दयानन्द ने अपने भाष्य में प्रायः सर्वत्र इङ्गित चेष्टित द्वारा दर्शाने का यत्न किया । ऐसी अवस्था में सायण और उनके साथी कितने अन्धेरे में हैं यह स्पष्ट हो जाता है ।

तहां मैं यह भी कह देना आवश्यक समझता हूँ कि बहुतों को यह संदेह होता है कि अग्नि वायु शब्द केवल लक्षणा व्यञ्जना वृत्ति से ही ईश्वर के वाची हैं यह ठीक नहीं है किन्तु मुख्य वृत्ति अभिधा से ही ईश्वर वाची हैं । सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में वर्णित ऋषि दयानन्द का हेतु ही हम देखते हैं जो बड़ा हृदय ग्राही है । वहां कहा गया है अग्नि, वायु ईश्वर के मुख्य नाम है क्योंकि 'मित्र' परमेश्वर से बढ़ कर और कोई नहीं है वह सब का मित्र है वह अमित्र (दुश्मन किसी का नहीं । हम किसी के शत्रु और मित्र हो सकते हैं पर वह सर्व नियन्ता होने से किसी का अमित्र नहीं इस प्रकार वेद मन्त्रों का तीनों प्रक्रियाओं में अर्थ होना चाहिये इस से लुप्त वेदार्थ के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पड़ता है ।

अब हम यह देखते हैं कि सायणाचार्य वेदार्थ तक नहीं पहुंचा । देखिये सायण ने अपने सामवेद भाष्य की भूमिका में लिखा 'यज्ञं वह्म च वेदेषु द्वावर्थौ काण्डयोर्द्वयोः । इस से पाठक को यह भासने लगता है कि सायण को आध्यात्मिक और आधिदैविक दोनों ही अर्थ अभीष्ट हैं परन्तु जब पाठक उनकी काण्व भाष्य की भूमिका को देखता है तो वह निराश हो जाता है, जब देखता है 'तस्मिंश्च वेदे द्वौ काण्डौ कर्मकाण्डो ब्रह्म काण्डश्च`.........तत्र उभयत्राधानग्निहोत्र दर्श पौर्णमासादि कर्मणः एक प्रतिपाद्यत्वम् । यहां पर स्पष्ट है कि सायणाचार्य उपनिषद भाग में भले ही आध्यात्मिक अर्थ मानते हैं पर ब्राह्मण तथा संहिता में कर्मकाण्ड का ही प्रतिपादन किया गया है ऐसा उन का सिद्धान्त है । जो हमारे पूर्वोक्त प्रमाणों द्वारा सर्वथा भ्रान्त सिद्ध होता है ।

२. अब हम देवता वाद के विषय में संक्षेप

से देखते हैं। देवता मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय का नाम है जैसा कि सर्वानुक्रमणीकार ने भी माना है 'या तेन उच्यते सा देवता' किन्ही शरीर धारी अथवा आकाश में रहने वाले नहीं। मीमांसा में तो शरीरधारी देवताओं का स्पष्ट ही खंडन कर दिया गया है। दशम अध्याय में भाष्य कार शब्द को ही देवता मानता है (शब्दस्यैव यज्ञे समवाया "शब्द एव हविषा संबध्यते"'यस्य हि शब्दो हविषा तादर्थ्येन संबध्यते सा देवता। इस में स्पष्ट शब्द को ही देवता माना गया है।

इस से भी बढ़ कर हम भाट्ट दीपिका कार खंड देव का एक उदाहरण उपस्थित करते हैं 'अतः कथमपि न विग्रहादि स्वीकारः किन्तु शब्द मात्र देवत'......मम त्वेवं वदतोऽपि वाणी दुष्यति इति हरि स्मरणमेव शरणम' भाट्टदीपिका ६।१।५। यहां पर खडदेव स्पष्ट कर रहा है कि जैमिनी मत का मीमांसानुसार शरीरधारी देवता नहीं माने जा सकते केवल शब्द ही देवता है। उस ने डरते २ यह लिखा है। वह पौराणिक शरीरधारी देवता मानने वालों के सम्प्रदाय में रहा होगा। मूर्ति पूजा का भी यह परम खंडन समझना चाहिये।

यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र 'इषे त्वोर्जे त्वाये' यजुर्वेद की सर्वानुक्रमणी जो कात्यायन की बनी कही जाती है प्रथम मन्त्र का देवता शाखा कहा गया है, परन्तु दुर्ग और स्कन्द ने इस मन्त्र को अनादिष्ट देवताक माना है। दुर्ग कहता है 'तत् संस्कार परा इषेत्वादयां"ते अनाविष कृत देवता लिंङ्गा इन्द्र एव भवन्ति महेन्द्रं वा' तथा स्कन्द का पाठ निम्न प्रकार है 'तच्छेपु भूतः शाखा छेदनादिषु सानाय्य संस्कारत्वेन विनियुक्ता इषे त्वादयः तत्देवता' इन दोनों स्थलों में स्कन्द और दुर्गाचार्य ने इस मन्त्र को अनादिष्ट देवता मन्त्र माना है। जब कथित नहीं है तब शाखा देवता कैसे हुआ दोनों ने स्पष्ट कह दिया कि मन्त्र का शाखा छेदन में केवल विनियोग है ऐसी अवस्था में यजु सर्वानुक्रमणी का कोई मूल्य नहीं रह जाता। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि यस्मै हवि दीयते सा देवता' इदमग्नये इदन्नमम' में अग्नि देवता है यह स्पष्ट है परन्तु 'इदं शाखा यै इदन्नमम' कहीं नहीं, इस से सिद्ध है कि यजु सर्वानुक्रमणी कात्यायन की बनाई हुई नहीं है इसी लिए उव्वट ने भी अनुक्रमणी को न मान कर गुरु और तर्क से देवता निश्चय करने को कहा।

अब हम संक्षेप से इतिहास वाद को देखते हैं। ऋग्वेद ७-७६-३ मन्त्र में इन्द्रतमा और अङ्गिरसतमा उषा के विशेषण पद पढ़े हैं अन्य स्थानों पर भी कण्वतम और वशिष्ठतम आदि शब्द मूल संहिता में पाये जाते हैं। यह सब विशेषण वाची हैं न कि व्यक्ति विशेष। इसी लिए १५०० वर्ष पूर्व स्कन्द और निरुक्त समुच्चय कार वररुचि ने लिखा 'एवं आख्यान स्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने नित्येषु पदार्थेषु योजना कर्त्तव्या।'

यौगिकवाद तथा धातुओं का अनेकार्थ मूल वेद से ही सिद्ध है जैसे 'उर्वि पृथिवि च्यवनच्युतानां, गावो धेनवाम् आदि से स्पष्ट है कि इन में एक विशेषण तथा दूसरा विशेष्य है। इस यौगिकवाद के द्वारा ही वेदार्थ का सच्चा अर्थ जाना जा सकता है, जिसे सहस्रों वर्षों के पश्चात् फिर से संसार में लाने का श्रेय ऋषि दयानन्द को है।

अब हम पद पाठ के सिद्धान्त को लेते हैं। जितने भी पदकार हुए हैं वे सब भाष्यकार कहे जा सकते हैं। उन्होंने पद विभाग द्वारा अर्थों का

[शेष पृष्ठ ५ पर]

इक्कीस करोड़ लोगों की मातृभाषा—अंग्रेज़ी

श्री दीनदयालु शास्त्री

अंग्रेजी इग्लैंड की मातृभाषा है। राजनीतिक दृष्टि से जब पड़ोसी स्काटलैंड और वेल्स इंग्लैण्ड में समा गए तो इस संयुक्त देश का नाम ग्रेट ब्रिटेन पड़ा और अंग्रेजी इंग्लैण्ड के साथ-साथ वेल्स और स्काटलैण्ड की भी भाषा हो गई। यथार्थ में इन दोनों प्रदेशों की मूल भाषाएं और थीं किन्तु अब उन का कोई पता नहीं है। समूचे स्काटलैण्ड में अंग्रेजी का बोलबाला है। यद्यपि वेल्स की पहाड़ी घाटियों में अब भी लाखों व्यक्ति अपनी बोली बोलते हैं किन्तु वहां के शहर, देहात और कल-कारखानों में अंग्रेजी अब मुख्य भाषा है और वहां का राजकाज भी इसी भाषा में होता है। पड़ोसी आयरलैण्ड में भी शासकों को यह अंग्रेजी भाषा पहुँची थी और आज भी उस का अधिक प्रचलन वहां है, किन्तु स्वतन्त्रता-प्रेमी दक्षिण आयरलैण्ड (आयर) अपनी मातृभाषा गैलिक को पुनः जीवन देने में अग्रसर है। वहां के सब स्कूलों में गैलिक का शिक्षण अनिवार्य है और वहां के शासन का माध्यम भी वह हो चली है, फिर भी अंग्रेजी वहां से निकल जाए ऐसा न समझना चाहिये।

व्यापक प्रभाव

प्रभाव की दृष्टि से अंग्रेजी यूरोप में अधिक विस्तार या प्रभाव नहीं पा सकी है किन्तु यूरोप से बाहर उस का जो व्यापक प्रभाव पड़ा है उस ने अंग्रेजी को दुनियां की सर्वोपरि भाषा बना दिया है। यह सत्य है कि देशों की गणना की दृष्टि से संसार की भाषाओं में प्रथम स्थान स्पेनी भाषा को प्राप्त है किन्तु आबादी की दृष्टि से अंग्रेजी भाषाभाषी अकेले संयुक्त राज्य अमेरिका की आबादी भी समस्त स्पेनी भाषा-भाषी देशों की कुल आबादी से कहीं अधिक है। स्पेनी भाषा केवल अमरीका में है या यूरोप के स्पेन देश में, जब कि अंग्रेजी भाषा की चर्चा आज संसार के कोने-कोने में है।

यूरोप वालों का यह साहस है कि वहां के छोटे देश बड़े-बड़े साम्राज्यों के मालिक बने और अपनी भाषा एवं संस्कृति को सात समुद्र पार ले जाने में सफल हुए। इस काम में अंग्रेज अधिक सफल रहे यह उन की दूरदर्शिता, गम्भीरता तथा स्थिर बुद्धि का परिचायक है। अंग्रेजी का प्रथम प्रसार अपने पड़ोस में हुआ था। तब अंग्रेज साम्राज्य के नहीं अपने देश के विकास में लगे थे। जब उन्होंने साम्राज्य का उपक्रम किया तो अमरीका, अफ्रीका, एशिया और आस्ट्रेलया सभी महाद्वीपों में अपना झंडा

निर्देश किया है। इस में एक ही पद के विषय में पदकारों में भी भिन्न दृष्टियां हैं। ऋषि दयानन्द ने भी बहुत से पदों का अर्थ पद पाठकारों से भिन्न किया है। वह सब विवेचन हम फिर करेंगे।

व्यत्यय का सिद्धान्त भी वेदार्थ प्रक्रिया में एक महत्व का सिद्धान्त है इस में निरुक्तकार का 'अर्थोनित्यापरीक्षत' व्यत्यय का सिद्धान्त सब निरुक्तकारों ने माना है।



फहराया । आज स्वतन्त्रता के इस युग में अंग्रेजी साम्राज्य अपने अन्तिम दिन गिन रहा है। एशिया में उस की पूर्णाहुति हो चुकी है और अफ्रीका में भी उस के अधिक दिन नहीं रहे हैं, किन्तु इन दो शताब्दियों में जो अंग्रेजी भाषा का साम्राज्य बना है वह सदा के लिए स्थायी हो गया है।

यह ठीक है कि अंग्रेजी साम्राज्य के वे प्रदेश जिन की मातृभाषा अंग्रेजी नहीं है अब उस की इतनी महिमा न गायेंगे जितनी कि अंग्रेजों के शासनकाल में गाते थे; किन्तु वहां से अंग्रेजी सदा के लिए विदा ले जाएगी, ऐसा मानने वाले भी भूल करते हैं। पिछली दो सदियों में, विशेषतः पिछले पचास सालों में, संसार की राजनीति में अंग्रेजी भाषा ने जो महत्व प्राप्त किया है उसे कम करना अब आसान नहीं है। अमरीका के एक प्रसिद्ध लेखक ने, जो आज से दस-बारह वर्ष पूर्व संसार-यात्रा के लिए निकला था, अपने संस्मरणों में लिखा था कि अफगानिस्तान की राजधानी काबुल के के अतिरिक्त उसे संसार की कोई ऐसी राजधानी नहीं मिली जहां से अंग्रेजी का कोई-न-कोई अखबार न निकलता हो। हम अमरीका के इस लेखक की बात शतशः सही नहीं मानते। हमारा यह विचार है कि मध्य-दक्षिण अमरीका के दो-चार स्पेनी भाषाभाषी देश इतने छोटे और साधनहीन हैं कि उन में अंग्रेजी का अखबार निकलना सम्भव नहीं है। फिर भी एशिया, अफ्रीका, यूरोप तथा अमरीका के सभ्य समाज में अंग्रेजी का व्यापक प्रभाव मानने के लिये अमरीका के उस लेखक का उल्लेख कम महत्व-पूर्ण नहीं है।

अंग्रेजी भाषा के देश

यूरोप में ब्रिटेन, अमरीका में कनाडा, संयुक्त राज्य जमैका तथा अन्य राष्ट्र, अफ्रीका में दक्षिण अफ्रीका, रोडेशिया तथा लाइबेरिया, आस्ट्रेलेशिया में आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा पड़ोसी टापू अंग्रेजी भाषाभाषी देश हैं। इन में से ब्रिटेन, अमरीका का संयुक्त राज्य, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड पूर्णतः अंग्रेजी भाषाभाषी देश हैं। इन में से अमरीका में यद्यपि अन्य बीसियों भाषाओं का प्रचलन भी है, किन्तु जनता की तथा शासन की सर्वमान्य भाषा केवल अंग्रेजी ही है। शेष देशों में से कनाडा में अंग्रेजी के साथ-साथ फ्रांसीसी एवं दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजी के साथ-साथ डच भाषा भी शासन में समानाधिकार रखती है। इस से अंग्रेजी का अधिकार कम होना है; ऐसा हमें न मानना चाहिए। लाइबेरिया, रोडेशिया तथा जमैका अभी पूर्ण स्वतन्त्र नहीं हैं। यहां के हब्शी अर्ध सभ्य हैं किन्तु हमें ऐसा लगता है कि वे अंग्रेजी के हिमायती वैसे ही बने रहेंगे जैसे कि आज स्काटलैण्ड और वेल्स हैं। स्पेनी भाषा देशों की गणना में संसार में सबप्रथम है किन्तु उस का विस्तार ४८ लाख वर्गमील में है और उस के बोलने वाले केवल ग्यारह करोड़ हैं। इस का मुकाबला अंग्रेजी से करें तो अंग्रेजी भाषा-भाषी देश कहीं आगे पाए जायेंगे, चाहे गणना में वे कम क्यों न हों। अंग्रेजी भाषाभाषी देशों का क्षेत्रफल इस प्रकार है—

ब्रिटेन	९३९९१	वर्गमील
कनाडा	३७२९९६५	वर्गमील
अमरीका	३०२९७८९	वर्गमील
आस्ट्रेलिया	२९७४५८१	वर्गमील

न्यूजीलैण्ड	१०३४५१	वर्गमील
दक्षिण अफ्रीका	४७२५५०	वर्गमील
लाइबेरिया	४६०००	वर्गमील
कुल योग	१०५४६६६१	

इन देशों की आबादी इस प्रकार है—

ब्रिटेन	४७२	लाख
कनाडा	११०	लाख
अमरीका	१२८८	लाख
आस्ट्रेलिया	७०	लाख
न्यूजीलैण्ड	१६	लाख
दक्षिण अफ्रीका	१००	लाख
लाइबेरिया	२५	लाख
कुल योग	२०८१	लाख

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अंग्रेजी भाषा-भाषी देशों का क्षेत्रफल एक करोड़ वर्गमील से अधिक और आबादी २१ करोड़ है। इस का अर्थ यह है कि संख्या में अधिक होते हुए भी स्पेनी भाषाभाषी देश रकबे तथा आबादी में अंग्रेजी भाषाभाषी देशों से आधे में भी नहीं हैं। विचित्र और महत्वपूर्ण बात यह है कि अंग्रेजी भाषाभाषी दो देश ब्रिटेन और अमरीका संसार में अग्रणी देश हैं, उन के अन्य साथी भी आगे बढ़ रहे हैं। धन-धान्य, उद्योग तथा व्यापार में ब्रिटेन, अमरीका, कनाडा व आस्ट्रेलिया बहुत प्रबल देश हैं। इन के मुकाबले में स्पेनी भाषाभाषी देश नगण्य-से हैं। भविष्य की दृष्टि से ये दोनों गुट अधिक व्यापक प्रभाव डाल सकते हैं बशर्ते कि उन की वर्तमान प्रगति निरन्तर जारी रहे।

अन्य देश

कई देशों की मातृभाषा होने के दावे के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा को एक अन्य महत्व भी प्राप्त है, जिससे स्पेनी भाषा वञ्चित है। वह अन्य देशों का उस से रुचि रखना। स्पेनी भाषा केवल उन देशों में प्रचलित है जहां की वह मातृभाषा है। अन्य देश उस की अन्तर्राष्ट्रीय महत्ता को तो स्वीकार करते हैं किन्तु राजनीतिक कार्यों के अतिरिक्त स्पेनी भाषा में कोई रुचि नहीं रखते। अंग्रेजी भाषा जिन देशों की मातृभाषा है उन के अतिरिक्त बर्मा, भारत, पाकिस्तान और लंका की वह आज भी शासन-भाषा है और अभी पर्याप्त काल तक वह बनी रहेगी। इन देशों का क्षेत्रफल भी १८ लाख वर्गमील से अधिक है और आबादी है चालीस करोड़।

यह सत्य है कि धीमे-धीमे ये देश अंग्रेजी की उपेक्षा करेंगे किन्तु वे कभी भी उसे तिलाञ्जलि दे दें यह सम्भव नहीं है। इन में से जिन देशों के प्रतिनिधि संयुक्त राष्ट्रों की परिषद में पहुँचते हैं वहां अंग्रेजी के माध्यम का ही अवलम्बन करते हैं। जो देश अभी उस परिषद् के सदस्य नहीं हैं वे भी जा कर ऐसा ही करेंगे। इन के अतिरिक्त एशिया के ईराक, जोरडन, मलाया, अफ्रीका के रोडेशिया, केनिया, गोल्डकोस्ट तथा अमरीका के गायना, ट्रीनीडाड आदि प्रदेशों में भी अंग्रेजी भाषा का अबाध प्रवेश है। इन के प्रतिनिधि अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों में जब भी सहयोग देते हैं या देंगे तो अंग्रेजी भाषा का आश्रय लेते हैं या लेंगे। और तो और जापान जैसा प्रगतिशील देश भी अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अंग्रेजी का ही आश्रय लेता है।

राजनीतिक क्षेत्र को छोड़ कर यदि हम व्यापारिक क्षेत्र में जाएं तो हमें पता चलेगा कि वहां तो अंग्रेजी की और भी अधिक अविचल

कविता का पुरस्कार

श्री विष्णुमित्र

अब से दो हज़ार वर्ष पहिले वैक्रम सम्वत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य उज्जैन को राजधानी बना कर समस्त भारत पर शासन कर रहे थे। अचानक काश्मीर के राजा हिरण्य के निःसंतान मर जाने पर काश्मीर का राज्य राज रहित हो गया। यह बात राजतरंगिणी से भी मालूम होती है। उस में लिखा है कि 'वर्तते राज रहितं काम्यं कश्मीरमण्डलम्—चूंकि काश्मीर का राज्य विक्रमादित्य के आधीन था अतः मंत्री मंडल ने महाराजा विक्रमादित्य से प्रार्थना की कि किसी योग्य व्यक्ति को यहां का राज्य दें। मातृ गुप्त को पता चला कि किसी योग्य व्यक्ति की काश्मीर के लिये आवश्यकता है। मातृ गुप्त एक निर्धन पर विद्वान् और कवि था। राजा विक्रमादित्य स्वयं विद्वान् और कवि था मातृ गुप्त ने केवल एक श्लोक लिख कर भेज दिया। मुझे जहां तक याद है वह इस प्रकार है—

ये ये गुणिनो ये ये त्यागिनो ये च विदग्धज्ञानाः।
दारिद्र्य ? रे विचक्षणस्तेषां त्वमसानुराग भासि।

हे दारिद्र्य तू बड़ा ही चतुर है और समझदार भी है। संसार में जिसे गुणी-त्यागी और ज्ञानी देखता है तू उसी से दोस्ती गांठ लेता है। दूरी के कारण यत्न करने पर भी जब वह उज्जैन न पहुंच सका तब वह लिखता है कि—

यद् यदा लिखति मन आशा वर्तिकाभि र्हृदये फलके। तत् तद् बाल इव विधिर्निभृतं हसित्वा प्रोञ्छति।

पहुंच है। आज दुनियां के बहुत से देशों ने व्यापार कार्यों के लिए जो रोमन लिपि अपना ली है उन में से अधिक देश इस लिपि के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा का भी व्यवहार करते हैं। हमारा यह विचार है कि जिस प्रकार और गति से अंग्रेजी भाषा संसार के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपना सिर ऊंचा कर रही है उस गति से वह निकट भविष्य में संसार की अन्यतम भाषा हो जाएगी। आज भी संसार भर के प्रमुख संगठन संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् के पांच स्थायी सदस्यों में दो ब्रिटेन और अमरीका की वह मातृभाषा है और तीसरा चीनी प्रतिनिधि भी उस भाषा के ही माध्यम से सब कुछ करता है। यही नहीं उस सुरक्षा परिषद् के जो अस्थायी सदस्य समय-समय पर नियुक्त होते हैं उन में से भी अनेक अपने विचार-विनिमय का माध्यम अंग्रेजी भाषा को ही बनाते हैं।

इस सब से स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों में जिन पांच भाषाओं को प्रमुख माना गया है उन में अंग्रेजी का होना आवश्यक है एवं समय पाकर वह भाषा अब से भी अधिक व्यापक एवं महत्वपूर्ण स्थान संसार की भाषाओं में प्राप्त करेगी।



अर्थात् अरे मन जो तू आशा रूपी चाक से हृदय रूपी बोर्ड पर लिखता है उसे ना समझ बालक के समान विधाता हंस कर पोंछ देता है। अतः रे मन अब तू कुछ मत लिख, चला चल वहीं पहुंच। पहुंचने पर कवि का यत्न सफल हुआ। महाराज ने उसे द्वारपाल बना लिया। इस से कवि को राज दर्शन और राजा से वार्तालाप का सुअवसर मिलने लगा।

एक दिन आधी रात का समय था। अचानक राजा की आंख खुल गई। और पूछा द्वार पर कौन है ?

मातृ गुप्त—महाराज मैं हूं।

पुनः राजा ने पूछा—अब कितनी रात है ?

मातृ गुप्त—महाराज ? डेढ़ प्रहर।

राजा—तुम ने कैसे जाना।

मातृ गुप्त—शीतेनोद्धृषितस्य माषशिमिवच्चिन्तार्णवे मज्जतः। शान्ताग्निस्फुटिता धरस्य धमनः क्षुत् क्षाम कण्ठस्य मे। निद्राकाप्यवमानितेव दयिता संत्यज्य दूरं गता। सत्पात्र प्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्वरी।

अर्थात् राजन्! मुझे सारी रात जागते ही बीती है। अतएव रात्रि का एक २ क्षण मालूम है। जैसे उड़द की फली ठंड पाकर सिकुड़ जाती है उसी प्रकार हेमन्त ऋतु की झंझाबात मिश्रित रात्रि में मैं ठंड से सिकुड़ गया हूं। हिमपातजन्य शीत की इतनी अधिक प्रबलता है कि बार-बार सेकने के लिये फूंके मारने पर भी आग बुझती चली जा रही है। इधर भूख की तडफन है उधर घर पर दीन और हीन बाल बच्चों की चिन्ता है। फिर भला नींद कहां जैसे मनस्विनी दयिता अपमानित हो कर पास नहीं फटकती वैसे ही नींद भी मुझे छोड़ कर न मालूम कहां चली गई। जैसे सुपात्र को दिया गया पृथ्वी का दान अक्षय हो जाता है वैसे ही जाड़े की यह पहाड़ सी रात भी बिताये नहीं बीत रही।

राजा कवि की इस सूक्ति को सुन कर फड़क उठा और दिल में पश्चात्ताप किया कि मैं कितना अधन्य हूं। मेरे दर्बार में एक ऐसा योग्य और सेवक व्यक्ति जो लगातार सेवा कर रहा है—इस से बढ़ कर काश्मीर के राज्य का अधिकारी कौन हो सकता है। प्रातः ही एक लिफाफा देकर कवि को आज्ञा हुई कि यह लिफाफा काश्मीर के मंत्री मंडल के पास ले जाओ। आज्ञानुसार कवि काश्मीर पहुंचा और लिफाफा मंत्री मंडल के हाथ दे दिया। पढ़ते ही मंत्री मंडल ने कहा कि—

आर्थितेन स्वयं पातुं विक्रमादित्य भूभुजा-
निर्दिष्टः स्व समानस्त्वं शाधिनः पृथिवीमिमाम्।

अर्थात् हम ने राजा से अपनी रक्षा के लिये एक योग्य राजा की मांग की थी। उन्होंने आपको अपने ही समान राजा समझ कर हमारे पास भेजा है। अतः आप काश्मीर मंडल पर शासन कीजिये। यह सुन और आश्चर्य में आ कर महाराज को लिखा कि—

नाकार मुद्वहसि नैव कि कत्थ्यसे त्वमू-
दित्सां न सूचयसि मुंचसि सत्फलानि।
निःशब्द वर्षणमिवाम्बुधरस्य राजन्
संलक्ष्यते फलत एव तव प्रसादः॥

[शेष पृष्ठ ७ पर]

टेहरी गढ़वाल और वहां के हरिजन

श्री धर्मदेव शास्त्री

टेहरी गढ़वाल देशी राज्य था। जनवरी १९४८ को व्यापक अहिंसक क्रान्ति के बाद यहां जनता ने पञ्चायती राज्य की घोषणा कर के शासन अपने हाथों में सम्भाल लिया था। १५ फर्वरी १९४८ को केन्द्रीय सरकार के आदेश से अन्तरिम मन्त्रिमंडल की स्थापना हुई जो एक एडमिनिस्ट्रेटर की सहायता से जुलाई १९४९ तक कार्य करता रहा। १ अगस्त १९४९ को टेहरी गढ़वाल उत्तर प्रदेश में विलीन होकर एक जिला बन गया। टेहरी गढ़वाल जिले की चार तहसीलें हैं। टेहरी, प्रतापनगर, देवप्रयाग और रवांई। इन में अन्तिम तहसील बहुत पिछड़ा हुई है जहां जौनसार बावर के समान बहुपति प्रथा, कोल्टों की दासता और कोल्टा आदि वासियों में वेश्यावृत्ति की बुराई पाई जाती है। मैं रवांई और जौनपुर के अनेक ग्रामों में पहिले घूम आया हूँ। जौनपुर भी रवांई के समान ही जौनसार से लगा हुआ पिछड़ा प्रदेश है जो रवांई तहसील है।

टेहरी गढ़वाल जंगलमय जिला है, इसका क्षेत्रफल ४५०० वर्ग मील है, जिस में खेती की भूमि केवल ३५० वर्ग मील है, शेष जंगल है। टेहरी गढ़वाल की जन संख्या करीब ४ लाख है, जिस में से एक चौथाई जनसंख्या जिले से बाहर रहती है, बाहर जाने वालों में से अधिक संख्या छोटे-छोटे नौकरों की है और इस के बाद फौज में भरती होने वालों की है। टेहरी गढ़वाल में जितना अन्न होता है वह करीब आधी जन संख्या के लिये ही पर्याप्त है, यहां निर्धनता बहुत है। उद्योग-धन्धे नहीं के समान हैं भूमि की अपेक्षा यहां की प्रधान आय जंगल से होती है।

मुख्य अन्न यहां का कोदों और चौलाई है। कोदों नीचे के भाग में और चौलाई ऊंचे पहाड़ों में होती है। इस के अतिरिक्त झङ्गोरा, चावल, कोटू और फाफरे की भी खेती होती है। आलू की भी पैदावार होती है।

टेहरी गढ़वाल में प्रधानतया तीन जातियां हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र। ब्राह्मणों में अनेक उपभेद हैं जो प्रायः अभिजन अथवा प्राचीन ग्राम के नाम से पुकारे जाते हैं। यहां के राजा क्षत्रिय थे परन्तु उन के दीवान सदैव ब्राह्मण रहे हैं। जिन ब्राह्मणों को दीवान का पद मिला उन के वंशज अपने को और ब्राह्मणों से ऊंचा मानने लगे। इस प्रकार राजवंश का जिन क्षत्रिय कुलों से रिश्ता हुआ वह भी अपने को ऊंचा समझने लगे, इस प्रकार इस छोटे से प्रदेश में हिन्दु समाज की प्रधानतम बुराई ऊंच-नीच की भावना बहुत प्रबल रही है और फली-फूली है।

हिन्दू धर्म के प्रधान तीर्थ गंगोत्री, जमनोत्री, बद्रीनाथ और केदारनाथ इसी जिले में हैं, पहाड़ में प्रधानतया शिव की और मैदान में

अर्थात् हे राजन्! जिस प्रकार बरसने वाला बादल नहीं गर्जता पर सारे धराधाम को जल से आप्लावित कर देता है और सब की प्यास बुझा देता है ठीक वैसे ही आपने भी पहिले कोई घोषणा या वायदा किये बिना ही चुपचाप मुझे ऐसा उत्तम फल दे डाला है कि दुनियां में जिसकी कोई मिसाल नहीं।

★

प्रधानतया विष्णु की पूजा होती है, परन्तु सुदूर हिमालय में भी बद्रीधाम के रूप में वैष्णव धर्म का प्रधान केन्द्र होना ही बद्रीनाथ की विशेषता है परन्तु इस के साथ ही वैष्णव धर्म के कारण पहाड़ में छुआ छूत और ऊंच-नीच की भावना को बहुत बल मिला है। हालांकि वैष्णव धर्म के आधार भूत सिद्धान्त ऊंच-नीच की भावना से दूर हैं।

रवांई और जौनपुर

यहां का सब से पिछड़ा हुआ प्रदेश है। इधर के हरिजनों की दशा अपेक्षाकृत बुरी है। जमींदार केवल शादी कराके कोल्टों, औजी आदि हरिजनों को सारी आयु भर गुलामी में रखते हैं। केवल कपड़ा देते हैं। खाने के लिये कुछ जमीन देते हैं परन्तु सदियों से जमीन में हल लगाने पर भी वह जमीन हरिजनों के नाम दर्ज नहीं है। इधर कुछ हरिजनों को जमीन से बेदखल करने की भी घटनायें सुनने में आई हैं।

नौतोड़

पहाड़ में भूमि के बिना कोई नहीं रह सकता। रियासत के समय सारी भूमि पर राजा का कानून द्वारा अधिकार था, भूमि बनाने के लिये राजा की ओर से नीलाम होती थी, परिणाम स्वरूप अमीर और ऊंची जाति के ही लोग भूमि ले सकते थे। अन्तरिम मन्त्रि-मंडल के समय कुमायूं का नया बाद कानून टेहरी गढ़वाल में लागू करने की कोशिश हो रही थी। मेरे विचार से नौतोड़ अथवा नया आबाद करने के लिये निम्न-लिखित सिद्धान्त उत्तर प्रदेशीय सरकार को स्वीकृत करने चाहियें।

१. नौतोड़ का अधिकार अपने ग्राम की सीमा में सब को सिद्धान्ततः माना जाय।

२. नौतोड़ का प्रथम अधिकार उसे दिया जाय जिसके पास भूमि बिलकुल नहीं अथवा कम है।

जंगल

इस प्रदेश के निवासी जंगलों के ही आधार पर जीवित हैं। रवांई की क्रान्ति का मुख्य कारण जंगलात विभाग से जनता को असन्तोष ही था। नई मुनारबन्दी से जनता असन्तुष्ट है। हमारी सम्मति में तीसरे दर्जे के जंगल पंचायतों के अधिकार में दिये जायें जिन में पेड़ लगाने की पञ्चायतों को स्वतंत्रता हो परन्तु पेड़ों को काटने के लिये जंगलात विभाग की अनुमति आवश्यक हो ''इस जंगल से जो आय हो वह सार्वजनिक कार्यों पर पञ्चायतें व्यय करें, इसके अतिरिक्त किसानों को भी जंगलात विभाग चीड़, देवदार आदि के पौदे बिना मूल्य अथवा नाममात्र मूल्य पर दें, जिस से वन-सम्पत्ति की वृद्धि हो।

पञ्चायतों में हरिजनों को समान अधिकार मिलें। जंगल में उन्हें समान भाग मिले। इसका पूरा निरीक्षण होना चाहिये। इस के अतिरिक्त जलाने की लकड़ी और पशुओं के लिये घास लाने का भी हरिजनों को अन्य ग्रामीणों के समान अधिकार कानून द्वारा मिलना चाहिये।

संसर्गजन्य रोग

रवांई, जौनपुर व उत्तर काशी आदि स्थानों में संसर्ग जन्य रोग, गर्मी, सूजाक और कोढ़ प्रचुर मात्रा में हैं। कुछ ग्रामों में तो शत-प्रतिशत यह रोग है। उदाहरण के लिये खरसाली के पास ही बनास गांव ऐसा ही गांव है। राजतर के समीप एक बृहत्तर औषधालय चलाना चाहिये जिस में कुछ रोगियों को औषधालय में रखने

का विशेष प्रबन्ध किया जाय।

राम सराय, रवांई और उत्तर काशी के समीपवर्ती ग्रामों में आर्थिक दुरावस्था के कारण हरिजनों की लड़कियां नीचे मैदानी शहरों में वेश्यावृत्ति के लिये जाने लगी हैं। यह बुराई विगत तीन वर्षों से ही शुरू हुई है। नैनीताल, अल्मोड़ा की नायक जातियों के समान इस प्रदेश में यह बुराई कुछ ही जातियों तक सीमित है।

महिला सेवा सदन

उत्तर काशी तथा बाड़हाट में वेश्यावृत्ति के लिये हरिजन लड़कियों को जाने से रोकने के लिये एक महिला सेवा सदन खोलना आवश्यक है जिस में महिलाओं को साक्षरता और चरित्र-शिक्षण के साथ कुछ उद्योग भी सिखाये जावें, जिस से वह अपनी उदर पूर्ति कर सकें और बुरे पेशों से बच सकें।

टेहरी गढ़वाल बहुत गरीब है, उस में भी हरिजन बहुत ही गरीब हैं। शिक्षा की भूख यहां बहुत है, यह शुभ लक्षण है। अपने बालक बालिकाओं को पढ़ाने की इच्छा रहने पर भी अभिभावक आर्थिक कठिनाइयों से पढ़ा नहीं सकते। इस सम्बन्ध में हरिजनों का कहना ही क्या।

हरिजन छात्रावास

पहाड़ में रहने और हरिजनों की यथाशक्ति सेवा करने के अपने अनुभव के आधार पर मेरा यह विश्वास है कि हरिजनों में चेतना और स्वाभिमान की भावना को उत्पन्न करने के लिये तथा उन में सार्वजनिक प्रवृत्ति उत्पन्न करने के लिये कुछ छात्रावास खोलने चाहियें, जिन में केवल निवास का ही प्रबन्ध न हो, हरिजन छात्रों को उन में चरित्र की शिक्षा और सफाई, संगठन तथा धार्मिक शिक्षा भी दी जाय। मेरे विचार से छात्रावास आश्रम जीवन अथवा गुरुकुल जीवन व्यतीत करने के केन्द्र बनें। ऐसा किये बिना हरिजनों का केवल वैयक्तिक विकास होगा। हरिजनों का सामाजिक विकास और सामूहिक चैतन्य छात्रावासों के द्वारा ही सुगमता से हो सकता है, मेरी समझ से छात्रावास क्रियात्मक शिक्षण के केन्द्र बन सकते हैं जिन में कुछ समय तक रहने वाले छात्रों में सामाजिक सेवा और रचनात्मक कार्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होगी।

टेहरी गढ़वाल में एक इन्टर कौलेज और तीन हाई स्कूल क्रम से टेहरी, प्रतापनगर, उत्तर काशी और नरेन्द्र नगर में हैं। इन चारों स्थानों में एक-एक छात्रावास की स्थापना होनी चाहिये। छात्रावास को २० तक छात्रों को प्रत्येक को २०) रु० मासिक की छात्रवृत्ति देनी चाहिये। ऐसा करने से गरीब विद्यार्थी पूरा लाभ उठायेंगे और छात्रावास हरिजन सेवा का प्रमुख केन्द्र बन कर आदर्श उपस्थित करेंगे। छात्रावासों में सवर्ण बालकों को भी अतिरिक्त स्थान होने पर लिया जा सकता है। इस से आपस का भेद मिटाने में क्रियात्मक मदद मिलेगी।

औद्योगिक शिक्षण

टेहरी गढ़वाल घाटे का जिला है। अपने लिये आवश्यक अन्न उत्पन्न नहीं कर सकता। पर्वतीयों की उन्नति के लिये अनिवार्य है कि यहां गृह उद्योगों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय।



महान् हिम देवों के चरणों में

—मनोहर विद्यालंकार—

कुछ विद्वानों का कहना है कि सर्व प्रथम मानव-सृष्टि हिमालय पर हुई। पृथ्वी का जो भाग सब से पहले समुद्र-गर्भ से बाहर आया वही आदि सृष्टि सम्भव है। आदि-सृष्टि चाहे हिमालय में हुई हो या अन्यत्र, किन्तु प्राचीन संस्कृत साहित्य में यक्ष-गन्धर्व-किन्नर-देव और स्वर्ग आदि लोकों का वर्णन हिमालय में ही किया गया है।

परन्तु साथी क्षितीश अपने सहज कवि-स्वभाव के कारण हिमालय के अन्य तीन लोकों का वर्णन किया करता है।

वह कहा करता है—'हिमालय के तीन लोक हैं—वनलोक, पुष्पलोक, और हिमलोक। नगाधिराज के पाद प्रान्त से ले कर कटिभाग तक वनलोक है। यह लोक १० हजार फीट की ऊंचाई तक पहुंचते पहुंचते समाप्त हो जाता है। १० हजार फीट की ऊँचाई के बाद पुष्पलोक शुरू होता है। इस लोक की परिधि बहुत छोटी है किन्तु जैसा नयनाभिराम दृश्य हिमालय के इस लोक में दृष्टिगोचर होता है वह प्रकृति का अद्भुत चमत्कार है। इस लोक में पांव रखते ही रंगबिरंगे फूलों के प्राकृतिक वैभव का अनोखा दरबार मन को आह्लाद से भर देता है। प्रकृति का एकान्त-सुषमा इतनी मनोहारी होगी—यह इतनी ऊंचाई पर पहुँचने से पूर्व ज्ञात ही नहीं होता। इस पुष्पलोक के बाद शुरू होता है हिमलोक, जो कण्ठभाग से प्रारम्भ हो कर गिरिराज के मस्तक पर होता हुआ ऐन शिखर तक पहुँच जाता है। १४-१५ हजार फीट की ऊंचाई से प्रारम्भ होने वाला और २९ हजार फीट से भी अधिक ऊंचाई तक चलता चला जाने वाला यह लोक असली 'हिमालय' है। बारह मास हिम से ढके इस शाश्वत हिम-प्रदेश के कारण ही हिमालय (हिम+आलय) नाम सार्थक होता है।'

अब विचार करने पर पाता हूं कि साथी क्षितीश ने हिमालय की अनेक यात्राओं के पश्चात् जिस सत्य का अनुभव कर के इस त्रिलोकी का वर्णन किया है, भू-पृष्ठ विशारदों और हिमालय के विशेषज्ञों ने भी वही बात कही है। दोनों में केवल कहने के ढंग का अन्तर है। भूगोल शास्त्र के जानने वालों ने भी हिमालय के तीन भाग किये हैं। पहला भाग है—

'शिवालिक रेंज'—जिसे हम हिन्दी में उपगिरि कह सकते हैं। दूसरा भाग है—'आउटर रेंज'—जिसे बहिर्गिरि कहा जा सकता है। तीसरा भाग है—'ग्रेट सेण्ट्रल हिमालयाज'—जिसे सुमहान् हिमवन्त या अन्तर्गिरि कहा जा सकता है। इन तीन विभागों की लगभग वही व्याख्या है जो साथी अपने तीनों लोकों का वर्णन करते हुए किया करता है।

जोंगरी का मैदान

सो सिक्किम के सघन वन को लांघते हुए, सवा तेरह हजार फीट ऊंचे जोंगरी के मैदान में पहुँच कर हम इस त्रिलोकी के पुष्प लोक में प्रविष्ट हो गये। मीलों तक फैले इस उच्चावच्च मैदान में छोटी छोटी घास की चटाई बिछी हुई है और रगबिरंगे फूल छाये हुए हैं।

यहां से एक साथ नजर आने वाली कांचन-श्रृंग-श्रृंखला की तीन चोटियों—नरसिंह, पण्डिम और कञ्चनजंघा के प्रतीकस्वरूप तीन छोटे छोटे मन्दिर बने हुये हैं। थोड़े से पत्थरों का गुम्बदाकार रख कर एक वैसा ही चौथा मन्दिर कबरू के शिखर के लिए बना है। यहीं से इन चारों मन्दिरों के द्वारा चारों चोटियों के हिम देवों की उपासना की जाती है। इधर के लोगों का खयाल है कि हिमालय के प्रत्येक ऊंचे शिखर पर एक देवता रहता है और यदि उस शिखर पर आरोहण करते हुए कोई व्यक्ति बर्फ में फिसल कर या अन्य किसी दुर्घटना से मर जाये तो समझा जाता है कि अमुक हिमदेव उस पर कुपित हो गये या ऐसे दुस्साहसी व्यक्ति को देवता के चरणों में बलि होना पड़ा। ये शिखर दुर्लंघ्य भी इसी लिये बनाये गये हैं कि कोई उन देवताओं की एकान्त लीलास्थली में पांव न रख सके। इन हिमदेवों की पूजा के लिए सिक्किम की महारानी प्रति-वर्ष जोंगरी तक आती है और इन मन्दिरों में ही उन महान् और अदृश्य हिम-देवों की आरती उतारती जाती है ताकि प्रजा में सुख और शांति रहे।

इसी मैदान में सिक्किम महाराज की चमर-गायें और यकसोम के लामा के घोड़े निर्द्वन्द्व चरते और विचरते हैं। इन पशुओं को चराने के लिए इस सुनसान और निर्जन स्थान में केवल एक आदमी रहता है।

जोंगरी से आगे बढ़ने पर हिम की संहारक शक्ति के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। पर्वत की अधित्यका में जो छोटे-छोटे पौधों का जंगल है वह सारा का सारा पत्तों से शून्य है। बर्फ से जले हुये ये पौधे ठूंठ बन कर खड़े हैं। अगली वसन्त ऋतु में फिर इन पर पत्ते आयंगे और शरत्-कालीन तुषार-पात फिर इन की हरितश्री को लूट लेगा।

छुओङ् और प्रेक छू

अब आगे उतरना पड़ेगा। उतार, उतार, लगातार तीन मील तक उतार। और इन तीनों मीलों में लगभग तीन हजार फीट नीचे उतर कर हम फिर पुष्पलोक से वनलोक में आ गये। सामने भूधर-नितम्ब पर आज यात्रा में पहली बार चीड़ और देवदार का जंगल दृष्टिगोचर हुआ। इस सघन वन में थोड़ी-थोड़ी दूर पर मिलने वाली जलधाराओं को जूते और जुराब उतार कर किसी तरह पार किया। थोड़ी देर में ही पांव ठिठुर गये। इसी तरह एक-दो-तीन-चार धाराएं लगभग मील भर के फासले में पार करने के पश्चात् सामने आ गयी हहराती, शोर मचाती और चट्टानों से उछलती प्रेक छू

[छू=नदी] अब इसे कैसे पार करें ?

नीमा ने नदी के ऊपर की ओर दूर तक जा कर देखा कि शायद पानी कम हो और नदी पार की जा सके। किन्तु ऐसा स्थान कोई नहीं मिला। घण्टे भर तक किसी प्रकार नदी पार करने की तरकीब सोचते रहे, किन्तु कृतकार्यता नहीं मिली। अन्त में नीमा ने निराश हो कर अपना फैसला दे दिया—'अब आगे जाने का कोई मार्ग नहीं है, इस लिए लौटना होगा।'

सब के मन में निराशा छा गई। क्या हमारी यात्रा यहीं समाप्त हो जायगी ? हम तो पण्डिम के आरोहण का स्वप्न ले कर आये हैं और अभी पण्डिम हम से दूर है। सामने ही उस का २२ हजार फीट ऊंचा शिखर कभी-कभी बादलों के हटने पर चमक उठता है और हमें अपनी ओर खींचता है। कैसा अदम्य आकर्षण है उस का! केवल एक या दो दिन की यात्रा के बाद हम उस के चरणतल में पहुँच जायेंगे। मञ्जिल के इतना पास आ कर वापस होना पड़ेगा इस से बढ़ कर दुःख की और क्या बात होगी ? हमारे होशियार और सधे हुए कुलियों ने सब कुछ अच्छी तरह सोच-समझ कर देख लिया है कि नदी पर पुल नहीं बन सकता ? प्रयत्न करना बेकार है।

अन्त में, जब गाइड और सब कुली 'बस हो चुकी नमाज मुसल्ला उठाइये' की मनोदशा में थे और वापस चलने की तैयारी कर रहे थे, तभी साथी क्षितीश ने मेरी ओर देख कर नीमा समेत समस्त कुलियों को सम्बोधित करते हुए कहा—'अरे, तुम शेरपा हो कर इस छोटी-सी नदी से हार मान जाओगे ? मनुष्य यदि मन में निश्चय कर ले तो क्या नहीं कर सकता ?'

'तो फिर क्या करें ?'

'करो क्या, जिस किसी तरह भी हो, पुल बनाओ। मनुष्य सब कुछ कर सकता है—तुम पुल बना सकते हो !'

'यदि पुल न बने, तो ?'

'बिना प्रयत्न किये न बनने की बात कहना व्यर्थ है। परन्तु यदि आज दिन-भर प्रयत्न करने के बाद भी पुल न बन सका और कल तक नदी को पार करने का और कोई उपाय नहीं सूझा, तो कल यहां से लौटा जा सकता है; परन्तु आज नहीं। आज तो यहां रह कर पुल बनाना ही होगा।'

और देखा कि यह अवसरोचित पैंतरा काम कर गया। गाइड और कुली जोश से उछल पड़े—'हां, आज हम पुल बनायेंगे। शेरपा के नाम पर लांछन नहीं आने देंगे।'

यही ऐसा स्थान है, जहां संसार का बड़े से बड़ा प्रलोभन काम नहीं आता। काम आता है केवल आत्मविश्वास, और स्वभाव से ही मनोविज्ञान के अभ्यासी क्षितीश ने अपनी सूझ से वही आत्मविश्वास इन भोले और हिम्मती लोगों में भर दिया।

आखिर उसी घने जंगल में वर्षा से टपकते पेड़ों के नीचे घास बिछा कर समतल कर के तम्बू गाड़ दिये गये। दोनों 'दीदियों' (स्त्री-शेरपा) ने रसोई का प्रबन्ध सम्हाल लिया और जितने पुरुष थे, वे सब के सब जी-जान से पुल बनाने में लग गये।

नदी के सब से छोटे पाट वाले ऐसे स्थान को चुन कर, जिस के इस पार और उस पार ऐसी चट्टानें हों, जो पुल का आधार बन सकें,

वे सातों शेरपा जंगल में चले गये और अपनी खुखरियों और कुल्हाड़े की सहायता से इतने लम्बे-लम्बे वृक्षों के तने काट गिराये जो नदी की चौड़ाई को व्याप सकें और उन्हें अपने कन्धों पर लाद कर नदी के किनारे ले आये।

वर्षा के कारण ठंड बढ़ गई थी। शरीर को काटने वाली तीव्र हवा चल रही थी। बर्फानी नदी की धारा की ऊंची ऊंची चट्टानों से जूझने से उड़ने वाली फुहारों के कारण जब तट पर खड़ा होना भी कठिन हो गया, तब हम सब तो तम्बुओं में चले गये और गरम कम्बलों की गरमी से अपने को गरमाने लगे, किन्तु साथी क्षितीश वहीं डटा रहा और कुलियों के काम में हिस्सा बंटाता रहा।

स्थिति पर समग्ररूपेण विचार करने के पश्चात् हमारे दिल में पुल के बन सकने की कोई आशा नहीं थी। कई घण्टे के अनथक परिश्रम के पश्चात् भी जब सफलता का कोई समाचार नहीं मिला और सूर्य अस्ताचल की ओर जाने लगा, तब अपने समस्त प्रयत्नों की व्यर्थता पर मन विक्षुब्ध हो उठा और गहरी निराशा का वातावरण चारों ओर फैल गया। अचानक साथी क्षितीश ने आ कर हर्ष-समा-समाचार सुनाया—'पुल बन गया है'—और उन अनपढ़ शेरपा लोगों की अद्भुत इंजीनियरिंग की आविष्कारक प्रतीभा का वर्णन करते हुए जब विस्तार से बताया कि किस-किस प्रकार क्या-क्या करने से यह पुल बन सकना सम्भव हुआ है, तो हम सब एक स्वर से कह उठे—'शाबाश, आज का दिन तुम्हारा रहा।'

नदी के पार फिर घना जंगल है। पर यह जंगल बहुत दूर तक साथ नहीं देता। छुरोंग से आगे लगातार चढ़ाई है और १३॥ हजार फीट की ऊंचाई पर लामछो पहुँचते-पहुँचते जंगल पीछे छूट जाते हैं। फिर जोंगरी जैसा मैदान आता है। कई मील तक लगातार चलने वाला यह मैदान धीरे-धीरे ऊंचा होता जाता है और अन्त में हिमशिखरों से आने वाले हिमनदों में विलीन हो जाता है। शीतकाल में सारा का सारा मैदान एक विस्तृत हिमनद का रूप धारण कर लेता होगा, यह यहां की भुरभुरी जमीन और हिमदाह से काली पड़ी हुई चट्टानों को देखने से स्पष्ट हो जाता है।

यांगशिंग के आगे का रास्ता हिम-शिखरों की छाया में चलता है। दोनों ओर हिमनद हैं। यांगशिंग का अर्थ है लकड़ी का मैदान (थांग—मैदान, शिंग—लकड़ी)। यह आखिरी स्थान है जहां लकड़ी मिल सकती है। हिमदग्ध ठूंठ कहीं कहीं चट्टानों में अड़े पड़े हैं। कुलियों ने इन ठूंठों की सूखी लकड़ियों को एक-एक कर के बीनना शुरू किया और अपने सामान के अलावा जितना बोझ उठाया जा सकता था, उतना लकड़ियों का बोझ अपने साथ रख लिया। [असमाप्त]

धर्मों की मौलिक एकता

श्री स्वामी शिवानन्द

पवित्र आत्माओ,

आप सब को, जो एक महान् शक्ति के ईश्वरीय स्वरूप हैं, मेरा प्रेममय प्रणाम। आप उस सर्व प्रकाश के असीम प्रकाश की किरणें हैं, जो समस्त-सृष्टि का साधन और लक्ष्य है। आप के समक्ष कुछ कहने में मुझे अपार आनन्द प्राप्त हो रहा है। मैं आप के सम्मुख सभी तथाकथित धर्मों की समानता तथा मौलिक एकता के सम्बन्ध में विचार प्रकट कर रहा हूं।

मैं इसे इस समय विशेष आवश्यक मानता हूं क्योंकि मेरा अटल विश्वास है कि इस मूलभूत एकता को समुचित रीति से मनोगत करना उन समस्त कृत्रिम भेद भावों के विनाश का बलशाली उपाय है, जिन से आज संसार परिपूर्ण है और जिन्होंने संसार को निरानन्द और अप्रसन्न बना दिया है। विश्व के समस्त प्राणियों में अन्तर्भूत-समानता के अनुभव पर तनिक विचार करने से यह ज्ञात हो जायगा कि विश्व के धर्म जिस एक ही उद्देश्य की सिद्धि के विभिन्न साधन अथवा प्रणालियां हैं, वह लक्ष्य है ईश्वरीय अनुभूति की प्राप्ति, जिस का अनुभव करना है कि आप न तो यह विनाशमान शरीर हैं और न परिवर्तनशील एवं सीमित मन अपितु आप शुद्ध, अमर और स्वतन्त्र आत्मा हैं। इसे सदा स्मरण रखो, 'अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो।' यह आत्मा प्राचीन, जन्म रहित, नित्य तथा स्थायी है।

यही आपकी वास्तविक प्रकृति है। आप यह क्षुद्र विनाश को प्राप्त होने वाले जीव नहीं हैं, जिसने नाम तथा रूप धारण कर लिया है। आप रामस्वामी, मुखर्जी, मेहता, गर्दे या आप्टे नहीं हैं। आप अज्ञान के कुछ विनाशकारी भेदों के कारण संयोगवशात् इस माया में पड़ गये हैं। जागृत होओ और अनुभव करो कि आप शुद्ध आत्मा हैं। यही करने के लिये प्रत्येक धर्म कहता है। सभी धर्मों का मूलभूत लक्ष्य आध्यात्मिक-ज्ञान प्राप्त करना है कि आप सब चैतन्य के अंग हैं, जो सर्वत्र व्याप्त है। मैं आपको इस महान वाक्य का स्मरण दिलाना चाहता हूं—'ईशावास्यमिदं सर्वम्।' ईश्वर सब में व्याप्त है; अथवा—'पुरुष एवेदं सर्वम्।' समस्त संसार में वही एक है।

इतने धर्म क्यों हैं ?

यदि सब का यही एक लक्ष्य हो तो इतने धर्म क्यों हैं ? हां, लक्ष्य एक ही है, किन्तु इस की प्राप्ति की चेष्टा करने वाले असंख्य प्राणी, अनेक प्रकृति, विचित्र रुचि-भावना योग्यता के हैं। अतः बुद्धिमान् महर्षियों ने अनेक मार्ग और अनेकों क्रियाएं स्थापित करना इसी लिये समीचीन समझा कि वे प्रत्येक प्रकृति भावना और योग्यता के मानव प्राणी के लिये पूर्णतः उपयुक्त हों। अतः एक समुचित ज्ञान सम्पन्न मनुष्य के लिये मानव इतिहास में ये परस्पर विरोधी धब्बे नहीं हैं, वरन् हमारे महर्षियों के प्रेममय ज्ञान के स्थायी प्रमाण हैं। समय-समय पर अनेकों सन्तों ने मानव जाति के विभिन्न अंगों की जीवन को विभिन्न अव-

स्थाओं में पाया, इसे देख कर इन महान् पुरुषों ने जनता तथा समय के अनुसार अत्यन्त उपयुक्त मार्गों का प्रदर्शन किया। अतः आप देखते हैं कि विभिन्न मतानुयायियों के लिये बाह्यतः पृथक् नियमादि निश्चित नहीं किए हैं, परन्तु वे अपने लक्ष्य में कहीं भी भिन्न नहीं हैं। यह लक्ष्य सदा उन सम्पूर्ण सीमाओं दोषों, पीड़ा तथा कष्टों का अतिक्रमण कर जाता है, जिन से यह संसार पीड़ित है और तत्परतः शाश्वत आनन्द, अमर जीवन, पूर्ण ज्ञान तथा चैतन्य की प्रधान अनुभूति ही रह जाती है। सभी वस्तुएं उस में हैं और वही सम्पूर्ण वस्तुओं में है। इसके द्वारा ही आप इस महान् घोषणा की महत्ता समझ सकते हो— 'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति।' अन्तिम सत्य के अनेक प्रकार नहीं, किन्तु एक ही सत्य है। इसी को ऋषि लोगों ने अनेक प्रकार से सम्बोधित किया है।

साधारण आधार

एक ही लक्ष्य होने के अतिरिक्त, आप जानते हैं कि सभी धर्मों के अभ्यासों में मूलभूत बातें भी एक ही हैं। हमें क्षुद्र तथा अनावश्यक बातों में असंख्य विभिन्नतायें जान पड़ती हैं, किन्तु वास्तव में सभी धर्म मानव को इसकी शिक्षा देना चाहते हैं कि अपनी नीचवृत्ति को पवित्र कर आत्मानन्द प्राप्त करना और आधिभौतिकता के दृढ़ आधार पर क्रमशः ईश्वरीय जीवन का महान् प्रासाद निर्माण करना ही हमारा कर्तव्य है। पवित्रता सदाचार, सद्व्यवहार, सद्गुणों का विकास तथा नैतिकता ही संसार के सभी धर्मों का हृदय तथा आत्मा है। सद्जीवन के दृढ़ आधार पर सभी धर्म आधारित हैं। यह अधिष्ठान सत्य, पवित्रता तथा सार्वभौम प्रेम से निर्मित है। किसी भी धर्म के सिद्धान्त ही उसके महत्वपूर्ण अंग हैं। प्रत्येक धर्म के मौलिक सिद्धान्त मनुष्य को अच्छा बनना, सदाचरण करना, दया करना, पवित्र होना, समस्त प्राणियों पर कृपा दृष्टि रखना, मनुष्य-मनुष्य में भेद न देखना, एक स्नेहमय-आध्यात्मिक आलिंगन में सब को आबद्ध करना सिखलाते हैं। उनका उपदेश है कि प्रत्येक में भगवान् को देखो और समस्त प्राणियों की निःस्वार्थ सेवा में अपने को अनुरक्त रखो। सेवा को ही उस भगवान् की पूजा समझो जो सभी प्राणियों में व्यापक है और नियन्त्रक है। वे मनुष्य को शिक्षा देते हैं कि इस संसार की भड़कीली तथा मोहक वस्तुओं पर अपने को न भूलो, इन्द्रियों के चक्कर में पड़ो और जीवन का वास्तविक लक्ष्य ईश्वर दर्शन है, इसे विस्मरण न करो।

वे यह भी सिखलाते हैं कि विनम्र कैसे होना चाहिये; इन्द्रिय निरोध कैसे किया जाता है; निकृष्ट प्रवृत्तियों का दमन कैसे होता है; और श्रेष्ठ आदर्श, सुन्दर भावना, निष्कलंक-चरित्र, उदार निःस्वार्थ सेवा तथा आत्म-त्यागमय जीवन कैसे व्यतीत किया जाय और कैसे किया जाता है? इस प्रकार का ईश्वरमय जीवन व्यतीत करना सभी धर्मों की आत्मा है। सभी सन्तों के उपदेशों की यही प्रतिध्वनि

है। भारतीय ऋषियों तथा मुहम्मद, क्राइस्ट, बुद्ध, जौरोथस्तृ, तथा जैन मत प्रतिपादकों, इसी प्रकार चैतन्य, कबीर, रामानन्द तथा श्री रामकृष्ण सदृश सन्तों के जीवनों से इस आदर्श का प्रमाण मिलता है। मानव प्रकृति में पवित्रीकरण परिवर्तन तथा दिव्यजीवन-यापन सभी धर्मों का आधार है। यह ऐसा मधुर परन्तु अगोचर बन्धन है, जिसने समस्त मानवता को इस प्रकार आबद्ध कर रखा है, जैसे एक ही सूत्र अनेकों मणियों को। प्रेम-परिप्लावित-धर्मों का यह सूत्र सर्वव्यापी सत्ता के लिये सुन्दर हार प्रस्तुत करता है। यह देवता मानवता के सामान्य मन्दिर में प्रतिष्ठित है। यदि मणिकाएं यह समझना आरम्भ कर दें कि वे भिन्न हैं, तो वह स्वर्ण-सूत्र सहर्ष उन्हें स्मरण कराता है कि आप सब एक हैं। पारस्परिक एकता को भूल कर तथा पारस्परिक संघर्ष द्वारा वायु-मण्डल को दूषित कर देना ऐसा ही है जिस प्रकार कि एक ही परिवार के बालक विभिन्न प्रकार के वस्त्रों को धारण कर अपने को वस्त्रों की विभिन्नता के द्वारा परस्पर विरोधी समझ लेते हैं।

एकता की अनुभूति करो

एक शुद्ध पवित्र चित्रपट का स्मरण करो, जिस पर एक सुन्दर सायंकालीन दृश्य चित्रित है, जिस में एक वन्य-स्रोत के तट पर प्रज्वलित अग्नि के चतुर्दिक् एक यात्री दल बैठा हुआ है। यदि चित्र में चित्रित जल अग्नि के विरुद्ध हो जाय तो कैसा व्यर्थ जान पड़ेगा। क्योंकि आपको ज्ञात है कि ये दोनों वस्तुएं निर्माण की हुई हैं, ये कुछ रंग और कुछ तैल की करामातें हैं। इन रंगों के अन्तर्गत आपको एक शुद्ध, स्थायी चित्रपट मिलेगा। प्रिय अमर आत्माओ, इस मधुर तथा महत्वपूर्ण ऐक्य की चेतना में सदा निवास करो, जिस से समस्त मानव जाति का हृदय स्पन्दित हो रहा है। मेरी आप से प्रार्थना है कि इस कूटस्थ सत्य के विस्मरण की महती भूल न करो और बाहर से भिन्न जान पड़ने वाले नियमों, प्रथाओं और परिपाटियों में न पड़ो। यदि आप ऐसा न करेंगे तो तत्व को त्याग कर छाया ग्रहण करेंगे। मनुष्य मात्र के ऐक्य में आपकी असीम सहायता होगी, यदि आप इस ऐक्य के स्मरण की प्रतिज्ञा करो, इसे प्रगट करो और सर्वत्र इस ऐक्य सन्देश का प्रसार करो।

मानव की संपूर्ण भावनाओं में धर्म भावना सब से प्रबल तथा गम्भीर होती है। अन्य सभी भावनाएं पीछे अर्जन की जाती हैं, जब मानव जीवन में प्रौढ़ बनता है। किन्तु धर्म भावना मानव में जन्म से ही गम्भीरता पूर्वक अंकित रहती है। मनोविज्ञान आपको बतलायेगा कि वंश क्रम से अपने पैतृक धर्म तथा विश्वास के प्रति यह गम्भीर भावना प्रत्येक बालक की चेतना में विद्यमान रहती है। अतः आप अनुमान कर सकते हैं कि मनुष्य में यह धर्म-भावना कितनी शक्ति शालिनी और प्रभावकारिणी होती है। भ्रामक तथा पृथकता की भावनाओं द्वारा इसका दुर्व्यवहार हमारी बड़ी भूल है। प्रेम तथा

ऐक्य की कसौटी द्वारा इस धर्म चैतन्य का प्रसार हम में सुन्दर ऐक्य की महान् क्रियात्मक शक्ति उत्पन्न करेगा जिस से विभिन्नताओं का विनाश का कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ हो जावेगा। समस्त विरोध नष्ट हो जाएंगे, समस्त कलहों और दुर्भावनाओं का अन्त हो जायेगा और विशाल परिमाण में मानव जाति को शान्ति, ऐकता, सहयोग, सामञ्जस्य एवं सिद्धि प्राप्त होगी, जिसके लिये आप उत्सुकतापूर्वक पिपासाकुल हो रहे हैं। इस पृथिवी पर शान्ति तथा शुभेच्छामय समन्वयपूर्ण भविष्य के निर्माण का कार्य विश्वधर्मों के ऐक्य द्वारा ऐसे ही केन्द्रित सहयोग पूर्ण प्रयत्नों से हो सकेगा।

एकता देवता का विधान है

अतः आप सब ऐसा ही सोचो तथा ऐसे ज्ञान के प्रकाश में कार्य करो कि सभी धर्म एक हैं, उनके मूल तत्व एक हैं। सभी मतों में मूलतः पूर्णैक्य है। वे मानव को उतमत्ता, सहिष्णुता, क्षमा, अहिंसा, दया, उदारता एवं ईश्वरता का उपदेश देते हैं। विश्वास के साथ महान् धर्म ग्रन्थ और उपनिषदों का पाठ करो। परम पिता भगवान् को सदा स्मरण रखो। सदा उसका पवित्र नामोच्चारण कर उसके गुणों को गावो। गर्व और अहंकार के विनाश का सतत प्रयत्न करो और विनम्रता, माधुर्य तथा सेवा भाव का विकाश करो। उदार और दयालु बनो। स्वार्थपरता और लोलुपता से दूर भागो। इन्द्रिय संयमकर, ध्यानमय जीवन बिताओ। शान्ति तथा आनन्द प्राप्त करो और प्रसार भी करो जिससे भूमण्डल पर शान्ति, आनन्द और ऐक्य की स्थापना का आयोजन हो।

यदि ऐसा किया गया तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि पृथकता अथवा भेद-भाव के बाह्योपकरण इस ऐक्य को विचलित तथा भंग नहीं कर सकेंगे, क्योंकि ऐक्य ईश्वरीय गुण है।

कामना है कि भगवान् हमें आध्यात्मिक दृष्टिकोण देवे, जिस से हम नाम रूप के क्षुद्र आवरण के पीछे एक ही ईश्वर को देख सकें जो सर्वत्र व्याप्त है, जो सब के भीतर है और सब के द्वारा कार्य करता है। आप इसका अनुभव करें।

'एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः·········साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।' सभी प्राणियों में एक ईश्वर छिपा हुआ है। वह शाश्वत, अन्तर का साक्षी और सर्व पूर्ण और अद्वैत है।

[अखिल भारतीय रेडियो, बम्बई के सौजन्य से]



बरसात में रहन-सहन कैसा हो ?

श्री रामेश वेदी

वर्षा ऋतु में वायु मण्डल में आर्द्रता अधिक होती है। वायु मण्डल का तापमान बहुत अधिक भिन्न-भिन्न होता है। बारिश लगातार होती रहे तो तापमान काफी नीचे गिर जाता है। सूर्य की किरणों में इतनी अधिक प्रखरता होती है कि कुछ घण्टों की धूप में ही गरमी खूब बढ़ जाती है। तापमान की इस भिन्नता के कारण ही इस ऋतु में अनेक दिन ऐसे होते हैं जिन में शीत ऋतु की सी ठण्ड अनुभव होती है और प्रायशः दिनों में गरमियों सी तेज़ धूप और गरमी।

गरमियों में वायु के अन्दर आर्द्रता बहुत कम होती थी। तेज़ धूप से धरती के तपने के साथ-साथ वायु भी गरम हो जाती थी जिसे लू कहते थे। अब, प्यासी धरती के ठण्डा हो जाने से लू का नामो निशान नहीं रह जाता।

हलका भोजन

भूमि से उठने वाले गरम वाष्पों से, बादलों के घिरे रहने से, अम्ल का परिपाक होने से बरसात में शरीर की अग्नि का बल क्षीण हो जाता है और वायु आदि दोष प्रकुपित हो जाते हैं। पाचन शक्ति दुर्बल पड़ जाती है। इसी लिए इस ऋतु में सामान्यतया हलके भोजनों को करने की सलाह दी जाती है। पुराने जौ, गेहूँ तथा शालि चावलों को जंगली पशु पक्षियों के मांसों और मांस के शोर्वों के साथ खाना आयुर्वेद में हितकर बताया है।

तर माल

बरसात में माल पूए, खीर आदि तर माल खाने का प्रचलन हमारे देश में देखा जाता है।

पाठक कहेंगे कि जब हम यह कहते हैं कि इस ऋतु में अग्नि मन्द होती है तो तर माल खाने का प्रचलन असंगत होना चाहिए। बात ऐसी है नहीं। खूब बारिश होने पर बाहरी परिवर्तनों के साथ-साथ हमारे शरीर के अन्दर की अवस्थाएं भी परिवर्तित हो जाती हैं। जिस दिन आकाश घने बादलों से घिरा हो, खूब बारिश हो और सरदियों की सी ठण्ड हो तो भूख भी खूब चमकती है। आम तौर पर ऐसे बारिश वाले दिन ही माल पूए या अन्य गरिष्ट पक्वान्न बनाने का रिवाज़ है। महर्षि चरक ने भी इस का समर्थन किया है। वे कहते हैं कि ऐसे विशेष ठण्ड वाले दिन वायु का प्रकोप शान्त करने के लिए स्निग्ध पदार्थों का सेवन करना चाहिए। यह ध्यान रखें कि जिह्वालौल्यवश तर माल अधिक न खाये जांय क्योंकि इस से अजीर्ण हो जायगी।

चटनी और खटाई

भोजनों में खट्टे, नमकीन पदार्थों का प्रयोग जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। प्याज़, लहसुन, पोदीना, अनारदाना आदि की चटनियों को भोजनों में समावेश करना चाहिए। प्याज़ को कुतर कर उस में नमक मिला लें। ऊपर से निम्बू का रस निचोड़ कर खट्टा कर लें। भोजन को स्वादु और सुपच बनाने के लिये यह रुचि से खाया जाता है।

शहद का विशेष प्रयोग

वर्षा ऋतु में शहद के प्रयोग की विशेष

रूप से सिफारिश की जाती है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट, कैयदेव आदि चिकित्सकों ने इन दिनों खाने पीने के प्रायः सब पदार्थों के साथ शहद का प्रयोग करने के लिए बल दिया है। चरक के समय इस ऋतु में जो शराबें भोजनों में पी जाती थीं उन में भी वे शहद का प्रयोग प्रशस्त समझते थे। वर्षा की चर्या में चरक बताते हैं कि शहद की मदिरा में या किसी दूसरे अरिष्ट में अथवा वर्षा जल में मधु मिला कर थोड़ा-थोड़ा पिया जाना चाहिए।

भोजन के सम्बन्ध में अन्य सावधानियां

बासी भोजन न करें। इन दिनों कीटाणुओं की क्रिया से भोजन में सड़ांद शीघ्र पैदा हो जाती है। बासी भोजन के साथ कीटाणुओं के विष अन्दर जा कर पाचन संस्थान को खराब कर देते हैं जिस से वमन, शूल, अतिसार, हैज़ा आदि रोग हो जाया करते हैं।

सायंकालीन भोजन अन्धेरा होने से पूर्व ही कर लें क्योंकि दीपक के प्रकाश में आने वाले कीड़े-पतंगे भोजनों में गिर कर खाद्य पदार्थों को अभक्ष्य कर देते हैं।

पीने का पानी

तालाबों, नदियों, झरनों का पानी गदला हो जाता है। कुएं के अन्दर आसपास की जमीन से रिस-रिस कर जो पानी चला जाता है वह अपने साथ अनेक प्रकार की मलिनताएं ले जाता है। इन दिनों कुएं के पानी में टाइफ़स आदि के रोगोत्पादक कृमि पाये जाते हैं। इस पानी के द्वारा रोग संक्रमण की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं। चरक, इस लिए सलाह देते हैं कि उबाल कर ठण्डा किया हुआ पानी पिया जाय तो अच्छा है। बहुत से प्रदेशों में वर्षा जल पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इसे भी उबाल कर पीना चाहिए।

सोने में ओढ़न की सावधानी

दिन में सोना अहितकर बताया गया है। रात्रि के आरम्भ में गरमी होने से खुले आकाश के नीचे सोना पसन्द किया जाता है। रात के पिछले भाग में सरदी बढ़ जाती है। ओस से बिस्तरा भीग जाता है। किसी-किसी दिन तो इतना अधिक गीला होता है कि निचोड़ने की सी आवश्यकता अनुभव होती है। गरमी सरदी की इन अनियमित अवस्थाओं में सरदी खाये जाने का भय रहता है। सोते समय चादर तथा गरम कपड़ा पास रख लेना चाहिए। रात्रि में आवश्यक कपड़ा ओढ़ने की असावधानि होने पर ठण्ड लग जाती है और ज़ुकाम, खांसी, शरीर टूटना आदि लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इस ऋतु में इस प्रकार के रोगियों की उपस्थिति औषधालयों में आरम्भ हो जाती है।

तुलसी या निम्बू की चाय

सरदी लग जाने के इन लक्षणों को दूर करने के लिए तुलसी की गरम चाय अथवा निम्बू की गरम चाय लाभदायक पेय का कार्य करते हैं। तुलसी की चाय बनाने के लिए तुलसी के ग्यारह ताज़े पत्तों को तीन-चार काली मिर्चों और ज़रा सी सोंठ या अदरक के साथ उबाल कर छान लें। दूध और मीठा या शहद मिला कर पी लें।

निम्बू की चाय तय्यार करने के लिये एक प्याला उबलते पानी में ज़रा सी चाय डाल कर

थोड़ी देर सींझने दिया जाता है। पानी में चाय का हलका सा रंग आ जाने पर छान कर एक निम्बू का रस और चार चम्मच शहद मिला कर गरम ही पी लिया जाता है।

रुचि के अनुसार दोनों में से किसी पेय को आवश्यकतानुसार दिन में दो-तीन बार लिया जा सकता है। ये पेय पसीना खुल कर लाते हैं। पसीने के द्वारा शरीर में से दोषों का निर्हरण हो जाता है। रुग्णावस्था में पसीना लाने के लिए जब इन का उपयोग किया जा रहा हो तो तेज़ हवा से बचना चाहिए।

बरसाती फोड़े फिन्सी

मच्छरों से और ओस से बचने के लिए मच्छरदानी का प्रयोग अभीष्ट होता है। इन दिनों रुधिर में इस प्रकार के दोषों का सञ्चय होता है कि मच्छर काटने से दष्ट स्थान में छोटे-छोटे व्रण हो जाते हैं जिन में पीप भर जाती है। इस प्रकार के बरसाती फोड़े फिन्सियों की चिकित्सा के लिए रसौंत को घिस कर लेप करना चाहिए और एक-दो रत्ती रसौंत खिला देनी चाहिए। जस्ते की खील (जिंक ओक्साईड) को मक्खन या वेज़लीन में मिला कर बनाई मरहम का प्रयोग फोड़ों को सुखाने में लाभदायक सिद्ध होता है।

व्यायाम, व्यवाय

व्यायाम हलका करें। घूमना श्रेष्ठ व्यायाम है। तैरना भी अच्छा है, परन्तु उस के बाद कुएं के पानी में स्नान करने का ध्यान रखना चाहिए।

आयुर्वेद के आदि गुरू महर्षि चरक ने इस ऋतु में स्त्री प्रसंग मना किया है। संस्कृत साहित्य के पाठक जानते हैं कि संस्कृत के कवियों और काव्यकारों ने बरसात के साथ काम का विशेष सम्बन्ध प्रतिपादित किया है। बरसते बादलों का शीतल वातावरण इस के लिए उपयुक्त काल हो सकता है।

कपड़े महीन हों या मोटे ?

बारिश और हवा वाली मौसम में कपड़े हलके रहें तो अच्छा है। वायु बन्द हो, गरमी से पसीना खूब छूटता हो तो महीन कपड़े पहनना इस लिए वाञ्छनीय नहीं होता कि वे पसीने को ठीक तरह सोख नहीं पाते। ऐसे समय मलमल जैसे बारीक कपड़ों की अपेक्षा खद्दर के बारीक कपड़े अधिक सुखदायक प्रतीत होते हैं, क्योंकि ये पसीने को अच्छी तरह जज्ब कर लेते हैं। पसीना त्वचा पर देर तक रहे तो क्षोभ पैदा करने का कारण बन सकता है जिस से त्वग्रोगों को उभरने में प्रोत्साहन मिलता है।

उबटन, स्नान

वायु में नमी अधिक होने से त्वचा पर से पसीने का वाष्पीभवन कम होता है; त्वचा चिपचिपी रहती है। इसे दूर करने के लिए और पसीने की गन्ध को निकालने के लिए आवश्यक है कि स्नान करते समय शरीर को रगड़ कर साफ कर लिया जाय। उबटन का लाभ इन दिनों विशेष होता है। सुगन्धित माला तथा

अन्य सुगन्धियों का प्रयोग चरक ने प्रशस्त समझा है।

रजस्वला नदियों का हेय पानी

वर्षा के पानी के वेग में सांप, बिच्छू आदि हानिकारक जीव तथा धरती का मल बहता हुआ जलधाराओं में मिल जाता है। इन मलिनताओं के कारण संस्कृत लेखकों ने बरसात में नदियों को रजस्वला कहा है और इन में स्नान करने का निषेध लिखा है। लेखक जैसे तैरने के शौकीन तैरने का लोभ संवरण न कर सकें तो उन्हें नदी के स्नान के बाद तुरन्त कुएं के पानी में स्नान कर के शरीर की स्वच्छता कर लेनी चाहिए। मेरा अनुभव है कि ऐसा न किया जाय तो नदी के गदले पानी की मलिनताएं त्वचा में खुजली पैदा कर देती हैं।

जीवों से बचाव

धरती के छिद्रों में पानी भर जाने से और साथ ही धरती के अन्दर से गरम वाष्पों के उठने के कारण सांप, बिच्छू आदि जीव इन दिनों मानवीय निवासों में तथा इधर उधर विचरते हुए प्रायः दीख पड़ते हैं। विषैले जीवों से डसे जाने की घटनाएं किसी भी दूसरी मौसम में इतनी अधिक नहीं होतीं जितनी इस में। घर के कोनों में फनियर या दबोइया, खूंटियों और गुसलखानों में कौड़िये जैसे विषैले सांप कई बार निकल आते हैं। दरवाजों की चिटखनियों के अन्दर बिच्छू मिलना असाधारण बात नहीं। श्रद्धानन्द सेवाश्रम में ऐसे रोगी आये हैं जिन्हें कमीज पहनते हुए आस्तीन का सांप या बिच्छू काट खाया था। मुख पोंछते हुए तौलिये पर चिपके रह गये भूण्ड ने नाक की नोक को अपने डङ्क का निशाना बनाया था। एक बच्चे की मूत्रेन्द्रिय के अग्र-भाग पर काबुली भूण्ड ने डङ्क मारा था। सोते समय एक स्त्री के नाक के अन्दर खूब गहरा झींगुर घुस गया था जिसे निकालने के लिए श्रद्धानन्द सेवाश्रम के सर्जन की सहायता लेनी पड़ी थी।

इन से बचने के लिए प्रत्येक कपड़े को झाड़ कर पहनना और बरतना चाहिए। बच्चों में यह आदत डालनी चाहिए। रात को अन्धेरे में जाते समय प्रकाश हाथ में रखना चाहिए जिस से विषैले जीवों पर पैर न रखा जाय।

अन्य सावधानियां

निवास स्थान ऐसा होना चाहिए जिस में नमी का असर न हो और न ही बारिश का पानी अन्दर घुस आ सकता हो। धूप हानिकारक होती है। बाहर निकलते समय छाता ले कर चलें। भीगे कपड़े खुजली पैदा करते हैं। कपड़े गीले न पहनें। खाने की चीजों में और कपड़ों में सील चढ़ जाती है। इन में कीड़ों के आक्रमण बहुधा हो जाते हैं। धूप वाले दिन सब सामान को धूप दिखा देनी चाहिए। [कापी राइट लेखक के पास।]



चिड़चिड़ापन छोड़िये

श्री रामचरण महेन्द्र एम. ए.

मानव स्वभाव के दुर्गुणों में चिड़चिड़ापन आन्तरिक मन की दुर्बलता का सूचक है। सहिष्णुता के अभाव में मनुष्य बात बात में बिगड़ने लगता है, नाक भौं सिकोड़ता है, प्रायः गाली गलौज देता है। मानसिक दुर्बलता के कारण वह समझता है कि दूसरे उसे जान बूझ कर परेशान करना चाहते हैं, उसके दुर्गुणों का देखते हैं, उनका मजाक उड़ाते हैं। किसी पुरानी अनुभूति के फल-स्वरूप वह अधिक संवेदनशील हो उठता है और उसकी भावना ग्रन्थियां उसकी गाली गलौज या बेढंगे व्यापारों में प्रकट होती हैं।

चिड़चिड़ेपन के रोगी में चिन्ता तथा शक शुबे की आदत प्रधान है। कभी २ शारीरिक कमजोरी के कारण, कब्ज, परिश्रम से थकान, सिर दर्द, नपुंसकता के कारण अपने आपको यह न समझ ले कि वह क्षमता रखता है, तब तक वह पंगु ही बना रहेगा। तुम्हें जो कुछ करना श्रेष्ठ जँचता है, जो कुछ तुम्हारी अन्तरात्मा कहती है उसे दृढ़ संकल्प पूर्वक अवश्यमेव प्रारम्भ करो। डरो नहीं, शंका, सन्देह या अविश्वास की कोई बात न सोचो बल्कि कार्य शुरू कर ही डालो। प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ जरूर कर सकता है और करेगा, यदि अकृतकार्य होकर हिम्मत न हारे। हिम्मत हमेशा बाजी मारती है। तुम अपने सामर्थ्य और निश्चय यत्नों की अभिवृद्धि करते रहो। संसार में जो करोड़ों पुरुष निराश हो रहे हैं उसका प्रधान कारण आत्मविश्वास की कमी है। वे श्रद्धा खो बैठे हैं और दूषित निष्प्रयोजन कल्पनाओं के ग्रास बने हैं तुम इन से सदैव बचे रहो। सदा सर्वदा आन्तरिक मन की उन्नत भावनाओं के प्रति लक्ष्य किये रहो और अपनी समस्त शक्तियों में अखंड श्रद्धा और पूर्ण विश्वास रखो किसी विशेष मर्य्यादा तक केवल ऊपरी विश्वास ही मत रखो परन्तु भीतरी तह में भी दृढ़ता से विश्वास की अमिट छाप जमा दो। फिर विश्वास के सुमनोहर फल देखो। तुम्हारी सब निराशा रफू चक्कर हो जायगी और अभ्यन्तर प्रदेश से अनन्त शक्ति का आविर्भाव होगा।

आज से तुम अपनी क्षुद्रता का चिंतन छोड़ो जब कभी विश्व की विशालता पर विचार करने बैठो तो अपने मन, शरीर, आत्मा की महान् शक्तियों पर चित्त एकाग्र करो। शक्ति के इस केन्द्र पर मन स्थिर रखने से कोई दुर्बलता तुम्हारे अन्तःकरण में प्रवेश नहीं कर सकती। जब तुम शक्ति के विशाल बिन्दु पर समस्त शक्तियां केन्द्रित करोगे तो तुम्हें प्रतीत होगा कि पाषाण में, धातु में, वनस्पति में, प्रकृति में, आदमी तिनक उठता है। अपनी कठिनाइयों तथा समस्याओं से उद्दीप्त होकर देखते देखते उसे गहरी निराशा हो जाती है, चिड़चिड़ापन एक पेचीदा मानसिक रोग है। अतः प्रारम्भ से ही इसके विषय में हमें सावधान रहना चाहिए।

जिस व्यक्ति में चिड़चिड़ेपन की आदत है वह सदा दूसरों के दोष ढूंढता रहता है। वह व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की दृष्टि में तो बुरा होता ही है, स्वयं भी एक अव्यक्त मानसिक उद्वेग का शिकार रहता है। उसके मन में एक प्रकार का संघर्ष चला करता है। वह भ्रमित कल्पनाओं का शिकार रहता है। उसके संशय ज्ञान-तन्तुओं पर तनाव डालते हैं। भ्रम बढ़ता रहता है और वह मन ही मन ईर्ष्या की अग्नि में दग्ध होता रहता है। वह क्रोधित, भ्रान्त, दुःखी सा नजर आता है। तनिक सी बात में उद्विग्नता का वारापार नहीं रहता। गुप्त मन पर प्रारम्भ में

[शेष पृष्ठ ३२ पर]

साहित्य-परिचय

अर्थशास्त्र के सिद्धान्त—

लेखक–डा० रामनारायण सक्सेना और श्री रघुराज गुप्त। प्रकाशक–एच० चटर्जी एण्ड कम्पनी लिमिटेड, १६, श्यामाचरन दे स्ट्रीट, कलकत्ता। मूल्य १२)। हिन्दी में अर्थशास्त्र की अनेक पुस्तकें हमारे देखने में आई हैं परन्तु सक्सेना और गुप्त की उपर्युक्त पुस्तक का प्रकाशन जिसका प्रथम भाग हमारे सामने है हिन्दी के आर्थिक साहित्य में एक महत्वपूर्ण घटना है। अभी तक हमारे यहां जो अर्थशास्त्र की पुस्तकें लिखी गई उन पर पुराने अंग्रेजी क्लासिकल स्कूल की अनुचित प्रभुता थी। पिछले तीस सालों में अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये हैं। पुराने सिद्धांतों की त्रुटियां स्पष्ट हुई हैं, अधिक वास्तविक और वैज्ञानिक सिद्धान्त हमारे सामने आये हैं। अतः इस बात की बड़ी जरुरत थी कि हम उन नूतन परिवर्तनों से परिचित हों। प्रस्तुत पुस्तक के लेखकों ने अर्थशास्त्र की नवीनतम प्रगति को अपनी पुस्तक में स्थान दिया है। प्रथम भाग में उन्होंने अर्थशास्त्र के विषय, उपभोग और उत्पादन की विवेचना की है। दूसरे भाग में वे मुद्रा, विनिमय, वितरण और राजस्व दे रहे हैं। सिद्धान्तों के अतिरिक्त इसमें साथ में भारत की आर्थिक स्थिति और समस्याओं का भी विस्तृत विश्लेषण है अर्थशास्त्र की पुस्तकों में सामान्यतः पाये जाने वाले विषयों के अतिरिक्त कई नूतन महत्वपूर्ण विषयों और समस्यायों का इस पुस्तक में समावेश है। उदाहरण के लिये, बचत, विनियोग (इन्वेस्टमेंट) और रोजगार, जन संख्या के पेशेवार वर्गीकरण का आर्थिक प्रगति से सम्बन्ध, पूंजी के संचय की दर और अविकसित देशों का विकास, सत्तर देशों की प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय की तुलनात्मक विवेचना, जन संख्या का अन्तर्राष्ट्रीय और प्रादेशिक पुनर्वितरण जैसे विषयों का विवेचन मनोरञ्जक ही नहीं, आवश्यक भी है। दूसरे भाग में लेखक पूंजीवाद, समाजवाद, आयोजन भारत की पंच-वर्षीय योजना, विभाजन के आर्थिक परिणाम आदि अन्य नये विषयों को प्रस्तुत कर रहे हैं। अर्थशास्त्र की संभवतः यह पहली पुस्तक है जिसमें भाषा के सौंदर्य, विचारों की स्पष्टता का पर्याप्त ध्यान रखा गया है। विषय के प्रतिपादन का ढंग भी अत्यन्त रोचक और अनेक स्थानों पर सर्वथा मौलिक है। इस पुस्तक में लेखकों ने जो पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त किये हैं यह काफी सोच समझ कर चुने गये हैं और ध्यान देने योग्य हैं तथा भविष्य में अन्य लेखकों द्वारा अपनाये जा सकते हैं। आंकड़ों के सम्बन्ध में भी यह पुस्तक सब से आगे बढ़ने का दावा कर सकती है। इसमें सर्वत्र जून १९५१ तक प्राप्य अन्तिम तम आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त पुस्तक की छपाई, बन्धाई असाधारण रूप से अच्छी है और विदेशी पुस्तकों के गेट-अप से मुकाबिला करती है। पुस्तक की कीमत भी सर्वथा उचित है। मेरा यह विश्वास है कि यह पुस्तक अर्थशास्त्र के अध्ययन के इच्छुक व्यक्तियों और कालिजों के विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। —हरिदत्त वेदालङ्कार।

धारा—(कविता संचय)

लेखक–श्री कुमार शर्मा विद्यालंकार। प्रकाशक–बैजनाथ एण्ड कंपनी, गिरीडीह (बिहार)। मूल्य सवा दो रुपये। धारा का कवि प्रकृति प्रेमी सहृदय व्यक्ति है। उसके गीतों में निसर्ग की सुषमा के साथ-साथ विश्व की कटुता, विषमता और करुणता बसी हुई है। पर कवि पलायनवादी नहीं है। जीवन और जगत् के प्रति उसका दृष्टिकोण स्वस्थ और आशावान् है। वह कहता है—

मेरा कर्त्तव्य प्रकाश करूँ
जगजीवन में नव आश भरूँ।
आओ, मैं हूं उत्साह–भरा,
छूने को स्वर्ग मचलता हूं–
मैं जलता हूं, मैं जलता हूं ॥

❀ ❀ ❀

यथार्थ के चित्रण में कवि कृपण नहीं है पर साथ ही कवि हृदय को विश्व-मांगल्य के प्रति पूरी श्रद्धा और आस्था है। 'आज कराह रही है धरती' वाले गीत में कवि विश्व के वैषम्य, दुःख, दारिद्र्य और हाहाकार से व्यथित हो उठता है, पर निराश नहीं होता, नाहीं झुँझला उठता है। वह दृढ़ता के साथ कह उठता है—

और दूसरी ओर खड़े ये,
देवों के अवतार !
मानवता को थापी देकर
करते प्यार अपार ॥

जीवन के माधुर्य और मांगल्य का उपासक कवि–पंखी एक स्थान पर पुनः चहक उठता है—

और एक दिन वह आएगा
फूल बसेंगे कण-कण में।
अपनी स्निग्ध ज्योति में तन्मय
गाऊँगा मुक्त गगन में ॥

हम कवि के इस सत् प्रयास को प्यार करते हैं। 'धारा' के इस प्रवाह का अभिनंदन करते हैं।

—शंकरदेव।

आर्यकुमार निबन्धमाला—

लेखक–श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति। प्रकाशक, राजपाल एण्ड सन्स, नई सड़क, देहली आकार २०×३०।१६, पृष्ठ संख्या १००, मूल्य १)। अखिल भारतीय आर्य कुमार परिषद् की परीक्षाओं में बैठने वाले छात्रों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक का उद्देश्य इस पुस्तक द्वारा युवकों विशेषतः आर्य कुमारों को सारगर्भित निबन्ध लिखने और उत्तम भाषण देने में विशेष सहायता देना है। आर्य-जीवन, वैदिक धर्म का व्यापक रूप, वैदिक ईश्वरवाद, वैदिक धर्म और विश्व-शान्ति, वर्ण व्यवस्था आदि आठ निबन्ध इस पुस्तक के अन्तर्गत हैं। इन सब विषयों की जानकारी हमारे युवकों को होनी ही चाहिए। श्री धर्मदेव ठोस धार्मिक साहित्य के निर्माण में सतत प्रयत्नशील हैं, यह प्रसन्नता का विषय है। हम चाहते हैं कि उनके शेष निबन्ध भी जनता के लाभ के लिए प्रकाश में आ जांय।

–रामेश बेदी।

गान्धी शिक्षा (तीन भाग)--

प्रकाशक सस्ता साहित्य मण्डल, नई देहली। मूल्य प्रथम भाग ।), द्वितीय भाग ।-), तृतीय भाग ।=)। महात्मा गांधी की अनेक पुस्तकों में से जीवन को उच्च बनाने वाले बालकोपयोगी विचारों का संग्रह गान्धी शिक्षा नाम से प्रकाशित हुआ है। महात्मा गांधी चरित्र निर्माण पर बहुत बल दिया करते थे। उनका कहना था कि व्यक्ति का सुधार हो जाने पर समाज और राष्ट्र का स्वयं सुधार हो जाता है। बालकों को प्रारम्भ में ही ये शिक्षाएं पढ़ाई जांय तो उनके अन्दर ऊंचे गुणों को पनपने में बड़ी सहायता मिलेगी।

—रामेश बेदी।

सुप्रभात —

सम्पादक और प्रकाशक श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, पटौदी हाउस, दरियागंज, देहली। वार्षिक मूल्य ६) रुपये। श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार गुरुकुल के योग्यतम स्नातकों में से एक हैं। आर्यसमाज में उन जैसे प्रतिभाशाली विद्वान् बहुत कम हैं। संस्कृत भाषा पर आपका बड़ा गहरा अधिकार है। आपकी संस्कृत की कवितायें और रचनायें संस्कृत के पुराने कवियों और पंडितों की टक्कर की होती हैं। वैदिक साहित्य में आपकी निराली शान है। वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों के अनेक दुर्बोध स्थलों के जैसे सुन्दर, शिक्षाप्रद और युक्ति-संगत अर्थ आप करते हैं उसे सुन और पढ़ कर आश्चर्य चकित होना पड़ता है। लाहौर के आर्य नामक मासिक पत्र में आपने अथर्ववेद और शतपथ ब्राह्मण का भाष्य निकालना आरम्भ किया था। इन दोनों भाष्यों के उक्त मासिक पत्र में प्रकाशित अंश जिन्होंने पढ़े हैं वे जानते हैं कि वे कैसी अद्भुत चीजें थीं और उन से पण्डित जी का कितना प्रकाण्ड पान्डित्य प्रकट होता था। दुःख है कि पण्डित जी का उक्त भाष्य लिखने का क्रम बीच में ही रुक गया।

पण्डित जी ने इस वर्ष के प्रारम्भ से सुप्रभात नाम का एक मासिक पत्र निकालना शुरू किया है। इस पत्र के कई प्रकाशित अङ्क देखने का हमें अवसर हुआ है। प्रति मास छोटे-छोटे सुपठ लेखों के द्वारा वैदिक साहित्य के अनेक मर्मों को इस में खोला जाता है, वैदिक वाङ्मय के समुद्र में से गोता लगा कर निकाले हुए अनेक विचार रत्नों को स्पष्ट करके स्वाध्यायशील जनता के सम्मुख रखा जाता है। प्रत्येक स्वाध्याय प्रेमी को इस पत्रिका का ग्राहक बनना चाहिये। हम पण्डित जी प्रार्थना करेंगे कि वे अपना प्रचारार्थ इधर-उधर दौरे लगाते रहना बहुत कम कर दें तथा भारतीय लोक संघ आदि संस्थाओं के काम से भी अलग हो जायें और अपना सारा समय और ध्यान शतपथ आदि का भाष्य लिखने तथा अन्य प्रकार का उत्कृष्ट आर्य साहित्य तैयार करने एवं सुप्रभात पत्र को और भी आकर्षक बनाने में लगावें। बैठ कर यह कार्य करने से उन की निराली प्रतिभा का अधिक सदुपयोग होगा।

—प्रियव्रत वेदवाचस्पति।



गुरुकुल समाचार

ऋतु

वर्षा ऋतु की विदाई के दृश्य दिखाई दे रहे हैं। रात्रि के पिछले प्रहर शीतल हो चले हैं। आकाश में रुई के गद्दे लों से निर्जल श्वेत बादल धूप-छांह खेलते दीखते हैं। शरद् के दूत खंजन पक्षी आने लगे हैं। वनों कांस मञ्जरियां फूल उठी हैं। ऋतु परिवर्तन के कारण मलेरिया और आन्त्र-ज्वर का प्रभाव भी दीखने लगा है। इसी लिए गुरूकुल नगरी की जंगली जड़ी बूटियां साफ करवा दी गई हैं। गगा और नहर का जल स्वच्छ होता जा रहा है।

पढ़ाई

पढ़ाईयां व्यग्रता के साथ चल रही हैं। विद्यालय विभाग की छमाही परीक्षाएं अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में समाप्त हो जायेंगी। महाविद्यालय विभाग की छमाही परीक्षा २५ अक्टूबर तक समाप्त हो जायेंगी। दीपावली के पश्चात् द्वितीय सत्र (शरद्कालीन अध्ययन-सत्र) प्रारम्भ हो जायगा।

मान्य अतिथि और व्याख्यान

पिछले दिनों आर्य विद्यासभा की बैठक के सिलसिले में गुरुकुल के कई अधिकारियों और मान्य-जनों ने गुरुकुल का अवलोकन किया। श्री-मूलराज जी ने विद्यालय विभाग की कई श्रेणियों का निरीक्षण किया।

इन्हीं दिनों स्वामिनी सभा के प्रधान श्रीयुत पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा का गुरुकुलीय आर्यसमाज के तत्त्वावधान में "हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्या पिहितं मुखम्" इस मन्त्र-खण्ड को ले कर एक मनोहर बोधमय व्याख्यान हुआ। आर्य साप्ताहिक के सम्पादक श्री पं० भीमसेन जी विद्यालंकार ने महाविद्यालय वाग्वर्धिनी सभा में "पञ्जाब की राजनीतिक समस्याएं" विषय पर एक अच्छा विवेचना-पूर्ण व्याख्यान दिया।

"हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड" कलकत्ता के सहायक सम्पादक श्री जे० एन० सरकार इस सप्ताह गुरुकुल पधारे।

उत्तर प्रदेशीय आर्य-प्रतिनिधि-सभा के प्रधान श्रीयुत मदन मोहन जी सेठ तथा सभा के प्रधान मन्त्री श्री प० धर्मपाल जी विद्यालंकार पिछले दिनों गुरुकुल पधारे। आप लोगों ने गुरुकुल के समस्त विभागों की परिक्रमा की और कार्यविधि का निरीक्षण किया।

सांस्कृतिक–प्रवृत्ति

हरिद्वार में नागरी प्रचारणी सभा द्वारा मनाई गई भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जयंती में गुरुकुल के प्रतिनिधिरूप में श्री पं० सुखदेव जी दर्शन वाचस्पति और श्री शंकरदेव विद्यालंकार ने भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र जी की साहित्य सेवा, देशभक्ति और उन के चरित्र में बसी हुई क्रांतिवादिता पर विशद विवेचन किया।

संगीत–गौरव श्री भातखण्डे जी की जयन्ती पर हरिद्वार में आयोजित संगीत सम्मेलन में महाविद्यालय विभाग के छात्रों ने वृन्दवादन (आर्चेस्ट्रा) तथा शास्त्रीय-गान में अपना योग दिया।

क्रीड़ा-सान्मुख्य

पञ्चपुरी की शिक्षा-संस्थाओं के विविध

क्रीड़ाओं के सान्मुख्य प्रारम्भ हो गए हैं जिन में प्रथम दो सान्मुख्यों में गुरुकुल के छात्रों की विजय हुई है। पहला सान्मुख्य फुटबाल का था। और गुरुकुल का मुकाबला आर्य स्कूल मायापुर से था। दूसरा सान्मुख्य वालीबाल का था और उस में भी गुरुकुल का मुकाबला आर्य स्कूल से ही था।

नए प्रकाशन

पञ्चतन्त्र के संशोधित और संक्षिप्त संस्करणों के दो भाग छप कर तैयार हो गए हैं। ये संस्करण संस्कृत की पढ़ाई के लिए बड़े उपयोगी हैं। प्रत्येक तन्त्र के अन्त में कठिन शब्दों के अर्थ सरल हिंदी में दिए गए है। प्रथम भाग में मित्रभेद और मित्र-सम्प्राप्ति नामक तन्त्र हैं। दूसरे में शेष तीनों तन्त्र छापे गए हैं।

आयुर्वेद-कमीशन

गुरुकुल के आयुर्वेद कालेज की शिक्षा-व्यवस्था, पाठविधि, प्रबन्ध आदि का निरीक्षण करने के लिए मुम्बई प्रान्त की भारतीय-चिकित्सा समिति की ओर से तीन विद्वानों का शिष्टमडल (कमीशन) अक्टूबर मास के अन्त में पधारने वाला है।

संग्रहालय

गत मास १६-८-५१ को भारत सरकार के पुरातत्व-विभाग के प्रधान सञ्चालक श्री माधोस्वरूप जी वत्स संग्रहालय का निरीक्षण करने के लिए आये। उन्होंने इस का सूक्ष्म अवलोकन कर इस के कार्य से बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, संग्रहालय को भारत के प्राचीन कला सम्बन्धी कुछ बड़े चित्र और अन्य सामग्री देने का वचन दिया और संग्रहालय के विषय में निम्न सम्मति प्रकट की।

"मैं आज प्रातःकाल गुरुकुल संग्रहालय का निरीक्षण कर प्रसन्न हुआ। संग्रह अभी प्रारम्भिक दशा में है किन्तु यहां के कार्यकर्त्ताओं की उसे बढ़ाने की प्रबल अभिलाषा का परिचायक है, उन्हें भारतीय शिल्प-कला के ज्ञान में सहायता देने के लिए मैंने यह निश्चय किया है कि विभिन्न कला शैलियों की कुछ उत्कृष्ट मूर्तियों के बड़े चित्र संग्रहालय को भेंट किये जायें। मुझे आशा है कि यह भेंट विद्यार्थियों और भारत के विभिन्न भागों से हरिद्वार आने वाले दर्शकों के लिए भारतीय कला के समझने में सहायक सिद्ध होंगी। मैं इस संस्था का शुभ चाहता हूँ।"

संग्रहालय में इस मास शिक्षा सम्बन्धी कुछ नये नक्शे और मानचित्र आये हैं उन में एक मानचित्र में भारत के प्राचीन ऐतिहासिक भवनों के चित्र हैं दूसरे में भारत की आर्थिक पैदावार को चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया है इस के अतिरिक्त एक बहुत बड़े नकशे में भारत के २०० के लगभग पशु पक्षी दिखाये गये हैं।

पिछले तीन महीनों में संग्रहालय से ४७८२ दर्शकों ने लाभ उठाया। जून, जुलाई और अगस्त में क्रमशः १७१४, १३६१ और १७०७ दर्शक आये।

भू-सिंचन की नई व्यवस्था

गुरुकुल के समीपवर्त्ती खेतों में सिंचाई की सुविधा के लिए नहर पर स्थित गुरुकुल घाट पर जल-पम्प लगाया गया है। यह पम्प

विद्युत्-शक्ति द्वारा सञ्चालित होता है। वर्षा के अभाव में यह पम्प बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस वर्ष प्रयोग के रूप में गुरुकुल के कृषि विभाग ने धान की खेती की है। आजकल यह खेती खूब लह-लहा रही है। पंप द्वारा इस खेती में बराबर पानी दिया जा रहा है। आशा है यह प्रयोग फलवान् होगा।

शोक-वार्ता

गुरुकुल के पोस्ट-मास्टर श्रीयुत धैर्यप्रकाश जी भटनागर की सुपुत्री का गत सप्ताह न्यूमोनिया से अवसान हो गया। कुलवासी श्री भटनागर जी के परिवार के साथ अपनी हार्दिक समवेदना और सहानुभूति प्रकट करते हैं। परमात्मा दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करे।

स्वास्थ्य समाचार, भाद्रपद, २००८

सं०	नाम	श्रेणी	रोग	दिन रोगी रहा
१	युद्धवीर	२	ज्वर	४
२	नरपति	१३	,,	१६
३	नन्दकिशोर	५	,,	३
४	नवलकिशोर	७	,,	५
५	राजाराम	५	,,	५
६	बसन्त कुमार	३	,,	७
७	रामचन्द्र	१३	,,	५
८	अमरेन्द्र	४	,,	६
९	मोहन	४	,,	३
१०	रवि शंकर	३	,,	३
११	राजेन्द्र	१०	,,	५
१२	त्रिपुरेन्द्र	४	,,	४
१३	आर्य कुमार	१०	,,	३
१४	सुरेन्द्र	२	,,	७
१५	गुरुदत्त	४	,,	६
१६	राजेन्द्र	५	,,	४
१७	हरिश्चन्द्र	३	,,	४
१८	प्रेमनारायण	३	,,	४
१९	प्रेमचन्द्र	४	,,	३
२०	नरेन्द्र	७	,,	५
२१	आर्यदेव	२	,,	३
२२	विपिन	२	,,	३
२३	महेन्द्र	४	,,	३
२४	गोपाल	१०	,,	६
२५	सुरेन्द्र	३	,,	२
२६	अशोक	४	,,	३
२७	नरेन्द्र	७	,,	
२८	रामगोपाल	३	,,	४
२९	कौशल किशोर	३	,,	३
३०	विनोद	२	,,	५
३१	सोमप्रकाश	१५	अतिसार	५
३२	केशव	१२	प्रतिश्याय	५
३३	शीलकान्त	१३	,,	४
३४	तिलकराज	६	चेपा	—
३५	रणवीर	४	फोड़ा	४
३६	बद्रीनारायण	५	,,	५
३७	कर्मपाल	६	,,	—
३८	श्रुतिकान्त	१४	चोट	७
३९	रामतीर्थ	४	,,	६
४०	रामचन्द्र	४	फोड़े	४
४१	सत्यपाल	१	चोट	७
४२	विनय कुमार	२	,,	४
४३	जगदीश	१	,,	५

४४ सन्तोषपाल	४	,,	३
४५ सुदर्शन	३	,,	३
४६ मंगलसेन	३	,,	६
४७ व्रजमोहन	५	,,	५
४८ सुरेन्द्र	२	नेत्राभिष्यन्द	७
४९ ज्ञानस्वरूप	१	,,	५
५० राजेन्द्र	१	,,	६
५१ नीरोत्तम	३	खुजली	१७
५२ राष्ट्रवीर	५	—	—
५३ सत्यवीर	४	,,	२०
५४ विश्वदेव	१४	निर्बलता	३
५५ रणजीत	८	दन्तशूल	३
५६ श्याम सुन्दर	१	कास	४
५७ जयदेव	१४	कर्णशूल	३
५८ जयकृष्ण	६	कर्णशूल	४
५९ विश्वनाथ	१३	शूल	८
६० अभयदेव	१०	मोच	४
६१ ईश्वरचन्द्र	२	,,	३

—सत्यपाल, प्रधान चिकित्सक।



चिड़ाचिड़ापन छोड़िये

[पृष्ठ २५ का शेष]

जैसे संस्कार जम जाते हैं, उन के फलस्वरूप ऐसा होता है । यह आदत से पड़ने वाला एक संस्कार है ।

रोग से मुक्ति के साधन

मन में दृढ़ निश्चय करना चाहिये कि चिड़-चिड़ापन बुरा है। हम उसे अपने स्वभाव में से निकालना चाहते हैं । हम दूसरों से बोलने, हंसने, मजाक या कामों से नहीं चिढ़ेंगे। हम उन की परवाह न करेंगे। अपने स्वभाव में मृदुता लावेंगे, सरस बनेंगे, सहिष्णु बनेंगे।

मनुष्य के मन में सत् तथा असत् दोनों प्रकार के विचारों का क्रम चला करता है। हमें अपने दुर्बल विचारों के प्रति बड़ा सतर्क रहना चाहिए। जब कोई चिन्ता या निराशा-जनक बात मन में आवे, आप उस के प्रतिकूल भावना का उद्रेक कीजिये। चिड़चिड़ेपन के दमन के लिए मृदुता, प्रसन्नता, सहानुभूति की भावना अत्यन्त लाभदायक है । प्रबलता से मन में शुभ संकल्प जाग्रत कीजिए।

जब कभी आप को क्रोध आवे तो मन ही मन कहिए, "दूसरों से गलती हो ही जाती है। मुझे दूसरों की गलतियों पर क्रुद्ध नहीं होना चाहिए। यदि दूसरे गलती करते हैं, तो उस का यह मतलब नहीं कि मैं और भी बड़ी गलती कर उस का प्रतिशोध लूं। मैं शुभ संकल्प वाला साधक हूँ। शुभ संकल्प के फलित होने के लिए उद्विग्न मन होना उचित नहीं। हम सहिष्णु बनेंगे। दूसरे स्वयं अपनी गलती का अनुभव करेंगे हम धैर्य धारण करें।"

जितना कि आप विचारों को ऊपर लिखित भावनाओं पर एकाग्र करेंगे, उतना ही बल आप को मिलेगा। पुनः पुनः दृढ़ता से उन में रमण करने से स्वभाव बदल जायगा, प्रकृति मधुर बन जायगी। आवेश को रोकने से मन को बल मिलेगा।





मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

रुकुल पत्रिका

ांक

०८



कुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरि

वर्ष ४
अङ्क ३

गुरुकुल-पत्रिका

कार्ति[illegible]
२००[illegible]

इस अङ्क में

अगले अंकों में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

अपने भाग्य का निर्माता—मैं

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभ्यः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ।।

अथर्व०, का०, ४, सू० ३०।३ ।

संसार में प्रत्यक्ष दृष्टि पथ में जो उत्कर्ष आ रहा है, उसे मैं स्वयं अपने आप ही प्रकट करता हूं। जब तक मैं उसकी प्राप्ति के लिये स्वयं सन्नद्ध नहीं होता हूं तब तक ब्राह्मी शक्ति भी मेरा सहारा नहीं देती है।

न ऋते श्रान्तस्य देवाः सख्याय भवन्ति ।

जिस-जिस की मैं कामना करता हूं, उसकी प्राप्ति के लिये मैं स्वयं ही अपने आप को वैसा निर्माण करता हूं।

मैं स्वयं ही अपने को ऋषित्व के योग्य बना सकता हूं। मैं स्वयं ही अपने आप को चारों वेदों का ज्ञाता ब्रह्मा बना सकता हूं। मैं स्वयं ही ऋतम्भरा मेधा का धारण करने वाला हो सकता हूं। मैं स्वयं ही अपने आप में ईश्वर बना हूं। मैं ही अपने को अत्यन्त उग्र बना सकता हूं।

—अमृतानन्द सरस्वती ।



वेदार्थ प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धान्त

श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

त्रिविध प्रक्रिया, यौगिकवाद, धातुओं की अनेकार्थता, देवता वाद, इतिहास वाद, इन मूलभूत सिद्धान्तों पर हम पहले विचार कर चुके हैं अब शेष बचे हुए विषय को देखते हैं। सायण से पूर्ववर्ती १६ भाष्यकार जिन के भाष्य हमें अब तक उपलब्ध हुए हैं उपस्थित करते हैं—१—स्कन्द स्वामी, २—दुर्गाचार्य, ३—उद्गीथ, ४—हरिस्वामी, ५—उव्वट, ६—वररुचि, ७—भट्ट भास्कर, ८—व्यङ्कटमाधव, ९—आत्मानन्द, १०—अनन्त तीर्थ, ११—शत्रुघ्न, १२—गुण-विष्णु, १३—माधव, १४—भरत स्वामी, १५—देवपाल, १६—आनन्द बोध। इनके पीछे सायण का नम्बर है। इन सभी ने प्रायः कर के हमारे उपर्युक्त सिद्धान्तों को माना है। किसी ने सब माने हैं किसी ने कुछ कम माने हैं। सब को मिला कर सब सिद्धान्तों को मानने की स्थिति उपस्थित कर दी है। समयाभाव से सब के उदाहरण नहीं दिये जा सकेंगे। वेद प्रेमियों को इस दृष्टि से स्वयं देखने चाहियें। स्कन्द और दुर्ग के विषय में हम एक दो स्थल देखते हैं—"एवं व्याकरणेऽपि लक्षणप्रधाने सति अर्थवशेन लोपागमौ विपरिणामश्च शब्दानां वृथा किम् उत निरुक्ते मदर्थप्रधान्येन। दुर्ग टीका पृष्ठ १०२।" मन्त्रार्थ परिज्ञानादेव ··· ··· तस्मादेतेषु भावन्तो अर्था उपपद्येरन् आधिदैवाध्यात्मिकाधिभौतिकाश्रयाः सर्व एव ते योज्या नाऽत्र अपराधोऽस्ति। दुर्ग टीका पृष्ठ १२६। उद्धरणों में तथा हम जो पहले स्कन्द स्वामी के उद्धरण दर्शा चुके हैं इन में कम से कम यह तो पता लग जाता है कि आज से १५०० वर्ष पहले वेदार्थ की प्रक्रिया के विषय में प्रायः वही धारणायें थीं जिन को इस युग में ऋषि दयानन्द ने संसार के सामने रखा। अर्थ को प्रधान मान कर मन्त्रों के तीनों प्रकार के अर्थ यौगिकवाद वा धातुओं के अनेकार्थत्व के आश्रय पर किये जाते थे जो बीच के काल में लुप्त हो गये और वेदार्थ के विषय में सायण एक भित्ति बन कर खड़ा हो गया। विदेशियों ने इसी का सहारा ले कर क्या क्या अनर्थ किया और उसी के पदानुगामी भारतीयों ने वेदार्थ के विषय में पदे पदे ठोकरें खाईं यह किसी से छिपा नहीं है।

इस विषय में एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि यदि हम वर्तमान समय में लुप्त वेदार्थ की परिस्थिति में किसी प्राचीन ऋषि के वेदार्थ को जानना चाहें तो इस विषय में हमारे सामने यास्क का निरुक्त ही है। निरुक्त देखने से हमें वेदार्थ प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धान्तों में से अनेक निर्देश मिलते हैं जिन से मूल सिद्धांतों पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। यास्क ने वेदार्थ के स्वरूप के विषय में जो कुछ सोचा है वह निःसन्देह हमारे लिए उपादेय है। अति संक्षेप से मैं यास्क की कुछ धारणाओं को आप के सामने रखता हूँ—"पुरुष विद्या ऽनित्यत्वात् कर्म संपत्ति-र्मन्त्रो वेदे" निरुक्त १-२। नियतवाचो युक्तयो नियता ऽऽनुपूर्व्या भवन्ति। १—१५। इन में निरुक्त कार वेद को नित्य और नियत आनुपूर्वी युक्त मानता है। यास्क मन्त्रों के तीनों प्रकार के अर्थ मानता है यह हम पहले देख चुके हैं।—

"ऋषि दर्शनात् स्तोमान् ददर्श इति औपमन्यवः" तथा "कर्त्ता स्तोमानाम् इति औपमन्यवः' इन वचनों से यास्क ऋषियों को मन्त्रों के द्रष्टा मानता है। 'अथापि इदमन्तरेण मन्त्रेषु अर्थ प्रत्ययो न विद्यते। नि० १-१५। इस लिए यास्क ने दर्शाया कि वेद मन्त्रों का अर्थ निरुक्त वा निर्वचन विद्या के बिना ठीक ठीक नहीं समझा जा सकता। 'वैवर्थ्याऽपि धातवो भवन्ति' महाभाष्यकार के इस सिद्धांत को भी निरुक्त कार यास्क ने माना है। जैसा कि मृड=सुखने मृडहिंसायाम (अदादि) मृड सुखे च (क्रयादि) निरुक्त में यह धातु मृडते दान कर्मा। नि० १०-१५ मृडयति रुपदया कर्मा, पूजा कर्मा वा नि० १०-१६ इस से महाभाष्य के अनुसार यास्क ने धातुओं की अनेकार्थकता के सिद्धांतों का स्वीकार किया।

इतिहास वाद के विषय में यास्क का हृदय स्पष्ट है 'ऋषे दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवति आख्यान संयुक्ता। नि० १०-१०-४६। इसी लिये स्कन्द स्वामी ने लिखा—'एवं आख्यान स्वरूपाणां मन्त्राणां' इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि यास्क व्यक्ति विशेषों का इतिहास नहीं मानते। यास्क अर्थ के पीछे विभक्ति व स्वर को मानते हैं। अर्थ नित्यः परीक्षेत··· ··· यथार्थ विभक्तीः सन्नमयेत। नि० २-१ तथा कथमनुदात्त प्रकृति नाम स्यात् दृष्टव्ययं तु भवति। निरुक्त ५-२१ में मास कृत्, मा सकृत् इस प्रकार दो प्रकार का पद विभाग दिखा कर पद पाठ विषय की ऋषि दयानन्द की धारणा को स्पष्ट परिपुष्ट किया है।

यहां हम यह भी कहना चाहते हैं कि बहुलं छन्दसि का बाबला छन्दसि और व्यत्ययवाद के सिद्धांत को न मानने वाले महानुभाव ऐसे स्थलों को गम्भीरता-पूर्वक देखें। वेद के व्यापक अर्थों को संकुचित नहीं किया जा सकता। इस लिए पाणिनी ने बहुलं छन्दसि सूत्र बना कर वेदार्थ के विषय में अपने व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। दुर्ग ने भी टीका में इसी बात को दर्शाया है। 'नह्येतेषु अर्थस्येयत्ता धारणमस्ति सहार्थी हि एते'। अतः वेदार्थ प्रक्रिया के विषय में ऋषि दयानन्द की धारणायें कितनी उत्कृष्ट हैं यह हम देखते हैं। अर्थ के विषय में भी सायण ने कैसी कैसी भूलें खाईं हैं इस के लिए इस समय एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा। यजुर्वेद ३-६ 'आयं गौः पृश्निः' इत्यादि मन्त्रों में ऋषि दयानन्द ने लिखा—गौः इति पृथिवी नामसु पठितम्। गौरिति पृथिव्या नामधेय। यद् दूरं गता भवति यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति॥ इस में ऋषि दयानन्द ने गौ का अर्थ पृथिवी किया और दर्शाया कि पृथिवी घूमती है। यहां पर यह ध्यान देने योग्य है कि सायणाचार्य ने इस मन्त्र का अर्थ अपने अनेक ग्रन्थों में सूर्य घूमता है ऐसा किया है। यदि सायण यह लिखते कि सूर्य अपनी परिधि में घूमता है तब भी ठीक था। परन्तु सूर्य पृथिवी के गिर्द घूमता है ऐसा किया। ऐसी परिस्थिति में जब ऋषि दयानन्द ने गौ का अर्थ पृथिवी किया है उसी निरुक्तकार ने 'आदित्योऽपि गौः उच्यते' कह कर सायण की पुष्टि कर दी ऐसी अवस्था में हमें निष्पक्षपात हो कर विचारना होगा कि दोनों में कौन ठीक है? बहुत दिनों तक इसी विचार में निमग्न रहने पर मुझे अथर्ववेद में एक मन्त्र मिला—'··· ···वर्षेण

भूमिः पृथिवी वृतावृता'' ... । इस से स्पष्ट हो जाता है कि पृथिवी वर्ष भर में सूर्य के चारों ओर घूम जाती है । इसी प्रकार गोपथ और ऐतरेय ब्राह्मण में भी मिला है—'स वा एष नकदाचनास्तमेति नो देति । तं यदस्तमेतीति मन्यन्ते अह्न एव तदन्तमित्वाऽथात्मानं विपर्यस्यते रात्री मेवा वस्तात् कुरुतेऽहः परस्तात्' इस से स्पष्ट है कि ब्राह्मण कार भी ऐसा ही मानते हैं कि सूर्य न कभी उदय होता है न अस्त । जो उसको ऐसा समझते हैं वे भ्रांति में हैं ।

ऋषि दयानन्द के भाष्य की एक और विशेषता भी हम देखते हैं—'इषे त्वोर्जे' यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में अध्न्या पद निघत अर्थात् सर्वानुदात्त पद का अर्थ सम्बोधन में न कर के प्रथमा विभक्ति में किया है । कई लोग यह आक्षेप करते हैं कि स्वर के पीछे अर्थ होना चाहिये पर महाभाष्यकार पतञ्जलि ने 'व्यत्यय मिच्छति शास्त्र कृदेषां सोऽपि च सिद्ध्यति बाहुलकेन' । इस से व्यत्यय वाद का सिद्धांत शास्त्र सम्मत है ऐसा मानना पड़ेगा । आज से १५०० वर्ष पूर्व भी स्कन्द स्वामी ने भी कहा है ! ऋग्वेद १-१८५-७ में इन्द्र मरुतः आहु''' '''कर्मणा न वाङ्मात्रेण वयं मरुतः' यहां स्कन्द ने स्पष्ट लिखा है कि आमन्त्रित (सम्बोधन) होने पर भी प्रथमा विभक्ति का अर्थ छान्दस व्यत्यय से किया है । यहां मरुतः पद आमन्त्रित होने से सर्वानुदात्त है । इस से सिद्ध होता है कि सायण ने वेदार्थ प्रक्रिया को हानि पहुँचाई जिस का पुनरुद्धार ऋषि दयानन्द ने किया ।

वेदार्थ प्रक्रिया के सिद्धांतों मे वेदों की आनुपूर्वी नित्य है यह भी समझने की आवश्यकता है । 'अग्नि मीडे पुरोहितं' के स्थान में 'पुरोहितं अग्निमीडे' नहीं हो सकता है । महाभाष्यकार ने 'नित्ये शब्दार्थ सम्बन्धे' कह कर शब्द अर्थ और उस के सम्बन्ध को नित्य माना है । ऋषि दयानन्द ने भी ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका में शब्द अर्थ सम्बन्ध नित्य मानते हैं और मनुष्य कृत शब्द अर्थ सम्बन्धों को अनित्य । 'यथा पूर्वमकल्पयत्' के अनुसार गौ शब्द का जो अर्थ इस समय है वह वेद के आधार पर सृष्टि के आदि में भी था और आगे भी ऐसा ही रहेगा । इस से वेदार्थ करने में हमें वेद-सम्बन्धी नियमों के आधार पर ही अर्थ करना होगा । इन नियमों पर सब से अधिक प्रकाश हमको यास्क के निरुक्त द्वारा ही मिलता है ।

आर्यसमाज के सामने शाखा का विषय भी बड़ा विचारणीय है । शाखा वेदों के व्याख्यान हैं ऐसा प्रतिपादित करने वाले इस युग के महापुरुष स्वामी दयानन्द हैं । आर्यसमाज के एक विद्वान् ने श्री पं० सत्यव्रत सामश्रमी के विचार को ले कर यह लिखा था कि महाभाष्य के अनुसार वेदों की आनुपूर्वी अनित्य है । पर ऐसा समझना सर्वथा भ्रांति है क्योंकि महाभाष्यकार ने 'तेन प्रोक्तम्' सूत्र के भाष्य में काठकम्, कालापकम्, पैप्पलादकम् उदाहरण दिये हैं और इसी में कहा है कि इन की आनुपूर्वी अनित्य है । 'यद्यप्यर्थो नित्यः, यात्वसौ वर्णानुपूर्वी साऽनित्या । तद्भेदाच्चैतद् भवति । काठकं, कालापकम्, मोदकम्, पैप्पलादकमिति' अर्थात् अर्थ नित्य पर वर्णानुपूर्वी अनित्य है । यहां यह ध्यान रहे कि यह पाठ 'तेन प्रोक्तम्'

सूत्र के भाष्य में लिखा है। जिस का अर्थ है कि जो प्रोक्त का प्रवचन किये हुए शाखा ग्रन्थ हैं उन की वर्णानुपूर्वी अनित्य होती है। क्योंकि वही भाष्यकार पतञ्जलि पञ्चम अध्याय में आनुपूर्वी का नित्य मानता है। 'स्वरामित्य-म्नायेऽस्य वाम शब्दस्य। वर्णानु पूर्वीखल्वप्या-म्नाये नियता। महा० ५-२-२६। अर्थात् वेद में अस्यवामादि शब्दों का स्वर भी नित्य होता है। इस से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द के मतानुसार महाभाष्यकार भी आनुपूर्वी को नित्य मानते हैं।

शतपथ के भाष्यकार हरिस्वामी ने लिखा है 'वेदस्यापौरुषेयत्वेन स्वतः प्रमाण सिद्ध स्तच्छाखानामपि तद्धेतुत्वात् प्रामाण्यम् इति बादरायणादिभिः प्रतिपादितम्। इस हरि स्वामी से वचन से भी सिद्ध होता है कि वेद की प्रथक् सत्ता है और शाखा भिन्न है।

मद्रास गवर्नमेंट लाइब्रेरी में ग्रन्थ नं० २४५६ माध्यन्दिन शाखा विषय इस नाम से एक ग्रन्थ है उस में इस प्रकार का पाठ मिलता है- यजुर्वेदस्यमूलं हि भेदा माध्यन्दिनीयकः, तस्माद् माध्यन्दिनीशाखा एव पञ्चदश वाजसनेय शाखासु मुख्या सर्वसाधारणा च। अर्थात् शुक्ल यजुर्वेद की १५ शाखाओं में माध्यन्दिनय शाखा ही मुख्य हैं। इस से भी स्पष्ट हो जाता है कि मूल वेद (संहिता) शाखाओं से भिन्न हैं।
[गुरुकुल विश्वविद्यालय में दिया गया भाषण।]





ओंगलाथंग का विशाल गल

बायें हाथ जो ओंगलाथंग हिमनद है। तीन ओर यह हिम शिखरों से घिरा है। अब हम हिम के इतने निकट पहुँच गये थे कि सूर्य के प्रकाश में उनकी ओर बिना ऐनक पहने देखने से आंखों में चकाचौंध लगती थी। दूरबीन से इस हिमनद की ओर जो देखा तो पता लगा कि आंख से इसका जितना हिस्सा दीखता है उस से यह कम से कम तिगुना बड़ा है।

हम इस हिमनद के पार्श्व में से होकर चल रहे हैं। हवा हलकी और सूखी है। चाय पीने के बाद भी गला सूखा जा रहा है। गले को तर करने के लिये पानी पीने की इच्छा नहीं होती। सिर न जाने क्यों भन्ना सा रहा है। तीव्र वात्या के दंश से बचने के लिए हमने गर्म कनटोप ओढ़ लिये हैं। मन में अटपटा सा लग रहा है। किसी से बात करने का उत्साह नहीं होता। कैलास और मानसरोवर की यात्रा करते हुए तिब्बत में जैसा अनुभव होता था, वैसा ही अनुभव यहां भी हो रहा है। यह मैदान भी तिब्बत के मैदानों जैसा ही उजाड़, बञ्जर और सुनसान है। न कुछ करने को जी चाहता है, न चलने को। फिर भी चलते जाते हैं। सब की आकृतियों पर रुखाई बरस रही है। हमारी अपेक्षा कुली अधिक प्रसन्न हैं किन्तु बात-बात हंसने के उनके मौजी स्वभाव में भी अब अन्तर आ गया है।

हम पर ऊंचाई का असर होना शुरू हो गया है।

दूर से जिस मैदान का अन्त हमें निकट ही दृष्टिगोचर होता था, कई घण्टे चलते-चलते हो गये किन्तु उनका अन्त नहीं आया। इतनी ऊंचाई पर आ कर हवा के हलका हो जाने और उसमें धूलि-कणों के अभाव से मैदान की अभ्यस्त आंखें धोखा खा जाती हैं और पथ की दूरी का अनुमान गलत निकलता है।

ओंगलाथंग की छाया में चलते-चलते ही १-१॥ मील के अन्तर से दो 'माने' (मणि दीवारें) आये। मन में सन्तोष हुआ कि यहां तक तो मनुष्य के पहुँचने की निशानी मौजूद है।

फिर चढ़ाई, फिर उतराई। फिर १४,१३० फीट की ऊंचाई पर सुन्दर झील—तीन ओर पर्वतों से घिरी। इसी झील के एक किनारे से प्रेक-छू नदी निकलती है जिस में कुछ फर्लांग बाद ही ओंगलाथंग के हिमनद से निकलने वाली जलधार मिल जाती है। इसी नदी ने छुरोंग में

हमें बिना पुल के पार नहीं होने दिया था। यहां इसकी पतली-सी नीलाभ-रजत रेखा को देख कर एक दिन पहले की इसकी उग्रता पर हंसी आई। आश्चर्य हुआ, नक्शे में इस स्थान का नाम सुगमथग और झील का नाम 'छो' लिखा हुआ है। यह स्थान पड़ाव के लिये आदर्श है। पानी तो निकट है ही। कुछ मील पीछे लौट कर लकड़ी भी बटोर कर लाई जा सकती है। इसके अलावा सब से महत्वपूर्ण बात यह है कि तीन ओर पर्वतों और चौथी ओर ओंगलाथंग हिमनद की ऊंची दीवार की ओट होने के कारण यहां तीव्र वात्या से भी बचा जा सकता है।

यहीं पड़ाव क्यों न डालें ? हम सब के सब थक गये हैं। कुली भी और दिनों की अपेक्षा अधिक श्रम-खिन्न हैं। किन्तु हमारे पास इस सारी यात्रा के लिए केवल एक मास का समय है। ५ सितम्बर को दिल्ली से चले थे और ५ अक्तूबर तक हमें दिल्ली वापस पहुँच जाना चाहिए। क्षितीश को एक मास से अधिक का अवकाश मिल नहीं सकता। हम सब उसके कारण बंधे हुए हैं। उसी हिसाब से हम राशन की व्यवस्था करके चले हैं। दार्जिलिंग से चले हुए हमें ६ दिन हो चुके हैं। गेजिंग और यकसोम में हमें अपने कुलियों के लिए रसद जुटाने और उसे ढोने के निमित्त अतिरिक्त कुली करने के लिए एक-एक दिन अधिक ठहरना पड़ा। एक दिन [illegible] के छू के पुल ने ले लिया। हिसाब के अनुसार [illegible]में २० तारीख तक 'बेस' कैम्प बना लेना चाहिए [illegible]ा। पर आज २१ तारीख हो गई और पड़ाव [illegible]भी दूर है। यकसोम के बाद हम प्रायः डबल [illegible]ाव करते आये हैं, फिर भी विलम्ब हो गया [illegible]। हिमालय गणित का हिसाब नहीं चलने [illegible]ा।

सुगमोथेंग से आगे

और मध्याह्नोत्तर तीन बजे के लगभग—जबकि ऐसी यात्रा में इस से पूर्व ही पड़ाव पर पहुंच कर तम्बू गाड़ देने चाहिए-हम सुगमोथेंग से आगे चल पड़े।

झील के किनारे-किनारे एक पांव की पगडण्डी पर सम्हल-सम्हल कर पांव रखते हुए, दोपहर के बाद की हवा के थपेड़ों से झील की लहरों की चचलता देखते हुए और उन चचल लहरों में गिर कर विलीन हो जाने के भय से अपने आपको बचाते हुए लगभग एक मील तक हम आगे बढ़े। झील समाप्त हो गई—गिरने के भय से मुक्ति मिलने के कारण मन की सजगता कुछ कम हुई और पांव निश्चिन्त हो कर आगे बढ़ने लगे। पर यह आगे बढ़ना भी क्या कोई आसान बात है। कदम-कदम पर सांस फूलता है। दस-बारह कदम चलने के पश्चात् विश्राम के लिए ठहरना पड़ता है। कुलियों को इस बात की चिंता है कि कहीं पड़ाव पर पहुँचने से पहले शाम न हो जाय इस लिए वे जी तोड़ कर जल्दी-जल्दी चले जा रहे हैं, पर उन्हें भी हर दस-बारह कदम बाद ठहरना पड़ता है। मेरा तो बुरा हाल है।

कैसी जान-लेवा चढ़ाई है। दृष्टि को विश्राम देने के लिए कहीं हरियाली का नाम तक नहीं है। चोटी की ओर देखता हूं तो मन में आतंक छा जाता है—हरे राम, अभी इतना चढ़ना और शेष है ! ज्यों-ज्यों चढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों शिखर और दूर होने लगता है। आगे-आगे शेरपा कुली पीछे-पीछे हम।

ऊंचाई का सब से अधिक असर मुझ पर हुआ है। छाती में होने वाली पीड़ा तीव्रतर है। मेरे लिये एक कदम भी आगे चल

सकना दूभर है। परन्तु जिस किसी तरह से भी हो आगे तो चलना ही पड़ेगा, क्योंकि इस के सिवा और कोई उपाय नहीं है।

साथी रतन और क्षितीश के लगातार हौसला बंधाते रहने से चलता तो गया परन्तु मेरे मन और शरीर पर कैसी नौबत बन रही थी इसे केवल मैं ही जानता हूँ। हर दस-बारह कदम के बाद जब मैं विश्राम के लिये बैठता तो फिर वहां से उठने की इच्छा नहीं होती थी। फिर चाहे संसार भर की शक्ति और प्रलोभन का ही क्यों न प्रयोग किया जाय। साथियों की स्नेह सहानुभूति और उत्साह सूचक वाक्यावलि को ही इस का श्रेय प्राप्त है कि वे मुझे किसी प्रकार शिखर तक ले आये।

शिखर के पास पहुंच कर देखा कि हम ओंगलाथंग हिम नद के तल से ऊपर चढ़ आये हैं और यहां से ग्ल का जो विस्तृत दृश्य दिखाई देता है उस से पता लगता है कि यह दूर से जितना निर्दोष और मासूम दिखता था वास्तव में वैसा नहीं है। इस में स्थान-स्थान पर सैंकड़ों फीट गहरी दरारें पड़ी हुई हैं और किले की दीवारों जैसी बड़ी-बड़ी बर्फ की दीवारें बनी हुई हैं। पर्वत के भंगुर उपकण्ठ से चलते-चलते जब इनकी ओर दृष्टि पड़ती है तो मन भयाक्रान्त हो जाता है।

किन्तु मेरा मन तो इस भय की अवस्था से भी आगे पहुँच गया है। शारीरिक थकान के कारण सृष्टि की किसी भी चीज के प्रति, यहां तक कि अपने जीवन के प्रति भी, एक महान् विरक्ति पैदा हो गयी है। जो होना हो, हो। ओंगलाथंग के हिमनद की बगल में और चारों ओर दृश्यमान महान हिम देवों के चरणों में यहीं इस शिखर पर बैठे-बैठे मुझे प्रस्तर समाधि में विलीन हो जाना मंजूर है, किन्तु अब आगे मैं एक कदम भी नहीं चल सकता।

सहसा चढ़ाई समाप्त हो गयी और शिखर के दूसरी ओर नजर पड़ते ही देखा कि उतार पर एक कटोरानुमा झील है और आगे लगातार उतार है। इस दृश्य-परिवर्तन से मनोवृत्ति में भी परिवर्तन हो गया और जीवन का मोह फिर आगे खींच ले चला।

झील के बायें तट से होते हुए हम लगभग समतल मैदान में पहुँच गये। यहां प्रेक छू अनेक छोटी छोटी धाराओं में शतधा हो कर फैल गई है। सूरज डूब रहा है। कुछ क्षणों के बाद ही सारा प्रदेश अन्धकारमय हो जायगा। नदी की रेत में अपने आदमियों के पदचिन्हों को खोजता हुआ मैं अपने साथियों के साथ यथाकथंचित् धीरे-धीरे बढ़ा जा रहा था किन्तु अन्धकार के कारण परेशानी रही थी।

सामने देखा—एक बड़ी चट्टान के ऊपर ५-६ पत्थरों का ऊपर नीचे रख कर नीमा (हमारा गाइड) रोशनी लिए खड़ा है ताकि हम दूर से पड़ाव की ओर उस तक पहुँचने के पथ को पहचान सकें।

यह चेमाथंग है। यही है हमारा बेस कैम्प, इस स्थान की ऊंचाई १५॥ हजार फीट है। दार्जिलिंग से लगभग ७२ मील दूर—अपनी यात्रा के १० वें दिन हम यहां पहुँच सके हैं।



वैदिक काल के अन्त में भारत की आर्थिक दशा

श्री कृष्णदत्त वाजपेयी

वैदिक काल का अन्त होते होते देश की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में बड़ा परिवर्तन हो गया। अनेक प्रकार के छोटे-बड़े उद्योग-धन्धे विकसित हो चुके थे। वे अलग-अलग जन-समूहों में बंट गये। इन्हीं जन-समूहों ने जाति-प्रथा को प्रोत्साहित किया। एक जाति के लोगों ने अपना एक धन्धा अपना लिया, जो वंश-परम्परागत बन गया। कुछ धन्धे बड़े और कुछ छोटे माने जाने लगे। इन को अपनाने वाले भी तदनुसार बड़े-छोटे समझे जाने लगे। इस प्रकार जाति-प्रथा में जटिलता आनी अनिवार्य हो गई। धीरे धीरे एक ही उद्योग के करने वाले लोगों ने मिल कर अपने पृथक् समुदाय बना लिए। ये समुदाय कालांतर में शिल्पियों के 'गण' या "निगम' के रूप में विकसित हुए।

प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में 'गण' शब्द मिलता तो है, पर बहुत कम। परवर्ती संस्कृत एवं पाली साहित्य में 'गण' के अधिक उल्लेख प्राप्त होते हैं। वाजसनेही संहिता, तैत्तिरीय संहिता, पञ्चविंश ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में 'गण' शब्द का प्रयोग हुआ है। अन्य अर्थों के साथ यहां यह शब्द आर्थिक समुदाय के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। बृहदारण्यक उपनिषद् (१, ४, १२) में 'गण' और 'विश' शब्द इस प्रकार आये हैं—'स नैव व्यभवत, स विशमसृजत, यान्येतानि देव जातानि गणश आख्यायन्ते।' शांकर इस की टीका करते हुए लिखते हैं—'गण-प्राया हि विशः! प्रायेन संहता हि वित्तोपार्जन सामर्थाः नैकैकशः।' अर्थात् वणिक् लोग सामुदाय वाले होते हैं। प्रायः वे समुदाय रूप में ही धनोपार्जन में समर्थ होते हैं, न कि अलग-अलग व्यवसाय करने में।

ब्राह्मण ग्रन्थों में श्रेष्ठी शब्द भी मिलता है[1]। यह सम्भवतः गण के प्रधान को सूचित करता है। डा० मैकडानल का यही मत है। पर हाप-किंस का कहना है कि प्राचीन श्रेष्ठी की स्थिति वही रही होगी जो आजकल के सेठ की है।[2]

जैसा ऊपर कह चुके हैं, प्रारम्भिक वैदिक काल में सामाजिक जीवन सादा था। लोग कृषि के द्वारा अपने उपयोग की आवश्यक वस्तुएं पैदा कर लेते थे। अन्य वस्तुएं उन्हें गांव के जुलाहे, लोहार, बढ़ई और कुम्हार आदि शिल्पियों से मिल जाती थीं। समाज में प्रायः समानता का भाव था। परन्तु इस स्थिति में धीरे धीरे परिवर्तन हो गया। जातिपरक छुटाई, बड़ाई एवं धन की महत्ता ने समाज में विषमता को प्रवर्द्धित किया। वैदिक साहित्य से शासकों के समृद्धशाली होने का पता चलता है। राजाओं के अतिरिक्त अन्य क्षत्रिय भी भू एवं सम्पत्ति के स्वामी होने लगे थे। इन लोगों से ब्राह्मणों को प्रभूत रूप में सुवर्ण, वस्त्र, गाय एवं कभी कभी जमीन भी प्राप्त होती थीं। वैश्य जाति के लोगों ने विभिन्न लाभप्रद व्यवसाय अपना लिए। प्रायः सभी देशी एवं विदेशी व्यापार धीरे-धीरे उन के हाथ में आ गया, जिस

१ ऐतरेय ब्रा० ३, ३०, ३; कौषीतकी ब्रा० २८, ६, तैत्तिरीय ब्रा० ३, १, ४, १०।

२ देखिए बनर्जी—वही, पृ० २०४।

फ्रांसीसी—यूरोप की दरबारी भाषा

श्री दीनदयालु शास्त्री

हमारे इस संसार की कुल जनसंख्या दो अरब से अधिक है। इस जनसंख्या में सैकड़ों भाषाएं प्रचलित हैं। इन में से अधिक भाषाएं मुद्रण तथा शिक्षा का माध्यम होने के कारण अब पढ़ी-लिखी जाती हैं और सभ्य समाज के लिए आदरणीय हो गई हैं। कुछ भाषायें ऐसी हैं जो अब तक लिपिबद्ध नहीं हुई हैं अतः शिक्षा एवं मुद्रण का आधार नहीं बन सकीं। ऐसी भाषाओं को जो अब तक विकास नहीं पा सकीं हम बोली कहते हैं और जो पूर्णतः विकास पा गई हैं उन्हें हम भाषा कहने लगे हैं।

आज का मानव राष्ट्रीयता से ऊब कर अन्तर्राष्ट्रीयता किंवा विश्वबन्धुत्व के प्रति आकृष्ट हो रहा है। ऐसा करते समय उसे सहसा उन भाषाओं के प्रति भी आकृष्ट होना पड़ रहा है जो औरों की अपेक्षा अधिक व्यापक, महत्वपूर्ण एवं माननीय है। संसार के समस्त राष्ट्रों के संगठन ने इस दृष्टि से जिन पांच भाषाओं को महत्वपूर्ण माना है उन में स्पेनी भाषा देशों की गणना की दृष्टि से प्रथम है। अंग्रेजी देशों की दृष्टि से तो प्रथम नहीं है किन्तु अनेक देशों में व्याप्त होने एवं अधिक संख्या के मानवों की भाषा होने से प्रथम है।

इन दोनों भाषाओं के बाद फ्रांसीसी का स्थान है। यह भाषा यथार्थ में यूरोप के प्रसिद्ध देश फ्रांस की मातृभाषा है किन्तु यूरोप के विकास के मध्यकाल में वह यूरोप की दरबारी भाषा थी। यूरोप के भिन्न-भिन्न राजाओं, उन के दरबारों एवं समाज में मातृभाषा के स्थान पर फ्रांसीसी भाषा को अधिक आदर मिलता था। परिणाम यह हुआ कि यूरोप की सर्वसाधारण की भाषा न हो

से उन की आर्थिक स्थिति मजबूत हो गई।

इस प्रकार समय के परिवर्तन के साथ धन को सामाजिक इयत्ता का आधार-स्तम्भ स्वीकार कर लिया गया। लोग अधिक धन प्राप्त करने की चेष्टा में लग गये, क्योंकि यही उन की सामाजिक स्थिति का मापदण्ड बन गया था। समाज में अब स्वाभाविक रूप से अमीर और गरीब ये दो मुख्य वर्ग बन गये। वैदिक साहित्य से पता चलता है कि कुछ लोग इतने गरीब थे कि उन की हालत दयनीय होती थी। वे लोग दूसरों से भिक्षा मांग कर या चाकरी कर पेट भरते थे। वेदों में ऐसे लोगों के लिए दान देना बहुत कल्याणकारी कहा गया है। जाति-प्रथा का विकास सामाजिक असमानता का एक प्रमुख कारण बन गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य उच्च वर्ग के माने जाने लगे तथा शूद्र निम्न वर्ग के। शूद्र लोग सेवा कार्य के अतिरिक्त खेती तथा कुछ अन्य छोटे धंधे करते थे। उन के नीचे दास लोगों का वर्ग था। ये लोग दान में दूसरों को दिये जा सकते थे। दास यद्यपि शूद्रों की तरह जीविकोपार्जन के लिए स्वतन्त्र न थे, तथापि उनके प्रति बुरा व्यवहार नहीं किया जाता था। रोम, यूनान, अरब आदि देशों की तरह भारत में दासों की बाजारें नहीं थीं और उन्हें पशुओं की तरह बेचना अत्यन्त गर्हित समझा जाता था।



कर भी फ्रांसीसी भाषा सारे यूरोप के लेनदेन और विचार-विनियम की भाषा बन गई। फ्रांस की राज्यक्रांति ने इसे और अधिक महत्व दिया। यह राज्यक्रांति यूरोप में नए उठ रहे जनतन्त्र की परिचायक थी। राजाओं, राजदरबारों एवं चापलूसों से घृणा करने वाले लोग इन की भाषा को अधिक मान न दें, यह सम्भावित होना चाहिए था किन्तु राजक्रान्ति से भी फ्रांसीसी भाषा का महत्व घटा नहीं, अपितु बढ़ गया। आज उस भाषा के लिए जो शब्द 'लिंगआ फ्रैंका' प्रयोग में आता है वह मध्यकाल में फ्रांसीसी भाषा के व्यापक प्रभाव का द्योतक है। इस 'लिंगुआ फ्रैंका' का सीमित अर्थ हमारे देश में राष्ट्रभाषा ग्रहण किया जाता है यथार्थ में यह ठीक नहीं है। यूरोप में किसी समय में जो व्यापक प्रभाव फ्रांसीसी भाषा का था हमारे देश में वही प्रभाव आज हिन्दी का है। दूसरे शब्दों में हिन्दी हमारे देश की 'लिंगआ फ्रैंका' है और क्योंकि हमारे राष्ट्र ने उसे राष्ट्रभाषा का पद प्रदान कर दिया है अतः हम राष्ट्रभाषा और 'लिंगुआ फ्रैंका' को समानार्थक मानने लगे हैं। यथार्थ में हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा है किन्तु फ्रांसीसी सारे यूरोप की राष्ट्रभाषा अथवा 'लिंगआ फ्रैंका' सरकारी तौर पर न आज है न पहले कभी थी।

मातृभाषा के रूप में

यह फ्रांसीसी भाषा केवल फ्रांस देश की मातृभाषा नहीं है। फ्रांस के पड़ोसी बेलजियम एवं स्विटजरलैंड में भी इस फ्रांसीसी भाषा का प्रचलन है। बेलजियम की आधी आबादी की मातृभाषा फ्रांसीसी है। इस देश के पूर्वी-दक्षिणी भाग में यह बोली जाती है। इस प्रदेश को यहां के लोग वैलून कहते हैं। सन् १९१४-१८ के युद्धकाल तक बेलजियम देश की राष्ट्रभाषा की भी यही फ्रांसीसी थी किन्तु जर्मनों के आधिपत्य में पश्चिमी बेलजियम की फ्लेमिश भाषा का उत्थान हुआ। समय पा कर घेंट शहर के विश्वविद्यालय ने भी इस फ्लेमिश भाषा को शिक्षा का माध्यम माना और अब वह फ्रांसीसी भाषा के साथ-साथ बेलजियम की राष्ट्रभाषा है किन्तु फ्रांसीसी भाषा का प्रभाव एवं व्यापकता पूर्ववत है। स्विट्ज़रलैण्ड के पश्चिमी प्रदेश में भी फ्रांसीसी भाषा का प्रचार है। उस देश में यद्यपि फ्रांसीसी भाषा के बोलने वाले आठ लाख या बीस प्रतिशत से अधिक नहीं हैं किन्तु जर्मन और इटालवी के समान वह भी वहां की राष्ट्रभाषा है।

सन् १९१४-१८ के युद्ध के बाद व्यथित राष्ट्रों ने जो राष्ट्रसंघ का निर्माण किया था उस का केन्द्र स्विटजरलैण्ड के जेनेवा नगर में था। यह जेनेवा नगर फ्रांसीसी सीमा से सटा हुआ है और इस के निवासियों की मातृभाषा फ्रांसीसी है। परिणामस्वरूप इस राष्ट्रसंघ के कारण यूरोप तथा संसार में पुनः इस फ्रांसीसी भाषा का मान बढ़ा और विभिन्न देशों के राजनीतिज्ञ इस के अध्ययन में लगे। फ्रांस, बेलजियम तथा स्विटजरलैण्ड के अतिरिक्त ब्रिटेन के जर्सी आदि टापुओं तथा स्पेनी इटालवी सीमाओं के अण्डोरा और मोनेको आदि रजवाड़ों की भाषा भी यही फ्रांसीसी है। इस के अतिरिक्त यूरोप के गणमान्य समाज की भी यह शाइस्ता जबान है।

अमरीका में

यूरोप के अतिरिक्त अमरीका के दो देशों में भी फ्रांसीसी भाषा का प्रचार है। आज से चार शतक पूर्व अमरीका के पूर्वी छोर पर फ्रांसीसी साम्राज्य कायम था। अब वह साम्राज्य विशाल कनाडा की गोद में समा गया है किन्तु वहां के क्वीबक प्रदेश की मातृभाषा आज भी फ्रांसीसी है और इस नाते अंग्रेजी के साथ-साथ यह फ्रांसीसी भी कनाडा देश की राष्ट्रभाषा है। कनाडा की एक करोड़ आबादी में फ्रांसीसी बोलने वाले चालीस लाख से अधिक हैं। सौभाग्य से इन दिनों कनाडा के प्रधान मन्त्री सेंट लारेंटस की मातृभाषा भी यही फ्रांसीसी है, अतः ब्रिटिश राष्ट्रदल की सभाओं एवं राष्ट्रसंघ में भी कनाडा फ्रांसीसी भाषा द्वारा प्रवेश करता है। अमरीका के मध्यवर्ती समुद्र से जो नाना राष्ट्र हैं उन में से हैती राष्ट्र का मातृभाषा भी फ्रांसीसी है। यह अनोखी बात है कि इस हैती की आबादी हब्शी लोगों की है किन्तु उन्होंने अपनी मातृभाषा को सदा के लिए तिलांजलि दे कर इस फ्रांसीसी भाषा को अपना मान लिया।

इस प्रकार संसार के पांच देशों फ्रांस, बेलजियम, स्विटरलैंड, कनाडा तथा हैती में यह फ्रांसीसी मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा है। इन देशों में फ्रांसीसी भाषाभाषी केवल ६ करोड़ हैं किन्तु राष्ट्रभाषा के नाते इस के उपासक सात करोड़ हैं। इस क्षुद्र संख्या की भाषा राष्ट्रसंघ की बैठकों का माध्यम बने उस का आधार वही फ्रांसीसी भाषा का पिछला दरबारी प्रभाव है जो दिनोंदिन कम हो रहा है। हमारा खयाल तो यह है कि यदि फ्रांस की गणना संसार के महाराष्ट्रों में न रहे तो फ्रांसीसी का यह महत्व जल्दी ही समाप्त हो जायगा।

सरकारी भाषा

यह तो हुई उन देशों की बात जिन की मातृभाषा या राष्ट्रभाषा फ्रांसीसी है। इस के अतिरिक्त एशिया, अफ्रीका तथा अमरीका महाद्वीपों में जो विशाल फ्रांसीसी साम्राज्य है उस की सरकारी भाषा भी आज फ्रांसीसी है। साम्राज्य के नाते फ्रांस ब्रिटेन का अनुयायी है। उस के साम्राज्य का क्षेत्रफल ४७,८७,००० वर्गमील और आबादी ग्यारह करोड़ से अधिक है। इस का अधिक भाग अफ्रीका में है और अरबी भाषा का उपासक है। अवशिष्ट भाग एशिया में है और कुछ टापू अमरीका में भी। हमारा खयाल है कि यह युग साम्राज्यवाद की अन्त्येष्टि का है। ब्रिटेन, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल किंवा अन्य देशों के साम्राज्य अब अधिक स्थायी नहीं हैं। उस हालत में आज के फ्रांसीसी साम्राज्य में फ्रांसीसी जबान का जो बोलबाला है वह भी न रहेगा किन्तु आज की भांति यदि तब भी संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अरबी भाषा को विश्वभाषा न माना तो निस्संदेह स्वतन्त्र अल्जीरिया, ट्यूनिस, मरक्कश वियतनम तथा सेनेगाल आदि देशों के प्रतिनिधि संयुक्त राष्ट्रसंघ में फ्रांसीसी भाषा के माध्यम से ही अपना विचार-विनिमय करेंगे।

इस दृष्टि से अंग्रेजी की भांति फ्रांसीसी भाषा का भी अन्तर्राष्ट्रीय भविष्य उज्ज्वल मानना चाहिए। किन्तु हमारा यह विचार नहीं है।

ईश्वर प्राप्ति और श्रद्धा

श्री स्वामी कृष्णानन्द

ब्रह्म विद्या के उपयोगी श्रद्धा का स्वरूप तथा माहात्म्य श्वेताश्वतर [६-२३] में सम्यक् प्रकार से निरूपित हो चुका है। ईश्वर तथा गुरु वाक्यों में समान भाव से अनन्य श्रद्धा का ही यह उपयोग है। इस का स्वरूप इस प्रकार है कि ईश्वर ही परम इष्ट है तथा परम-गति है, संसार के अन्य संपूर्ण पदार्थ, तीन लोक, अन्य निष्काम सेवा परोपकार तथा ज्ञानादि का उपर्युक्त परम ध्येय की प्राप्ति में ही सहकारी रूप से यत्किञ्चित् महत्त्व है। ये स्वतंत्र नितान्त निस्सार, मृतक के तुल्य अस्पृश्य हैं। यह सच्चिदानन्द घन त्रिविध दुःखों की एक मात्र अमोघ औषधि और परम रस की खान है। मेरा परम हितैषी, सगा, सम्बन्धी, अमूल्य साधन तथा गुरु वही है जो मुझे उस परमानन्द के धाम के प्रवेश करने में सहायक होवे। वही सच्चा पारमार्थिक मेरा उपकारक है जो यत्किञ्चित् भी मेरा इस में सहायक हो। जो मन, वचन और कर्म से मेरे उत्साह आदि को बढ़ाने वाला हो। जो सब अनात्म पदार्थों से काक विष्ठा के समान ग्लानि को तथा परमात्मा में एक मात्र परम सच्ची श्रद्धा को उत्पन्न करे, परम ध्येय के विरोधी संसार के अत्यन्त रमणीय धन, जन, राज्य, वैभव आदि का दाता मेरा उपकारक नहीं है, प्रत्युत इन महान् अनर्थों के हेतु, विघ्न रूप, तीक्ष्ण कण्टकों को

हम यह समझते हैं कि अंग्रेजी साम्राज्य रहे या न रहे, अंग्रेजी भाषा का आधिपत्य इस संसार में सदा के लिए कायम हो गया है। अंग्रेजों ने जो प्रदेश बसाए वे खाली थे। जो लोग वहा गए अंग्रेजी भाषा को अपने साथ ले गए। इस के विपरीत फ्रांस ने पहले बसे हुए प्रदेशों पर कब्जा किया, अतः वहां वह भले ही फ्रांसीसी भाषा को सरकारी भाषा के रूप में प्रचलित कर सका किन्तु वह उन की मातृभाषा या राष्ट्रभाषा न बन सकी।

आज के संयुक्त राष्ट्रसंघ में यूरोप और अमरीका अधिक प्रबल हैं। अतः दो अरब से अधिक आबादी के संसार में से केवल ६ करोड़ आबादी वाली फ्रांसीसी भाषा उसकी प्रमुख भाषा है। समय आ सकता है जब कि यह संयुक्त राष्ट्रसंघ यथार्थ में राष्ट्र संघ बने और उस में एशिया एवं अफ्रीका के राष्ट्र भी अपना समानाधिकार पा सकें तब फ्रांसीसी भाषा का स्थान एशिया और अफ्रीका की अधिक प्रचलित भाषाएं ले सकें। ऐसा सम्भव है। बहरहाल इस समय फ्रांसीसी भाषा संयुक्तराष्ट्र-संघ की मान्य भाषा है, युरोप की आज भी वह दरबारी भाषा है और उस का यह रुतबा पर्याप्त काल तक बना रहेगा।

मेरे प्रीतम के मार्ग से शुद्ध साफ कर देने वाला ही मेरा परम हितैषी है, जो मुझे सन्मार्ग में डाल कर अनादि काल से इन अनात्म पदार्थों के घोर, विकट मृत्युप्रद बन में भ्रान्त पथिक को परम सच्चिदानन्द धाम रूपी उस के घर में पहुंचा दे। मुझे भी किसी को इन धन, वैभव आदि भोग पदार्थों के प्रदान में यत्किञ्चित् भी उसका उपकार न दीखे; इस में मनुष्य के लिए महान् अनिष्ट ही मुझे दीखे तथा श्रेय मार्ग में किसी की यत्किञ्चित् सहायता करना ही उसका सच्चा उपकार दीखे। श्रेय ही अपने लिए तथा दूसरे के लिए मेरा परम ध्येय हो अर्थात प्रेय में अत्यन्त अरुचि ग्लानि अश्रद्धा तथा श्रेय [सच्चिदानन्द परमात्मा] में अनन्य श्रद्धा ही ब्रह्मविद्योपयोगी श्रद्धा है उसके विरुद्ध श्रद्धा परमार्थ पथ में अश्रद्धा है।

श्रद्धा तथा अश्रद्धा के चिन्ह

परमात्मा में श्रद्धा तथा अश्रद्धा के चिन्हों का योग दर्शन [४-२५] के व्यास भाष्य में इस प्रकार वर्णन है। 'जैसे श्रावण आदि अनुकूल ऋतु में तृणाङ्कुर को देखने से उसके बीज की सत्ता का अनुमान होता है, ऐसे ही मोक्ष मार्ग के श्रवण से जिसके रोम हर्ष तथा अश्रुपात आदि दीखते हैं तो यह अनुमान होता है कि पूर्व जन्म कृत श्रवण आदि द्वारा सुसंस्कृत इस जिज्ञासु का चित्त मोक्ष का भागी है अर्थात् यह परमात्मा का साक्षात्कार करेगा तथा सर्व बन्धन विनिर्मुक्त होकर परम अमृत पद को प्राप्त होगा। उसकी परमात्मा में स्वाभाविक रुचि तथा श्रद्धा होती है। परन्तु पूर्वजन्म कृत श्रवण मनन के संस्कार शून्य मनुष्य की पूर्व पक्ष—यही लोक है; परलोक नहीं। कौन देख कर आया है। ऐसा वाङ्मनसा गोचर तत्त्व कल्पना मात्र है। ऐसा परमात्मा हो भी तो इस से हमें क्या लाभ। जिस में बुद्धि की भी गति नहीं, ऐसे वाङ्मनस-बुद्धि अगोचर तत्त्व का निरूपण ही निराधार है—में रुचि तथा सिद्धांत में अरुचि होती है, यही अश्रद्धा है।

श्रद्धा की दृढ़ता तथा सफलता के लिए महा पुरुषों का संग

यदि किसी के मन में यत्किञ्चित् श्रद्धा होवे तो उसकी दृढ़ता तथा सफलता के लिए ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों की संगति करनी चाहिए, इसके लिए यही एक सरल तथा निर्णीत उपाय है। उनकी एक दृष्टि, एक वचन, यत्किञ्चित सेवा मन के अश्रद्धा रूपी मल को क्षण मात्र में हर लेती है, जैसे स्वामी विवेकानन्द को श्री राम कृष्ण परमहंस के संग से हुआ।



अथ सुवर्णद्वीपात्

(डाक्टर रघुवीर की बृहत्तर भारत की यात्रा के पत्रात्मक संस्मरण)

[हमारे सहृदय पाठक डाक्टर रघुवीर के नाम और कार्य से सुपरिचित हैं। पिछले दिनों डाक्टर महोदय बृहत्तर भारत की ज्ञान-यात्रा पर गए थे। वहां से उन्होंने अपने सुपुत्र डॉ० लोकेश और सुपुत्री सुश्री सुदर्शना देवी के नाम जो सुन्दर पत्र लिखे थे उन में उन देशों की सभ्यता, संस्कृति और कलालक्ष्मी का अतिशय हृदयंगम, उद्बोधक और प्रेरणाप्रद परिचय प्राप्त होता है। पाठक देखेंगे कि किस तप, त्याग और निष्ठा के साथ हमारे पूर्वजों ने सुदूर उन द्वीपों में भारतीय संस्कृति की विजय वैजयन्ती फहराई थी। —सम्पादक]

जाकर्ता। २७–६–५१।

प्रिय पुत्र लोकेश,

कलिकाता से २७ को दस बजे चल कर ३ घंटे ४० कला में बंकाक पहुँच गए। वहां श्री रघुनाथ जी शर्मा तथा श्री थिराबत से मिले। चार-पांच घंटे उनके साथ रहे। थाई भारत कल्चरल लॉज में भी गए। वहां स्वामी अजरानन्द तथा चार-पांच अन्य सज्जन मिले। ये मेरे व्याख्यानों का प्रबन्ध करेंगे।

२८ को प्रातः ७ बजे चल कर ३–३० घंटे में सिंहपुर। वहां दो घंटे ठहरे। वहां से २–१५ घंटे जकर्ता। कस्टम्ज़ में दो तीन घंटे लगे। अपने दूतावास के एक सज्जन श्री चटर्जी मुझे लेने के लिए आये थे उन्होंने यहां के सब से बड़े होटल Hotel des Indes में ठहरने का का प्रबन्ध किया। आज प्रातः निसृष्टार्थ[1] श्री निवासन् से मिलना हुआ। ये राष्ट्रपति डा० सुकर्ण से मिलने का प्रबन्ध करेंगे। आज सायं-काल को श्री पूर्वचरक[2] से मिलूंगा।

यात्रा सुन्दर रही। विमान की गति २८० मील प्रति घंटा रही। विमान का नाम युट्रेख्ट (Utrecht) था। इन पूर्वी देशों में जनता समृद्ध है। धन का अभाव नहीं। जल पर्याप्त है चारों ओर जल ही जल। घास, हरियाली, खेती, हृष्ट-पुष्ट भैंसे। गाएं दीखने को नहीं। केले तथा पपीते दीर्घकाय।

जकर्ता की ३५ लाख जनसंख्या है। डच लोगों ने नगर बसाया है। जितनी मलयू[1] भाषा सीखी थी सब काम आ रही है। मच्छर बहुत हैं। कोष्ठों के अन्दर सोने के लिए जाली का घर बनाया हुआ है। बिस्तर के मध्य में एक लम्बा गोल शिरोधान रहता है जिसका नाम dutch wife है। ठंड सर्वथा नहीं।

जाकर्ता (जयकर्ता)। २–७–५१

प्रिय पुत्र लोकेश,

श्री पूर्वचरक ने कल यहां तीन घंटे व्यतीत किये। ये हमारे साथ सहयोग[2] देंगे। ये इस्तम्बूल अन्ताराष्ट्रीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के लिए जायेंगे। लौटते समय हमारे पास ठहरेंगे। यह

---

१. 'निसृष्टार्थ' मालतीमाधव में Charge d' affaires के लिए प्रयुक्त हुआ है।

२. श्री पूर्वचरक जी सुवर्णद्वीप की प्राचीन संस्कृति के सब से बड़े और वयोवृद्ध विद्वान् हैं। आप संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता हैं।

१. मलाया का स्वकीय नाम मलयु है।

२. आजकल आचार्य रघुवीर समस्त प्राचीन भारतीय तथा बृहद्भारतीय साहित्य के प्रकाशनार्थ योजना में संलग्न हैं जिस में अनेक शासन तथा योरोपीय विद्वान् सहयोग दे रहे हैं।

भी पारिभाषिक शब्द समिति के सदस्य हैं। अपना बड़ा कोष[1] इन्हें चाहिये। बोनिंग्रो के लिए संस्कृत में प्राचीन नाम 'बकुल' है। प्रोफेसर के लिए महागुरु प्रयोग करते हैं। जावा में जन-श्रुति है कि मुसलमानों ने समस्त पुस्तकें जला दी थीं।

जाकर्ता। ४-७-५१।

प्रिय पुत्र,

जावी भाषा का सुन्दर व्याकरण प्रकाशित हुआ है—De Taal van het Adiparwa लेखक P. J. Zoetmulder, 1950, Diogyakarta. यह पुरानी जावी का सम्पूर्ण व्याकरण है।

आज माननीय प्रधान मन्त्री श्री सुखीमान, विश्वविद्याल के उपकुलपति: उनके सहायक डा० सुविचत्रण और कल शिक्षादि मन्त्रियों से भेंट हुई थी। विशेष फिर।

जाकर्ता। ८-७-५१

प्रिय पुत्र लोकेश,

यहां नागरी के भी छोटे-छोटे लेख हैं। ये १४ वीं शताब्दि के हैं। बोरो बुडुर[2] का संस्कृत नाम 'भूमि-सम्भार-भूधर' के अन्तिम पांच अक्षरों से बना है।

कल प्रातः विमान से जोग्याकर्ता जा रहा हूं, वहां से बोरो बुडुर और परम्बनन चार दिन लगेंगे। बलि द्वीप २० को जाऊंगा। यहां का अद्भुतालय वास्तव में अद्भुत है। अपना वृत्त लिखना।

जोग्याकर्ता

(प्राचीन नाम–अयोध्याकृता), १२–७–५१

प्रिय पुत्र लोकेश,

बोरोबुडुर तथा परम्बनन के चिरकाल प्रतिक्षित दर्शन हुए। भारतीय कला, शिल्प, धर्म और दर्शन के स्वप्नमय दर्शन हुए। जावा तो भारत का हृदयखण्ड है। इस को जीवित भारत से पृथक नहीं किया जा सकता।

जोग्याकर्ता, १६–७–५१

प्रिय पुत्र,

जावा आये हुए आज १८ दिन हो गए हैं। राष्ट्रपति सुकर्ण अभी यात्रा से लौट कर आये हैं। सो आज प्रथम बार उन से भेंट हुई है। ११–३० बजे दोपहर। मिलते ही कहा—मैं आप को २० वर्षों से जानता हूँ। बांडुंग में आप की पुस्तक[1] पढ़ी थी। इस से हमको उत्साह तथा शक्ति मिली थी। अपने नाम के सम्बन्ध में कहा मेरे पिता ने सुकर्ण नाम वायाङ्[2] से लिया था।

---

१. आंग्ल-भारतीय वैज्ञानिक महाकोष—पृ० १६०३, नागपुर, १९५०।

२. इस नाम की व्युत्पत्ति के विषय में अनेकों मत प्रस्तुत किए गए हैं। यह लोकोत्पत्ति पहली बार उपस्थित की जा रही है और यह बहुत कुछ सम्भव भी हो सकती है।

१. डच भाषा में दिसम्बर १९२७ से लेकर १९३१ तक के कांग्रेस आन्दोलन का विशद वर्णन—Vit de Praktijk, der Gewe pd loosheid (Arnhem 1931) door Prof. Dr. Raghuvira.

३. वायाङ् जावा के अति प्रसिद्ध छाया चित्र हैं जिनका विषय सदा ही महाभारत से लिया रहता है। ये जनता के मुसलमान होते हुए भी बहुत लोकप्रिय हैं।

इन्होंने अपनी कन्या का नाम प्रमना रखा है। कहते हैं, हमारे लिए भारत पुण्य भूमि है। (India or Bharata is our Punya Bhumi).

पञ्चशील[1] शब्द का भी प्रयोग इन्होंने आरम्भ किया है किन्तु द्विवर्ण[2] शब्द जनता का है। पञ्चशील से पूर्व इन्होंने 'पञ्चधर्म' शब्द का प्रयोग किया था। आज भी सप्तधर्म नाम की पुस्तक मिलती है। जावी पुस्तकों की सत्ताईस[3] पृष्ठ लम्बी सूची देख कर मुग्ध हो गए। पूछने लगे क्या ये पुस्तकें विद्यमान हैं। मैंने कहा—इनका प्रकाशन आवश्यक है। उत्तर दिया—जो चाहिये मैं करूंगा। २० को श्री सुकर्ण सुमात्रा जा रहे हैं। सम्भव है मैं भी साथ चलूं। आज का मिलन बड़ा ही सफल रहा। प्रेम और आदर का उद्‌गार था। यहां के विश्वविद्यालय के प्रधान डा० सुपोमो भी बड़े मित्र बन गए हैं। शब्दावली के सम्बन्ध में उन से विस्तार पूर्वक बात होने का निश्चय हुआ है।

---

१. पञ्चशील सुवर्ण द्वीप के संविधान की प्रस्तावना में आधारभूत अधिकारों की रक्षा का द्योतक है जिस से मानव की गरिमा सुप्रतिष्ठित रहे। जब कि हम ने संविधान में फ्रांस के क्रान्तिवादियों के शब्दों को परिवर्तित रूप में लिया है, सुवर्णद्वीप वासियों ने एक प्राचीन भारतीय विचार को लेकर अपनी स्वतन्त्र मनोवृत्ति का परिचय दिया है।

२. 'द्विवर्ण' सुवर्णद्वीप के झण्डे का अन्वर्थ नाम है।

३. यह सुवर्णद्वीप के प्राचीन भारतानुप्रणीत ग्रन्थों की सूची उपर्युक्त 'शतपिटक' अर्थात् अखिल भारतीय और बृहद्भारतीय साहित्य-प्रकाशन की योजना के लिए बनाई गई है।

रूपित्र (camera) का प्रयोग आरम्भ कर दिया है। ५० के लगभग चित्र ले चुका हूँ।

यहां के भारतीय दूतावास ने बड़ी सहायता की है। उनका एक व्यक्ति सदा मेरे ही साथ रहता है। मिलने जाने के लिए गाड़ी भी मेरे पास रहती है। मैं यहां डा० कैस्पारिस से मिला था। ये शिला-लेख विशेषज्ञ हैं। यहां के पुराने और नये शिला-लेखों का सम्पादन कर रहे हैं। यहां प्रत्येक व्यक्ति 'महाभारत' मांगता है। श्री जोनान् (बांडुंग) को महाभारत का अंग्रेजी अनुवाद भेज देना। ४००, ५०० पृष्ठ से लम्बा न हो। आर. सी. दत्त का अंग्रेजी अनुवाद तो यहां के लोगों के समझ में न आ सकेगा।

अपने लिए कुछ चित्र भेज रहा हूं। सम्भाल कर रखना। इनके लिए अलग संग्रहिका भी चाहिए।

जाकर्ता,

Hotel der, Nederlanden, १७–७–५१

प्रिय पुत्र लोकेश,

मैं परसों राष्ट्रपति सुकर्ण से मिला था। तुमको समाचार मिल गया होगा। आज श्री सुकर्ण के महल से पत्र आया है कि उनके साथ सुमात्रा द्वीप चलना है। सो परसों २० तिथि को प्रातः केमायोरान् (जाकर्ता का विमानपत्तन) से चलेंगे। राष्ट्रपति श्री सुकर्ण, उनकी पत्नी, चार वर्ष की बच्ची तथा अंग रक्षक, पत्रकार, चित्रकार, चल चित्रकार आदि। इस यात्रा में लियाकत अली खान ने भी साथ चलना था किन्तु वे नहीं आये। प्रारम्भिक कार्यक्रम इस प्रकार है—

२०-७-५१ प्रातः ६-३० केमायोरान् से उड़ना। ७-३० पहुंचना ताबिंग (पादांग का विमानपत्तन)। ६-१० श्री सुकर्ण का जनता में भाषण।

अब मैं विमान पत्तन पर जा रहा हूं। इस समय अपना संभार विमान पर श्री तुकिसान को देना होगा। जावा तथा सुमात्रा के जंगलों में अभी तक ऐसी जातियां हैं जो हिन्दू हैं। परम्बनन आदि में डच लोगों ने प्राचीन मन्दिरों का अद्भुत पुनर्निर्माण किया है; नहीं तो ये पत्थरों के ढेर ही थे।

पादांग (सुमात्रा) २४-७-५१

प्रिय पुत्र लोकेश,

पादांग सुमात्रा के पश्चिमी तट पर है। यहां ही सर्वप्रथम पश्चिम से यात्री आते हैं। प्राचीन समय में भी यह भारतीयों के पदार्पण का पत्तन रहा होगा।

चार दिन यहां ठहर कर आज विमान द्वारा मेदान जा रहे हैं। श्री सुकर्ण अत्यन्त सहृदय व्यक्ति हैं। शक्तिशाली वाग्मी हैं। इन की वाग्मिता में विशेष वैयक्तिक गुण हैं। महाभारत तथा बाली का अगाध प्रेम है। सुमात्रा मुसलमानों का गढ़ है। यहां पर इन के व्याख्यान कुरान से आरम्भ तथा अन्त होते हैं। राष्ट्रपति होते हुए भी दैनिक राजनीतिक समस्याओं पर भाषण देते हैं। वर्ष में ६-७ मास भ्रमण करते हैं। द्वीप दूर दूर फैले हैं। प्रतिदिन वाहित्र द्वारा १५०-२००' क्रोश की यात्रा होती है। मेरे भोजन का स्वयं ध्यान रखते है। अपने पास ही सदा मुझ को बिठलाते हैं। पत्नी का नाम पद्मावती है। कहते हैं कराची में इस पर कोलाहल हुआ है। 'Press man' के लिए इन का शब्द 'वार्तावान्' है, समाचारों के लिए 'वार्तावृत्त'। कल बातू (गिरि) शंकर में संस्कृत शिलालेख देखा। यहां के गीत तथा प्राचीन नृत्य रमणीय हैं। कल रात्रि को तीन घण्टे गान तथा नृत्य होते रहे। इन में गायिकाओं ने बालों के जूड़े में मालती बांधी हुई थी।

पण्डित नेहरु जी के सम्बन्ध में भी प्रतिदिन बातचीत होती रहती है। श्री सुकर्ण की ओर से मैं आज भातृ स्वस्तिवाद (brotherly greetings) पण्डित जी को भेज रहा हूँ। कमिश्नर के लिए यहां 'भूपति' शब्द का प्रयोग होता है, तहसीलदार के लिए 'कपाल देश'। सुमात्रा के पर्वत, नदी, जंगल मनोरमता में किसी से पीछे नहीं। स्थान स्थान पर जल प्रपात। मरापी (मेरु + आपि 'अग्नि') जावा, सुमात्रा, बालि आदि में अनेकों स्थानों पर हैं। श्री सुकर्ण के साथ दो अगस्त तक रहूँगा। तत्पश्चात् जाकर्ता, वहां से बलिद्वीप, फिर जाकर्ता, वहां से बंगकांक, फिर भारत।

काबान जाहे (सुमात्रा) २७-७-५१

प्रिय पुत्र लोकेश,

आज श्री सुकर्ण के साथ चलते ७ दिन हो गए। प्रतिदिन १००-१५० मील चलते हैं। मार्ग में २०-२५ मील पर ठहर कर श्री सुकर्ण भाषण देते हैं। भाषण की विशेष शैली है।

आज ३००० पाद की ऊंचाई पर हैं। ठण्डी वायु चल रही है। कल प्रापत नामक स्थान पर थे। यह स्थान उत्तर सुमात्रा में (सुमात्रा उत्तरा) सुन्दरतम माना जाता है। पर्वतों के मध्य में नील वर्ण पानी वाली झील है। इसी स्थान पर १६४६ में डच शासन ने श्री सुकर्ण को कारागार में रखा था। मेदान नाम का महान् नगर है। यहां चीनी तथा भारतीय व्यापारी सैंकड़ों की संख्या में हैं।

[असमाप्त]

आप निराश क्यों हैं?

श्री रामचरण महेन्द्र एम० ए०

आनन्दकन्द परमेश्वर की यह विशाल सृष्टि आनन्द मूलक है। सच्चिदानन्द भगवान् ही सर्वत्र प्रकट हो रहे हैं। उस आनन्दघन का आनन्दमय ज्ञान प्रत्येक वस्तु से विकसित हो रहा है। भगवान् अपने आनन्दमय स्वरूप का सर्वत्र प्रसार कर रहे हैं। जब यह जगत् विश्व के निर्माणकर्ता का प्रसार करना है तो संसार में आनन्द के अतिरिक्त अन्य क्या हो सकता है। प्रातःकाल हंसता हुआ सूर्य उदित हो कर संसार को स्वर्ण-रश्मियों से स्नान करा देता है शीतल सुगन्धित वायु मस्ती बिखेरती रहती है, पक्षीवृन्द आनन्द से सने गीत गा-गा कर सृष्टिकर्ता की उत्कृष्ट कला का प्रकटीकरण करते हैं। विशाल नदियां कल-कल शब्द कर आनन्द बढ़ाती हैं। पुष्पों पर गुञ्जारते हुए मदमाते भ्रमर आनन्द के गीत सुना कर हृदय शान्त करते हैं। पृथ्वी का अणु-अणु सुख, ऐक्य, समृद्धि और प्रेम की शक्ति को प्रवाहित कर रहा है। प्रत्येक वस्तु जीवन को स्थायी सफलता और पूर्ण विजय से विभूषित करने को प्रस्तुत है। ऐसी सुन्दर सृष्टि में जन्म पा लेना सचमुच भाग्य की बात है। सतत् तप पुण्य इत्यादि के उपहार स्वरूप यह दुर्लभ मानव जीवन इस लिए प्राप्त होता है कि हम इस में पूर्ण आनन्द का उपभोग कर जन्म-जन्म की थकान मिटा सकें, फिर बतलाइये आप निराश क्यों हैं?

निराशावाद उस महाभयंकर राक्षस के समान है जो मुंह फाड़े हमारे इस परम आनन्द जीवन के सर्वनाश की ताक में रहता है, जो हमारी समस्त शक्तियों का ह्रास किया करता है, जो हमें आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर नहीं होने देता और जीवन के अन्धकारमय अंश हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया करता है। हमें पग-पग पर असफलता ही असफलता दिखाता है और विजय द्वार में प्रविष्ट नहीं होने देता।

इस बीमारी से ग्रस्त लोग उदास खिन्न मुद्रा लिए घरों के कोने में पड़े दिन रात मक्खियां मारा करते हैं। ये व्यक्ति ऐसे चुम्बक हैं जो उदासी के विचारों को निरन्तर अपनी ओर आकर्षित किया करते हैं और दुर्भाग्य की कुत्सित डरपोक विचार धारा में निमग्न रहा करते हैं। उन्हें चारों ओर कष्ट ही कष्ट दीखते हैं कभी यह कभी वह, एक न एक भयङ्कर विपत्ति आती हुई दृष्टिगोचर होती है। वे जब बातें करते हैं तो अपनी यंत्रणाओं, विपत्तियों और क्लेशपूर्ण अभद्र प्रसङ्ग छेड़ा करते हैं। हर व्यक्ति से वह यही कहा करते हैं कि भाई हम क्या करें, हम कमनसीब हैं, हमारा भाग्य फूटा हुआ है, दैव हमारे विपरीत है, हमारी किस्मत रे. विधि ने ठोकरों का ही विधान रखा है। तभी तो हमें थोड़ी २ दूर पर लज्जित और परेशान होना, अशान्त क्षुब्ध और विक्षिप्त होना पड़ता है।' उनकी चिंतित मुख मुद्रा देखने से यही विदित होता है मानों उन्होंने उस पदार्थ से गहरा सम्बन्ध स्थिर कर लिया हो, जो जीवन की सब मधुरता नष्ट कर रहा हो, उनके सोने जैसे जीवन का समस्त आनन्द छीन रहा हो, उन्नति के मार्ग को कंटकाकीर्ण कर रहा हो। मानों समस्त संसार की दुःख विपत्ति उन्हीं के सर पर आ पड़ी हो और उदासी की अन्धकारमय छाया ने उनके हृदय पटल को काला बना दिया हो।

इसके विपरीत आशावाद मनुष्य के लिए

अमृत तुल्य है। जैसे तृषित को शीतल जल से, रोगी को औषधि से, अन्धकार को प्रकाश से, वनस्पति को सूर्य से लाभ होता है, उसी भांति आशावाद की संजीवनी बूंटी से मृत प्राय मनुष्य में जीवन शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। आशावाद वह दिव्य प्रकाश है जो हमारे जीवन को उत्तरोत्तर परिपुष्ट, समृद्धशाली और प्रगतिशील बनाता है। सुख सौंदर्य एवं अलौकिक छटा से उसे विभूषित कर उसका पूर्ण विकास करता है। उसमें माधुर्य का सञ्चार कर विघ्न-बाधा, दुःख क्लेशों और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कराने वाली गुप्त मनःशक्ति जागृत करता है। आत्मा की शक्ति से देदीप्यमान आशावादी उम्मीद का पल्ला पकड़े लोभनों को रौंदता हुआ अग्रसर होता है। वह पथ-पथ पर विचलित नहीं होता, उसे कोई पराजित नहीं कर सकता, संसार की कोई शक्ति उसे नहीं दबा सकती क्योंकि सब शक्तियों का विकास करने वाली 'आशा' की शक्ति सदैव उसकी आत्मा को तेजोमय करती है।

संसार के कितने ही व्यक्ति अपने जीवन को उचित श्रेष्ठ और श्रेय के मार्ग पर नहीं लगाते वे किसी एक उद्देश्य को स्थिर नहीं करते, न वे अपने मानसिक संकल्प को इतना दृढ़ ही बनाते हैं कि निज प्रयत्नों में सफल हो सकें। सोचते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं। काम किसी एक पदार्थ के लिए करते हैं आशा किसी दूसरे की ही करते हैं, कीकर के वृक्ष बो कर आम खाने की अभिलाषा रखते हैं। हाथ के लिये हुए कार्य के विपरीत मानसिक भाव रखने से हमें अपनी निर्दिष्ट वस्तु कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। बल्कि हम इच्छित वस्तु से और भी दूर जा पड़ते हैं। तभी तो नाकामयाबी, लाचारी, तंगी, क्षुद्रता प्राप्त होती है। अपने को भाग्यहीन समझ लेना, बेबसी की बातों को लेकर झींकना और दूसरों की इष्ट सिद्धि पर कुढ़ना हमें सफलता से दूर ले जाता है, विरोधी भाव रखने से मनुष्य उन्नत अवस्था में कदापि नहीं पहुंच सकता। संसार के साथ अविरोधी रहो, क्योंकि विरोध संसार की उत्कृष्ट वस्तुओं को अपने निकट नहीं आने देता और अविरोध उत्कृष्ट वस्तुओं का आकर्षक बिन्दु है।

तुम्हारे भाग्य में आशावाद का स्वर्ग आया है न कि निराशावाद का नरक। तुम अपनी जीवन यात्रा में मन्द गति से घिसटते हुये पशुवत् पड़े रहने के लिए जगत् में प्रविष्ट नहीं हुए हो। तुम दुर्बल अन्तःकरण वाले निराशावादियों की तरह निःसार वस्तुओं के कुत्सित चिंतन में निष्प्रयोजन अपनी शक्तियों का अपव्यय नहीं करते। संसार में तुम उस महान् पद पर आसीन होगे जिस पर संसार के अन्य प्रतापी होते आये हैं अभी तुम इस स्थिति में पड़े हो तो क्या, शीघ्र ही उच्चतम विकास के दिव्य प्रदेश में तुम प्रविष्ट होने वाले हो। तुम ईश्वर के पवित्र अंश हो और तुम्हें प्रकृति ने अपनी इष्ट-सिद्धि के लिये पर्याप्त साधन और सामर्थ्य प्रदान किए हैं। तुम एक बार प्रयत्न तो करो।

मनुष्य का स्वभाव ज्यों-ज्यों आत्मिक भाव और आत्मिक जीवन की अभिवृद्धि करता है त्यों-त्यों उस में सामर्थ्य भी बढ़ते जाते हैं। जैसे २ तुम अपने शरीर के अंग प्रत्यङ्गों में छिपी सामर्थ्य को प्रकट करोगे—आविष्करण करोगे वैसे २ विशेष रूप से महान् बनते जाओगे। उच्च विचारों के द्वारा जितने अंशों में हम अपने जीवन का विकास कर सकेंगे, उतने ही अशों में उसका यथार्थ उपभोग कर सकेंगे।

कहते हैं एक बार बड़े भारी व्यापारी को

पत्नी तार लिए दौड़ी हुई उसके कमरे में, जहां वह बैठा व्यापार की कुछ नवीन योजनाएं सोच रहा था, आई और हांफते बोली—'प्यारे हमने सब कुछ खो दिया है। हमारे जहाज, माल-असबाब इत्यादि डूब गये हैं, सारी उम्र के किये कराये पर पानी फिर गया है, हमारी सब बहुमूल्य वस्तुएं जा चुकी हैं। उफ अब क्या होगा ? हाय हाय ! हमें कौन पूछेगा ?'

पति ने धैर्य दिखाते हुए कहा—'क्या तुम्हें भी मुझ से छीन लिया गया है ?'

वह बोली—'पागलों की सी बात क्यों करते हो, मैं तो सदैव तुम्हारे पास हूं।'

—और हमारी आदतें तो कहीं नहीं चली गई हैं ?

—नहीं आदतें भला कहां जांयगी ?

तब तो निराश होने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। हमने अपनी आदतों की कमाई ही खो दी है। संसार की सर्व श्रेष्ठ विभूतियां (आशावादिता, स्वास्थ्य, उत्साह, अध्यवसाय, परिश्रम और प्रेम) अब भी हमारे पास हैं। हम शीघ्र ही सब कुछ पुनः प्राप्त कर लेंगे, तुम धैर्य रक्खो।' कहते हैं कि कुछ वर्षों बाद उनका गृह पुनः धन-धान्य से पूर्ववत् पूरित हो गया। जब उनसे सफलता का रहस्य पूछा गया तो उन्होंने कहा 'मैं कभी उम्मीद नहीं छोड़ता विपत्ति के काले बादलों से चिंतित नहीं होता वरन् हंसते हंसते उनका सामना करता हूं। कठिनाई आने से निराशा का चिन्ह मुख मण्डल पर दिखाना अच्छे से अच्छे मनुष्य को विफल बना सकता है।

अनेक व्यक्ति थोड़ी सी कठिनाई आने पर अत्यन्त अस्त व्यस्त हो जाते हैं, घबराने लगते हैं, और ठोकर पर ठोकर खाते हैं। निराशा उनके जीवन को भार बना देती है। हमारी असफलताएं अधिकांश में निराशा के अभद्र विचारों से ही प्राप्त होती हैं और वे अयोग्य मन्त्रणाओं, भय पूर्ण कल्पनाओं के ही फल हैं। यदि हम पूर्णरूप से कल्पनाओं को उत्तम वस्तुओं की ओर चलाया करें और चिन्ता, दुर्बलता, शंका निराशा के विचारों से हटा कर आशा और हिम्मत के उत्पादक वातावरण में रखना सीख लें तो हमारे जीवन का स्रोत एक आनन्दमय जगत् में प्रवाहित होने लगे। निराशा एक भयंकर मानसिक रोग है। इस से मुक्ति पाने के लिये विचारों का रुख बदलने की परम आवश्यकता है धीरे २ अपने हृदय में न उम्मीदी, कमजोरी और निराशा के भावों के स्थान पर इनके प्रतिपक्षी साहस, हिम्मत, सफलता और आशा के उत्साह-वर्द्धक भावों को जमाना चाहिए। उन्हें पल्लवित एवं पुष्पित करने के लिए अपनी सद् इच्छाओं का अभिनय अवश्य करना चाहिए। तुम जिस कार्य उद्देश्य या मनोरथ में सफलता प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हो उसका अभिनय भली भांति करो। यदि तुम एक विद्वान् बनने की चेष्टा कर रहे हो तो अपने आपको एक विद्वान् की ही भांति रक्खो, वैसा ही वातावरण एकत्रित करो, निराशा निकाल कर यह उम्मीद रक्खो कि मूर्ख कालिदास की भांति हम भी महान् बनेंगे। निराशा निकाल कर तुम इस एक्टिंग को पूर्ण करने की चेष्टा करो। तुम अनुभव करो कि मैं विद्वान् हूँ, सोचो कि मैं अधिकाधिक विद्वान् रहा हूँ, मेरी विद्वत्ता की निरन्तर अभिवृद्धि हो रही है। तुम्हारे व्यवहार से लोगों को यह ज्ञात होना चाहिए कि तुम सचमुच विद्वान् हो। तुम्हारा आचरण भी पूर्ण विश्वासयुक्त हो।

शंका, शुबाह का निशान भी न हो। अपने इस विश्वास पर तुम्हें पूरी दृढ़ता का प्रदर्शन करना उचित है। यह अनुभव करते-करते एक दिन स्वयमेव अपने कार्य को पूर्ण करने की क्षमता प्राप्त कर लोगे।

जिस वस्तु को हमें प्राप्त करना है उसके लिए जितनी मानसिक क्रिया होगी, जितना उसकी प्राप्ति का विचार किया जायगा, उतनी ही शीघ्रता से वह वस्तु हमारी ओर आकर्षित होगी। प्रत्येक वस्तु पहिले मन में उत्पन्न की जाती है फिर वस्तु जगत् में उसकी प्राप्ति होती है। तुम अपने मन में अयोग्यता की भावना रखते हो अतः उसी प्रकार की तुम्हारे अन्तःकरण की सृष्टि होती जाती है। तुम्हारे भय की डरपोक कल्पनाएं ही तुम्हारे मन में काले बादलों की सृष्टि कर रही हैं। मनःस्थिति के अनुसार ही व्यक्ति तुम से द्वेष अथवा प्रेम करते हैं और संसार की समस्त वस्तुएं तुम्हारे पास आकर्षित हो कर आती या मुड़ कर दूर भागती हैं।

तनिक विचार करो, एकलव्य यदि गुरु द्रोण के यहां से निराश होकर धनुर्विद्या का अभ्यास छोड़ देता और भ्रांति के विचारों के सम्पर्क में आ कर क्षुब्ध हो जाता तो क्या वह सफलता को प्राप्त कराने वाली वांछनीय मनः स्थिति स्थिर रख सकता था ? उसने निराशासूचक उनके शब्दों में अपने अन्तःकरण को स्थायी वृत्ति नहीं बनाया। उसके बलवान मन पर भ्रान्ति का कोई विचार या संस्कार अपना प्रभाव न डाल सकता। दुर्बल व्यक्ति के चित्त पर ही प्रतिकूल प्रसङ्ग का कुप्रभाव पड़ता है। संसार के मनुष्य, चारों ओर से निकम्मे, सन्देहात्मक दरिद्र विचार ला कर उसके अन्तःकरण में डालते हैं और उसकी सफलता, प्रसन्नता और उत्साह को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। यदि हम दूसरों की निराशोत्पादक बातों पर ध्यान न दें और उधर से हमेशा के लिए पीठ मोड़ लें, आशा के प्रकाश की ओर रुख कर लें तो अल्पकाल में ही विकसित पुष्प की भांति आनन्दित हो सकते हैं।

जब तुम निश्चय कर लोगे कि 'मेरा निराशा से यावज्जीवन कोई सम्बन्ध नहीं होगा, मुझे नाउम्मीदी से कोई सरोकार नहीं है, मैं अब से वस्त्र-भूषा पर, शरीर पर, व्यवहार में, अपने कार्यों में निराशा का कोई चिन्ह न रहने दूंगा। मैं पूर्ण शक्ति और मनोरथ सिद्धि में प्रवृत्त हूँगा। निराशा पूर्ण वातावरण से मेरा कुछ लेना देना नहीं है। मैंने तो अपनी मूल प्रवृत्ति ही उत्तम पदार्थों की ओर कर दी है। सफलता और मनोरथ सिद्धि मेरे बाएं हाथ का खेल मुझे संसार की कठिनाई अपने श्रेय के मार्ग से विचलित नहीं कर सकतीं' तब याद रक्खो तुम्हारे अन्दर एक दिव्य शक्ति शासनकर्ता शक्ति उत्पन्न होगी। आत्मा श्रद्धा और स्वाभिमान प्रबल होने लगेंगे और तुम आश्चर्य पूर्वक कहोगे कि यह परिवर्तन न जाने क्यों कर हो गया ? तब तुम भी यही कहोगे कि मन को आशा पूर्ण, प्रकाशित, उत्साहित रखने से सफलता प्राप्त होती है, आशावाद ही सफलता प्राप्त कराता है।

'हमारे किए कुछ न होगा' ऐसा निराशावादी विचार सफलता का विघातक शत्रु होता है। आशावाद बहुत बड़ी उत्पादक शक्ति है जीवन की जड़ है इसके अन्दर प्रत्येक वस्तु निवास करती है। अतः जिसे नाउम्मीदी से छुटकारा पाने की आकांक्षा हो उसे उचित है कि अपने मन की स्थिति को उत्पादक, उत्साहपूर्ण, उदार, प्रवृद्ध और उदात्त करे।



लिपि का स्वरूप

श्री स्वामी शंकरानन्द

स्वतन्त्रता और बन्धन, धूप और छाया, उन्नति और अवनति, दया और निर्दयता, सदोषता और निर्दोषता, देशभक्ति और देश-द्रोह, नीति और अनीति, राग और द्वेष तथा सार्थकता और निरर्थकता इत्यादि द्वन्द्व विभूति-कला-के अनिवार्य पहलू हैं। अस्फोट और स्फोट, अकृत और कृत, उन के मूल हैं। स्फोट-कृत-से, प्राकृतिक दृश्यों—काल कृत मनोरञ्जक और मनोभञ्जक—का आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। उन का प्रभाव हृदय और मन पर विविध प्रकार का होता है।

हृदयस्थ स्थायी भावों को रसानन्द बनाने के लिए तत्तद् भाव प्रोत्साहनार्थ भावानुसारी या भावानुगामी नैसर्गिक घटना पर्याप्त है। क्योंकि 'रसो वै सः' आदेश है आगम का। हां, यह तो बुद्धिजन्य और स्वानुभव का विषय है कि भाव-भाषा-अनुसार, तथानु अन्श में मानसिक वृत्ति और शारीरक चेष्टा प्रभावित होती है। कहा है, कला आत्मानुयायी है और भाषा भावानुयायी है। भाव और भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह कहना अस्थानीय नहीं होगा कि तत्तत् सक्रिय भाव से रञ्जित मनोवृत्ति की प्रभा, अस्थि, वसा, मज्जा, मांस, रक्त, स्नायु, नाड़ी जाल से आच्छादित और त्वचा से सुशोभित तन पर दृष्टि गोचर होती है। क्या कह सकते हैं कि यह तो हुई मनोवृत्यन्तर्गत भाव की सूक्ष्म लिपि ? अभी कुछ समय पूर्व विश्व विख्यात दार्शनिक आइन्स्टीन के विचारों के फोटो खींचे गए हैं। जिस से स्पष्ट है कि सूक्ष्म और निराकार दीखने वाले विचारों का भी कुछ न कुछ रूप तथा आकार होता है। एक प्रकार से स्थायी भाव की सुदृढ़ किन्तु अदृढ़ लिपि ! सक्रिय स्थायी भाव की समस्या सम्पूर्ण, सांकेतिक और विज्ञान और मनोविज्ञान से सम्बन्धित लिपि ! इस भावात्मक लिपि के प्रभाव से प्रभावित स्नायु और नाड़ी पुञ्ज तत्तद् भावानुसार चेष्टा करते हैं। हाव-भाव-मय भाषा की लिपि विमर्श-विचार-मय लेपन से आच्छादित है। यह है इस लिपि का शान्त और अवाक् स्वरूप। आन्तरिक भाव की विमर्शमय लिपि का प्रस्तार और विस्तार, प्रस्तुत भाव से उत्तेजित मन्द्र, मध्यम और तार-श्रेण्यांश का मृदुता या तीव्रता पर निर्भर है। अतः भाव-भाषा की लिपि मानसिक स्फुरण से स्पन्दित होने पर भी, अस्फुरित सी रहती है। किन्तु उस साम्राज्य की उपलब्धि स्नायु-विलास अर्थात् स्नायु विकास और संकोच में होती है। अतः भाव की सीमित या असीमित भूमितिमय लिपि आधाररूप-स्नायु-विलास-कला से निर्धारित है। इस लिए विचार का शरीर में अनुप्राणन लेपन स्फुरणात्मक और प्रस्तारात्मक होता हुआ भी लिपि-आत्मक नहीं है।

क्या ऐसी लिपि जो सुषुप्त है, किसी प्रकार से—बिम्ब, प्रतिबिम्ब-वादानुसार-अक्षर स्वरूप में, दृष्टि-विषयक, आकार में फलित हो सकती है ? क्या सूक्ष्म लिपि व्यवहार के योग्य वर्णात्मक बन सकती है ? ऐसी शंका होना स्वाभाविक है। किन्तु क्या बीज में अविकसित वृक्ष की सूक्ष्म रूपरेखा का अस्तित्व नहीं है ? मनोविज्ञान की सूक्ष्म भाव-भाषा की लिपि भी वैसी ही है। स्थूलवाचक लिपि स्थूलात्मक होती है। निरीक्षण से प्रतीत होता है कि जल का

रूप-रंग पात्र के अनुसार होता है। जल निराकृति होते हुये भी, पात्रानुसार आकार रंग धारण करता है। इसी तरह भाव-भाषा शक्त्यानुशील होने के कारण, आकृति युक्त लिपि का रूप-रंग धारण करती है। ऐसी स्थिति में, आकृति आधार के आकारवत् होने की सम्भावना का स्पष्ट संकेत हो, ऐसा भान होता है।

भाव के प्रस्तार और विस्तार का प्रभाव मन और तन पर पड़ता है। विमर्शरूप मन से पैदा हुए, सक्रिय भाव के, अंग-प्रत्यंग पर मुद्रित प्रकाश को, क्या भावावेश कह सकते हैं। यदि ऐसे भाव-विमर्श के सक्रिय प्रस्तार में तथ्य है तो स्थूल लिपि का आधार और नींव उतनी ही सुदृढ़ हैं। भाव के अन्श के अनुसार नव रसों में से किसी एक रस से तन और मन समय २ पर रंगे जाते हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान ने, भावानुप्रवेशित तन और मन में, भाव-भाषा का ऐसा प्रकाश क्यों होता है, इस का सफलता पूर्वक उत्तर दिया है। संक्षिप्त में, भाव की श्रेणी के अन्श के अनुसार, तन और मन की तद्भावमय तन्मयता में, रसीभूत करने के लिए Endocrine system रक्ताभ्यन्तर रस मोचक स्नावावलि-होती है। उदाहरण के लिए भय भावावेश में तन और मन निस्तेज, निर्बल और कम्पनयुक्त इत्यादि चिन्हों से युक्त होता है। रौद्र भावावेश में स्फूर्ति, बलशाली और दृढ़ इत्यादि लक्षणों से आन्दोलित प्रतीत होती है। करुणा में, दयार्द्र-हृदय और नयनों से अश्रुपात भी हो जाता है।

विमर्श प्रकाशमय है। जहां प्रकाश है वहां वीचि (तरंग) है। वीचि-wave-के अनुसार रूप-रंग होता है। ध्वनि सार्थक और निरर्थक होती है। मन भुक्त और पचित अन्न का सूक्ष्मतम सार है तन तो भुक्त और पचित अन्न का सूक्ष्मतर सार है। अतः मन और तन की एकतानता में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। यह सम्बन्ध वीचि-विहित भावप्रकाश के अनुकूल होता है। वीचि-वाहक तन्तु विविध प्रकार से शरीर में फैले हुए हैं। विमर्श के आन्तरिक स्व प्रकाश का नाम भाव है। नाना प्रकार के विमर्श होने के कारण, विविध प्रकार के भाव और भावावेश होते हैं। भावावेश की भाषा भिन्न-भिन्न और चित्र-विचित्र होती है। भावावेश में, शारीरिक और मानसिक तन्मयतानुसार शारीरिक चेष्टा और मानसिक व्यापार होता है। स्थूल शारीरिक-चेष्टा बहुधा कर्मेन्द्रियों से होती है। चेष्टा की भूमिका स्थूल दृष्टि से क्या है? पादप में जैसे दृढ़ बन्धन, वैसे ही दृढ़ बन्धन हैं या और कुछ? सत्य है शरीर रूपी बन्धन में, शारीरिक चेष्टा-सहायक बन्धन नहीं अपितु बन्ध-सन्धि है। उन की सहकारी क्रिया से शारीरिक चेष्टा होती है। अगर सन् यान्तर्गत lever व्यापार सहानुभूति के वेष में नहीं होते तो, पत्थर, पादप और मनुष्य-प्राणी-मात्र में भेद नहीं होता। ऐसी सन्धियां बन्धन-स्वरूप होती हुई भी स्व स्व सन्धि-शक्ति lever के अनुसार और अनुरूप चेष्टा-सहायक होती हैं। सन्धियों-Joints-का नामकरण संस्कार आकृति और सामग्री के अनुकूल किया गया है। नाम के अनुकूल मर्मशक्ति का होना माना है। हमारे शरीर में २०६/१०७ मर्म बताये हैं। सन्धि आठ प्रकार की है। १—कोरक, २—उदूखल

३—सामुद्ग, ४—प्रतर, ५—तुन्न सेवनी, ६—वायस-तुण्ड, ७—मण्डल और ८—शखावर्त। मुख्य मर्म पांच प्रकार के हैं—१—मांस, २—शिरा, ३—स्नायु, ४—अस्थि और सन्धि। कुछ मर्म आग्नेय तत्त्व वाले हैं, कुछ सौम्य आग्नेय हैं और कुछ वायव्य तत्त्व वाले हैं। शारीरिक पीड़ाओं में, जो मर्म में पीड़ा होती है, वह स्व २ तात्त्वानुसार तीव्र, दुःसह्य और दुःखप्रद होती है। स्पष्ट है 'मर्माणि नाम मांस-शिरा-स्नाय्वस्थि-सन्धि.....स्वभावतः एव विशेषेण प्राणास्ति-ष्ठन्ति'—सुश्रुत। मर्म-रचना तो मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और धमनी से बनी है। प्रत्येक सन्धि और मर्म में तत्त्वानुसार प्राण की विशेष शक्ति रहती है। अतः मर्म बन्धान्तर्गत प्राण-शक्ति में हानि-ह्रास पहुँचने से असह्य मर्म भंग-वेदना होती है। विषय पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि बन्ध की रचनात्मक आकृति सामान्य जन समाज को सरल सी दिखती है। किन्तु शारीरिक-विच्छेदन-विज्ञान anatomy के अनुसार सन्धियों की आकृति, लिपि के अक्षरों से कतिपय अन्श में मिलती-जुलती हो, ऐसा प्रतीत होता है।

प्राचीन ऋषियों ने वर्ण और सन्धि के सम्बन्ध का सम्भव न्यास द्वारा बताया है। एक आधुनिक विज्ञान शास्त्री ने बताया है कि अखिल ब्रह्माण्ड की प्राथमिक रूप रेखा की युक्ति विश्व-भर में, सचराचर में एक जैसी पायी जाती है। अणु से अणु और महान् से महान् विकसित मनुष्य में एक जैसी होती है। यह ठीक है कि वायु मण्डल, वातावरण, अन्नपान और संयोग-वियोगानुसार शारीरिक और मानसिक रचनात्मक युक्तियों में परिवर्तन होता रहा और होता रहेगा। उपरोक्त परिवर्तन के अनुकूल-क्रिया के अनुसार मर्म और सन्धियों की रचनाओं में भी परिवर्तन हुआ है, परन्तु प्राथमिक रूप-रेखा की युक्तियां-प्रधान युक्तियां वैसी ही हैं।

हां, यह भी ठीक है कि सन्ध्यन्तर lever की प्रणाली में परिवर्तन कुछ अन्श में होता रहा। विकास-वादियों का एक सिद्धांत है कि सम्भवतः पक्षियों के पंखों ने सन्धि joint को परिवर्तन द्वारा पशुओं में अगले पांवों का रूप धारण किया और आगे चलकर, उसी सन्धि के परिवर्तन से वे ही मनुष्य में हाथ का रूप धारण कर लेते हैं। अर्थात् क्रियाभेद से यह परिवर्तन सम्भव होता है। संक्षिप्त में कुछ न कुछ अन्श में कर्मानुसार गति के सब ये रूपान्तर हैं।

लेखन प्रकार से लिपि बनती है। प्राचीन पञ्चभूतों की प्राकृतिक लेखन-पद्धति को 'भूत-लिपि' कहते हैं। 'भूतलिपि' पांच तत्त्वों की बनी है। प्राचीन विज्ञानानुसार अखिल विश्व भर में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जो कि पंचीकृत पञ्चमहाभूतों से न बना हो। अरे! अर्वाचीन परमाणु-धनाणु और ऋणाणु proton और electron भी उक्त कथनानुसार पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों का ही विकार है, परिणाम है। इन के परिचय कराते हुये बताते हैं कि किसी भाव में, किसी पदार्थ में काठिन्य भाव का अस्तित्व पृथिवी तत्त्व का सूचक है। स्निग्धता और द्रवता जल तत्त्व के प्रतिपादक हैं। अग्नि-तत्त्व उष्णता radiant heat and light का संकेत करता है। क्या कोई अर्वाचीन

element सृष्टि निर्माण पदार्थ specific gravity रहित है। वायु तत्त्व तो सर्वाधार है। यह वायु तत्त्व Impact दबाव का महत्व-पूर्ण का काम करता है। विश्व वायु के विविध दबाव का सजीव और संचित परिवर्तनशील खेल है और आकाश सर्व चित्रमय लेखों की अवकाश प्रदात्री रंगभूमि है। इस लिए आकाश में penetrating शक्ति प्रतीत होती है।

प्राचीन संस्कृति के पञ्चमहाभूतों की भाव-वाचक abstract संज्ञाओं से स्पष्ट होता है कि अणु से अणु और महान् से महान् ऐहिक या पारलौकिक पदार्थ अर्थात् अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, खनिज,जरायुज और दिव्यसृष्टि, त्रिगुणा-त्मक पञ्चमहाभूतों का विकार ही है। प्राचीन उच्चारण-विज्ञानानुसार proneteis से प्रतीत होता है कि कण्ठ से ओष्ठ तक फैला हुआ नाद-यन्त्र से प्रतीत होता है कि ध्वनियां उद्भव-स्थान के अनुसार नाना प्रकार की होती हैं। वैखरी वाणी का सम्बन्ध आभ्यन्तर और बाह्य प्रयत्न के अनुकूल और अनुसार माना गया है। वैदिक उदात्त, स्वरित और अनुदात्त का उच्चारण बाह्योन्मुख प्राण वृत्ति की अनुकूल सूक्ष्मता या स्थूलता पर निभर है। यदि श्वासोच्छ्वास क्रिया का और यथायोग्य नादयन्त्र का अभाव होता तो हम शाब्दिक प्रयोग और व्यवहार से वञ्चित रहते।

नाद यन्त्र की विशेष रचना से विविध ध्वनियां भिन्न २ स्थानों से उत्पन्न होता है। संक्षेप में प्राण की सूक्ष्मता, स्थूलता या दीर्घता बाह्योन्मुख प्राण की उच्छ्वास वृत्ति पर निर्भर है और जिस के सहयोग से वर्णमाला के व[र्णों] का उच्चार सौकर्यता से होता है। यह तो [सु]विदित है कि कण्ठ स्थानीय प्रधान तत्त्व न [के]वल तालु, मूर्छा, दन्त और ओष्ठ-स्थान में पा[या] जाता है। अतः कण्ठ से एक प्रकार के व[र्णों] की वीचिमाला उठती है और प्रयत्न के भे[द] के अनुसार एक स्थानीय वीचिमालाओं में [भी] भिन्नता पायी जाती है। ध्वनियां भी भिन्न [२] सुनते हैं। इसी प्रकार से स्व २ स्थानानुसा[र] प्रयत्न और प्रयत्न भेद से परिमित वीचीमा[ला] द्वारा वर्णों और वर्णों के उच्चार की उत्पत्ति है। संयुक्त स्वर मिश्र स्थानीय है। यहां एक शं[का] पैदा होती है कि कण्ठ या तालु या अन्य भ[ी] किसी स्थान से उत्पन्न होने वाला व्यञ्जन अपने पूर्वीय स्पर्श या अस्पर्श से ध्वनि में भिन्न क्यों होता है? नहीं २ एक स्थानीय वर्ण अपने सगोत्रीय पूर्वज से ध्वनि और आकृति में भिन्न क्यों होते हैं? नादयन्त्र के संकोच और विकार-संवृत्त और विवार-के अनुसार तथा वर्ग [के] द्वितीय और चतुर्थ वर्णों में aspirate जि[स] का साम्य H--ह- के बराबर होता है उस [के] अवतरण होने के कारण और एक-एक तत्त्व [की] आंशिक प्रधानता के कारण और अनुसार ए[क] स्थानीय वर्णों की वीचिमालाओं में, प्रयत्नों [के] अन्तर्गत भेदों के कारण भी भिन्नता का सम्भ[व] स्पष्ट प्रतीत होता है। जिस से प्रथम औ[र] द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्णों में रूप, [रंग] और आकृतियों में भेद और रूपांतर का मू[ल] पाया जाता है, ऐसा अनुमान है। स्पष्टीकर[ण] के लिये—क—k, ख—kh, ग—g, घ—gh, च—ch, छ—chh, ज—j, झ—jh इत्यादि

और वर्णान्तर्गत वीचिमाला के अनुसार अल्प-प्राण, महाप्राण, घोष, अघोष, नाद, स्पृष्ट इत्यादि, स्थान के अनुसार और प्राण के प्रयत्न के अनुकूल उपरोक्त भेदों का सम्भव है। अब यह कहने में सदोषता तो नहीं आयेगी कि वर्णमाला नाना प्रकार की सृष्टियों में से एक पांच भौतिक सृष्टि है।

इस का वर्ण नाम क्यों रखा है? क्या अक्षर वर्णात्मक है? वीचि-विज्ञानानुसार प्रत्येक वीचि-माला में, वीचियों की लम्बाई के अनुसार उष्णता याने अग्निशक्ति होती है। क्योंकि उच्छ्वास कुछ उष्ण होता है। सामान्यत: यह शक्ति रूप, रंग और आकार प्रदान करती है। रूप तो रंग से होता है। जैसा वर्ण वैसा रूप। परन्तु शब्द में उपरोक्त शक्ति 'pitch', 'amplitude' का रूप धारण करती है। अत: तत्त्व और वर्ग के अनुकूल वर्ण में वर्ण शक्ति होनी चाहिए। याज्ञवल्क्य शिक्षा में उपरोक्त कथन को पुष्ट किया है। वर्णानुसार प्रत्येक वर्ण की विभूति है और शक्ति-अनुसार शक्ति-प्रदान करने की शक्ति भी है। अत: याज्ञवल्क्य-शिक्षा के अनुसार वैदिक मन्त्रोच्चारण अशुद्ध होने के कारण लाभ के स्थान पर हानि क्यों होती है यह स्पष्ट होगा। हमारी भारतीय संस्कृति और सभ्यता के आधारभूत लिपि के वर्णों का ऐसा है इन्द्रजाल!

इन्द्रजाल का प्रभाव रक्त वाहक नाड़ीपुञ्ज और ज्ञानतन्तुओं पर नाना प्रकार के भावावेश में भाव के साम्राज्यानुसार विविध प्रकार का होता है। रक्त का वर्ण घन या हलका हो जाता है। भिन्न-भिन्न भावावेश में भिन्न २ 'ductless gland' से पृथक् २ रस, रक्त में संमिश्रित होते हैं। स्थूल लिपि के वर्णानुसार भिन्न २ अवयवों में रक्त की घनता या लघुता सूक्ष्म रूप से स्थित हो ऐसा प्रतीत होता है। शरीर के वर्ण में भी परिवर्तन होता है। तदनुसार शारीरिक और मानसिक चेष्टा और व्यापार में लघुता, दीर्घता, उग्रता, गाम्भीर्य या जड़ता इत्यादि देखने में आता है। शारीरिक चेष्टा तो ज्ञान तन्तु द्वारा प्रेरित कर्मेन्द्रिय से होती है। मानसिक व्यापार, सहस्रदल में स्थित ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, प्राणवाहक, रक्तवाहक इत्यादि तन्तुओं के व्यक्तिगत केन्द्र और परस्पर सम्बन्ध पर निर्भर है। कर्मेन्द्रिय की चेष्टात्मक गति की सौकर्यता, सरलता, ऋजुता या वक्रता सन्धि के lever तुलायन्त्र और मर्मों के जाल पर निर्भर है। सन्धि या मर्म की आकृति, लिपि के किसी न किसी वर्ण से साम्यता रखती है, ऐसा अनुमान है और भूतलिपि न्यास से अधिक स्पष्ट होता है। आधुनिक शारीरिक विज्ञान भी छात्रों को समझाने के लिये अंग्रेजी लिपि के कोई वर्ण के साथ कोई अंग की सादृश्यता का निर्देश करता है। खड़े हुए पुरुष की जठराकृति लिपि के वर्ण J जैसी बताते हैं। वैसी ही प्राचीन ऋषि लोगों ने स्वानुभव और स्व-बुद्धि के अनुसार लिपि के वर्णों की साम्यता कोई रूप में कल्पी हो, मर्म, सन्धि या अंग के साथ मालूम होता है। प्रत्येक मर्म में प्राण शक्ति के अनुसार वर्ण शक्ति का सम्भव बताया है। अत: भाव-साम्राज्य के अनुसार व्यापार और चेष्टा होती है। जैसे कि उठना, बैठना, दौड़ना, रोना, हंसना, मुग्धता, मूकता, वार्तालाप, जल्प, रोमाञ्च, जड़ता इत्यादि। देखिये शरीर के अंग सुव्यवस्थित और सुस्थित होते हुए भी, प्रस्तुत वर्णाकृति की स्थिति के अनुसार चेष्टा और व्यापार होता है। देखिये distension of stomach इत्यादि, बैठे हुए सज्जन की उदराकृति 'J' जैसी नहीं होने का सम्भव है। जिस भाव में, जिस पांच भौतिक तत्त्व की प्रधानता

होती है वैसी ही चेष्टा और व्यापार होता है।

ऋषि-मुनियों ने पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों की चिन्हात्मक लिपि का, भूमिति से संबंधित रेखाओं में दर्शन कराया है। पृथिवी चतुरस्र-चार भुजा वाली, जल अर्ध चन्द्राकारवत्, अग्नि त्रिकोणाकार, वायु षट्कोणाकार और आकाश बिन्दु या वर्तुलाकार होने का सम्भव बताया है। जब पञ्च महाभूत किसी न किसी अन्श में मिश्रित होते हैं तो उपरोक्त पांच भौतिक-तत्त्व-युक्त आकृति में अंशानुसार परिवर्तन होता है। परिवर्तन का उतना ही सम्भव है कि जितने अंश में पांच भौतिक निज वीचि मालाओं में संमिश्रण का सम्भव है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए अग्नि के पर्याय शब्दों पर थोड़ा विचार करेंगे। अग्नि, वह्नि, शुचि, पावक, दाहक, भ्राजक, दावानल, अनल, हव्यवाहक इत्यादि। अग्नि के प्रत्येक पर्याय से एक भाव या अर्थ का बोध होता है। नहीं २ भिन्न-भिन्न धातु से ये पर्याय वाचक शब्द बने हैं। प्रत्येक धातु की व्यक्तिगत गत्यात्मक क्रिया का देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि एक ही अर्थ होते हुए सक्रिय भाव में भेद पाया जाता है। भ्रान्वन्तर-गत प्रवृत्तिशील क्रिया से लक्ष्यार्थ का बोध होता है, जो कि शब्दार्थ से कुछ भिन्न है। अर्थात् शब्दार्थ से भिन्न शक्ति की उपलब्धि होती है। यह तो आप को सुविदित है कि क्रिया और प्रतिक्रिया स्पन्द-युक्त बीचिमाला के अनुकूल होती है। भिन्न भिन्न वीचिमाला में भिन्न-भिन्न तत्त्व प्रधान होता है। अतः वह्नि में जो सक्रिय बीचिमाला का बोध होता है, वैसा वीचिमाला का बोध अग्नि शब्द में नहीं पाया जाता है। जो वीचीमाला पावक शब्द में है, सो पावक के अन्य पर्याय में नहीं है। संक्षेप में ऋषि-मुनियों ने सांकेतिक शब्द द्वारा वीचिमाला की गत्यात्मक क्रिया का बोध वर्णों में कराने का प्रयत्न किया है। अन्त में संगीत-कला के सप्त स्वरों का सम्बन्ध किस प्रकार से लिपि के स्वर वर्णों के साथ है, इस का संकेत अप्रासांगिक नहीं होगा। वर्णानुसार प्रधान भावों की तात्विक सामग्री का पता लगता है।

	स्वर	स्थान	ग्राम	रस	स्वरूप–Symbol
१	अ	कण्ठ	षडज	...	निर्गुण
२	इ	तालु	ऋषभ	वीर	शक्ति–काम बीज
३	उ	ओष्ठ	गांधार (कोमल)	शृंगार	व्यापक
५	लृ	दन्त	निषाद	शृंगार	अभेद-दर्शक
४	ऋ	मूर्धा	गांधार (शुद्ध)	शांत	परमेश्वर
६	ए	कण्ठ-तालु	मध्यम	शांत	ज्ञानस्वरूप
७	ओ	कण्ठ-ओष्ठ	पञ्चम	आनन्द	सगुण निर्गुण (प्रवण)
८	ऐ	कण्ठ-तालु	धैवत	शांत (मृदु)	क्रिया
९	औ	कण्ठ-ओष्ठ	निषाद (कोमल)	...	पराकाष्ठा

उपरोक्त प्रधान तीन रसों की आवृत्ति और पारस्परिक संमिश्रण से इतर और रस बन जाते हैं।



कार्तिक में तुलसी का प्रयोग

श्री रमेश बेदी

पौराणिक साहित्य में

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के प्रकृति खंड के तुलस्युपाख्यान में बारह से इक्कीस अध्यायों के अन्तर्गत तुलसी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विस्तार से एक कथा का वर्णन आता है जिसमें बताया गया है कि कार्तिक पूर्णिमा के दिन इसका जन्म हुआ था। पद्म पुराण का एक अंश कार्तिक माहात्म्य नाम से अलग प्रचारित है। उस में भी तुलसी की उत्पत्ति कार्तिक में बताई है। बृहद्धर्म पुराण के सातवें और आठवें अध्याय में तुलसी का प्रादुर्भाव और माहात्म्य लिखा है। उसके अनुसार महादेव जी ने इसे पृथ्वी पर पवित्र तुलसी पौदे के रूप में कार्तिक अमावस के दिन प्रकट किया था। कार्तिक मास में ही खूब धूम-धाम से तुलसी का विवाह रचा जाता था। जप, यज्ञ, दान, दक्षिणा और बाजे-गाजे के बीच बारात आती है। विवाह की सम्पूर्ण विधि की तरह यहां भी वेदी बना कर मन्त्रों के उच्चारण के साथ ब्राह्मण विधिपूर्वक विवाह कराता है। हर साल कार्तिक महीने में यह विवाह रचाने से कार्तिक व्रत की सिद्धि, कन्या दान का फल, मोक्ष, प्राप्ति आदि फल मिलते हैं, ऐसा कार्तिक माहात्म्य के इक्कीसवें अध्याय में लिखा है। कार्तिक मास में तुलसी के अन्दर सब तीर्थ और सब देवता रहते हैं इस लिये इस महीने में तुलसी माला अवश्य पहननी चाहिये। पद्म पुराण के आदेशानुसार कार्तिक में तुलसी के नीचे जो दिया जलाता है वह विष्णु का प्यारा बन जाता है। कार्तिक में तुलसी के कोमल पत्तों से प्रति दिन विष्णु की पूजा करनी चाहिए। तुलसी के पत्तों और फूलों से कार्तिक में विष्णु की पूजा करने वाले के जन्म भर के सब पाप नष्ट हो जाते हैं। असंख्य गौओं को दान देने से जो फल मिलता है वह कार्तिक मास में तुलसी के पत्तों का दान करने से मिल जाता है।

कार्तिक में विशेष क्यों ?

इन पौराणिक विश्वासों से हम सहमत न होते हुए भी यह अनुभव करते हैं कि पुराण लेखकों ने कार्तिक मास के साथ तुलसी का जो विशेष सम्बन्ध जोड़ा है वह सकारण है। बरसात के बाद कार्तिक में मलेरिया का अधिक प्रकोप होता है। इस लिए इस महीने में तुलसी का विशेष प्रयोग करने के लिए कहा गया है। इस समय पौधा भी खूब फला-फूला रहता है।

मच्छर दूर रहते हैं

तुलसी में जो विशिष्ट गन्ध होती है उसके कारण जहां यह पौधा उगता है मच्छर तथा कीड़े उस स्थान के पास नहीं जाते। घरों में या घरों के आस-पास और गृह-उद्यान में इसके पौदे लगाने से मलेरिया के मच्छरों का घर में प्रवेश कम होता है। मलेरिया से बचने में सहायता मिलती है। कुछ पाश्चात्य डाक्टरों के मत में भी मलेरिया से लड़ने के लिये यह सस्ता हथियार है। सर जौर्ज वुड ने १९०५ में लन्दन टाइम्स में लिखा था कि बम्बई में जब विक्टोरिया गार्डन और म्यूज़ियम की इमारतें बन रही थीं तो उन पर काम करने वाले लोगों में मलेरिया बहुत बुरी तरह फैल गया था। एक हिन्दू मैनेजर की सलाह से उस समय बगीचे के चारों ओर पवित्र तुलसी के पौधे लगा दिये गये थे जिस से मच्छरों की बाढ़ एक दम रुक गई और बागीचों में रहने वाले मालियों तथा अस्थायी रूप में रहने वाले

मिलियों में फैला हुआ मलेरिया बुखार सर्वथा निकल गया। इस से पहले सारे बम्बई में ये बाग सब से अधिक मलेरिया से आक्रान्त रहते थे। लन्दन की इम्पीरियल इंस्टिट्यूट के डाक्टर मोल्हिंग और डाक्टर पेली ने बतलाया है कि तुलसी के अन्दर एक ऐसा उड़ने वाला तेल है कि जो हवा में मिल कर ज्वर को उत्पन्न करने वाले सब जन्तुओं को नष्ट कर देता है। अगस्त्य संहिता के अनुसार तुलसी बन के चारों ओर दो मील तक की वायु को इसकी गन्ध शुद्ध कर देती है।

तीर्थ के समान पवित्र घर

पद्म पुराण का यह कथन सर्वथा सत्य है कि जिस घर के सामने या आंगन में तुलसी का बाग लगा रहता है वह घर तीर्थ के समान पवित्र रहता है। उस घर में यम के दूत (मलेरिया के मच्छर या रोगोत्पादक कीटाणु) तथा दूसरी प्राण नाशक व्याधियां नहीं घुसने पातीं और वहां के रहने वाले अकाल मृत्यु के पंजे से बचे रहते हैं। तुलसी को घोल कर पिचकारी से मच्छरों पर छिड़कने के जो परीक्षण किये गये हैं उन से पता चलता है कि मच्छर उस की गन्ध से बहुत डरते हैं और बेतहाशा इधर-उधर भागते हैं। महाराष्ट्र में कई लोग तुलसी के गमलों को बिछौने के पास रख कर सोते हैं और वे कहते हैं कि मच्छर-दानी की जरूरत नहीं पड़ती। तुलसी का रस शरीर पर चुपड़ लेने से मच्छर नहीं काटते। रात को बिस्तर में जाने से पहले मुख, बिना ढके हुए नग्न भागों पर तुलसी के पत्तों को मल कर सोने से मच्छर दूर रहते हैं। कुछ पत्ते और छोटे कोमल शाखा शिखर या पुष्प-मञ्जरियां बिस्तर में रख कर सोना मलेरिया के मच्छरों के आक्रमण और इस के हानिकर प्रभाव को रोकने में सहायक होता है।

मलेरिया की चिकित्सा

राजकीय मलेरिया सम्मेलन (१९०६) ने अपनी सम्मति प्रकट की थी कि काली तुलसी से मलेरिया का उपद्रव बहुत कम हो जाता है। शार्ङ्गधर का अनुभव है कि पत्तों का रस काली मिर्च के साथ पीने से यह विषमज्वर (मलेरिया) को नष्ट करता है। चढ़े हुये बुखार में आठ-दस पत्तों को काली मिरचों के साथ खिला देते हैं। फिर बुखार न चढ़े इस के लिए चार-पांच हरे पत्तों के बीच चार-पांच काली मिरचों को लपेट कर बुखार आने के समय से पहले ही तीन-चार बार दे देते हैं। मलेरिया ज्वरों में तुलसी का काढ़ा देने से पसीना आकर बुखार उतर जाता है। पत्तों का काढ़ा भी मलेरिया में देते हैं। तुलसी के हरे पत्तों को तोड़ कर तोल लें। इस से आधी (तोल में) काली मिरच लें। घोट कर बेर जितनी गोलियां बना लें. छाया में सुखा लें। ये गोलियां तीन-तीन घण्टे बाद मलेरिया ज्वरों में दो-दो की मात्रा में देते हैं। औषधालयों में प्रयोग करने के लिए ये गोलियां अच्छी रहती हैं। काली मिरचों के बारीक चूर्ण को तुलसी के रस की सात भावनाएं दे कर छाया में सुखा लें। चने के बराबर गोलियां बना लें। ज्वर आने से पहले एक-एक घण्टे के अन्तर से एक-एक कर के तीन गोलियां दे दें। धर्मार्थ औषधालयों में जन-साधारण का इलाज करने के लिए मैं तुलसी के व्यवहार की सिफारिश करूंगा।

मलेरिया नाशक गोलियां

सर्दी लग कर आने वाली मलेरिया की किस्मों में मृत्युञ्जय को तुलसी स्वरस के अनुपान से देते हैं। त्रिभुवनकीर्तिरस में तुलसी स्वरस की भावना देते हैं। नौसादर, काली मिरच, कलमी शोरा और लाल फिटकरी को समान भाग में लेकर कूट लें, तवे पर रख कर ज़रा सा भून लें। फिर तुलसी के रस की इक्कीस भावनाएं देकर डेढ़-दो रत्ती की गोलियां बना लें। मलेरिया में इनका प्रयोग किया जाता है।

ज्वरों में अनेक प्रकार से लाभकारी

पित्त प्रधान ज्वरों में जब बार-बार पित्त की उलटियां आती हैं और रोगी को प्यास बहुत सताती है तो उसे एक ऐसी तृषाशामक औषध की आवश्यकता होती है जो यकृत में संचित मलभूत पित्त को निकालने वाली हो। दीपक, तृषाशामक, ज्वरहर, रोचक और पित्तविरेचक होने से तुलसी ऐसी अवस्थाओं में रोगी के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होती है। [कॉपी राइट—लेखक के पास]।



गुरुकुल-समाचार

ऋतु-रंग

शीत काल अपनी सुभग विशेषताओं के साथ अवतीर्ण हो रहा है। सरिताओं और ताल-तलैयाओं के जल स्वच्छ हो गए हैं। प्रभात में ठण्ड बढ़ने लगी है। दिन को घाम अप्रिय लगता है। विजय दशमी से पूर्व वर्षा अपनी दो तीन झपटें मार कर विदा हो चुकी है। प्रातः ओस पड़ने लगी है। ऋतु परिवर्तन के कारण स्वास्थ्य-वैषम्य की सम्भावना होने पर भी कुलवासियों का सामान्य स्वास्थ्य अच्छा है। मौसमी फलों में सिंघाड़े और चकोतरे बहार दे रहे हैं। शीत-कालीन शाक-पात भी प्रारम्भ हो रहे हैं। शरद्-ऋतु के दूत खंजन पक्षी उतर आए हैं और कोयल, पपीहे आदि के दर्शन दुर्लभ हैं। दक्षिण दिशा में अगस्त्य तारे का दर्शन ब्राह्म-मुहूर्त में स्पष्टतया होने लगा है।

विशेष अतिथि

वल्लभ विद्यानगर (आनन्द—गुजरात प्रान्त) में स्थित बिरला इंजीनीयरिंग कॉलेज के पैंतीस विद्यार्थी अपनी ज्ञानयात्रा के सिलसिले में तीन दिन गुरुकुल विश्वविद्यालय के अतिथि रहे। हरिद्वार के दूधिया बन्द से ले कर रुड़की तक के उन सब स्थानों का सूक्ष्म अवलोकन किया जो भूसिंचन तथा इञ्जीनीयरिंग विद्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। गुरुकुल की परिक्रमा कर के मंडली ने विशेष आनन्द अनुभव किया।

वैदिक-संशोधन-मंडल (तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना) के मन्त्री और सहायक सम्पादक श्रीयुत सी० जी० काशीकर तथा गुरुकुल के पुराने मित्र ओरियेन्टल बुक एजेन्सी पूना के स्वामी डाक्टर आर० एन० सरदेसाई उस दिन गुरुकुल पधारे। दोनों सज्जन देर तक गुरुकुल का परिभ्रमण कर के बहुत आनन्दित हुए।

विजय दशमी

विजय दशमी का पर्व कुलवासियों ने उत्साह और प्रेम के साथ मनाया। सदा की तरह चार दिन तक गुरुकुल के क्रीडाङ्गण ब्रह्मचारियों के क्रीड़ा संघर्षों से गूंजते रहे। विद्यालय विभाग के छात्रों ने हॉकी, फुटबाल और वालीबाल के सान्मुख्यों में उत्साह से भाग लिया। अन्तिम दिन रात्रि के समय गुरुकुल की लाक्षणिक खेल 'लङ्का-विजय' की बड़ी रौनक रही। ब्र० दयाकर ८ म श्रेणी तथा ब्र० योगेश्वर ८ म श्रेणी के नेतृत्व में दो दलों का संघर्ष रहा। जिस में ब्र० दयाकर का दल विजयी हुआ।

महाविद्यालय विभाग के छात्रों में ओलम्पिक शैली के खेलों की बड़ी रौनक रही। विविध क्रीडाओं में निम्नलिखित ब्रह्मचारी विजयी हो कर पुरस्कार-भागी हुए हैं।

तेज दौड़—ब्र० भूदेव

एक टांग की दौड़—ब्र० केशवदेव

बाधा दौड़—ब्र० भूदेव

अन्ध-युद्ध—ब्र० जयपाल तथा ब्र० भूदेव

गेंद मार—ब्र० सत्यव्रत

ऊपर कूद (ऊँची कूद)—ब्र० ब्रह्मस्वरूप

हनुमान् कूद (लम्बी कूद)—ब्र० भूदेव

दशमी के दिन सब कुलवासी वेदमन्दिर में समवेत हुए। बृहद् यज्ञ के पश्चात् श्री आचार्य जी के सभापतित्व में राम-दर्शन की सभा में छात्रों ने रामचरित्र पर विवेचन और गुण कीर्तन किया। श्री आचार्य जी ने विस्तार से रामायण की संस्कृति पर मनोहर और उद्बोधक प्रवचन किया।

श्रद्धानन्द सेवाश्रम

सेवाश्रम-औषधालय में भाद्रपद मास में रोगी-सेवा का कार्य निम्न लिखित प्रकार से हुआ है। इस मास में बाह्य-रोगियों में कोई सोलह सौ रोगियों की चिकित्सा की गई। अन्तः चिकित्सालय में २४ रोगियों की औषध चिकित्सा की गई और १७ रोगियों की शस्त्र चिकित्सा हुई। नौ बड़े आपरेशन तथा छः छोटे आपरेशन किए गए। एक्सरे भवन से ३६ रोगियों ने लाभ उठाया और निदान प्रयोगशाला में भी ३६ रोगियों की रोग-परीक्षा हुई।

शरत्-कालीन सत्र

विजय दशमी के समाप्त होते ही विद्यालय-विभाग का शरत् कालीन सत्र प्रारम्भ हो गया है। महाविद्यालय की छमाही परीक्षाएं दीपावली से पूर्व २५ अक्टूबर तक समाप्त हो जायेंगी और दीपमाला के बाद उक्त विभाग का भी दूसरा अध्ययन सत्र शुरू हो जायगा।

स्वास्थ्य समाचार, आश्विन

श्रेणी	नाम ब्रह्मचारी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा
१४	श्रुतिकान्त	आन्त्र ज्वर	अभी रोगी है
१४	देवराज	मोच	७ दिन
१३	नरेश	ज्वर	३ दिन
१३	प्यारेलाल	व्रण	रोगी है
११	भूदेव	ज्वर	३
१२	बालकृष्ण	,,	४
१४	जगन्नाथ	चोट	४
१३	सुधाकर	,,	३
१३	सोमवीर	मोच	४
११	सत्यव्रत	व्रण	३
१०	धर्मवीर	नेत्राभिष्यन्द	६
६	सुखवीर	कास ज्वर	रोगी है
५	रमेश	ज्वर	६
६	विजय	प्रतिश्याय ज्वर	४
७	सत्य प्रकाश	,,	३
५	विष्णु	ज्वर	३
५	जगदीश	,,	३
५	व्रज मोहन	,,	३
५	योगेन्द्र	,,	३
४	हेमचन्द्र	,,	४
४	गुरुदत्त	,,	३
३	नवीन	,,	४
३	मोहन	,,	४

—सत्यपाल, मुख्य चिकित्सक।



गुरुकुल मुद्रणालय।

गुरुकुल पत्रिका

मार्गशीर्ष
२००८



वर्ष ४
अङ्क ४

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ४
अङ्क ४

गुरुकुल-पत्रिका

मार्गशीर्ष
२००८

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव
दर्शनवाचस्पति

श्री रामेश बेदी
आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

विषय	लेखक	पृष्ठ
शत्रुओं की दुर्गति	श्री मनोहर विद्यालङ्कार	१
द्विपद-नाम-पद्धति	श्री लोकेश डी. लिट्.	२
क्रोध एक विषधर सर्प	श्री रामचरण महेन्द्र एम० ए०	५
पश्चिम शिखर अभियान	श्री मनोहर विद्यालंकार	१०
अर्थशास्त्र का लक्षण	श्री अविनाशचन्द्र वेदालंकार	१४
कण्व वंशी ऋषि	श्री भगवद्दत्त वेदालङ्कार	१६
अहिंसा का पालन	श्री स्वामी कृष्णानन्द	१९
अथ सुवर्णद्वीपात्	डॉक्टर रघुवीर	२१
चिमगादड़	श्री चम्पत स्वरूप एम० एस० सी०	२५
गुरुकुल समाचार		२८

अगले अंकों में

पञ्चवर्षीय योजना में शिक्षा की उपेक्षा	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
श्रद्धा की आराधना	श्री भगवद्दत्त वेदालंकार
वात्य का सिंहासन	श्री रामनाथ वेदालंकार
श्रद्धा और श्रद्धानन्द	श्री स्वामी शिवानन्द
स्वामी श्रद्धानन्द की हिन्दी सेवा	श्री पीताम्बर नारायण शर्मा
यतिवर श्रद्धानन्द (कविता)	श्री सत्यव्रत
श्रद्धा का महत्व	श्री स्वामी कृष्णानन्द

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

शत्रुओं की दुर्गति

ऋषिः वसिष्ठः । देवता इन्द्रः ।

नीचैः पद्यन्ता मधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।

क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥

अथर्व० ३-१६-३

मैं वसिष्ठ हूं। मैंने अपने अनुगतों को, अपनी इन्द्रियों को अपने नियन्त्रण में कर लिया है। मुझ में संयम का, नियन्त्रण का, और लोगों को सन्तुष्ट करने का बल है। इस लिये वे मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं कर सकते, इच्छा को टाल नहीं सकते; प्रत्युत मेरी कामना करते हैं, क्योंकि मैं उन को बसाता हूं, उन का भरण पोषण करता हूँ।

जो पापी या दुर्जन हमारे विद्वानों (ब्राह्मण वर्ग) या धनिकों (वैश्य वर्ग) को सेना द्वारा पराभूत या आक्रान्त करना चाहते हैं, वे थक कर नीचे गिर पड़ें। उन की स्थिति बिगड़ जाए, उन का कहीं मान न रहे, सर्वत्र उन को नीची निगाह से देखा जाए। इसी प्रकार जो विषय वासनाएं अथवा कामादि शत्रु हमारे मस्तिष्क, मन या विचार धारा को और उदर, शरीर या स्वास्थ्य को नाना प्रलोभनों की सेना द्वारा पराभूत या आक्रान्त करना चाहते हैं, वे पददलित हो जाएं और फिर पाताल में चले जाएं। मैं अपने ज्ञान और बल की महत्ता से तथा शक्ति की विशालता से अपने अमित्रों को परे हटा कर नष्ट कर देता हूँ, दूर फेंक देता हूं, और अपने मित्रों को उन्नत करता हूँ, विकसित करता हूँ।

जो मेरा बन कर रहेगा, उन्नति करेगा। जो मुझ से शत्रुता करेगा, बड़े गहरे गर्त में गिरेगा।

अर्थ-वसिष्ठः वश्[1]-कामना करना, नियन्त्रण करना; वस्[2] बसाना-भरण पोषण करना। वष्[3] मारना, घायल करना। सूरिम्-विद्वान् या ब्राह्मण। मघवानम्-धनी या वैश्य। क्षिणामि-नष्ट करता हूं। पद्यन्ताम्-थक कर गिर जाएं, नष्ट हो जाएं। ब्रह्मणा-ज्ञान, बल, अन्न।

—श्री मनोहर विद्यालंकार।

—

द्विपद नामपद्धति

डा० लोकेशचन्द्र डी. लिट्.

द्विपद नामपद्धति में प्रत्येक प्राणी का नाम दो शब्दों से बनाया जाता है। अंग्रेजी में पहिला शब्द प्रजाति (genus) का द्योतक होता है, दूसरा जाति (species) का। प्रजाति वाचक शब्द संज्ञा होता है और जाति वाचक उस का विशेषण। यथा, Platysmurus leocopterus एक भारतीय पक्षी का वैज्ञानिक नाम है। Platysmurus एक प्रजाति है जिस के आगे leucopterus विशेषण लगा कर दोनों शब्दों से एक पक्षी का नामकरण किया गया है। leuco का अर्थ 'श्वेत' और pterus का 'पत्र' अथवा 'पख' है। इसी पक्षी को अंग्रेजी में Whitewinged jay कहते हैं।

द्विपद नामपद्धति का अनुवाद करते समय हमारे सामने प्रश्न उठता है कि भारतीय शब्दावलि में प्रजाति वाचक शब्द पहिले हो अथवा पीछे। क्या हम लैटिन का ही क्रम रखें और अपने व्याकरण को भूल जाएं ? इसी प्रकार के लैटिन विशेष्य विशेषण का दूसरे विज्ञानों में अंग्रेजी में क्या किया गया और पाश्चात्य संस्कृति की दासता से मुक्त जापान ने अपनी शब्दावलि में द्विपद नामों का अनुवाद कैसे किया। इन प्रमुख बातों का विचार किये बिना बनाई गई शब्दावलि में अनेक प्रकार की भूलें रह जाएंगी और विभिन्न विज्ञानों में निरर्थक असामञ्जस्य हो जायगा जो कि विज्ञान की उन्नति में बाधक होगा।

वैज्ञानिक शब्दावलि की नव लैटिन (Neo-Latin) में फ्रेंच आदि भाषाओं के प्रभाव से संज्ञा को पहिले और विशेषण को पीछे रखते हैं। इस लिए विशेष्य (प्रजाति) को पहिले और विशेषण को पीछे रखा गया है। इस नियम का पालन केवल जीवविज्ञान में ही नहीं, अपितु अन्य विज्ञान की शाखाओं में भी हुआ है। उदाहरणार्थ ज्योतिष लीजिए। दो सामान्य शब्द हैं Ursa major और Ursa minor। इन में Ursa पहिले है और Major तथा Minor विशेषण पीछे है। इन के अंग्रेजी नाम क्रमशः Great Bear और Little Bear हैं। ध्यान देने योग्य है कि अंग्रेजी में लैटिन व्याकरण का अनुसरण नहीं किया गया। शरीर विज्ञान में भी सैंकड़ों ऐसे उदाहरण हैं। यथा Cavum aorticum, cavum pulmocut aneum corpora adipasa, corpora amylacea यदि corpora adipasa के ही क्रम का अनुसरण किया जाय तो 'पदार्थ वपीय' जैसा अनर्गल अनुवाद होगा। इस प्रकार के क्रम का अनुसरण करने की व्यर्थता अगले उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी। एक मित्र ने Rana esculenta का अनुवाद 'मण्डूक भक्ष्य' (जिस को मेंढक खा सके) किया, जहां पर कि हम कहना चाहते थे 'खाने योग्य मेंढक' अर्थात् 'भक्ष्य मण्डूक'। ऐसे अनुवादों के लिए हम 'शान्तं पापं' ही कह सकते हैं।

भेषजविज्ञान (Pharmacy) में सहस्रों औषधों के लैटिन नामों में संज्ञा विशेषण की पूर्वापरता दिखाई देती है। इन सब निर्मितियों के अंग्रेजी नाम भी हैं। अंग्रेजी नामों में लैटिन का क्रम नहीं है। वहां विशेषण पहिले है और विशेष्य पीछे, जैसा कि सामान्य रूप से अंग्रेजी में होता है। नीचे कुछ उदाहरण दिये

जाते हैं जिन में पहले लैटिन नाम और उस के सामने अंग्रेजी नाम हैं—

acidum aceticum—acetic acid.

acidum boricum—boric acid.

acidum hydrochloricum—hydrochloric acid.

acidum nitricum—nitric acid.

acidum phosphoaicum—phosphoric acid.

acidum sulphuricum—sulphuric acid.

acidum tannicum—tannic acid.

ammoniatid tincture of ergot—tinctura ergotae ammoniata.

pulvis opii compositus—compound powder of opium.

aqua anisi concentrata—concentrated anise water.

जापानियों ने लैटिन के सभी जीवविज्ञान सम्बन्धी शब्दों का अनुवाद किया है। उन्होंने लैटिन के क्रम का अनुसरण न कर अपने व्याकरण और संस्कृति के अनुकूल शब्द बनाये हैं। वनस्पति शास्त्र के कुछ शब्द लीजिये। इन में विशेषण सदा पहिले दिया गया है और संज्ञा पीछे। पहले अंग्रेजी नाम है, उस के सामने जापानी नाम।

Medicago—उमागोयाशी (जोकु प्रजाति)

M. Sativa—मुरासाकी उमागोयाशी ('मुरासाकी' का अर्थ नीला रंग होता है। यहां जापानियों ने Sativa का शब्दार्थ नहीं किया)।

M. lupulina—कोमेत्सुबु उमागोयाशी।

M.minima—को उमागोयाशी।

उपरलिखित उदाहरण श्री मात्सुमुरा महोदय के 'शोकु बुत्सु मेइ इ' अंक १८३, १८४ में प्रकाशित लेख से हैं। (देखिये Sino-Iranica By Dr. Laufer पृ० २१८, २४५)। नीचे हम उमेपुरा महोदय की इनोशोकुक्वाई नो शोकुबुत्सु शी' (भाग ५) नामक पुस्तिका से एक और उदाहरण देते हैं—

Vitis thunbergii—एबी जूरु (यहां व्यक्ति का नाम नहीं रखा)।

V. flexusoa—सान्काकु जूरु।

V. Saccharifera—आमा जुरु ('आमा' का अर्थ 'मीठा' है। इस वनस्पति के पत्तों में मिठास होता है। लैटिन 'सैखरीफैरा' की व्युत्पति संस्कृत 'शर्कराभर' मिठासपूर्ण से है)।

नीचे कुछ पक्षियों के नाम उदाहरणार्थ दिए जाते हैं। पहले अंग्रेजी नाम हैं, उस के सामने जापानी नाम हैं—

Chloris sinica kittlitzi—ओगासावारा कावाराहिवा (ओगासावारा द्वीप में यह पक्षी मिलता है)।

Chloris sinica seebohmi—इवोतो कावाराहिवा (इवोतो द्वीप विशेष है)।

Zosterops japonicus—बोनिन मेजिरो (यह पक्षी बोनिन द्वीप का है)।

Zostarops japonicus alani—इवोतो मेजिरो।

Microseclies amaurotis squami-

ceps—ओगासावारा हियोदोरी।

Microseclies amaurotias magnirastris—हाशिबुतो हियोदोरी।

Horornis disphon diphone—ओगासावारा उगुइसु।

Horornis disphon diphone—इवोतो उगुइसु।

जापानियों ने लैटिन के क्रम का अनुसरण नहीं किया। इतना ही नहीं उन्होंने अंग्रेजी अन्वेषकों के नामों को भी नहीं रखा। उन अन्वेषकों के नामों के स्थान में सार्थक विशेषण रख दिये हैं।

Fauna of British India (Birds) by Stuart Baker (Lond.) 1922 में भारतवर्ष के सारे पक्षियों का वर्णन है। इस ग्रन्थ में लैटिन वैज्ञानिक नामों के साथ-साथ अंग्रेजी के नाम दे सके हैं। इन सब में विशेषण संज्ञा से पहिले दिया गया है। कुछ उदाहरण देखिये—पहले लैटिन नाम है, उस के सामने आंगल नाम है—

2. Corvus corax tibetanus—The Tibet Raven.

3. Corvus corax ruficollis—The Brown-Necked Raven.

4. Corvus corone orientalis—The Eastern Carrion-Crow.

5. Corvus corohoides—The Jungle-crow.

38. Platysmurus leucopterus—The white-winged Jay.

47. Nucifraga multipunctata—The Larger-spotted Nutracker.

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि द्विपद नाम-पद्धति विशेष्य और विशेषण का ही प्रश्न है। इस के लिये आवश्यक है कि हम भारतीय भाषाओं में संज्ञा और विशेषण का क्रम देखें। इन सब में विशेषण पहिले और विशेष्य पीछे आता है। उदाहरणार्थ हिन्दी में 'काला घोड़ा' ही कहेंगे, 'घोड़ा काला' नहीं। प्रस्तुत विषय ही ठीक प्रयोग है, 'विषय प्रस्तुत' नहीं। बंगला लीजिए, वहां 'परम मित्र', 'परमा शान्ति' 'बड़ गाछ' ही हुआ करते हैं। विश्व कवि श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर की कविता 'सूरदासेर प्रार्थना लीजिए—

अपार भुवन, उदार गगन
श्यामल काननतल ......।

विशेषण कहीं भी संज्ञा के पीछे नहीं आता। इसी प्रकार गुजराती में भी विशेषण पहिले दिया जाता है 'चेपी रोग' (लगने वाले रोग contagious disease), 'लाला घोड़ा' 'लाल कपड़ु', 'मोटी बारी' (बड़ी खिड़की) आदि।

दक्षिण की भाषाओं से कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

मलयालम

चेल्लुम् कणक्क—Current account। कूट्टु कणक्क—joint accont। परदेश चन्त—foreign market। वलिय वीट्टुक—big horscs।

तामिल

शुड्डु नीर—उष्ण जल। पेरिय वर्त्तगन्—बड़ा व्यापारी। एकदिन कायिदम्—लिखित पत्र।

क्रोध एक विषधर सर्प है

श्री रामचरण महेन्द्र एम. ए.

क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधोऽमित्रमुखो रिपुः।
क्रोधोऽसि महातीक्ष्णः सर्वं क्रोधोऽपकर्षति ॥
तपते यतते चैव यच्च दानं प्रयच्छति ।
क्रोधेन सर्वं हरति तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत् ॥
(बालमीक रमायण उत्तर० ७१)

अर्थात्—'क्रोध प्राण हरण करने वाला शत्रु है, क्रोध अमित्र सुखधारी बैरी है, क्रोध महा तीक्ष्ण तलवार है, क्रोध सब प्रकार से गिराने वाला है, क्रोध तप, संयम, और दान सभी का हरण कर लेता है। अतएव क्रोध को छोड़ देना चाहिये।'

क्रोध का सम्बन्ध मन के अन्य विकारों से घनिष्ट है। क्रोध के वशीभूत हो कर हमें उचित अनुचित का विवेक नहीं रहता और हम हाथा पाई कर उठते हैं। बातों बातों ही में उखड़ उठना, लड़ाई झगड़ा साधारण सी बात है। यदि तुरन्त क्रोध का प्रकाशन हो जाय, तब तो मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से ठीक है, पर यदि वह अन्तःप्रदेश में पहुँच कर एक भावना ग्रन्थि बन जाय तो बड़ी दुखदायी होती है। बहुत दिनों तक टिका हुआ क्रोध वैर कहलाता है। वैर एक ऐसी मानसिक बीमारी है जिस का कुफल मनुष्य को दैनिक जीवन में भुगतना पड़ता है। वह अपने आप को सन्तुलित नहीं रख पाता। जिस से उसे वैर है, उस के उत्तम गुण, भलाई, पुराना प्रेम, उच्च संस्कार इत्यादि सब विस्मृत कर बैठता है। स्थायी रूप से एक भावना ग्रन्थि बन जाने से क्रोध का वेग तो धीमा पड़ जाता है किन्तु दूसरे व्यक्ति को सजा देने, नुकसान पहुँचाने या पीड़ित करने की कुत्सित भावना निरन्तर मन को दग्ध किया करती है।

वैर पुरानी जीर्ण मानसिक बीमारी है, क्रोध तत्कालीन और क्षणिक प्रमाद है। क्रोध में पागल हो कर हम सोचने का समय नहीं देखते,

---

केवल भारत में ही नहीं, सुदूर लङ्का में भी विशेषण संज्ञा से पहिले आता है। इन उदाहरणों में पहले सिंहली शब्द, उस के साथ अर्थ दिया जा रहा है—

मस—मांस। तम्बुपु—उबला हुआ मांस। पुलुस्सपु मस—भूना हुआ मांस। बदपु मस—तला हुआ मांस। सीमासहित समागम—लिमिटेड कम्पनी। सयन रथयक—रेल में सोने के लिए गाड़ी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि द्विपद नामपद्धति में संज्ञा और विशेषण की भांति जाति वाचक शब्द पहिले और प्रजाति वाचक पीछे आने चाहियें। यही हमारी सारी भारतीय भाषाओं के व्याकरण के अनुकूल होगा, यही अंग्रेजी में किया गया है, यही अन्य विज्ञान की शाखाओं का सिद्धान्त है. इसी का जापानियों ने अपनी शब्दावलि में अनुसरण किया है।



वैर उस के लिए बहुत समय लेता है। क्रोध में अस्थिरता, क्षणिकता, तत्कालीनता, बुद्धि का कुण्ठित हो जाना, उद्विग्नता, आत्म रक्षा, अहंकार की पुष्टि, असहिष्णुता, दूसरे को दण्डित करने की भावनाएं संयुक्त हैं। वैर में सोचने समझने प्रतिशोध लेने का समय होता है। हम अच्छी तरह सोचते हैं, कुछ समय लेते हैं और तब बदला लेते हैं। पं० श्रीरामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, 'दुख पहुँचने के साथ ही दुःखदाता को पीड़ित करने की प्रेरणा करने वाला मनोविकार क्रोध और कुछ काल बीत जाने पर प्रेरणा करने वाला भाव वैर है, किसी ने आप को गाली दी यदि आपने उसी समय उसे मार दिया तो आपने क्रोध किया। मान लीजिए कि वह गाली दे कर भाग गया और दो महीने बाद आप को मिला। अब यदि आपने उस से बिना फिर गाली सुने, मिलने के साथ ही उसे मार दिया तो यह आप का वैर निकालना हुआ।'

वैर में धारणा शक्ति अर्थात् भावों को सञ्चित कर मन में रोक रखने की शक्ति की आवश्यकता होती है। जिन प्राणियों में पुराने क्रोध को सञ्चित रखने की शक्ति विद्यमान है, वे ही वैर कर सकते हैं। क्रोध तो पशु, पक्षि, मनुष्य अर्थात् सभी प्राणियों को अस्थिर और पागल करने में पूर्ण समर्थ है किन्तु वैर यह कार्य नहीं कर सकता। वैर में स्थायित्व है।

क्रोध की मात्रा कम या अधिक, तेज या हलकी हो सकती है। चिड़चिड़ाहट क्रोध का हलका रूप है। साधारण भूलों या मामूली खराबियों, कमजोरियों या मामूली बुराइयों, या भद्दी बातों पर हम उद्विग्न होते हैं। पर यह उग्रता इतनी तेज नहीं होती। थोड़ी देर रह कर शांत हो जाती है। कभी अन्य किन्हीं कारणों से परेशान रहते हैं, कुछ अप्रिय हो जाने से दुःखी होते हैं, ऐसी मनोदशा में साधारण सी बात होते ही हम चिड़चिड़ा उठते हैं।

चिड़चिड़ाहट में सामान्य कारण ही उद्विग्नता उत्पन्न करने में समर्थ हैं। यह एक मानसिक दुर्बलता है जो अनेक कारणों से उत्पन्न हो सकती है। जिस व्यक्ति को पुनः पुनः डराया, धमकाया या अधिक कार्य लिया जाय, क्रोध के अधिक अवसर प्राप्त हों और मन शांत दशा में न आ सके तो क्रोध स्वभाव का एक अंग बन जाता है। यह फिर जरा सी असुविधा या कठिनाई में हलके रूप में प्रकाशित हुआ करता है।

चिड़चिड़ाहट प्रायः वृद्धों में अधिक देखने में आती है। रोगी अपनी दुर्बलता के कारण जरा जरा सी बात पर तिनक उठते हैं, औरतें काम से परेशान हो कर इतनी उद्विग्न रहती हैं कि मामूली सी बात पर चिड़चिड़ा जाती हैं। अध्यापक विद्यार्थियों की कांव कांव सुनते २ इतने दुःखी से हो उठते हैं कि तिनक उठते हैं। दूकानदार प्रायः ग्राहकों से जलभुन कर इस मानसिक दुर्बलता के शिकार बनते हैं। धार्मिक रूढ़िवादी दुनियां की प्रगति को देख कर जीवन भर बड़बड़ाया करते हैं।

क्रोध मन को एक उत्तेजित और खिंची हुई स्थिति में रख देता है जिस के परिणाम स्वरूप मन दूषित विकारों से भर जाता है। क्रोध में प्रथम तो उद्वेग उत्पन्न होता है। मन एक गु... किन्तु तीव्र पीड़ा से दग्ध होने लगता है। रक्त में गर्मी आ जाती है और उस का प्रवाह ब...

तेज हो जाता है। इस गर्मी में मनुष्य के शुभ भाव—दया, प्रेम, सत्य, न्याय, विवेक, बुद्धि जल जाते हैं।

क्रोध एक प्रकार का भूत है जिस के सवार होते ही मनुष्य आपे में नहीं रहता। उस पर किसी दूसरी सत्ता का प्रभाव हो जाता है। मन की निम्न वृत्तियां उस पर अपनी राक्षसी माया चढ़ा देती हैं, वह बेचारा इतना हत बुद्धि हो जाता है कि उसे यह ज्ञान नहीं रहता कि वह क्या कर रहा है।

आधुनिक मनुष्य का आन्तरिक जीवन और मानसिक अवस्था अत्यन्त विक्षुब्ध है, दूसरों में वह अनिष्ट देखता है, उन से हानि होने की कुकल्पना में डूबा रहता है, जीवन पर्यन्त इधर उधर लुढ़कता, ठुकराया जाता रहता है, शोक दुःख, चिन्ता, अविश्वास, उद्वेग, व्याकुलता आदि विकारों के वशीभूत होता रहता है। ये क्रोधजन्य मनोविकार अपना विष फैला कर मनुष्य का जीवन विषैला बना रहे हैं। उस की आध्यात्मिक शक्तियों का शोषण कर रहे हैं। साधना का सब से बड़ा विघ्न क्रोध नाम का राक्षस ही है।

क्रोध शांति भंग करने वाला मनोविकार है। एक बार क्रोध आते ही मन की अवस्था विचलित हो उठती है, श्वासोच्छ्वास तीव्र हो उठता है, हृदय विक्षुब्ध हो उठता है। यह अवस्था आत्मिक विकास के विपरीत है। आत्मिक उन्नति के लिए शान्ति, प्रसन्नता, प्रेम और सद्भाव चाहिए।

जो व्यक्ति क्रोध के वश में है, वह एक ऐसे दैत्य के वश में है, जो न जाने कब मनुष्य को पतन के मार्ग में ढकेल दे। क्रोध तथा आवेश के विचार आत्मबल का ह्रास करते हैं।

क्रोध का स्वास्थ्य पर प्रभाव

स्वास्थ्य का मन से अकाट्य सम्बन्ध है। उत्तम स्वास्थ्य का मन की शांति, उत्साहपूर्ण आशावादी, सचेष्ट सद्प्रेरणा शुद्ध मनः स्थिति से सम्बन्ध होता है। हमारी आन्तरिक प्रेरणायें भाव, स्वयं भू वृत्तियां और इच्छायें गुप्त मन द्वारा सञ्चालित होती हैं। मन के अन्दर ही पोषक तथा सञ्जीवनी क्रियाओं की उत्पत्ति होती है। गुप्त मन के संस्कार और अन्तःप्रेरणा शरीर में पोषण क्रिया रखती हैं। अन्तर के आदेश ही हमारी पाचन शक्ति को ठीक रखती, गुर्दे को क्रियाशील बनाती, यकृत का महत्वपूर्ण कार्य कराती है। मन को ठीक स्थिति में रखने तथा उस से पूरा पूरा काम लेने की शक्ति होने के कारण ही मनुष्य का स्थान सब प्राणियों से ऊंचा है।

प्रकृति का नियम यह है कि यदि भोजन शांत अवस्था में किया जाय तो उस का प्रभाव कल्याणकारी होगा पर यदि वही भोजन करते समय आप खिंचे हुए हों तो इष्ट का प्रभाव भी अनिष्ट हो आयेगा, पेट भर भोजन न किया जा सकेगा। कमजोरी आयेगी, रक्त दूषित होगा, पाचन शक्ति में निर्बलता आ जायेगी। खाद्य पदार्थों पर क्रोध के कारण दूषित प्रभाव पड़ता है।

कुदरत चाहती है कि हम शांत रहें, प्रसन्न रहें और आशावादी बने रहें, मस्त और उन्मुक्त बने रहें—ऐसी निर्लिप्त अवस्था में ही दूध, फल, तरकारी, अन्न इत्यादि अपना शुभ प्रभाव दिखाते हैं। मानसिक तनाव या उद्विग्न अवस्था में

अन्दर के अंग प्रत्यंग अपना कार्य उचित रीति से नहीं कर पाते। सद्विचारों से ज्ञान तन्तु पुष्ट होते हैं, मनाविकारों से उन की स्वाभाविक शक्ति ठण्डी पड़ती है, प्राण शक्ति का क्षय होता है, शरीर यन्त्र गतिहीन हो जाता है, मनुष्य पशु तुल्य बन जाता है। भोजन द्वारा स्वास्थ्य एवं जीवाणु तत्व प्राप्त करने के हेतु मन को उत्पादक स्थिति में रखना बड़ा कल्याणकारी है।

उस व्यक्ति के स्वास्थ्य की कल्पना कर सकना सरल है जो भोजन करते समय कुढ़ता रहता है। जिस के मुख से कुत्सित शब्दों का उच्चारण होता रहता है और जो नाक भौं सिकोड़े मानसिक तनाव की अवस्था में जल्दी जल्दी भोजन ठूंस लेता है। उसे भोजन में क्या स्वाद आयेगा? उस से कैसे पौष्टिक तत्व प्राप्त होंगे ? भोजन अपना नैसर्गिक कार्य न कर सकेगा। ईर्षा और क्रोध दोनों दाहक हैं। देह और मन को जलाते हैं। मनुष्य को पनपने का अवसर नहीं देते। क्रोध से बनी विचार-मूर्तियां नीचे ऊपर, मानस पटल के प्रत्येक कोने पर छा जाती हैं और उसे मोहाच्छन्न कर देती हैं। इन विचार-मूर्तियों में एक प्रकार का कम्पन होता रहता है तथा ये जैसे हैं वैसी ही किरणें निकलती रहती हैं। साथ ही जैसे जैसे ये विचार मूर्तियां हमारे मानसिक जगत् में बनी हैं, वैसी ही, उसी क्षण जिस के निमित्त ये बनी हैं, उस की ओर दौड़ जाती हैं।

क्रोध के समय आप का मुख मण्डल कैसा रहता, जरा शीशे में देखिये। कैसा मुख लाल हो जाता है, कटु शब्दों का उच्चारण करने से शरीर कांपने लगता है, भुजायें फड़कने लगती हैं, भृकुटी चढ़ जाती है, नेत्र लाल हो जाते हैं, होंट चलने लगते हैं। मन में उद्वेग, विकलता, गर्व, उग्रता, अमर्ष इत्यादि अनुभव उदय होते हैं। प्रत्येक मानसिक व्यापार या क्रिया का सम्बन्ध चेहरे के सौन्दर्य से है। मन के विकार का प्रभाव शरीर के अवयवों पर लक्षित होता है। जिस प्रकार समुद्र के धरातल पर आने वाली सूक्ष्म तरंगों का प्रभाव समूचे समुद्र पर पड़ता है, उसी प्रकार साधारण से ले कर उन्नत एवं परिपुष्टतम विचार हमारी सूक्ष्म पेशियों को प्रभावित किया करते हैं। मन के आदेश से अनेक अहेतुक क्रियायें हम किया करते हैं।

क्रोध सौन्दर्य का शत्रु है। सौन्दय में मन का शील, मधुरता, उत्तम स्वभाव, शुभ्र भावनायें, आध्यात्मिक सजीवनता सम्मिलित हैं। सौन्दर्य एक आत्मिक गुण है। यदि हम आनन्दमयी वृत्ति में रहेंगे, मन को शुभ कल्पनाओं, पूर्ण निर्दोष स्वास्थ्यमय शुभेच्छाओं से भरी रखेंगे, तो ये हमारे अन्तर्मन में प्रविष्ट हो जायंगे। पुनः पुनः इन्हीं शुभ भावनाओं का अभ्यास करने से ये हमारे मुख मण्डल पर प्रकट हो जायेंगे। इस के विपरीत यदि हम क्रोधाग्नि में जलते रहेंगे। अपकारक विकारों या गर्व, उग्रता अमर्ष इत्यादि मानसिक विषों से भरे रहेंगे, तो मुख भी विवर्ण हो जायेगा, चेहरा रौद्र रूप धारण कर लेगा। ऐसी भयानक सूरत दिखा कर हम यह प्रकट करते हैं कि हमारे शरीर में मानसिक उद्वेग हो रहा है।

क्रोध रहित होना उच्च जीवन, विचार शीलता और शुभ्र दैवी अन्तर्वृत्ति का परिचायक है। क्रोध कुत्सित है, अस्वाभाविक और पाप युक्त है। यह छल, कपट, नीचता, हिंसा, अधमता, लज्जा, अनीति का जन्मदाता है, तमोगुण का आवरण उत्पन्न कर मनुष्य का दैविक और

आध्यात्मिक अहित कराने वाला दुष्ट शत्रु है यह वह विष है जो शरीर के अंगों को बिगाड़ता, तेज, स्वास्थ्य, कान्ति, बल और आयु को क्षीण करता है। क्रोध में अविवेक उत्पन्न होता है।

क्रोध के विषय में श्री डा० बनारसीदास जैन के विचार यहां उद्धृत किये जाते हैं। आप लिखते हैं कि—'क्रोध प्रबल हो जाने पर खून में एक प्रकार का विष पैदा हो जाता है जिस से क्रोधी मनुष्य को बहुत हानि होती है। यही वजह है कि क्रोधी प्रायः दुर्बल रहते हैं। क्रोधी मनुष्य का खून इतना जहरीला हो जाता है कि उस के खून की एक बूंद खरगोश आदि जीवों के शरीर में पिचकारी द्वारा डालने से उन की दशा बड़ी खराब हो जाती है। जिस खरगोश के शरीर में उस का प्रयोग किया जाता है वह दूसरे खरगोश को फाड़ खाता है और कभी-कभी मर तक जाता है। इसी से क्रोध आत्मघात के तुल्य है। क्रोध में आकर मनुष्य ऐसे ऐसे काम कर डालता है कि जिस से उसे बाद में पछताना पड़ता है तथा सन्ताप सहना पड़ता है।

क्रोधी मनुष्य कभी स्वस्थ नहीं रह सकता। उस का चेहरा पीला पड़ जाता है। शरीर सूख कर कांटा हो जाता है। पाचन-शक्ति तो बिलकुल ही बिगड़ जाती है जिस के फलस्वरूप शरीर रोगों का घर बन जाता है। क्रोधी मनुष्य की नाड़ी की गति तेज हो जाती है। रगें ऊपर को ओर खड़ी हुई दिखाई देती हैं। क्रोधावेश में वह दांत पीसने लगता है, उस की सांस जल्दी जल्दी चलने लगती है, भौंए और हाथ सिकुड़ने लगते हैं। उस का शरीर रोमांचित हो जाता है, वाणी बदल जाती है, चेहरा लाल हो जाता है, जबान खुश्क हो जाती है और खून में गर्मी पैदा हो है। हारवर्ड मैडीकल कॉलेज के प्रोफेसर डा० वाल्टर केनिन लिखते हैं कि—'मनुष्य के दोनों गुर्दों के ऊपर चने के बराबर दो छोटी २ ग्रन्थियां होती हैं जिन में से एक प्रकार का पदार्थ निकलता है जिसे एड्रेनलिन कहते हैं। यह पदार्थ जब खून में मिल कर जिगर में पहुँचता है तो वहां जमे हुये ग्लाईकोजन को शक्कर में बदल देता है। यह शक्कर खून में मिल कर नाड़ियों द्वारा शरीर के तमाम हिस्सों में पहुँच जाती है जो रग और पुट्ठों में बहुत खिंचावट पैदा करती है।

क्रोध से बचने के उपाय

क्रोध से बचने का स्थायी और वास्तविक उपाय तो यही है कि हम क्रोध के कारण को मालूम करने की कोशिश करें। क्रोध का आरम्भ या तो मूर्खता से या दुर्बलता से अथवा मानव स्वभाव से अनभिज्ञता के कारण होता है। जब कोई व्यक्ति हमारा कहना नही मानता या हमारी इच्छा के विरुद्ध काम करता है तो हम आपे से बाहर हो जाते हैं और उस पर बेतहाशा बरस पड़ते हैं। हम यह समझने की तकलीफ ही नहीं करते कि हमें दूसरों को अपनी इच्छानुसार चलाने का क्या अधिकार है। हम अपने रोजमर्रा के अनुभव से हम भली प्रकार जान सकते हैं कि प्रत्येक मनुष्य की वृत्ति दूसरे मनुष्य से भिन्न होती है। ऐसी हालत में सभी मनुष्य एक ही लाठी से कैसे हांके जा सकते हैं। मनोविज्ञान के इस अटल सिद्धांत को समझ लें तो हम बहुत हद तक क्रोध के चंगुल में पड़ने से बच सकते हैं और आनन्द से जीवन व्यतीत कर सकते हैं।



नौ

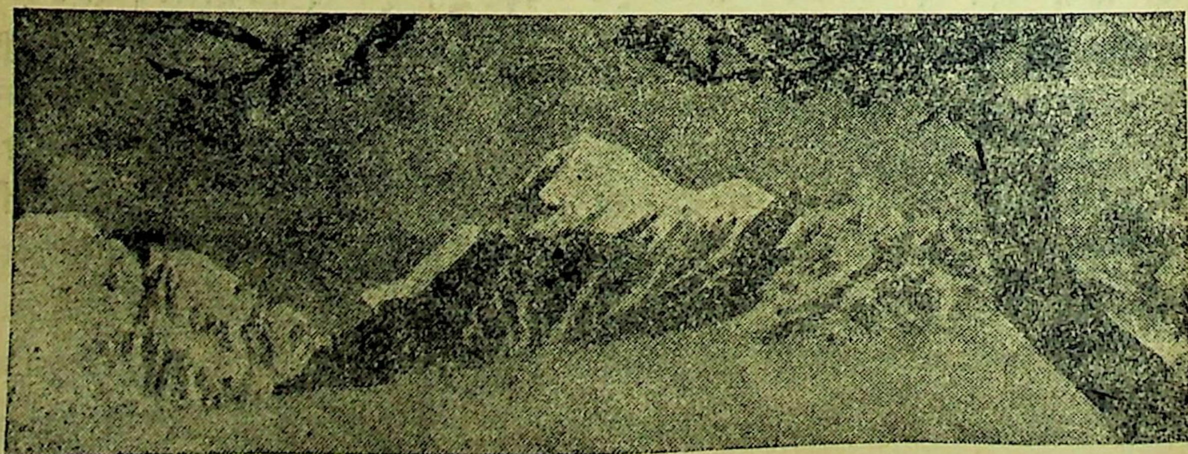
पण्डिम शिखर अभियान

श्री मनोहर विद्यालङ्कार

महाकवि कालिदास ने नगाधिराज हिमालय को 'पृथ्वी का मानदण्ड' कहा है। यह पृथ्वी का मानदण्ड अनादिकाल से मानव-जाति को चुनौती देता रहा है। १९ वीं सदी से पूर्व के मानव ने इस चुनौती का किस प्रकार उत्तर दिया ? यह आज के तथाकथित सभ्य युग के लिए अज्ञात है, किन्तु परवर्ती काल में वैज्ञानिक उन्नति पहले यूरोप में हुई और हम भारतवासी दासता शृंखला में जकड़ गये—इस का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि 'चरैवेति' के प्राचीन आर्यों के जीवनादर्श को हम तो भूल गये और पाश्चात्य लोग हम से आगे बढ़ गये।

१९ वीं सदी से ले कर अब तक हिमालय की इस चुनौती का उत्तर अधिकतर यूरोपवासियों ने ही दिया है और अपनी ओर से इस का बड़े से बड़ा मूल्य चुकाया है। किन्तु 'पृथ्वी के मानदण्ड' ने आज तक मनुष्य से पराजय स्वीकार नहीं की। हियालय की २८ हजार फीट से ऊंची तीन सर्वोच्च चोटियां तो लगातार अनेक प्रयत्न किये जाने के बाद भी आज तक सर्वथा अजेय हा हैं, २६ हजार फीट से ऊंची हिमालय की १४ चोटियों में से भी अभी तक केवल एक पर ही मानव का पांव पड़ा है (यह चोटी अन्नपूर्णा है, जिसे गत वर्ष ही फ्रांसीसियों ने सर किया है ।) हिमालय की ७६ चोटियां २५ हजार फीट से अधिक ऊंची हैं, किन्तु उन में से केवल नन्दा देवी और कामेत तक ही मनुष्य पहुँच सका है। कञ्चन-जंघा-शृंखला-स्थित पण्डिम शिखर यद्यपि २३ हजार फीट से अधिक ऊंचा नहीं है, किन्तु आज तक वह भी अजेय है । पण्डिम पर आरोहण का प्रयत्न करने वाला हमारा प्रथम भारतीय दल है।

दार्जिलिंग से दस दिन की यात्रा के पश्चात् हमारा दल चेमाथग पहुंच गया। यहीं हम ने बेसकैम्प बनाया। १५॥ हजार फीट की ऊंचाई



हिमाच्छादित पण्डिम शिखर का मनोरम दृश्य

के इस स्थान का तापमान दिन में शून्य अन्श से दो-तीन अन्श ऊपर रहता, किन्तु रात को तापमापक यन्त्र में पारा शून्य से १० अन्श नीचे तक जा गिरता। जिस दिन हम यहां पहुँचे, उस रात दिन भर की कड़ी मञ्जिल के कारण अत्यन्त थके हुये होने पर भी हमें अच्छी तरह नींद नहीं आई। मेरी छाती और सिर में तो रात भर पीड़ा होती रही, किन्तु बाकी सब साथियों के भी सिर और छाती में दर्द रहा। मुझे करीब आधी रात को बड़े जोर की प्यास लगी। प्यास के मारे मेरा गला सूखने लगा और सांस लेने में कष्ट होने लगा। मैं समझता हूं कि आधी रात के समय तीव्र प्यास लगने का का कारण यह था कि उस समय तम्बू के बाहर शीताधिक्य से वायु की सारी नमी जम कर बर्फ बन गई थी। अगले दिन प्रातः उठने पर तम्बू के ऊपर और उस के आस-पास के चारों ओर के विस्तृत भू-भाग पर बर्फ की हल्की परत जमी हुई दिखाई दी। तम्बू के बाहर बर्तन में भरा हुआ पानी भी जम गया था। इस प्रकार वायु में नमी का अभाव हो जाने के कारण प्यास लगना, गला सूखना और सांस लेने में कष्ट होना अवश्यम्भावी था।

सामने से आक्रमण की तैयारी

२२ सितम्बर को दिन भर विश्राम करने का विचार था; किन्तु हमारे पास समय इतना कम था कि थके होने पर भी पण्डिम शिखर के आरोहण पथ का निश्चय करने का फैसला किया गया। हमारे तीनों ओर गल थे। (ग्लेशियर को गढ़वाल और कुमायूं में 'गल' ही कहा जाता है। हिन्दी में हिमनद शब्द का प्रयोग होता है, किन्तु वह यथार्थ न होने के कारण हम गल शब्द का ही प्रयोग करेंगे।) इन गलों के ऊपर से हो कर शिखर तक जाना सम्भव है या नहीं और यदि सम्भव है, तो उस के लिए सुगम पथ कौन-सा हो सकता है, यह जांचने के लिए एक गल की ओर तो साथी अग्निहोत्री गया और बाकी दो की ओर क्षितीश और रतन गये। मैं अस्वस्थता के कारण कहीं भी जाने में असमर्थ था।

चाय पी कर तीनों साथियों ने दो-दो गरम जुराबों के ऊपर फौजी जूते पहनें, पांवों पर गरम पट्टी बांधी, गरम पजामा और गरम बनियान पहना; उस के ऊपर से गरम कमीज और गरम जर्सी और उसके भी ऊपर से गरम और जल वायु सिद्ध (वाटर एंड एयर प्रूफ) जाकेट पहनी। सिर पर कानों तक को ढकने वाले गरम टोप पहन हिम की चौंध से बचने के लिये आंखों पर ऐनक लगाई और हाथों में हिमकुठार (आइस-ऐक्स) लेकर तीनों अपनी-अपनी दिशाओं को और चल दिये।

क्षितीश और रतन ने दुपहर को वापिस आकर बताया कि सामने की जिस पहाड़ी पर वे चढ़े, वह बहुत ऊंची नहीं है। ऊपर चढ़ कर दोनों ओर के गल नीचे से ऊपर तक बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देते हैं।

सामने वाले गल में स्थान-स्थान पर सैंकड़ों फीट गहरे गड्ढे, कोटर, खोह और दरार बनी हुई हैं। धूप की गर्मी से जब ऊपर की बर्फ पिघलती है तो दरार के किनारे हिम के नाम-मात्र सहारे पर खड़े हुये पत्थर धड़ाम-धड़ाम

सैंकड़ों फीट नीचे गिरते हैं। परन्तु गल का ऊपरी भाग बहुत कुछ सपाट जैसा लगता है, दूरबीन से देखने पर वहां भी हिम के बड़े-बड़े तोदे नजर आते हैं। प्रयत्न करने पर भी उस गल पर लगभग २०० गज से अधिक ऊपर नहीं जा सकते।

बायें हाथ के गल की बर्फ की तह बीच में खूब मोटी है। उस का ढलान भी इतना सीधा है कि उस पर चढ़ने की कल्पना करना भी सहज नहीं है।

दोपहर को कैम्प में पहुँचने पर अग्निहोत्री ने जो विवरण दिया वह भी बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं था।

इस समस्त विवरण का निष्कर्ष यह था कि पण्डिम के शिखर पर सामने से आक्रमण नहीं किया जा सकता। अब केवल एक ही उपाय और शेष था—कि पीछे की ओर जाकर देखा जाय, शायद कोई रास्ता निकल आये।

२३ को प्रात: ६ बजे मुझे छोड़ कर बाकी तीनों साथी गोचा ला की ओर चले। आज नीमा और पेम्बा नरबू उन के साथ थे।

शाम को तीनों साथियों ने गोचाला (ला = दर्रा) से लौट कर बताया कि पण्डिम पर सामने से आरोहण करना असम्भव समझ कर पीछे से आक्रमण करने की जिस सम्भावना को ले कर हम १६ हजार फीट ऊंचे गोचा दर्रे पर गये वहां भी निराशा के सिवाय हमारे हाथ कुछ नहीं लगा। गोचा के शिखर के थोड़ा नीचे की ओर कैम्प लगाया जा सकता है किन्तु उधर से पण्डिम का शिखर दृष्टि से सर्वथा ओझल हो गया। अलबत्ता कञ्चनजंघा के शिखर के चरणतल में बिछा हुआ महाविशाल और अत्यन्त भयावह थालुंग ग्लेशियर दृष्टि को ऐन सामने से चुनौती दे रहा है परन्तु उस से जूझने का हमारा तो इरादा था नहीं। वापिस आ गये।

अब क्या करें

रात को तम्बू के अन्दर मोमबत्ती के प्रकाश में मन्त्रणा-परिषद् हुई। अब क्या किया जाय। शिखर पर आरोहण का कोई मार्ग न मिलने से हम निराश थे। उधर मौसम का यह हाल था कि जब से हम ने चेमाथंग में अपना 'बेस कैम्प' बनाया था तब से प्रतिदिन ११ बजे के आसपास बादल छा जाते थे और बर्फ गिरने लगती थी। मेरी हालत सुधरने के बजाय लगातार गिरती जा रही थी। गोचा ला से लौटते हुए साथी रतन भी बर्फ में फिसल गया और उस के घुटने में चोट लग गई।

मैंने कहा—'आप लोग मेरी चिन्ता न करें। यदि पण्डिम पर चढ़ सकने का कोई भी मार्ग निकलने की सम्भावना हो तो आप फिर यत्न करें। सब से पहिले पण्डिम, बाकी सब कुछ पीछे। शक्ति का कण भी शरीर में रहते मैं बीमारी का सामना करूंगा।

बीमारी की दशा में भी मेरा उत्साह देख कर सब के मन में प्रसन्नता हुई। क्षितीश और रतन का विचार था कि उन्होंने जिन दिशाओं में आजमाइश की थी उधर शिखर पर चढ़ने का कोई मार्ग निकल सकने की

सम्भावना दिखाई नहीं देती, इस लिए अब समय गवाना बेकार है। किन्तु साथी अग्निहोत्री ने कहा—'मेरा विचार है कि जिस गल पर मैं अकेला पहले दिन गया था उस के द्वारा हमें ऊपर चढ़ने का एक और प्रयत्न करना चाहिये। शायद कुछ सफलता मिल सके।'

हमें ५ अक्टूबर को दिल्ली वापस पहुँचना था। इस लिये हमें हर हालत में २ अक्टूबर तक दार्जिलिंग पहुँच जाना चाहिये। अच्छे मौसम की प्रतीक्षा के लायक हमारे पास समय नहीं था। किन्तु 'परिडम पहले और बाकी सब कुछ पीछे' भावना की विजय हुई और अन्त में निश्चय हुआ कि २४ सितम्बर को सवेरे ४ बजे चल कर क्षितीश और अग्निहोत्री आखिरी बार उस गल पर चढ़ने का प्रयत्न करेंगे जिस में अग्निहोत्री के कथनासुार थोड़ी बहुत सफलता की आशा थी।

रात को यह निश्चय कर के सो गए। मुझे अपने साथियों की हिम्मत पर खुशी थी। सवेरे उन्हें विदा देने के लिए यथासमय नींद भी खुल गई, किन्तु, उस ब्राह्ममुहूर्त में जब तम्बू से बाहर झांका तो देखा कि कल दुपहर को जो बादल छाये थे वे अब तक ज्यों के त्यों हैं और उन के फटने की कोई आशा नहीं है।

धीरे-धीरे सवेरा हुआ। बादल भी ज्यों के त्यों थे। तीव्र झंझा बह रही थी।

अब अधिक समय गंवाना बेकार था।

मैंने नीमा को बुला कर कहा—'सब कुलियों से बुला कह दो कि वापस चलने की तैयारी करें। ८ बजे यहां से भोजन कर के और चाय पी कर चलेंगे।'

धीरे-धीरे सामान बांधना शुरू हो गया। तम्बू उखड़ गये। बिस्तर बन्ध गये। कुलियों ने अपना-अपना बोझ सम्भाल कर तैयार कर के रख दिया।

अभी तश्तरियों में भोजन परोसा ही जा रहा था कि बादल फट गये, आसमान साफ हो गया और सूरज की चमकीली धूप चारों ओर खिलखिला उठी। [असमाप्त]

अर्थशास्त्र का लक्षण

श्री अविनाशचन्द्र वेदालङ्कार

लक्षण की समस्या

सम्भवतः किसी भी परिभाषा का ऐसा लक्षण सम्भव नहीं है जो कि अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और हेत्वाभास के दोषों से सर्वथा मुक्त कहा जा सके। इसी लिए रोम के एक कानून शास्त्री ने लिखा था—'कोई भी लक्षण सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकता। प्रत्येक लक्षण में तर्कशास्त्र और तथ्यों की दृष्टि से कोई न कोई दोष उद्भावित किया जा सकता है।' तथापि जैसा कि सिजविक ने लिखा है—'वैज्ञानिक गवेषणा के प्रत्येक क्षेत्र में परिभाषाओं के स्पष्ट और नियत भाव द्योतक लक्षण स्वतः विज्ञान की एक महत्व पूर्ण परिपूर्णता है।'[1]

रोम के उस कानून शास्त्री की उपरोक्त उक्ति अर्थशास्त्र परिभाषा पर पूर्ण रूप से लागू होती है। आप को आश्चर्य होगा कि अर्थशास्त्र के स्वरूप, प्रतिपाद्य विषय और विचार क्षेत्र पर प्रकाश डालने वाला अर्थशास्त्र परिभाषा का भी अभी तक कोई निर्दोष और सर्वसम्मत लक्षण नहीं किया जा सका। इन प्रयत्नों की असफलता को देखते हुये प्रसिद्ध आंगल अर्थशास्त्री कीनिज ने लिखा है—'अर्थशास्त्र विज्ञान लक्षणों की उलझन में ही उलझा हुआ प्रतीत होता है।'[2] परन्तु इस उलझन से मुक्ति का उपाय क्या अर्थशास्त्र की परिभाषावलि के लक्षण करने [के] प्रयत्नों की समाप्ति में ही निहित है ? रिचा[र्ड] जोन्स और कौमटे सदृश अर्थशास्त्रियों ने इस[ी] मार्ग का आश्रय लिया है। किन्तु यदि अर्थशास्त्र विज्ञान है तो परिपूर्णता के लिये अन्[य] मौलिक विज्ञानों के सदृश उस की अपनी निय[त] परिभाषावलि और प्रत्येक परिभाषा के आधार भूत भावद्योतक लक्षण भी होने आवश्यक हैं। यहां हम अर्थशास्त्रियों द्वारा अर्थशास्त्र के सम[य] समय पर किये गये लक्षणों पर प्रकाश डाल[ने] का प्रयत्न करेंगे।

सम्पत्ति विज्ञान

अर्थशास्त्र का प्रारम्भ काल का लक्षण [है] अर्थशास्त्र सम्पत्ति विज्ञान। आदम स्मिथ, [जे० बी० से] और वौकर ने अर्थशास्त्र के सम्पत्ति परक [ही] लक्षण किए हैं। आदम स्मिथ ने अपनी पुस्[तक] का नाम ही 'एन इन्कायरी इन्टु दि नेचर ए[ण्ड] कौज़ेज़ आफ वैल्थ आफ नेशन्स' रक्खा है। जे[०] वी० से ने लिखा है—'अर्थशास्त्र वह विज्ञान [है] जो कि सम्पत्ति की समीक्षा करता है।' वौ[कर] ने अर्थशास्त्र का लक्षण किया है—'अर्थशा[स्त्र] ज्ञान की वह शाखा है जिस का कि सम्पत्ति [से] सम्बन्ध है।'

अर्थशास्त्र का यह लक्षण सरल, स्पष्ट और [जन] साधारण के लिए बुद्धिगम्य है। इस लक्षण [में] आर्थिक घटनाचक्रों और आर्थिक दृष्टि वि[...] की ठीक २ माप तोल के लिए द्रव्य और आर्[थिक]

१ एलिमेन्टस ऑफ पॉलिटिक्स, पृ० १६।

२ स्कोप एण्ड मैथड ऑफ पोलिटिकल इकानमि, १६३०; पृ० १५३।

सिद्धांतों की सार्वभौमता के लिये विविध भावनाओं से प्रेरित वास्तविक मानव के स्थान में केवल मात्र अर्थ भावना चक्र से प्रेरित काल्पनिक मानव पर बल देने का आग्रह विशेष रूप से प्रकट होता है। परन्तु ऐसा विज्ञान जिस में मानव क्रियाओं के मापक और निर्णायक द्रव्य अथवा धातु के कुछ टुकड़े हों और वह मानव जो कि अपनी चर्या में द्रव्य के अतिरिक्त अन्य नैतिक एवं परार्थ की भावनाओं के प्रति सर्वथा संज्ञाशून्य हो सद् धार्मिक दृष्टि से व्यक्ति और समष्टि के लिये क्या कल्याणकर सन्देश सुना सकेगा ? १६ वी शती में इसी लिये विचारकों में अर्थशास्त्र के विरुद्ध एक तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई। कार्लाईल की 'पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट' (बुक ३)। रस्किन की 'अन टु दिस लास्ट' और विक्टोरिया युग के महान् उपन्यासकार डिकन्स की 'हार्ड टाइम्स' पुस्तकों में उस प्रतिक्रिया साक्षात्कार किया जा सकता है। कार्लाईल ने अर्थशास्त्र को स्वार्थ और लोभ की शिक्षा देने वाला धर्मग्रन्थ घोषित किया। रस्किन ने कहा—'स्वस्थ, सदाचारी और हृष्ट पुष्ट व्यक्ति ही राष्ट्र की एक मात्र सच्ची सम्पत्ति है न कि पौंड, शिलिंग और पैन्स। यही नहीं उस ने नैतिक आधारों पर एक नवीन अर्थशास्त्र के निर्माण का भी प्रयत्न किया।

इस आरम्भिक लक्षण में सम्पत्ति पर बल देने के कारण अर्थशास्त्र विज्ञान के विरुद्ध जो तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई उस को दृष्टि में रखते हुए अनुवर्त्ती अर्थशास्त्रियों को लक्षण में परिष्कार करने के लिये बाध्य होना पड़ा। परन्तु अर्थशास्त्र का यह लक्षण क्या वस्तुतः भौतिकवाद, अनैतिकता और भोग विलास का पक्षपोषक है? और क्या अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से यह लक्षण सर्वथा अग्राह्य और अनुपादेय समझा जाना चाहिये ?

प्रचलित व्यवहार में सम्पत्ति परिभाषा प्रचुरता, समूह अथवा राशि का सूचक है। उस परिभाषा का प्रयोग करते हुये यह कल्पना अत्यन्त क्लिष्ट प्रतीत होती है कि उस परिभाषा के अन्तःस्तल में न्यूनता उस को एक अनन्यतम विशेषता के रूप में छिपी हुई है ! क्लिष्ट होते हुए भी यह कल्पना अर्थशास्त्र में एक वैज्ञानिक तथ्य के रूप में विद्यमान है। अर्थशास्त्र में सम्पत्ति की निम्न मुख्य विशेषतायें हैं: उपयोगिता, पारमित्य अथवा दुर्लभता और विनिमय साध्यता। अर्थशास्त्रीय प्रकाश में सम्पत्ति की विशेषताओं के दृष्टिकोण से अर्थशास्त्र के इस लक्षण पर अब दृष्टिपात कीजिये। लक्षण में भौतिकवाद और उस में अन्तः निहित अनैतिकता और विलासिता का जो आभास प्रतीत होता है सम्पत्ति की द्वितीय विशेषता पारमित्य के कारण उस का तिरोभाव हो जावेगा। अब इस लक्षण का आशय यह होगा—'अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो कि मानवीय आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने की क्षमता रखने वाले दुर्लभ और विनिमय साध्य पदार्थों के उपभोग, उत्पत्ति, विनिमय और विभाजन की विवेचना करता है।

तथापि एकमात्र सम्पत्ति पर बल देने के कारण यह लक्षण एकाङ्गी और भ्रामक है। लक्षण में महत्व पूर्ण तत्व, मानव उपेक्षित है। इस लिये अर्थशास्त्र का यह लक्षण अर्थशास्त्रियों को अग्राह्य और अमान्य है।



कण्व वंशी ऋषि

श्री भगवद्दत्त वेदालंकार

यजुर्वेद का एक मन्त्र[1] है जिस की व्याख्या उस की शाखा संहिताओं में मिलती है। व्याख्या का सार यह है कि—'[2]जिस प्रकार ग्वाला गौ का दुहता है उसी प्रकार कण्व भी अग्नि का दोहन करता है अर्थात् उस अग्नि के दोहन को जानता है।'

दोहन अग्नि के उद्दीपन, प्रकटीकरण व उस के आविर्भाव को कहते हैं। अग्नि का यह दोहन व प्रकटीकरण कण्व किस प्रकार करता है ? और उस में क्या रहस्य है ? इत्यादि प्रश्नों का समाधान हम आगे करने का प्रयत्न करेंगे। यहां हमें केवल यह देखना है कि मन्त्र एक ही है और शाखा संहिताओं की सभी व्याख्याओं का सार भी एक ही है। परन्तु कण्व के जो विशेषण आते हैं वे दो स्थलों पर एक दूसरे से भिन्न हैं। कई विद्वानों का यह मत है कि ये विशेषण कण्व के पिता के नाम है। उदाहरण के तौर पर वे निम्न प्रकार हैं—

तमस्य कण्व एव आयसोऽवेत् ।
तै० सं० ५ । ४ । ७ । ५, काठक-२१ । ६
तं वै कण्वः आवयसोऽग्ने दोंह विदांचकार।
मै० सं० ३ । ३ । ६

अर्थात् उस अग्नि के दोहन को आयस व आवयस कण्व ही जानता है।

ये आयस या आवयस दोनों कण्व के विशेषण हैं। पिता के नाम अयस्, अयस् (अ यसि भवः[1], अयसः[2] पुत्र) या अवयस ये हो सकते हैं। प्रश्न यह है कि आयस और आवयस जो कि कण्व के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुये हैं, क्या ये कण्व के पिता की ओर निर्देश करते हैं अथवा कण्व के किसी गुण व उस की किसी विशेषता की ओर निर्देश कर रहे हैं ? स्थूल दृष्टि से देखने पर ये दोनों ही बातें सम्भव हैं। कण्व की किसी विशेषता को बताने वाले विशेषण भी ये हो सकते हैं और कण्व के पिता भी कहे जा सकते हैं। परन्तु वेद की अन्तः साक्षी को सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर मानव रूप में इन को कण्व का पिता मानने में कई कठिनाईयां आ उपस्थित होती हैं ! जो कि निम्न प्रकार हैं—

एक तो यह कि समकालीन संहिताओं में एक ही मन्त्र की व्याख्या में इतने विभिन्न रूप वाले (अयस् , अवयस) दो नामों का आना इस बात का द्योतक है कि ये किसी एक व्यक्ति के नाम नहीं हैं। व्यक्ति वाची नाम मानने की अपेक्षा तो यह अधिक उचित प्रतीत होता है कि इन्हें कण्व की किन्हीं दो विशेषताओं को बताने वाले दो विभिन्न विशेषण मान लिया जाये।

---

१ तां सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां पयसा महीं गाम् । यजु० १७ । ७४

२ तै० सं० ५ । ४ । ७ । ५, काठक० २१ । ६, मै० सं० ३ । ३ । ६

१ मोनियर विलियम्स ।

२ तैत्तिरीय संहिता (भट्ट भास्कर मिश्र कृत) ५।४।७।३४ ।
'अयसोऽपत्यं आयसः' तै० स० ५ । ६ । ५ (सायण भाष्य) ।

दूसरी कठिनाई हमारे समक्ष यह है कि यदि हम दुर्जनतोष न्याय से यह मान भी लेवें कि ये कण्व के पिता हैं तो भी निश्चित् रूप से हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कण्व गोत्र के प्रवर्त्तक पूर्व-भावी कण्व के ये पिता नहीं हैं। क्योंकि ये विशेषण केवल यजुः शाखा संहिताओं के हैं जो कि ऋग्वेदादि संहिताओं से अर्वाचीन हैं। इस लिये ऋग्वेद में वर्णित कण्व के ये पिता कैसे हो सकते हैं? उस अवस्था में तो ये कण्व के पिता माने जा सकते थे जब कि ऋग्वेद में कण्व के पिता का निर्देश न होता। वहां स्पष्ट तौर पर नृषत् को कण्व का पिता माना है और इन श्रयस व श्रवयस का सम्पूर्ण ऋग्वेद में संकेत तक नहीं। इस लिये यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि कण्व गोत्र के प्रवर्त्तक पूर्व भावी कण्व के ये पिता नहीं हैं।

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि यदि ये पूर्व भावी कण्व के पिता नहीं हैं तो पश्चाद् भावी किसी कण्व के पिता होंगे। इस सम्बन्ध में हम यह कह सकते हैं कि वेदों में जितने भी कण्ववंशी ऋषियों के नाम व वर्णन आते हैं उन में श्रयस व श्रवयस नाम के कोई भी ऋषि नहीं हैं। इस पर यदि यह कहा जाये कि यह आवश्यक नहीं कि एक गोत्र के सभी ऋषियों का वर्णन वेदों में आ गया हो। और यह भी सम्भव है कि प्रमुख ऋषियों का ही वर्णन वेदों में हो, अथवा श्रयस व श्रवयस ऋषि कोटि में न पहुँचे हों इस लिये इन का संकेत मात्र ही पर्याप्त समझा गया हो इत्यादि युक्तियों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पश्चाद् भावी किसी कण्व के तो ये पिता हो ही सकते हैं।

इस सम्बन्ध में हम शाखा गत मन्त्र की उस व्याख्या पर विचार करते हैं जहां कि ये विशेषण के तौर पर प्रयुक्त हुए हैं।

'तां सवितुः' (यजु० १७।७४) इस मन्त्र की व्याख्या में कण्व का काम अग्नि का दोहन व उद्दीपन आदि बताया गया है और साथ में 'एव' पद लगा कर यह भी निश्चित् कर दिया है कि अग्नि का दोहन यदि कोई जानता है तो कण्व ही जानता है। इस से यह परिणाम निकलता है कि अग्नि का दोहन इस कण्व के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। परन्तु वेदों के आधार पर नहीं कहा जा सकता। ऋग्वेद में कण्ववंशी ऋषि मेधातिथि के लिए कहा गया है कि 'यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि' ऋ० १।३६।११।

अर्थात् मेध्यातिथि कण्व ऋत से अग्नि को प्रदीप्त करता है। इसी प्रकार अन्य सब कण्वों के लिये आता है 'आत्वा कण्वा अहूषत' ऋ० १।४२।२ अर्थात् हे अग्नि! सब कण्व तुझे आह्वान करते हैं। और फिर पूर्व भावी कण्व तो स्वयं अग्नि रूप हैं और दूसरे नम्बर पर अग्नि का सखा है। इसी प्रकार और भी प्रमाण दिये जा सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इन सब प्रमाणों के होते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि पश्चाद् भावी कण्व ही अग्नि का दोहन जानता है।

वास्तव में सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो इस यजुर्वेदीय मन्त्र में भी ऋग्वेद में वर्णित कण्व के सम्बन्ध में ही कहा गया है। मन्त्र में किसी प्रकार के विशेषण नहीं हैं। ये विशेषण

शाखा संहिताओं में हैं और उन के भी ब्राह्मण भाग में हैं। प्रतीत यह होता है कि तात्कालिक ऋषियो ने मन्त्र की व्याख्या करते हुये कण्व की कुछ विशेषताएं देखी होंगी। उन्हीं विशेषताओं को सामने रख कर कण्व को विशेषण दे दिये हैं। इन विशेषताओं को हम आगे स्पष्ट करेंगे।

इसी प्रकार काठक संहिता १३। १२ में कण्वों को सौश्रवस कहा गया है। वहां आता है कि 'तामेतां कण्वाः सौश्रवसाः विदुः' अर्थात् उस सरस्वती वाक् को सुश्रवस सम्बन्धी कण्व जानते हैं। यह सौश्रवस शब्द वेदों में अनेकों स्थलों पर आता है। परन्तु कण्वों का विशेषण हो कर कृष्ण यजु की काठक शाखा में ही आया है। वेदों में भी जहां यह शब्द आता है उन स्थलों को देखने से यह प्रतीत होता है कि सौश्रवस पद यौगिक है। उदाहरणार्थ कुछ स्थल निम्न प्रकार हैं—

ता नृभ्य आ सौश्रवसाः सुवीराः।
ऋ० ६। १३। ५

त्वयार्जिं सौवश्रवसं जयेम।
अथ० २०। ८७। ४

त्वष्टेदेन सौश्रवसाय जिन्वति।
ऋ० १। १६२। ३

पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवाः।
ऋ० ६। ६८। ८

इसी प्रकार काठक संहिता में कण्वों का विशेषण हो कर आया हुआ सौश्रवस शब्द भी यौगिक है। जैसा हम पहले लिख चुके हैं और आगे भी विस्तार से दिखलायेंगे कि नृषत् व कण्व आदि अग्नि के विभिन्न रूप हैं इसी प्रकार 'सुश्रव' शब्द भी अग्नि का वाचक है। पार० कां० २। क० ४। १। २ में आता है—

'अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मां कुरु। यों यथात्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि। ओं एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु।'

अर्थात् हे अग्नि! तू सुश्रवस् है मुझे भी सुश्रवस या सौश्रवस बनादे।

इस लिये हमें यह प्रतीत होता है कि काठक संहिता में कण्वों के विशेषण रूप में जो सौश्रवस पद आया है वह कण्वों का पैतृक नाम नहीं है, वह तो केवल उन की विशेषता बता रहा है।



अहिंसा का पालन

श्री स्वामी कृष्णानन्द जी

उपनिषदों में कथा आती है कि प्रजापति ने असुरों को दया अर्थात् अहिंसा का उपदेश दिया। क्योंकि जो हिंसा परायण है; बल तथा कूट नीति के सहारे हर समय दूसरों के अन्न धन छीनने को उद्यत रहता है, जो एक पाई अथवा कौड़ी तक के लिए कई प्रकार से असत्य भाषण करता नहीं लजाता, प्रत्युत अपने असत्य, कुटिल, कृत्रिम व्यवहार तथा चालाकी का वर्णन अपनी मित्र मण्डली में अभिमान पूर्वक करता है, जो अपने तमोगुणी दूषणों का ही भूषण समझे बैठा है, जो धन के लोभ तथा क्रोध के आवेश में उस महान्, अखण्ड, अटल, ईश्वरीय न्याय रूपी भयानक वज्र को भूल जाता है। जिसे मूक प्राणियों का मांस ही प्रिय भोजन लगता है। जो अनाथ निस्सहाय बालकों, विधवाओं का सर्वस्व हड़प कर जाता है और डकार तक नहीं लेता। जो इस उक्ति कि 'प्रेम और युद्ध में घृणित और अति नीच व्यवहार भी परम न्याय ही है।' में तनिक सन्देह नहीं करता, अपितु इसे परम प्रमाण मान कर इसी के अनुसार अपना सब व्यवहार करता है। जो पशुओं के समान अपने देश या जाति की ऐहिक हित सिद्धि को ही परम सत्य तथा परम धर्म मानता है और इस संकुचित आदर्श को ही सर्व श्रेष्ठ मान कर निर्बल, निस्सहाय शस्त्र हीन जातियों तथा देशों को उन्नत करने में अपने बाहु बल तथा बुद्धि का उपयोग न कर के उलटे उन्हें दासता की कड़ी जञ्जीरों में जकड़ने और उन के धन जन की लूट खसूट करने में ही अपनी शक्ति सामर्थ्य के दुरुपयोग द्वारा निज सभ्यता की विजय पताका फहराता है। यथा—'विज्ञान हमें बचाने तथा मारने की युक्ति बताता है। पहले मृत्यु संख्या को वैयक्तिक रूप में कम कर के पीछे युद्ध द्वारा सामूहिक रूप में वह हमें मार देता है।' ऐसे मलिन चित्त वाला किसी ऊंचे उपदेश को कैसे हृदयङ्गम कर सकता है। यद्यपि अहिंसा अध्यात्म विद्या का प्रथम अक्षर है तथा अबाध बालक की शिक्षा का आरम्भ भी तो यहीं से होगा। केवल भाषा के अपूर्व ज्ञान से, किसी भौतिक विद्या में प्रवीणता प्राप्त कर लेने से, दूसरों को मर्म भेदी उपदेश कर सकने की योग्यता से, और अपने कुटिल हिंसामय व्यवहार को भी अनेक युक्त्याभासों द्वारा धर्म सिद्ध करने से ही कोई अध्यात्म विद्या में वृद्ध नहीं हो जाता।

आज का सभ्य मनुष्य यदि अपने हृदय की गहरी गुफा में निष्पक्ष भाव से देखे तो उस को स्पष्ट प्रतीत होगा कि आज की सभ्य कहलाने वाली मानव जाति कहां खड़ी है। और उस की गणना किस श्रेणी में की जा सकती है। सर्व व्यापी मृत्यु तथा अकाल से पीड़ित, अशान्त नरक मय यह संसार, सभ्यता की अभिमानिनी जाति की आध्यात्मिक दरिद्रता का स्पष्ट तथा असन्दिग्ध प्रमाण है।

यदि आज का मनुष्य आध्यात्मिक शिक्षा के इस प्रथम अक्षर अहिंसा को अपना लेता तो निस्सन्देह पृथिवी यदि स्वर्ग न भी बन जाती तो भी नरक तो न रहती। ऐसी स्थिति में हमारे दुःखों तथा अशान्ति का अवश्य अन्त हो जाता।

जब मनुष्य इस प्रथम श्रेणी की शिक्षा में दक्ष हो जाता है तो उस का हृदय कुछ उज्ज्वल और बुद्धि भी कुछ स्वच्छ तथा सूक्ष्म हो जाती है तब वह दूसरी शिक्षा की योग्यता तथा अधिकार को तो प्राप्त करता है।

अहिंसा व्रत द्वारा आध्यात्मिक उन्नति

अहिंसा व्रत को धारण करने वाला आसुर भाव से मुक्त हो जाता है और पहिले वर्णित प्रजापति की मनुष्य श्रेणी में प्रवेश करता है। हिंसा को छोड़ देने पर मनुष्य दूसरों के अन्न, धन तथा प्राणों पर बलात्कार नहीं करता। अब उस की जीवन नीति का दृष्टि बिन्दु बदल कर 'स्वयं जीवित रहो और दूसरों को भी जीवित रहने दो' सिद्धान्त पर आश्रित हो जाता है। पहिले जो दूसरों के अन्न धन को छीन लेने का ठीक मानता था अब वह वैसा नहीं करता। अब वह अन्न धन का न्यायानुसार उपार्जन करता है। क्योंकि न्यायानुकूल अन्न धनादि का उपार्जन करना पाप नहीं है। स्वयं वेद भगवान आदेश करते हैं—'वयं स्याम पतयो रयिणाम' हम धन धान्य के स्वामी बनें। परन्तु छल, कपट तथा धूर्तता से किसी की एक पाई का भी वञ्चना न करे। इत्यादि।

अब वह हिंसा वृत्ति के आधार पर दूसरों को दुःख नहीं देता। अपना तथा अपने परिवार का न्याय से भरण पोषण करता है। न्याय पूर्वक धन संग्रह करता है। दूसरों से छीनता नहीं। परन्तु किसी दरिद्री दुःखी के दुःख निवारण के लिए उस के हृदय में भाव उत्पन्न नहीं होता। धन में उस की इतनी आसक्ति तो नहीं होती कि वह बलात्कार से दूसरों का धन छीन लेवे परन्तु अपने उपार्जित धन का दूसरों के हितार्थ व्यय कर सकना भी उस के लिए दुष्कर होता है। इतना धन का लोभ उस में अवश्य होता है। स्वयं दुःख ग्रस्त होने पर दूसरों से सहायता की आशा तो वह करता है। परन्तु अवसर आने पर लोभ के वश वह अपने आप दूसरों की सहायता नहीं करता।

★



अथ सुवर्णद्वीपात्

डॉक्टर रघुवीर

३०–७–५१

दो दिन के पश्चात् इस पत्र को पूरा करने लगा हूँ। प्रायः पत्र लिखने को समय नहीं मिलता। काबानजाहे से आगे ब्रस्तागी एक एक रात ठहरे। यह पहाड़ी स्थल है। यहां भी श्री सुकर्ण बन्दी रह चुके हैं।

कल मेदान लौट कर आये थे। यहां भारतीय व्यापारी मण्डल में मेरा व्याख्यान हुआ। १०० के लगभग उपस्थिति थी। मेरे कथनानुसार व्यापारियों ने स्वीकार किया कि भारत से सम्पर्क बनाये रखने के लिए निर्धन भारतीयों के स्तर को ऊंचा उठायेंगे। साप्ताहिक हिन्दी-तामिल पत्रिका भी निकालने का निश्चय किया। तीन हिन्दी अध्यापकों की इन्हें आवश्यकता होगी। मैंने विश्वास दिलाया है कि भेज दूंगा। यहां तामिल की तीन प्राथमिक पाठशालाएं हैं। तथा एक बहुत बड़ा १००० विद्यार्थियों के लिए सिख इंगलिश स्कूल है।

भारतीय व्यापारदूत सरदार जगतसिंह जी ने भोजनादि से बड़ी सहायता की है। दिन रात साथ रहे हैं। यह पत्र राजवल्ली नामक विमान से लिख रहा हूँ। इस समय १–३० बजा है। मेदान से कोटराज जा रहे हैं। यह सुमात्रा के नितान्त उत्तर में है। २ तिथि का जाकर्ता पहुँचेंगे। तब ही तुम्हारा पत्र मिलेगा।

कोटराज (सुमात्रा) ३१–७–५१

श्रद्धेय,

आज चार सप्ताह के पश्चात् आप की सेवा में पत्र लिखने लगा हूँ।

यहां बड़े अद्भुत अनुभव हुए हैं। यहां रुपया पर्याप्त है। आलसी होते हुए भी लोगों के पास धन है। आर्थिक व्यवस्था चीनियों के हाथ में है और रबड़, तैलादि डच के। भारतीय अधिकांश कपड़े का व्यापार करते हैं।

भारत के लिए आदर है। किन्तु पाकिस्तान के लिए धार्मिक सहानुभूति है। सुमात्रा की जनता में मुस्लिम कट्टरता भी आती जा रही है।

प्राचीन मन्दिर दर्शनीय पूजनीय हैं। इन की रक्षा डच लोगों ने की थी। कई मन्दिरों का तो जो पत्थर की ढेरी बन चुके थे उन्होंने वर्षों के परिश्रम से फिर खड़ा किया। इन मन्दिरों में चूने का प्रयोग नहीं हुआ। कई मूर्तियां तो इतनी मनोहर हैं कि घण्टों तक देखने पर भी तृप्ति नहीं होती।

मूर्तियों के सिर, हाथ, कान, नाक आदि सहस्रों की संख्या में तोड़े गए हैं। यहां संस्कृत के शिला लेख भी देखे। ये पांचवी शताब्दि के हैं। महाराजा मूलवर्मन् ने अश्वमेध यज्ञ रचा और २०,००० गाएं ब्राह्मणों को दान में दीं।

देवनागरी के भी शिलालेख विराजमान हैं। ये ६००–७०० बष प्राचीन हैं। ज्योग्याकर्ता (प्राचीन नाम अयोध्या कृता) में रेलवे कार्यालय के सामने दो गणेश मूर्तियां हैं। प्रयोजन यह कि यात्रा में विघ्न न हो, कष्ट न हो।

१६ जुलाई को मै राष्ट्रपति सुकर्ण से मिला। इन्होंने कहा मेरे साथ सुमात्रा की यात्रा में चलो। सो १२ दिन से इन के साथ मध्यपूर्व तथा उत्तर सुमात्रा का विमान तथा मोटर द्वारा भ्रमण हो रहा है। श्री सुकर्ण प्रतिदिन दो-तीन सार्वजनिक व्याख्यान देते हैं। रात्रि को स्थानीय नृत्य तथा संगीत भी देखने को आते हैं। इन में भारत का प्रभाव स्पष्ट है। बाली में स्त्रियों ने मालती फूल लगाए होते हैं। हस्तमुद्राओं में भी समानता है, यद्यपि ये लोग मुद्राओं का अर्थ भूल गए हैं।

जाकर्ता (प्राचीन नाम जयकर्ता) में मुझे एक प्रोफेसर मिले। इन का नाम श्री पूर्वचरक है। ये संस्कृत के अध्यापक हैं। इन्होंने मुझे प्राचीन जावा भाषा का ताड़-पत्र पर लिखा हुआ 'भीष्मपर्व' दिया है।

श्री सुकर्ण चित्रकला में प्रवीण हैं। घटोत्कच, भीष्म, कृष्ण, अर्जुन आदि के चित्र स्वयं बनाते हैं। इन का लड़का अभी ६ वर्ष का है किन्तु वह भी घटोत्कच (हिडिम्बा पुत्र) के चित्र बनाना सीख रहा है। प्रतिमास राष्ट्रपति के महल में महाभारत के नाटक होते हैं। श्री सुकर्ण की कन्या का जन्म वर्षा के दिन हुआ था इस लिए उस का नाम रखा—मेघवती सुकर्णपुत्री। इन का भारत से प्रेम है। कहते थे—भारत मेरी पुण्य भूमि है। किन्तु इन को छोड़ कर दूसरा और नेता नहीं जिस के मन में यह भावना हो। इन की माता ब्राह्मणी (बलिद्वीप की) है, पिता जावा के मुसलमान, पत्नी सुमात्रा की।

राजनीति सम्बन्धी वार्तालाप भी श्री सुकर्ण के साथ होता रहता है। पाकिस्तान का प्रचार भी दिन रात बढ़ता जा रहा है। आज पण्डित नेहरु जी को श्री सुकर्ण की ओर से भ्रातृस्वस्विवाद का पत्र भेज रहा हूं। भारतीय व्यापारी आजकल संकट में हैं। ६ तिथि को मैं बलिद्वीप जा रहा हूं। विशेष समाचार तो मिलने पर ही दे सकूंगा।

जयकर्ता (यवद्वीप) ५-७-५१

प्रिय पुत्री सुदर्शना,

तुम्हारा संक्षिप्त पत्र मिला। अब तुम कॉलिज जाने लग गई हो और सब प्रबन्ध ठीक हो गया सो प्रसन्नता की बात है। यहां खाने पाने के प्रबन्ध का क्या पूछना। योरोप में तो भोजन का कभी कष्ट नहीं, यहां प्रतिदिन ही सोचना पड़ता है। यहां के लोग तो अत्यधिक और नितान्त मांसाहारी हैं। दूध पीना जानते ही नहीं। प्रायः डब्बे का दूध मिलता है। यहां के राष्ट्रपति श्री सुकर्ण के साथ १४ दिन विमान तथा वाहिल से यात्रा की। अद्भुत वस्तुएं देखने में आईं। मेदान नाम का एक बड़ा नगर है। वहां मैंने 'काबाड़' नाम के लोगों के नाच देखे। स्त्रियां नाच के समय जूड़े में मालती के फूल लगाती हैं जिन्हें वे 'मलाती' कहती हैं। मेदान में भारतीय वाणिज्य दूत सरदार जगतसिंह जी हैं। वे यहां सपरिवार रहते हैं। उन की कन्या ज्योत्स्ना है। उसे हिन्दी की पुस्तकें पढ़ने को चाहिएं। इन के घर तीन बार भारतीय भोजन मिला।

सुमात्रा का उत्तरतम नगर कोटराज है। मद्रास से कोटराज तक समुद्र मार्ग केवल तीन दिन का है। यहां की भाषा में विशेषण संज्ञा के पीछे लिखते हैं। कोटराज का वास्तव में भारतीय नाम राजकोट है। इस नाम का नगर गुजरात में सुप्रसिद्ध है। सुमात्रा में भारतीय लोग प्राचीन काल में गुजरात से ही आया करते थे।

यहां आ कर एक विचित्र बात यह पता लगी कि जावा सुमात्रादि में इस्लाम का प्रचार भी गुजराती मुसलमानों ने ही किया, अरब मुसलमानों ने नहीं।

मेदान में भारतीय व्यापारी समृद्ध हैं। इनकी सभा में मेरा भाषण हुआ। इस प्रकार कोटराज में भी भारतीयों की सभा में। कोटराज में एक पञ्जाबी सज्जन जागीरसिंह सिन्धु ने दो बार परोंठे दाल तथा शाक भेजा। इधर आम नहीं

मिलता। सरदार जगत सिंह जी के घर तो मैदा तथा मक्की का आटा मिला कर फुलके बनाते हैं। कई स्थानों पर तो केवल चावल ही।

जय कर्ता में भी श्री फिरोज चन्द जी के छोटे भाई कर्नल ओबेराय दूतावास में काम करते हैं। इन के घर दो बार भारतीय भोजन किया। यहां डबल रोटी भी अच्छी नहीं होती।

होटल में पहले ११ दिन के लिए १०००) रुपये दिए हैं। यह यहां का सब से बड़ा होटल है। उस के पीछे बोरोबुदुर चण्डी का प्रसिद्ध मन्दिर दर्शन करने चला गया। उस के पश्चात् चण्डी मन्दूत, चण्डी पावोन, चण्डी परम्बनन। परम्बनन में रामायण तथा महाभारत के अतिमनोहर चित्र हैं। उष्णता तथा मच्छर पर्याप्त हैं। बिजली के पंखों का लगभग अभाव है, लोग कहते हैं प्रतिश्याय हो जाता है।

भारतीय दूतावास, जाकर्ता, ५-७-५१

प्रिय पुत्र लोकेश,

सुमात्रा की यात्रा से श्री सुकर्ण के साथ परसों सायं लौटे। यात्रा बड़ी लम्बी, रुचिकर तथा थकाने वाली रही। इस के सम्बन्ध में फिर आकर ही लम्बा विवरण दूंगा।

आज प्रातः Bataviaasch Genootschap[1] की सभा हुई। मैं भी उस में गया। दो घण्टे मेरा भाषण हुआ। वे अपनी पत्रिका के उपलब्ध सभी अंक देंगे। इन के प्रकाशित अनन्त ग्रन्थ हैं। उन को भी लाने का यत्न करूंगा।

कवि-बलि-डच भाषा का फानडेर टुक (   ) का कोष नहीं मिला। आज पूरा आधा दिन (४ घण्टे) इस के लिए व्यतीत किया।

९ को मैं बलिद्वीप जा रहा हूं। १६ को लौटूंगा। दो दिन खनोटस्खाप की पुस्तकें निकलवाने, बन्धवाने, भिजवाने में अवश्य लग जायेंगे। २० को सिंहपुर। वहां एक-दो दिन ठहरूंगा। वहां से भी Malay Journal लेने का विचार है। फिर बंगकाक ४ दिन, साइगोन ३ दिन। तत्पश्चात् भारत। ३१ अगस्त को भारत पहुंच सकूंगा।

यहां भारतीयों की स्थिति संकटमय है। चलचित्र बलिद्वीप में लेने आरम्भ करूंगा।

७-८-५१

प्रिय पुत्र लोकेश,

कल विश्वविद्यालय में मेरा व्याख्यान हुआ। विश्वविद्यालय के प्रधान प्रो० सुपोमो सभापति थे। पूर्वचरक, प्रियोनो, चीनी विद्वान प्रो० सिम् और अन्य अनेक प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे।

निश्चय हुआ कि विश्वविद्यालय अगले वर्ष दो विद्यार्थी हमारे यहां भेजे। दुबारा आज यहां के अद्भुतागार का संग्रह देखा। बड़ा सुन्दर है। इन के पास

[1] यह सुवर्णद्वीपवर्ती इतिहासान्वेषण की सर्वप्रमुख संस्था है।

कीर्त्या[1] के ग्रन्थों की रोमन लिपि में अनुकृतियां हैं।

बाटक ग्रन्थ वृक्षों की त्वचा पर, बांस की चपटियों पर तथा मोटे खोखले लम्बे बांसों की पृष्ठ पर लिखे हैं। इन में अधिकांश मंत्र हैं। हृदय गद्गद हो उठा। आज ये ही बाटक पक्के मुसलमान हैं। मैं दो सौ मील तक इन के देश को देख कर आया हूं।

कल प्रातः बलिद्वीप जा रहा हूं। देनपासार में बलि-होटल में दो दिन, तत्पश्चात् बुदु में पुंगव (District magistrate) के पास दो दिन। यहां पूर्व काल (archaeological department) की शाखा है। उस के पश्चात् अन्य स्थान।

डा० गोरिस (Dr. Goris) जो बलिद्वीप धर्म के विशेषज्ञ हैं, यहां मिले थे। यात्रियों की बलिद्वीप के लिए भीड़ लगी रहती है। कठिनाई से विमान में जाने के लिए स्थान मिलता है। पदे पदे भारतीय दूतावास की सहायता की आवश्यकता है।

१८ को जयकर्ता विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों के लिए व्याख्यान होगा। २० तिथि को भारतीय दूतावास में मेरे अहरार्थ बृहद् भोज होगा।

सिंहराज (बलिद्वीप) ६-८-५१

प्रिय पुत्र लोकेश,

कल प्रातः ६ बजे केम यूरान (जयकर्ता का विमान पत्तन) से चल कर १० बजे दोपहर सुराबाया होते हुए देनपासार पहुंचे। विश्वविश्रुत बलि होटल में ठहरे। भोजन के पश्चात् श्री नरेन्द्र नाथ शास्त्री के घर पहुंचे। ये लाहौर के शास्त्री हैं। आयु ४५ वर्ष है। १९३५ में एक दो बार अपने यहां आये थे।

एक वर्ष से द्वीपान्तर[1] में हैं। बलिद्वीप में हिन्दू धर्म का प्रचार कर रहे हैं। दशशील नाम की पुस्तक लिखी है। इस की १०,००० प्रतियां बिक चुकी हैं। यह पाठशालाओं में भी जा रही हैं।

८४ भाचित्र यहां मोल लिए हैं, पो कार्ड के परिमाण के। कल रात्रि को यहां के गवर्नर से भेंट हुई। इन का प्रातः स्मरणीय नाम सुशांतो है। इन्होंने अपने अधीन रेज़ीडेन्स श्री ओके को आदेश दिया। स्वयं गवर्नर लम्बकद्वीप गए हैं। समयाभाव से मैंने साथ जाने से नकार किया। श्री ओके के साथ आज प्रातः उन की गाड़ी में सिंहराज आये हैं। साथ में पत्र द्वारा परिचित ई बायन[2] भद्र भी थे। इन की आयु ४५ वर्ष के लगभग है। वास्तव में ये अन्वर्थ नामा हैं मार्ग पर चिन्तामणि पर्वत पर ठहरे। बाली का परम रमणीय स्थान है। ऊंचाई ५००० पाद। बलि प्राचीन भारत का जीवित जागृत खण्ड है।

---

१ यह बलिद्वीप की सिंहराज नगरी में प्राचीन सुवर्णद्वीपीय हस्तलिखित ग्रन्थों का सब से बड़ा पुस्तकालय है। इस में अधिकांश ग्रन्थ भारतानुप्रणीत हैं।

१ इण्डोनेशिया का प्राचीन नाम।

२ आप सिंहराज स्थित कीर्त्या नामक संस्था के अध्यक्ष हैं।

चमगीदड़

श्री चन्द्रल स्वरूप

कहा जाता है कि चमकने वाली सब वस्तुयें सोना नहीं होतीं इसी प्रकार यह भी सत्य है कि उड़ने वाले सब जन्तु पतिंगे या पक्षी नहीं होते। बिजली के तारों पर लटके हुये, सायंकाल के समय सामूहिक रूप से उड़ते हुये या पुरानी गुफाओं और तहखानों के भीतर कहीं न कहीं इस जन्तु को प्रायः हम सभी ने देखा होगा। इस जन्तु में उड़ने की सामर्थ्य को पाकर हम सम्भवतः यह समझते होंगे कि यह कोई पक्षी है किन्तु वास्तव में बात यह है कि न तो पक्षियों के सदृश्य यह अण्डे ही देता है, न इस की खाल के ऊपर पर ही होते हैं और न इस की हड्डियां अन्य पक्षियों की हड्डियों की तरह पोली और हल्की ही होती हैं। मनुष्य, बन्दर, खरगोश, गाय और भैंस आदि के समान चमगीदड़ भी एक स्तनधारी जन्तु है। क्योंकि ध्यान से देखने पर पता चलता है कि इस में स्तनधारी जन्तुओं के लगभग सभी लक्षण उपस्थित हैं। त्वचा पर बालों की उपस्थिति, बाहर को निकले कान, सन्तान का माता के शरीर से अण्डे के रूप में नहीं बल्कि जीवित के रूप में बाहर आना, माता के द्वारा बच्चों को दूध पिलाये जाना आदि कुछ इन लक्षणों के मोटे २ उदाहरण हैं।

उड़ना

चिड़ियों के सदृश चमगीदड़ों की विभिन्न जातियों में भी उड़ने की शक्ति विभिन्न हो सकती है। उड़ने के लिए चमगीदड़ के शरीर पर एक झिल्ली होती है। यह झिल्ली हाथ की बाहरी चार ऊंगलियों पर, भुजाओं के आगे और पीछे शरीर के पार्श्वों पर तथा टांगों के आगे पीछे और बीच में फैली रहती हैं। पूंछ भी इसी झिल्ली के बीच स्थित है। इस झिल्ली पर बाल या तो बिल्कुल नहीं या बहुत ही कम होते हैं। यह झिल्ली उड़ने में पंखों का काम करती है।

चलना फिरना तथा विश्राम

यदि हम शरीर को देखें तो हमारी भुजायें और हाथ टांगों और पैरों की अपेक्षा छोटे होते हैं। किन्तु चमगीदड़ की भुजायें और हाथ उस की टांगें और पैरों से बहुत बड़े होते हैं। हमारा घुटना सामने को होता है किन्तु चमगीदड़ का घुटना पीछे की ओर होता है। टांगों और पैरों के छोटे होने के कारण चमगीदड़ मनुष्य तथा अन्य स्तनधारी जन्तुओं की तरह सुविधा से चल फिर नहीं सकता। साधारणतः चमगीदड़ पेड़ों से या गुफाओं की छतों से और दीवाल की दरारों से उलटे लटके रहते हैं। किन्तु यदि उन को विवश हो कर पृथ्वी पर चलना पड़ जाय तो यह कार्य उन के लिये कठिन होता है। ऐसी अवस्था में वे हाथों और पैरों के बल चलेंगे और उन के हाथों के अंगूठे इस कार्य में उन के विशेष रूप से सहायक होंगे। और पैरों की ऊंगलियों पर स्थित हुक जैसे पञ्जों की सहायता से चमगीदड़ किसी दीवाल पर या ढाल दार सतह पर चढ़ सकते हैं। विश्राम के लिए उलटे लटकने में वे पैरों की सहायता लेते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में, उन को लटकने के लिए हाथ के

अंगूठे की भी सहायता लेनी पड़ती है।

जनियता संरक्षण

माटा चमगीदड़ एक बार में साधारणतः एक या कभी २ अधिक से अधिक दो बच्चे दे सकती है। जिस समय तक बच्चों के शरीर का आकार माता के शरीर के आकार के लगभग बराबर नहीं हो जाता, माता उसे अपने साथ रखती है। बहुत से चमगीदड़ों के नर और मादा केवल संभोग ऋतु में ही परस्पर मिलते हैं अन्यथा अलग २ रहते हैं।

स्पर्श ज्ञान

चमचीदड़ों का स्पर्श ज्ञान बहुत ही तीव्र होता है। परीक्षणों द्वारा ज्ञात हुआ है कि वे चमगीदड़ भी जिन की देखने, सूंघने और सुनने की शक्ति को नष्ट कर दिया गया हो अन्धेरे में बिना किसी रुकावट के टकराए उड़ सकते हैं। ऐसे चमगीदड़ों को यदि किसी ऐसे कमरे में छोड़ दिया जाय जिस में धागों या तारों का जाल पुरा हुआ हो तो वे धागों व तारों से टकराए बिना इधर उधर उड़ते रहेंगे। इसी प्रकार यदि ऐसे चमगीदड़ों को अपनी गुफाओं में या अन्यत्र समूहों में उडना पड़े तो वे परस्पर टकरायेंगे नहीं। स्पर्श-ज्ञान की यह विशेष शक्ति शरीर पर स्थित पंख रूपी झिल्ली तथा चमगीदड़ों की बहुत सी जातियों के बड़े और नाजुक कान और नाक को घेरे हुए स्थित त्वचा के विशेष लपेटों के कारण होती है। जिस समय चमगीदड़ उड़ता है तो शब्द की लहरें झिल्ली तथा त्वचा के लपेटों से उत्पन्न हो कर मार्ग की रुकावटों से टकराती हैं और लौट कर पुनः उन्ही झिल्ली और लपेटों पर पड़ती हैं जिस से कि जन्तु को रुकावटों का ज्ञान होता है और वह उन से बच कर चल सकता है। झिल्ली और लपेटों को इस स्पर्श के प्रति विशेष रूप से अनुभव शील बनाने के लिए उन पर नाड़ियों का एक घना जाल फैला रहता है।

दो भेद

सब चमगादड़ निशाचर वृत्ति के जन्तु हैं अर्थात सूर्यास्त के पश्चात् अपने भोजन की तलाश में इधर उधर उड़ते हैं और रात्रि समाप्त होने से पहले ही अपने विश्राम स्थान पर पहुँच कर उल्टे लटक जाते हैं। भोजन के आधार पर चमगादड़ों के दो भेद होते हैं। एक तो वे जो फलाहारी हैं और दूसरे वे जो मांस भोजी हैं। ठण्डे देशों में सब चमगादड़ सारे जाड़े भर अपने छिपे हुए स्थानों पर सोते रहते हैं। बसन्त ऋतु आने पर उन की क्रिया शीलता का काल प्रारम्भ होता है। इस विषय में यह कह देना प्रसंग हीन न होगा कि मेंढ़क तथा अन्य जन्तु भी (बहुत से) शीतकाल की इस निद्रा का आनन्द उठाते हैं। कुछ लोगों का यह विचार है कि भारतवर्ष के चमगादड़ इस प्रकार जाड़े में नहीं सोते। यह बात फलाहारी चमगादड़ों के विषय में ठीक है। किन्तु कीट भोजी चमगादड़ अवश्य ही कुछ न कुछ विश्राम लेते हैं। शीत काल की

निद्रावस्था इस ऋतु में भोजन की कमी तथा असह्य सर्दी से बचने का एक उपाय है।

फलाहारी चमगीदड़

चमगीदड़ों की यह जाति आकार में अपेक्षाकृत बहुत बड़ी होती है। इन चमगीदड़ों को लोमड़ी चमगीदड़ या उड़ने वाली लोमड़ियां भी कहते हैं। क्योंकि इन का चेहरा लोमड़ी के समान होता है। ये भारतवर्ष, आस्ट्रेलिया, ऐशिया, लंका, अफ्रीका तथा मेडागास्कर में पाये जाते हैं। अमेरिका में ये सर्वथा अनुपस्थित हैं। आकार में शरीर लगभग एक फीट तक लम्बा किन्तु पंखों का फैलाव पांच फीट तक हो सकता है। फलाहारी चमगीदड़ की भारतीय सामान्य जाति को गद्दल या बरबगल भी कहते हैं। नीम, जामुन, अञ्जीर और बेर आदि इन के भोजन हैं। इस दृष्टि से ये जन्तु फलों को बहुत हानि पहुंचाते हैं। किन्तु इन का एक लाभ भी है और वह यह है कि इन का मांस मनुष्य का भोजन भी है। गद्दल को पाल कर भी रक्खा जा सकता है। दिन के समय ये चमगादड़ पेड़ों पर विश्राम करते हैं।

कीटभोजी चमगीदड़

ये आकार में छोटे होते हैं। उड़ने की शक्ति अधिक होने के कारण इन का भौगोलिक वितरण भी बहुत अधिक है। इन की लगभग ५०० जातियां हैं। दिन में ये अपना समय गुफाओं में या मकानों की अन्य छिपी हुई जगहों में बिताते हैं। रात को कीड़े पकड़ने के लिये इधर उधर उड़ते हैं। कीड़ों के अतिरिक्त ये जन्तुओं का गला सड़ा मांस भी खा सकते हैं। इन जन्तुओं से मनुष्य को बहुत अधिक लाभ है। क्योंकि ये हानिकारक मच्छर, गुबरीले, तितलियां तथा अन्य कीटों का नाश करते हैं।

कीट भोजी चमगीदड़ों की एक अमरीकन जाति जिस को वैम्पायर या रक्त चूसक पिशाच चमगीदड़ कहते हैं, बडी विचित्र है। ये सोये हुए पशु, घोड़ा, गाय भैंस आदि और मनुष्य के शरीर पर चिपट कर उन का रक्त इस प्रकार चूसते हैं कि कभी २ तो जन्तु को इन की उपस्थिति का बिल्कुल ज्ञान भी नहीं होता।



गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

शरत् काल की शोभा कुलभूमि पर अवतीर्ण हो रही है। दीपावली के बाद से गुलाबी जाड़ा पड़ने लगा है। शनैः शनैः शीत बढ़ रहा है। गंगा द्वार से आने वाले शीतल पवन (ढाढू) के झकोरे भी प्रभात में बढ़ने लगे हैं। कुलवासियों का स्वास्थ्य अच्छा है। सायंकाल में कुल के क्रीड़ांगनों में उमंग से खेलते हुये छात्रों की सुखमुद्रा निहार कर आप उन के स्वास्थ्य की कल्पना कर सकते हैं। गुरुकुल की धान की खेतियां कट चुकी हैं और शीतकालीन फसल बोने की तैयारी हो रही है। अतः खेतों और खलिहानों में रौनक जाग उठी है। छुट्टी के दिनों में छात्रों की वन यात्राएं प्रारम्भ हो चुकी हैं। शिवालक की घाटियों में बेरों और आंवलों की बहार है। गङ्गा नदी पर अभी पुल नहीं बने हैं।

दीपावली

दीपावली पर्व कुलवासियों ने बड़े प्रेम और उल्लास के साथ मनाया। विद्यालय के प्रार्थना भवन में रङ्ग-बिरंगे कंडीलों की आभा जगमगा रही थी। छात्रों ने बड़े उत्साह से उस सभा-भवन को सजाया था। वहीं पर श्री पं० सुखदेव जी दर्शन वाचस्पति की अध्यक्षता में दीपावली के वीर-पुरुषों की स्मृति में वक्ताओं ने श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। कंडील निर्माण प्रतियोगिता में ब्र० अभयदेव दशम श्रेणी को प्रथम पुरस्कार दिया गया। ब्रह्मचारी हरिशंकर की बनाई प्रकाशमय घड़ी भी बहुत पसन्द की गई। इस साल अग्नि क्रीड़ा और गुब्बारे उड़ाने का कार्य भी बहुत शानदार रहा।

विशेष व्याख्यान

कुलपति श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति के महाविद्यालय वाग् वर्धिनी सभा में दो ज्ञानप्रद व्याख्यान हुए। पहले व्याख्यान में आपने वर्तमान भारतीय राजनीति की प्रवृत्तियों का सुन्दर विश्लेषण करते हुए चुनावों का उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह बतलाया। दूसरे व्याख्यान में आपने भारतीय राजनीति और उस में आर्य समाज का स्थान इस विषय पर विवेचना की।

मान्य अतिथि

इस मास अनेक गण्यमान्य और विद्वान अतिथियों ने गुरुकुल का अवलोकन कर के उस के कार्य के प्रति अपना प्रेम और सद्भाव प्रदर्शित किया। जिस में निम्नलिखित विद्वानों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

भारतीय प्राच्य विद्यापरिषद् के लखनऊ अधिवेशन के प्रधान सभापति श्रीयुत के० ए० नीलकण्ठ शास्त्री जो कि मद्रास विश्वविद्यालय के प्रधान इतिहासोपाध्याय रहे हैं।

पुद्दुकोट्टाई राज्य के पूर्व शिक्षाधिकारी श्रीयुत वेंकट रमन।

फरग्यूसन कालेज पूना के इतिहासोपाध्याय श्रीयुत एस० आर० शर्मा।

उत्तर प्रदेश के पुरातत्वाधिकारी और लखनऊ संग्रहालय के संचालक श्री कृष्णदत्त जी बाजपेयी।

शिक्षा संस्थाओं के छात्र अतिथि

इस मास अपनी ज्ञान यात्राओं के सिलसिले में मुम्बई राज्य के अनेक विद्यालयों के छात्रों तथा गुरुजनों ने गुरुकुल वासियों का आतिथ्य स्वीकार किया और गुरुकुल की कार्य प्रणाली का विशेष रूप से अवलोकन किया। इन में निम्न लिखित संस्थाओं के नाम उल्लेख योग्य हैं—

१ महिला ट्रेनिंग कालेज बड़ोदा की छात्राएं

और अध्यापक श्री वासुदेव परशुराम अभ्यंकर।

२ दादाभाई हाईस्कूल आनन्द (गुजरात) के छात्र तथा चार अध्यापक।

३ फेलोशिप हाईस्कूल के छात्र और वहां के भूगोल-शिक्षक श्री अम्ब लाल इनामदार।

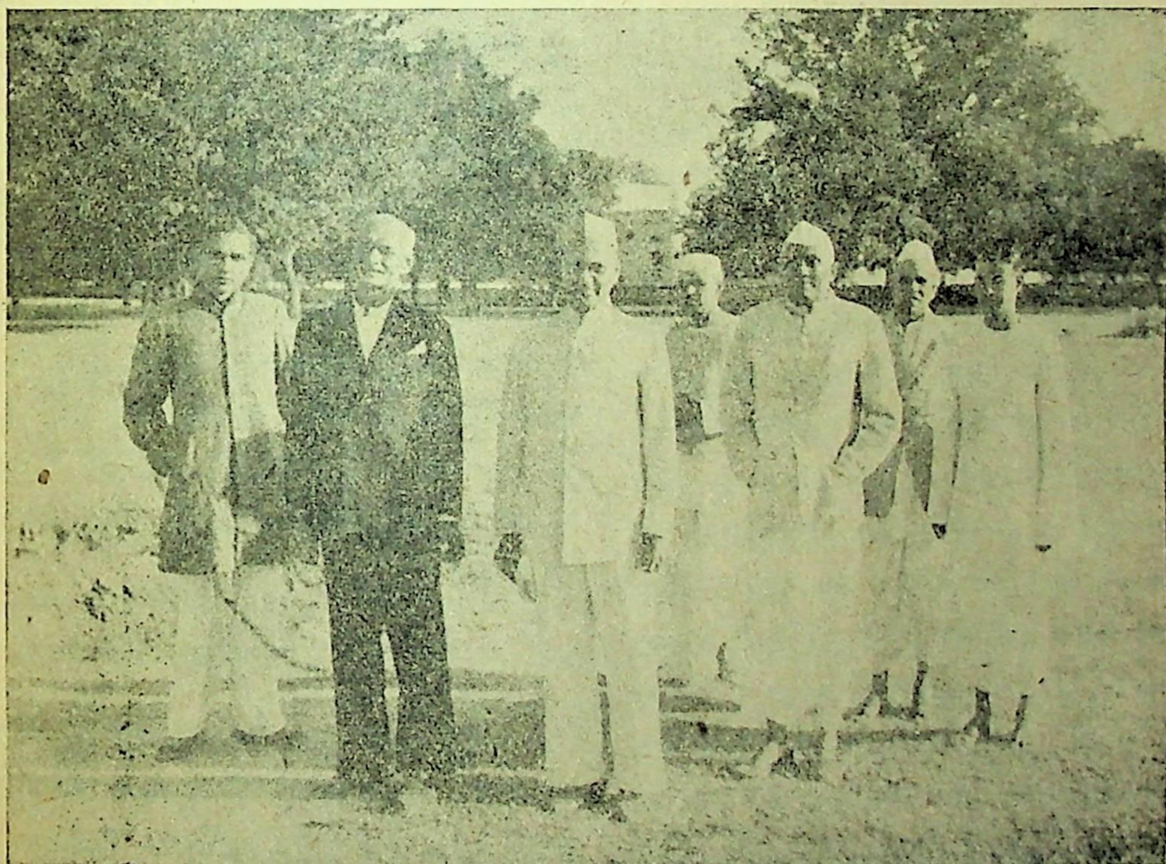
४ पायोनीयर हाईस्कूल आनन्द (गुजरात) के छात्र और अध्यापक श्री सुबोधचन्द्र जी स्नातक।

५ महर्षि दयानन्द महाविद्यालय चौकी-सोरठ (सौराष्ट्र) के छात्र तथा आचार्य श्री अर्जुनदेव जी।

६ विट्ठल कन्या महाविद्यालय नडियाद (गुजरात) की छात्राएं तथा शिक्षक श्री मनुभाई पटेल।

बम्बई सरकार का आयुर्वेद कमीशन

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आयुर्वेद महाविद्यालय में आयुर्वेद की प्रगति और निरीक्षण करने के उद्देश्य से बम्बई सरकार ने अक्टूबर १९५१ में एक कमीशन भेजा था। कमीशन के अध्यक्ष डाक्टर के. एस. म्हस्कर थे।



आयुर्वेद कमिशन के सदस्य गुरुकुल के स्टफ़ के साथ (बांए से दाए)—श्री रमेश बेदी, कैप्टेन सुन्दरलाल भण्डारी (प्रिंसिपल, गुरुकुल आयुर्वेद कालेज), डाक्टर के. एस. म्हस्कर एम. डी. (बोर्ड ऑफ़ रिसर्च इन आयुर्वेद के चेअरमैन), डाक्टर सत्यपाल (चीफ़ मैडिकल ऑफ़िसर गुरुकुल विश्वविद्यालय), वैद्य बापालाल (प्रिंसिपल, आयुर्वेद कालेज, सूरत), वैद्य भास्कर विश्वनाथ गोखले (प्रिंसिपल, आयुर्वेद कालेज, पूना)।

गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय से सम्बन्धित श्रद्धानन्द सेवाश्रम, औपरेशन थियेटर, एक्सरे विभाग, प्रकृति-ज्ञान संग्रहालय, फार्मेसी, वनस्पति वाटिका, रोगी गृह, बृहत् पुस्तकालय आदि का बड़ी सूक्ष्मता से निरीक्षण कर के कमीशन ने सन्तोष प्रकट किया। संग्रहालय, वनस्पति वाटिका और लेबोरेटरीज़ की कमीशन ने विशेष रूप से प्रशंसा की। गुरुकुल के स्वच्छ, एकान्त, धार्मिक और स्वास्थ्य-प्रद वातावरण में छात्रों का निवास और विद्याध्ययन बहुत पसन्द किया गया।

कमीशन के मान्य सदस्यों के आयुर्वेद की प्रगति सम्बन्धी विचारों को जानने के लिए एक सभा का आयोजन किया गया। श्रीयुत डाक्टर म्हस्कर ने बताया कि आयुर्वेद से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर विविध दिशाओं में खोज करने की बड़ी आवश्यकता है। अपना उदाहरण देते हुए विद्वान् डाक्टर ने स्पष्ट किया कि सर्पदंश में प्रयुक्त होने वाली आयुर्वेदीय दवाओं की परीक्षा करते हुये उन्हें सब दवाएं सर्प विष को उतारने या नष्ट करने के लिये अनुपयोगी प्रतीत हुईं। प्रभावकारी दवा को खोज कर प्रकट करने वाले को यद्यपि बीस-पचीस हज़ार रुपये का पुरस्कार देने की घोषणा भी की गई। परन्तु फलप्रद औषध का न मिलना आयुर्वेद के प्रेमी अन्वेषकों के लिए एक गम्भीर चिन्ता का विषय बना हुआ है। यह भी ध्यान देने की बात है कि प्रति वर्ष लगभग तीस हज़ार जानें हमारे देश में सर्पदंश से चली जाती हैं।

नई खोजों और सूचनाओं से भरे हुए ज्ञान-वर्द्धक रोचक भाषण को जारी रखते हुये विद्वान् डाक्टर ने आयुर्वेद में विभिन्न पहलुओं से अनुसन्धान करने पर बल दिया। भाषण यद्यपि संक्षिप्त था परन्तु सारगर्भित, ओजस्वी और प्रवाहमय तथा विद्वत्तापूर्ण था।

कमीशन के अन्य सदस्यों, वैद्य गोखले और वैद्य बापालाल ने भी अपने विचार प्रकट किये।

बम्बई पहुँच कर आयुर्वेद कमीशन के सदस्यों ने ६-११-५१ के पत्र में सराहना करते हुये लिखा है कि—'वनस्पति-वाटिका और वैज्ञानिक संग्रहालय को अवलोकन कर के हमें प्रसन्नता हुई। हर्बेरियम की प्रारम्भिक गति-विधि भी हम ने देखी। विद्यार्थियों तथा जन साधारण के लिए वैज्ञानिक खोज तथा शिक्षा की दृष्टि से हम इन तीनों विभागों की पूर्ण रूप से सराहना करते हैं। हम यह अनुभव करते हैं कि इन तीनों विभागों को समुचित प्रोत्साहन तथा आर्थिक सहायता प्राप्त होनी चाहिये जिस से कि इस की उपादेयता और अधिक बढ़ जाय। इस के अध्यक्ष इन कार्यों में जो अत्यधिक अभिरुचि ले रहे हैं उस के लिये हम उन्हें बधाई देते हैं।'

संग्रहालय

पिछले मास इस वर्ष की प्राच्य परिषद् के प्रधान श्री नीलकण्ठ शास्त्री गुरुकुल संग्रहालय में पधारे। इस में संगृहीत मूर्तियों—विशेषतः समुद्र मन्थन के फलक को देख कर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। बम्बई सरकार के बोर्ड औफ़ रिसर्च इन आयुर्वेद के प्रधान श्री म्हस्कर

ने संग्रहालय देख कर इस के अध्यक्ष को एक पत्र (६-११-५१) में निम्न सम्मति प्रकट की—'मैं आप का भारतीय पुरातत्व का संग्रहालय देख कर बहुत प्रसन्न हुआ। इस में प्राचीन काल से संबद्ध दुर्लभ वस्तुओं का संग्रह है। आपने उन के संग्रह में बड़ा बहुमूल्य कार्य किया है। मैं संग्रहालय को गुरुकुल विश्वविद्यालय का महत्वपूर्ण अंग समझता हूं।' उत्तर प्रदेशीय सरकार के पुरातत्व अधिकारी श्री कृष्णदत्त जी वाजपेयी ने भी २७ नवम्बर को संग्रहालय का सूक्ष्म अवलोकन कर इस की उन्नति के सम्बन्ध में बहुमूल्य सुझाव दिये।

नई वृद्धि

गत मास संग्रहालय को भारतीय पुरातत्व विभाग से प्राचीन भारतीय कला के ३० बड़े चित्र प्राप्त हुये हैं। रूसी दूतावास से भी दो बड़े चित्र मिले हैं। संग्रहालय इन का आभारी है। इन के अतिरिक्त नागरिकता सम्बन्धी २० तथा जीवन विकास सम्बन्धी छः बड़े मानचित्रों की संग्रहालय में वृद्धि हुई है।

संग्रहालय की लोकप्रियता

संग्रहालय की लोकप्रियता और लोक शिक्षण का कार्य बहुत बढ़ रहा है। इस से न केवल हरिद्वार और उस के आस पास के शिक्षणालय लाभ उठाते हैं किन्तु देश के विभिन्न भागों से विद्यालयों के छात्र और छात्रायें इसे देखने आती हैं। गत मास ट्रेनिंग कालेज फार वुमैन बड़ौदा, दादाभाई स्कूल आनन्द, वल्लभ विद्या नगर, इञ्जीनियरिंग कालेज गुजरात, जयपुर, जमालपुर (जि० मुंगेर बिहार) से इस प्रकार के विद्यार्थी दल संग्रहालय देखने आये। नवम्बर मास में दर्शकों की संख्या २१६६ थी।

कांगड़ा के स्नातक और उत्तर प्रदेश की धारा सभा

उत्तर प्रदेश की धारा सभा के नियम नं० 5021 B/V 11--445/50 १०—गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के स्नातक अन्य विश्वविद्यालयों के ग्रेजुएट्स की भांति स्नातक निर्वाचन क्षेत्र के लिये मतदाता हो सकते हैं। जो स्नातक बन्धु मतदाता बनना चाहें अथवा विशेष जानकारी प्राप्त करना चाहें वे प्रस्तोता अथवा आचार्य गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी से पत्र व्यवहार करें।

स्वास्थ्य समाचार, कार्तिक मास

श्रेणी	नाम ब्र०	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा
११	सत्यव्रत	चोट	११
१३	विश्वनाथ	ज्वर	७
१२	ओम्प्रकाश	,,	४
१३	सुधाकर	प्रतिश्याय ज्वर	३
१२	नरपति	आन्त्र ज्वर	१२
११	सुधाकर	अस्थि भंग	रोगी है
१२	ओम्प्रकाश	प्रतिश्याय ज्वर	,,
१०	आर्यकुमार	मोच	,,

८	गोपाल	,,	,,
५	सुरेन्द्रपाल	,,	,,
२	भीमसेन	,,	,,
५	राजाराम	,,	६ दिन
१०	देवेन्द्र	चोट	४ दिन
५	धर्मेन्द्र	,,	रोगी है
८	रणजीत	प्रतिश्याय ज्वर	४
३	अशोक कुमार	ज्वर	४
३	हरिश्चन्द्र	,,	३
१	अशोक कुमार	,,	४
१	ज्ञान स्वरूप	टौन्सिल	५
५	विनोद	ज्वर	४
३	नन्दकिशोर	,,	३
३	सोमनाथ	,,	३
१	राजेश्वर	,,	४
२	ईश्वरचन्द्र	,,	३
४	रणवीर	,,	४
४	गुरुदत्त	,,	३
३	युगल किशोर	,,	३
१	राजेन्द्र	S. O. M.	१२
२	विनय	नेत्राभिष्यन्द	८
४	श्रीचन्द्र प्रकाश	खुजली	रोगी है



[मुद्र]क—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य-गीत श्री अभय २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग ,, २॥), २॥), २॥)
ब्राह्मण की गौ ,, ॥।)
वैदिक अध्यात्मविद्या श्री भगवद्दत्त १।)
वैदिक स्वप्न विज्ञान ,, २)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां श्री रामनाथ १॥।)
वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत ६)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द श्री चमूपति २), १॥)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १॥)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य श्री विश्वनाथ २)
धर्मोपदेश १, २, ३ भाग स्वा० श्रद्धानन्द, १), १), १॥)
आत्ममीमांसा श्री नन्दलाल २)
प्रार्थनावली ।) कविता मंजरी ।=)
आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति ।)
कविता कुसुमाञ्जली ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] ५)
लहसुन : प्याज श्री रामेश बेदी २॥)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] ,, ३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] ,, २)
सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] ,, १॥)
देहाती इलाज [दूसरा संस्करण] ,, १)
मिर्च [काली, सफेद और लाल] ,, १)
त्रिफला [तीसरा संस्करण] ,, ३।)
सांपों की दुनियां ,, ५)
स्तूप निर्माण कला सचित्र, सजिल्द, ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १।)
जल चिकित्सा श्री देवराज १॥)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द ७), ६)
अपने देश की कथा सत्यकेतु १।=)
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)
ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार ।॥)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव ॥)
महवीर गेरीवाल्डी श्री इन्द्र १।)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] १)
नीतिशतक [संशोधित] =)
साहित्य-दर्पण [संशोधित] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०] ।॥=)
,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण] ।।=)
अष्टाध्यायी, पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७), ७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] ।)
साहित्य-सुधासंग्रह १, २, ३ बिन्दु १।), १।), १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली ≠)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १।)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] २॥)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] ॥)
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] १॥)
ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ़ संस्कृत ट्रांसलेशन
एण्ड कम्पोजीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ १)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

गुरुकुल मुद्रणालय।

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका



पुण्य श्लोक स्वामी श्रद्धानन्द

निर्भीकता की मूर्ति

मैं इस सजीव मूर्ति को कैसे भूल सकता हूं। वह अक्सर मेरी आंखों के सामने आ जाती है।

—जवाहरलाल नेहरु।



पवित्र स्मरण

स्वामी जी के पवित्र स्मरण को कौन भूल सकता है। उन का सच्चा स्मारक तो अस्पृश्यता को जड़-मूल से निकाल कर ही हो सकता है।

—महात्मा गांधी।



पौष २००८

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

वर्ष ४
अङ्क ५

गुरुकुल-पत्रिका

पौष
२००८

इस अङ्क में

अगले अंकों में

व्रात्य का सिंहासन	श्री रामनाथ वेदालंकार
वेद का सही अर्थ	श्री भगवद्दत्त वेदालंकार
कर्म साम्य और ईश्वर कृपा	श्री मनोहर विद्यालंकार

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

श्रद्धानन्दः

श्री धर्मदेवो विद्यावाचस्पतिः

[१]

भक्तश्रेष्ठः परजनहिते, सर्वदा दत्तचित्तः
श्रद्धां शुद्धां, विमलहृदये, मातरं सन्यमानः ।
शिक्षां हृद्यां, शुभगुरुकुले, सन्ददानो बटुभ्यः
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरः, सर्वदा वन्दनीयः ॥

[२]

निर्भीको यः, सरलहृदयः, सत्यवाक्, स्पष्टवक्ता
देवे भक्तिं, परमविमलाम्, आदधानोऽविकम्पाम् ।
शुद्धिद्वारा, सकलमनुजान्, दीक्षमाणः सुधर्मे
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरोऽसौ सदा वन्दनीयः ॥

[३]

दत्वा तन्वो मुदितमनसा यो बलिं धर्मवेदौ
प्राप्तो लोके ह्यमरपदवीं, त्यागशीलो महात्मा ।
आसीत्सर्वं, विमलचरितं यस्य सद्ग्रन्थरूपं
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरोऽसौ सदा वन्दनीयः ॥

[४]

अन्यायं यः सकलमहसा, रोद्धुकामः प्रयेते
सत्याहिंसाबलयुत इहान्यायिनो योद्धुकामः ।
काराकष्टं, वयसि चरमे, यः समोदं विषेहे
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरोऽसौ सदा वन्दनीयः ॥

[५]

येते नित्यं, दलितपतितान्, मानवानुद्दिधीर्षुः
पूतान् सर्वान्, श्रुतिवचनतः, पावनः संचिकीर्षुः ।
अस्पृश्यत्वं, समसममना दूरयन् जातिभेदं
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरोऽसौ सदा वन्दनीयः ॥

[६]

देवेन्द्रं तं भुवनपितरं, प्रार्थयामो महेशं
दद्याच्छक्तिं यतिपथि सदा निर्भयत्वेन गन्तुम् ।
शुद्धां श्रद्धां, सकलमनुजेष्वाददध्यात्कृपालुः,
भूयाद् येनाखिलजनगणादर्शभूतः समाजः ॥

★



श्रद्धा का महत्व

श्री स्वामी कृष्णानन्द

परमात्मा में अचल श्रद्धा के बिना, आयास साध्य शम दम आदि सामग्री का सम्पादन असम्भव है। श्रद्धा ही साधन में प्रवृत्ति का मूल कारण है। इसी बात को जताने के लिए बृहदारण्यक उपनिषद् (४, ४, २३) में षट् सम्पत्ति के पांचवें अंग का शब्दतः स्पष्ट उल्लेख है, एवं वित् (अर्थात् परमात्मा को एक रस निर्विकारी, कर्म से अप्रभावित, अमृत स्वरूप जान कर दृढ़ निश्चय-श्रद्धा युक्त हो), शम दम आदि सम्पन्न होने के अनन्तर आत्मा का आत्मा में साक्षात्कार करे। श्रद्धा से युक्त ही ऐसी दृढ़ आशा कर सकता है। श्रद्धा ही वह परम बल है जिस के आधार पर दुर्जेय शत्रुओं, मलिन वासनाओं तथा अन्य प्रतिबन्धों का दमन करते हुये फल-प्राप्ति तक अनन्त धैर्य के साथ, साधक निरन्तर साधनों में संलग्न रह सकता है। श्रद्धा ही वह सूत्र है जिस के आधार पर शम दम आदि सब साधन सुव्यवस्थित रहते हैं, अन्यथा बिखर जाते हैं। श्रद्धा ही जिज्ञासु की माता के तुल्य रक्षा करती है।

श्रद्धा साधन विषयक शास्त्र वचन

इसी परम श्रद्धा के आधार पर इन्द्र ने एक सौ वर्ष तक तप किया। 'सम्यक् ज्ञान के लिए, ऐसे शास्त्र-गुरु द्वारा: जो शुष्क तार्किक नहीं है कही हुई यह बुद्धि (श्रद्धा) जिस को तुमने प्राप्त किया है तर्क द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है। तू बड़ा ही सत्य धारणा वाला है। हे नचिकेता! तेरे समान प्रश्न करने वाला योग्य अधिकारी मिलना चाहिए यह सत्य धारणा ही श्रद्धा है' कठोपनिषद्। पुरुष तो श्रद्धामय ही है। (गीता—१७ ३) श्रद्धा शून्य कोई नहीं है। परन्तु असत्य में तामसिक तथा राजसिक श्रद्धा से क्या लाभ? (क० ३-०) (६-१२; २३)। 'वह आत्मा न तो वाणी से, न मन से, न नेत्र से ही प्राप्त होता है। ऐसे स्थिर मति (श्रद्धा) वाले से भिन्न, आगम आदि में श्रद्धा रहित नास्तिक को उस रूपादि से रहित परमात्म तत्त्व की उपलब्धि कैसे हो सकती है। आत्मा की उपलब्धि नीचे लिखे दो रूपों में होनी चाहिए—(१) 'वह है' ऐसे श्रद्धा रूप से तथा (२) तत्त्व भाव--साक्षात्कार, हस्तामलकवत-प्रत्यक्ष रूप। इन दोनों प्रकार की उपलब्धियों में से जिसे 'है' इस प्रकार की उपलब्धि है अर्थात् आत्मा के अस्तित्व में जिस की परम श्रद्धा है उसी को उस आत्मा के स्वरूप का प्रकाश होता है (क० ६—१२, १३)।

गुरु तथा ईश्वर में अनन्य श्रद्धा तथा वर्तमान समाज को चेतावनी

श्वेताश्वतरोपनिषद् के अन्त में उपनिषद् शिक्षा के अधिकार का वर्णन करते हुए शिष्य की चेतावनी के लिए बहुत सुन्दर शब्दों में वर्णन आया है। जिस जिज्ञासु की देव (परमात्मा) में पराभक्ति (अनन्य श्रद्धा) है; ईश्वर प्राप्ति ही जिस का एक मात्र ध्येय है, जिस के बिना वह अपने जीवन को निस्सार समझता है; संसार के किसी पदार्थ, यहां तक कि देवेन्द्रत्व आदि में भी जिसे कुछ भी प्रेम

नहीं; तथा जिसे परमात्मा में अखण्ड शिला के समान अखण्ड श्रद्धा है और ऐसे ही गुरु में भी अर्थात् गुरु और ईश्वर के वाक्यों में समान श्रद्धा है, उन को ही परम प्रमाण मानता है, उस को ही उपनिषद् वर्णित अर्थ (तत्त्व) का प्रकाश हो सकता है, अन्य को नहीं। इन वाक्यों द्वारा ऋषि ने बहुत गम्भीर अर्थ का निरूपण किया है। आजकल की उच्छृङ्खल कोरे तर्क की अभिमानी बुद्धि इस के महत्त्व को नहीं समझ सकती। परम तत्त्व मन तथा वाणी का विषय नहीं है, रूप रस आदि रहित है, जो लोग बाह्य इन्द्रियों को ही इस की उपलब्धि का द्वार और प्रमाण मानते हैं, वे इसे क्या समझेंगे ? क्योंकि यह सूक्ष्मतम तथा अन्तर्तमतत्त्व है, इस लिए इस के याथातथ्य बोध के लिए अत्यन्त सूक्ष्म, निर्मल बुद्धि की अपेक्षा है। ऐसी बुद्धि का सम्पादन शास्त्र तथा गुरु द्वारा उपदिष्ट साधन के परम श्रद्धा पूर्वक दीर्घ कालीन अनुष्ठान से ही हो सकता है। यदि शिष्य अपनी स्थूल बुद्धि द्वारा गृहीत तत्त्व को ही सत्य मानता है, शास्त्र और गुरु वचन तो खण्डित हुआ ही पड़ा है। क्योंकि यदि शिष्य तथा गुरु की बुद्धि को किसी स्थूल लौकिक विषय में समान ही समझा जावे तो गुरु शिष्य भाव की आवश्यकता ही क्या है ? गुरु की बुद्धि को प्रमाण मान कर ही शिष्य गुरु की बुद्धि द्वारा गृहीत तत्त्व (तथ्य) को अपनी बुद्धि द्वारा ग्रहण करने की चेष्टा करता है। यदि किसी प्रश्न का उत्तर उस की बुद्धि को नहीं जंचता या उस की बुद्धि ऐसा परिणाम निकालती है जो गुरु (अध्यापक) अथवा पाठ्य पुस्तक द्वारा निर्णीत परिणाम से भिन्न होता है तो वह पुस्तक या अध्यापक को ही भ्रान्त नहीं मान लेता, अपितु पुनः पुनः विचार करता है और तब तक अपनी बुद्धि को ही भ्रान्त मानता है जब तक कि वह गुरु द्वारा उपदिष्ट तथ्य का याथा-तथ्य ग्रहण नहीं कर लेती, क्योंकि गुरु और पाठ्य पुस्तक प्रमाण हैं शिष्य की बुद्धि पाठ्य पुस्तकानुसारी नहीं तो वह भ्रान्त सिद्ध होती है। धैर्य से विचारते रहने का ही यह परिणाम होता है कि शिष्य अन्त में उस तथ्य को समझ लेता है और कुछ काल के पश्चात् विद्वान पण्डित बन जाता है। यदि शिष्य गुरु और पुस्तक को ही भ्रान्त कह कर उपराम हो जावे तो उस की क्या गति होगी। यदि स्थूल विषय में ऐसी दृढ़ धारणा (श्रद्धा) की आवश्यकता होती है तो सूक्ष्मतम आत्म विषयक उपनिषद् तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरु के वाक्यों में कितनी महान् श्रद्धा की अपेक्षा है। यदि गूढ़, सूक्ष्म, तत्त्व का अपनी बुद्धि से ही निर्णय करना चाहें तो उस के सामान्य अस्तित्त्व का निर्धारण करना असम्भव है, उस के वास्तविक स्वरूप तथा साक्षात्कार का तो कहना ही क्या है ? अतः इन्द्र के समान गुरु के इष्ट देव विषयक उपदेश में अनन्य श्रद्धा युक्त हो कर अन्वेषण करते रहने पर ही शास्त्र तथा गुरु वाक्य का गूढ़ रहस्य हृदयङ्गम कर, शोक मोह से छुटकारा पा, परम अमृत का भागी बनता है, अन्यथा विरोचन के समान शरीर का पुजारी हो कर जन्म मरण के चक्कर में ही पड़ा रहना होगा।

योग दर्शन में वर्णित स्वरूप स्थिति के लिए श्रद्धा का उपयोग

योग दर्शन में पातञ्जलि ऋषि स्वरूप स्थिति के लिए उपादेय असम्प्रज्ञात समाधि के उपायों में प्रथम स्थान श्रद्धा को देते हैं। क्योंकि श्रद्धा ही क्रमानुसार शेष सब उपायों की माता है। श्रद्धा-चित्त सम्प्रसाद (रूपी), ईश्वर, वेद, गुरु, तथा गुरु-उपदेश में परम विश्वास, यह कल्याण कारिणी जननी के समान योगी की रक्षा करती है। सत्यासत्य विवेक युक्त सात्विक श्रद्धालु को ही श्रेय सिद्धि के लिए वीर्य अर्थात् उत्साह उत्पन्न होता है। यह श्रद्धा ही जिज्ञासु के सब प्रमाद को दग्ध कर देती है और वीर्य, उत्साह, बल, सामर्थ्य देती है तथा स्मृति समनस्कता [अपने ध्येय तत्साधन उपार्जित शुद्ध संस्कार, भावना तथा सत्यासत्य विवेक को कभी न भूलना] स्थिर होती है, स्मृति के अविचल होने पर चित्त चञ्चलता को त्याग कर सम्प्रज्ञात समाधि को लाभ करता है। समाधि से ऋतम्भरा प्रज्ञा उत्पन्न होती है। जिस से आत्म अनात्म के भेद को यथावत् जाना जाता है। इस विवेक ख्याति के दृढ़ अभ्यास से पर-वैराग्य होता है, जिस से असम्प्रज्ञात समाधि लाभ होती है। तब परमात्मा में स्थिति होती है। अर्थात् अनेक जन्मों के पुण्यों के प्रताप से परमात्मा तथा गुरु में ऐसी अनन्य श्रद्धा उत्पन्न होती है जिस के बल से सब अन्तरायों को भस्मसात् करता हुआ परम ध्येय को प्राप्त हो जाता है। (योग दर्शन १—२०)।

निकृष्ट, मध्यम तथा उत्तम प्रकार से तीन श्रद्धा के भेद गीता में इस प्रकार वर्णित हैं—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेतितां शृणु॥
१७—२।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥
१७—३।

यजते सात्विको देवान् यक्ष रक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूत गणांश्चान्ये यजन्ते तामसाजनाः॥
१७—४।

'देह धारियों (मनुष्यों) की वह स्वाभाविक श्रद्धा तीन प्रकार की होती है—सात्विकी, राजसी और तामसी—उन का वर्णन अब सुनो। हे भारत ! प्रत्येक पुरुष की यह श्रद्धा अपने सत्व के अनुकूल ही होती है। जैसी जिस की श्रद्धा होती है, वह मनुष्य वैसा ही होता है। सात्विक श्रद्धा वाला पुरुष देवताओं की, राजसिक यक्ष राक्षसों की और तामसिक भूत प्रेतों की पूजा करता है।

श्रद्धा तथा अश्रद्धा के चिन्ह

योग दर्शन व्यास भाष्य में श्रद्धा तथा अश्रद्धा के चिन्हों का इस प्रकार वर्णन किया है—'जैसे श्रावण आदि अनुकूल ऋतु में तृणांकुर को देखने से यह अनुमान होता है कि इस का बीज पहिले ही विद्यमान था। इसी प्रकार जिस व्यक्ति में मोक्ष मार्ग के श्रवण से रोम हर्ष आदि चिन्ह दीखते हैं। उस से अनुमान होता है कि इस जिज्ञासु का चित पूर्व जन्म में कृत साधनों द्वारा मोक्ष का भागी है।

श्रद्धा की आराधना

श्री भगवद्दत्त वेदालंकार

ऋषि—श्रद्धा कामायनी । देवता—श्रद्धा ।
छन्द—अनुष्टुप् । ऋ० १० म १५१ सू०

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि बचसा वेदयामसि । ।१।

(श्रद्धया) श्रद्धा से (अग्निः समिध्यते) अग्नि प्रदीप्त की जाती है (श्रद्धया) श्रद्धा से (हविः हूयते) यज्ञ में आहुति दी जाती है (श्रद्धां) श्रद्धा को हम (बचसा) ज्ञान व वाणी द्वारा (भगस्य मूर्धनि) ऐश्वर्य के शिखर पर (वेदयामसि) पहुँचाते हैं ।

मनुष्य में अग्नि का समिन्धन व उद्दीपन श्रद्धा बल से ही होता है । भगवान् जब सृष्टि यज्ञ रचने लगा तब श्रुति की सर्वप्रथम ऋचा 'अग्निमीडे पुरोहितं०' द्वारा उसने अग्नि का सब से पहले स्मरण किया, और उसे पुरोहित (पुरः हितम् = आगे रखना या सब से पूर्व ला रखना) पद पर प्रतिष्ठित किया । भगवान् में तो स्वाभाविकी श्रद्धा है । इस लिए अग्नि की प्रदीप्ति के लिये उसे श्रद्धा की आवश्यकता न थी । पर हमें तो स्वात्म यज्ञ व अन्य कोई भी यज्ञ रचने के लिए अग्नि से भी पूर्व श्रद्धा का आह्वान करना पड़ेगा तभी अग्नि का समिन्धन व प्रज्वलन हो सकेगा । और बिना अग्नि प्रज्वलित हुये हवियां व हवियों की सर्वोत्कृष्ट हवि आत्माहुति कैसे दी जा सकती है ? परन्तु श्रद्धा अन्धश्रद्धा नहीं ज्ञान सम्पन्न परिपूर्ण श्रद्धा होनी चाहिये (श्रद्धां वचसा वेदयामसि) । क्योंकि वही हमें ऐश्वर्य के शिखर पर पहुँचा सकती है । आओ ! हम उस श्रद्धा देवी की अपने मनोमन्दिर में अर्चना व पूजा करें ।

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं मे उदितं कृधि ॥ २ ॥

(श्रद्धे) हे श्रद्धा देवि ! (ददतः प्रियं) देने वाले का तू प्रिय कर (दिदासतः प्रियं) दान की इच्छा वाले का भला कर (भोजेषु) भोजन देने वालों तथा (यज्वसु) यज्ञ करने वालों का (प्रियं) प्रिय हो । और (मे इदं) मेरा यह प्रिय तू (उदितं कृधि) उदीयमान कर ।

यह परमात्मा के दर्शन करेगा और परम पद को प्राप्त करेगा । परन्तु जो पूर्व जन्म के संस्कारों से शून्य होता है; वह ऐसा कहता है 'यही लोक है; पर लोक कोई नहीं; कौन देख कर आया है । ऐसा वाङ्मनसागोचर ईश्वर तत्त्व कल्पना मात्र है । यदि ईश्वर हो भी तो हमें क्या लाभ है ? इस प्रकार उस की पूर्व पक्ष में रुचि तथा सिद्धान्त में अरुचि होती है ।

श्रद्धा की दृढ़ता के लिए साधन

यदि किसी के मन में कुछ श्रद्धा हो तो उसे चाहिये कि वह उस की दृढ़ता तथा सफलता के लिए महापुरुषों का संग करे । यही इस के लिए एक सरल तथा निर्णीत उपाय है । अश्रद्धालु गुरुदत्त की अश्रद्धा, श्रद्धा से भरे हुए महर्षि दयानन्द की एक दृष्टि से ही वायु से बादल के टुकड़े की तरह उड़ गयी । स्वामी विवेकानन्द को श्री रामकृष्ण परम हंस के दर्शनों से श्रद्धा की प्राप्ति हुई ।

★

दान देना सर्वोत्तम बात है। भय से दो, लज्जा से दो, चाहे किसी भी रूप में दो, परन्तु दो अवश्य। यदि श्रद्धा से दो तो सर्वोत्तम बात है। धन दौलत व ऐश्वर्य न भी हो तो भी दान की भावना से भावित रहो। याद रक्खो उतना ही प्रिय होगा जितना देने से होता है। हे श्रद्धे! तुझ से मेरी यह विनम्र विनती है कि भूखों प्यासों को भोजन देने वालों तथा यज्ञ करने वालों का जो प्रियाचरण तू करती है वह मेरा भी कर।

यथा देवा असुरपु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥३॥

(यथा) जिस प्रकार (देवाः) देवों ने (उग्रेषु असुरेषु) उग्र असुरों में (श्रद्धां चक्रिरे) श्रद्धा पैदा की अथवा उन में श्रद्धा की (एवं) उसी प्रकार ही हे श्रद्धे तू (अस्माकं) हमारे (भोजेषु यज्वसु) भोजन देने वालों तथा यज्ञ करने वालों में (उदितं कृधि) उस श्रद्धा को उदित कर।

देवों में पक्षपात नहीं है। यदि उग्र कर्म करने वाले असुरों में भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए श्रद्धा युक्त दृढ़ मनो बल है तो देवता उन में श्रद्धा रखते हैं और उन के सहायक बनते हैं; इस लिए आवश्यकता यह है कि हम मनुष्य भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्व प्रथम श्रद्धा पैदा करें और आसुरी दृढ़ता के साथ कार्य में जुट जायें, जिस से देव हमारे सहायक बनें।

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥४॥

[वायुगोपाः] प्रजाओं में वायु मण्डल के रक्षक अथवा प्राण साधना करने वाले [देवाः यजमानाः] दिव्य यजमान [श्रद्धां उपासते] श्रद्धा की उपासना करते हैं और वे [हृदय्यया आकूत्या] हृदय के संकल्प बल से [श्रद्धां] श्रद्धा को बनाये रखते हैं क्योंकि [श्रद्धया वसु विन्दते] श्रद्धा से ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

प्रजाओं में श्रद्धा का वायु मण्डल अबाधित रूप में प्रवाहित होता रहे, यह दिव्य नेताओं की दिव्यता व उनकी श्रद्धा पर आश्रित है। यदि उन में दिव्यता व श्रद्धा नहीं है तो प्रजाओं में दिव्यता का सञ्चार नहीं हो सकता। श्रद्धा का वायु मण्डल हृदय के अटूट संकल्प बल पर निर्भर है। इसलिये राष्ट्र रूपी यज्ञ के यजमान दिव्य नेता यदि श्रद्धा युक्त दृढ़ मनो बल से नेतृत्व करेंगे तो ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी और कार्य में सफलता मिलेगी।

आओ! हम सब मिल कर श्रद्धा का आह्वान करें।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥५॥

[श्रद्धां प्रातः हवामहे] श्रद्धा का हम प्रातःकाल आह्वान करते हैं। [मध्यन्दिन श्रद्धां परि] मध्यान्ह काल में श्रद्धा का आह्वान करते हैं तथा [सूर्यस्यनिम्रुचि श्रद्धां] सूर्यास्त के समय में भी श्रद्धा की पुकार करते हैं। इसलिये [श्रद्धे] हे श्रद्धा देवि। तू [इह] यहां इस यज्ञ में अथवा इस भूतल पर [नः] हमें [श्रद्धापय] श्रद्धा युक्त बना।



पञ्चवर्षीय योजना में शिक्षा की उपेक्षा

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

बहुत लम्बी चौड़ी और धूमधाम की घोषणाओं के पश्चात् भारत सरकार की ओर से जो पञ्चवर्षीय योजना प्रकाशित हुई है वह कई दृष्टियों से निराशाजनक है। किसी देश के भावी निर्माण के लिए जो योजना तैयार की जाए, उस में कुछ विशेषताओं का होना आवश्यक है अन्यथा योजना का कोई अर्थ नहीं रहता। वे विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

१ योजना का एक स्पष्ट लक्ष्य-केन्द्र होना चाहिए। योजना बनाने वालों को अपनी दृष्टि सदा उस पर रखनी चाहिये।

२ यदि समय की कोई बन्धन रखा जाय तो यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि इतने समय में लक्ष्य के कितने अन्श की पूर्ति होगी।

३ लक्ष्यपूर्ति के सब साधनों के अन्तर्गत एक सामान्य कार्यनीति का होना आवश्यक है। यदि एक निश्चित कार्यनीति न हो तो लक्ष्य की पूर्ति असम्भव हो जाती है।

जब इन तीनों विशेषताओं की खोज करते हैं तो हमें भारत सरकार की योजना खोखली दृष्टिगोचर होती है। मैं इस लेख में योजना के केवल एक शिक्षा भाग को सामने रख कर यह परीक्षा करूंगा कि उस में वे विशेषताएं विद्यमान हैं या नहीं जिन से कोई योजना वस्तुतः योजना कहलाने योग्य होती है।

पञ्चवर्षीय योजना में शिक्षा पर जो परिच्छेद लिखा गया है उसे पढ़ कर यह जानना कठिन है कि योजना-आयोग का शिक्षा के सम्बन्ध में लक्ष्य-बिन्दु क्या है। यह पता नहीं चलता कि वह इन पांच वर्षों में भारत के शिक्षा-क्रम में क्या परिवर्तन करना चाहता है। इस प्रसंग में योजना के कुछ उद्धरण यहां दिये जाते हैं। लिखा है—

'इस में सन्देह नहीं कि शिक्षा-प्रणाली के आधारभूत विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन करने की आवश्यकता है; और यदि हम योजनाबद्ध उन्नति करना चाहते हैं तो शिक्षा देने के तरीकों को भी बदलना पड़ेगा। विषय बहुत विस्तृत है। यहां तो हम केवल उन बातों की ओर निर्देश करना चाहते हैं जिन का राष्ट्रिय योजना पर प्रभाव पड़ेगा। बहुत से प्रश्नों पर हम अब तक कोई सिफारिश तैयार नहीं कर सके।'

इस का अभिप्राय स्पष्ट है कि कमीशन न तो अभी तक शिक्षा सम्बन्धी लक्ष्य के बारे में किसी निश्चय पर पहुंचा है और न उपायों के बारे में। सम्भवतः इन पर उस ने विचार भी नहीं किया। जो कुछ उस ने किया है वह यह है कि शिक्षा की उन्नति के मार्ग में आने वाली बाधाओं का परिगणन कर दिया है। योजना में लिखा है—

'यह स्पष्ट है कि १२३ करोड़ रुपए की राशि (जिस में से केन्द्र ३२ करोड़ देता है और जिस की सिफारिश योजना के प्रथम भाग में की है) देश की शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नाकाफी है।'

नाकाफी सहायता देने का मूल कारण यह बतलाया गया है कि राज्य के पास रुपया कम

है। योजना में अनेक युक्तियों से दो बात सिद्ध की गई हैं। एक तो यह कि, यदि हम शिक्षा की पर्याप्त सहूलियत पैदा न करेंगे तो देश की बहुमूल्य मानवीय सम्पत्ति बर्बाद हो जाएगी और दूसरी यह है कि इस समय राज्य के पास पैसे की कमी है, इस कारण शिक्षा की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया जा सकता।

जब यह हालत है तो किसी लक्ष्य-बिन्दु का तय करना असम्भव ही है। कम से कम योजना आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कोई स्पष्ट लक्ष्य-बिन्दु निर्धारित नहीं किया। 'आब्जेक्टिव्स' (लक्ष्य) शीर्षक के नीचे मैंने लक्ष्य की तलाश की तो बहुत निराशा हुई। प्रारम्भ में लिखा है—'हमारा तात्कालिक ध्येय यह है कि हम परिस्थितियों और साधनों द्वारा परिमित सीमाओं में शिक्षा-पद्धति को राष्ट्रिय योजना के अनुकूल बनाएं। अनुकूल बनाने की व्याख्या करने में रिपोर्ट के निर्माताओं ने शिक्षा सम्बन्धी किताबों का अधूरा निचोड़ लिख दिया है। इस समय सरकार किस लक्ष्य को सामने रख कर चलेगी या जो लोग शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं; वे किधर जाएं, इन प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर नहीं मिला।

ध्येय की व्याख्या के पश्चात् रिपोर्ट में शिक्षा के भिन्न-भिन्न विभागों पर विचार प्रकट किए गये हैं। पहले मौलिक शिक्षा को लिया गया है, उस की उपयोगिता को दर्शा कर यह निर्णय किया गया है कि राज्यों को अपने यहां मौलिक शिक्षा के केन्द्रों की स्थापना करनी चाहिये।

उस के पश्चात् यूनिवर्सिटी शिक्षा के सम्बन्ध में चर्चा है। उस का सारांश यह है कि यद्यपि यूनिवर्सिटी कमीशन ने बहुत अच्छे अच्छे सुधार प्रस्तुत किए हैं, तथापि धनाभाव से उन्हें हाथ में लेना कठिन है। हां शिक्षा विद्यालयों को अपनी अपनी न्यूनताएं पूरी करनी चाहिए।

यही हालत सामाजिक शिक्षा की है। वहां भी जनता को कुछ परामर्श दिये गये हैं। सरकार क्या करेगी इस का पता नहीं चलता।

अन्त में 'सेल्फ हेल्प' इस शीर्षक के नीचे यह शुभ इच्छा प्रकट की गई है कि देश के निवासी अपनी सहायता आप करेंगे, और गांधी जी शिक्षा में जो परिवर्तन करना चाहते थे, उन्हें सम्पन्न कर देंगे।

शिल्प-शिक्षा के बारे में अवश्य कुछ थोड़े से आशाजनक वाक्य लिखे गये हैं उन से यह भान होता है कि यह आयोग सरकार को शिल्प-शिक्षा की उन्नति के लिये कुछ करने की सलाह देता है।

इस प्रकार हम यह कहें तो अनुचित न होगा कि योजना आयोग ने शिक्षा सम्बन्धी योजना के बारे में बहुत ही थोड़ा कहा है; और जो कुछ कहा है वह आशाजनक नहीं है। उसे हम योजना का नाम नहीं दे सकते।

हमारी पञ्चवर्षीय योजना में यह बहुत बड़ा दोष है कि वह कोई निश्चित योजना न हो कर योजना सम्बन्धी प्रारम्भिक विचारों का समुच्चय-मात्र है। प्रायः सभी विषयों पर जो विचार प्रकट किये गये हैं; उन्हें योजना सम्बन्धी प्रस्तावना ही कह सकते हैं। योजना के प्रमुख कर्णधार पं० जवाहरलाल ने संसद में पञ्चवर्षीय योजना के प्रस्ताव को देखते हुए जो भाषण

दिया था, उस में यह स्वीकार किया था कि इस योजना की आधारभूत कोई विशेष फिलासफी नहीं है। परिस्थितियों और बाधाओं पर विचार कर के जो कार्यक्रम सोचा जा सकता है, वह योजना के रूप में पेश किया गया है।

यह तो हुई सारी योजना की बात, जब हम शिक्षा को सामने रख कर योजना का अध्ययन करते हैं; तो हमें कहना पड़ता है कि इस अधूरी योजना में सबसे अधूरा वह अध्याय है, जिसका भारतीय लोकतन्त्र राज्य की २५ करोड़ जनता की शिक्षा से सम्बन्ध है। इस २५३ पृष्ठों की योजना में जहां अन्य विषयों का बीस, पच्चीस पृष्ठ तक मिले हैं; शिक्षा के विषय में केवल ८ पृष्ठ खर्च किए गए हैं और उन में भी केवल शिक्षा की कुछ समस्याओं की ओर निर्देश दिया गया है; कोई विशेष योजना स्पष्ट रूप में उपस्थित नहीं की गई। हां, इतना अवश्य किया गया है कि साक्षरता-प्रचार, मौलिक शिक्षा तथा युनिवर्सिटी सुधार के सम्बन्ध में जो योजनाएं समय-समय पर बनाई जाती रही हैं, उनको काम में लाने के आर्थिक कारणों की व्याख्या कर दी गई है। शिक्षा जैसे आवश्यक विषय की उपेक्षा को स्वयं प्रधान-मंत्री ने भी अनुभव किया है। आपने अपने एक भाषण में कहा है—'मुझे इस बात से दुःख हुआ है कि शिक्षा जैसे विषयों को योजना में अधिक महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया जासका। इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षा-प्रचलित पद्धति की शिक्षा नहीं, अपितु मौलिक शिक्षा–आवश्यक और जीवनोपयोगी है। परन्तु हमें यह भी देखना पड़ता है कि क्या काम पहले किया जाए। यदि हमारे सामने नदी-घाटी संबंधी ऐसी योजना हो जिससे अधिक अन्न और शक्ति व उत्पत्ति की जा सके, तो क्या हमें अपने उपलब्ध साधनों का व्यय शिक्षा और स्वास्थ्य-जैसे विषयों पर कर देना चाहिये? यदि हमारे पास जो कुछ है वह हम ने शिक्षा-जैसे कामों पर खर्च कर दिया तो उन्नति कैसे हो सकेगी और हम जहां के तहां खड़े रह जायेंगे।'

प्रधान मन्त्री के इन वाक्यों को सुन कर मैं आश्चर्यचकित रह गया। मैं सोचने लगा कि हम १९५१ में हैं या १९४५ में? कारण यह है कि किसी लोकतन्त्रात्मक गणराज्य का प्रधान मन्त्री शिक्षा या स्वास्थ्य को राष्ट्र के कार्यक्रम में दूसरा या तीसरा स्थान कैसे दे सकता है? हमारे गणराज्य में प्रत्येक वयस्क को मत देने का अधिकार प्राप्त है। मताधिकार से लाभ उठाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि मतदाता कुछ-न-कुछ शिक्षित अवश्य हो। सर्वथा अशिक्षित मतदाता स्वराज्य को कैसे निभायेंगे? जिस राज्य के ८०-८५-प्रतिशत मतदाता सर्वथा अशिक्षित हों, उस में लोकतन्त्र कैसे चल सकता है? वहां शायद नाजी राय चल सके या बोलशेविक राज्य निभ जाय, परन्तु अधिकांश अशिक्षित मतदाताओं वाले देश में लोकतन्त्रात्मक राज्य चिरस्थायी नहीं रह सकता। अशिक्षा की मित्रता तानाशाही से हो सकती है, लोकतन्त्र से नहीं। यह स्पष्ट बात है कि भारत जैसे देश की अपनी सरकार शिक्षा की योजना के कार्यक्रम को सब से पीछे नहीं डाल सकती। यदि डालती है तो वह इस नए लोकतन्त्र की असफलता को स्वयं निमन्त्रण देती है। भारत सरकार की पञ्चवर्षीय योजना में शिक्षा को जो गौण और पिछड़ा हुआ स्थान दिया गया है उसे हम उपेक्षा या अदूरदर्शिता का परिणाम ही कह सकते हैं।

—

यतिवर श्रद्धानन्द

श्री सत्यव्रत

[१]

शत नमस्कार, शत नमस्कार

राग नहीं यह, नहीं रागिनी
जो तुम को मैं सुना रहा हूँ,
साज नहीं, सामान नहीं-
पूजा का, फिर भी रिझा रहा हूं।
सामर्थ्य नहीं वाणी में भी,
कैसे गुरुवर! हम गुण गावें,
पर मूक बने रहने से भी
मन की मन में ही रह जावे।
युग मानव थे, युग स्रष्टा थे,
यतिवर! तुम ही थे युगाधार ।।
शत नमस्कार.......

[२]

वैभव को छोड़ चले तुम थे
भटकों को गले लगाने,
जो चले गये निज धर्म छोड़
उन को फिर से अपनाने।
जामा मस्जिद की वेदी से
तुमने शुभ सन्देश दिया था,
शेष कार्य जो ऋषिवर का था
तुमने उसे अशेष किया था।
थे तुम भारत मां के सपूत
जग के तुम थे भ्राता उदार ॥
शत नमस्कार........

[३]

दुश्मन की संगीनों आगे
निर्भय सीना तान दिया था,
पूरा वही किया तुमने जो
एक बार प्रण ठान लिया था।
तुम हंसे अरे! जग मुसकाया
कांटे पथ के भी फूल बने,
जो जन पहले प्रतिकूल बने,
वे भी पीछे अनुकूल बने।
तुम उदित हुए, आया प्रभात
तुम छिपे बढ़ा घन अन्धकार ।।
शत नमस्कार.........

[४]

यदि रूखे ही टुकड़े हों तो
फिर भी मत इन्कार करो,
श्रद्धा की अञ्जलि है अर्पित
देव इसे स्वीकार करो।
पावन 'गुरुकुल' फुलवारी के
तुम ही तो यतिवर! हो माली,
देव! तुम्हारा शुभ अभिनन्दन
करती झुक झुक डाली डाली।
स्वातन्त्र्य समर के सेनानी
तुम को प्रणाम है अमित बार ॥
शत नमस्कार.........



श्रद्धा और श्रद्धानन्द

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

महापुरुष नहीं रहते, रह जाती है उन की कीर्ति-कौमुदी और इसी ज्योत्स्ना में सत्पथ के पथिक सहज ही मार्ग तय करते चले जाते हैं। ये महापुरुष जिस पथ से जाते हैं उस पथ की निविड़ तमिस्रा को तटस्थ करते जाते हैं जिस से कि कालान्तर में उन के अनुयायियों को जीवन लक्ष्य स्पष्ट दृष्टिगोचर हो। स्वामी दयानन्द के एकमात्र सहचर स्वामी श्रद्धानन्द भी इसी उद्देश्य के अनुरूप हुये। आप नामानुकूल स्वामी दयानन्द के श्रद्धापात्र थे। आप की श्रद्धा अभूतपूर्व और अनुकरणीय थी। श्रद्धा ही साध्य का एकमात्र पूरक है। केवल श्रद्धा ही शांति मार्ग का पाथेय है। बिना श्रद्धा के जीवन अधूरा ही रह जाता है। यदि ईश्वर में, गुरु वाक्य में, तथा धर्म ग्रन्थों में श्रद्धा नहीं है तो आप जीवन के तिमिराच्छन्न गह्वर से कदापि निकल न पायेंगे। बिना श्रद्धा के मनुष्य पथ छोड़ कर ठोकर खाते फिरते हैं। आप को बचपन में शिक्षक की बातों पर विश्वास तथा श्रद्धा थी, अतएव आप ने वर्णमाला की शिक्षा पाई, अन्यथा असम्भव था। आप को अपने सम्बन्धियों के वचन पर श्रद्धा थी और तभी आप यह जान पाये कि यह मेरी माता है और ये मेरे बन्धु हैं। वैद्य के वचनों पर आप को पूरी श्रद्धा रखनी पड़ती है तभी आप नीरोग हो पाते हैं। अपने पाचक पर आप को विश्वास रहता है तभी आप उस के बनाये भोजन को विष नहीं समझते। यदि आप श्रद्धा के प्रतिकूल चलें तो जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता अनिश्चित है। आप रेलगाड़ी और मोटर पर बेधड़क चढ़ जाते हैं। यदि दुर्घटना का संशय हो तो क्या आप आवागमन कर सकते हैं? वायुयान पर अथवा जलयान पर किंचित भी आप को त्रास हो तो सम्भव है आप जीवन से हाथ धो बैठें। यावत् आप श्रद्धा के मार्ग से जा रहे हैं तावत् आप सुख और शांति की छाया में हैं। बाल्यावस्था में आप श्रद्धा के ही कारण आनन्दित रहते हैं और युवावस्था में अश्रद्धा रूपी राग, द्वेष का समागम होता है तथा आप पीड़ित होते हैं। आप को ईश्वर पर विश्वास नहीं, श्रद्धा नहीं—तभी तो आप जीवन को कारागार समझ रहे हैं।

श्रद्धा ही सर्वस्व है। श्रद्धा ही अतुलित महत्ता है। आप विश्वास करें, केवल एक ही आत्मा है। यह उपाधिवाद मिथ्या है। 'एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वान्तरात्मा' गुरु वाक्यों पर विश्वास करें। श्रुति वचनों पर विश्वास रखें तथा जीवन का ध्येय प्राप्त करें। यही आप का साध्य है।

आज स्वामी श्रद्धानन्द की स्मृति में उन के जीवन के महत्वपूर्ण गुण, श्रद्धा का चिन्तन करें जो सदैव उन की स्मृति का हेतु है।



स्वामी श्रद्धानन्द की हिन्दी-सेवा

श्री पीताम्बर नारायण शर्मा

हिन्दी-गद्य (खड़ी बोली) के प्रारम्भिक जीवन के भरण-पोषण एवं प्रचार-प्रसार का श्रेय धार्मिक आन्दोलनों को है। अपने जन्म-काल से लेकर लगभग पचास वर्ष तक हिन्दी-गद्य को कोई साहित्यिक आश्रय प्रायः नहीं मिला। ईसाई, ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि धार्मिक संस्थाओं के कारण ही हिन्दी प्रचार भारत के कतिपय प्रदेशों में हो पाया है। निःसन्देह इन संस्थाओं ने भी निजी स्वार्थ वश ही हिन्दी प्रचार का आश्रय दिया था, फिर भी अनुमान तो कीजिये यदि उसे इन का सहारा न मिला होता तो उस की क्या दशा होती ? उस का जीवित रखना सम्भव था ? शायद नहीं।

आर्य समाज की स्थापना कर के स्वा० दयानन्द ने जो अनुष्ठान प्रारम्भ किया था, उस के अन्यतम होताओं में से स्वा० श्रद्धानन्द भी एक थे। हिन्दी से उन का प्रेम होना स्वाभाविक ही था। इस दिशा में उन्होंने क्या कुछ किया ? किस रूप में किया ? और वे उस कार्य में कहां तक सफल हुए ? यह हम नीचे की पंक्तियों में विचार करेंगे।

तात्कालिक धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति, प्रचार एवं सिद्धांतों की प्रतिक्रिया स्वरूप ही आर्य समाज की स्थापना हुई थी। अन्य धार्मिक, सामाजिक बन्धनों के साथ २ अपनी भाषा से भी भारतीय जनता विमुख होती जा रही थी। लोग उसे भूलते ही नहीं जा रहे थे अपितु उसे अपनाने में अपमान भी समझने लगे थे। अंग्रेजों की कूटनीति ने इस स्थिति को और भी विषम बना दिया था। एक शिक्षित हिन्दू अंग्रेजी बोलने और लिखने में गौरव अनुभव करता था किन्तु अपनी भाषा हिन्दी को पहले तो बोलता ही नहीं था, यदि बोलता भी था तो पाश्चात्य सांचे में ढाल कर—'ए, मैन, हम टुम से बोला है, हम टुम से बात करना नहीं मांगटा।'

आर्य समाज ने हिन्दू जाति के भाषा विषयक इस घोर पतन को देखा और उस के उत्थान में प्रयत्नशील हुआ। स्वा० श्रद्धानन्द के सामने हिन्दी जगत् के इन्द्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की यह पंक्तियां आईं—'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' और उन्होंने उस का मर्म समझा। यहीं से उन्हें 'निज भाषा उन्नति' की प्रेरणा मिली।

महात्मा गांधी ने अपने स्वातन्त्र्य आंदोलन के समय कुछ नियम और सिद्धांत भारतीय जनता के सामने रखे। वहां उन्होंने रचनात्मक कार्य पर जोर दिया। यहीं से स्वा० श्रद्धानन्द (आर्यसमाज) में अपने सिद्धांतों को कार्य रूप में परिणत करने, उन को मूर्तरूप में देखने की प्रेरणा मिली, उन्होंने गुरुकुल प्रणाली को अपनाया।

इन्हीं गुरुकुलों द्वारा स्वा० श्रद्धानन्द ने 'निजभाषा उन्नति' की दिशा में रचनात्मक कार्य किया है। आज गुरुकुल का समस्त व्यवहार हिन्दी में होता है। गुरुकुल का जीवन, उसकी उस की आत्मा हिन्दीमय है।

स्वामी जी अपने इस रचनात्मक प्रयोग

श्रद्धाञ्जलियाँ

निर्भीकता की मूर्ति

स्वामी श्रद्धानन्द साक्षात् निर्भीकता की मूर्ति थे। लम्बा कद, शाही शक्ल, सन्यासी के वेश में बहुत उम्र हो जाने पर भी बिल्कुल सीधी चमकती हुई आंखे। मैं इस सजीव मूर्ति को कैसे भूल सकता हूँ। वह अक्सर मेरी आंखों के सामने आ जाती हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जब कि रुग्णावस्था में चारपाई पर पड़े थे एक मजहबी अन्धे ने उन का कत्ल कर दिया। जिस पुरुष ने गोरखों के सामने छाती खोल दी थी, और उन की गोलियों का सामना किया था, उस की ऐसी मौत......। एक दिन था जब कि इसी आर्यसमाजी नेता ने दिल्ली की विशाल जामा मस्जिद की वेदी पर खड़े हो कर हिन्दुओं और मुसलमानों के एक बड़े जन-समूह को एकता का—भारतवर्ष को आज़ादी का उपदेश दिया था। उस विशाल भीड़ ने हिन्दू मुसलमानों की जय के नारों से उस का स्वागत किया था और मस्जिद के बाहर उस ध्वनि को अपने खून की एक सम्मिलित मुहर लगा दी थी। —जवाहरलाल नेहरु।

❀

पवित्र स्मरण

स्वामी जी के पवित्र स्मरण को कौन भूल सकता है। उन का सच्चा स्मारक तो अस्पृश्यता का जड़-मूल से निकाल कर ही हो सकता है।

—महात्मा गांधी।

❀

सच्चा प्रकाश

पुण्य श्लोक स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का जीवन सदा ऊर्ध्वगामी ही रहा और अपने जीवन के अनुरूप ही मृत्यु का वरण उन्होंने प्राप्त किया। हम सब को अगर चाहें तो उन से सच्चा प्रकाश प्राप्त हो सकता है।

—जैनेन्द्र कुमार।

❀

सर्वथा सफल हुये हैं। प्रारम्भ से ही यह प्रश्न वाद विवाद का विषय बना रहा—क्या राष्ट्रभाषा हिन्दी हो सकती है? क्या हिन्दी को शिक्षा-माध्यम बनाया जा सकता है? जहां दूसरे हिन्दी प्रेमियों ने इन प्रश्नों का भाषणों तथा लेखों द्वारा उत्तर दे कर हिन्दी की क्षमता तथा योग्यता को सिद्ध किया है, वहां स्वा० श्रद्धानन्द ने इसे व्यावहारिक रूप दे कर प्रत्यक्ष पुष्ट प्रमाण उपस्थित किया है। अनुमान के ऊपर प्रत्यक्ष की यह निःसन्देह विजय है।

स्वा० श्रद्धानन्द कहने में नहीं, करने में विश्वास रखते थे। अनुमान कीजिए यदि ऐसे २ गुरुकुल प्रांत-प्रांत, नगर-नगर में स्थापित हो जायें तो निज भाषा उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो सकती है।

गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त भारतीय नागरिक हिन्दी में जिस सर्वाङ्गीण उदात्त साहित्य का निर्माण करते हैं और करेंगे वह भी इस दिशा में एक उल्लेखनीय हिन्दी-सेवा है। निःसन्देह वह स्वा० श्रद्धानन्द के इस रचनात्मक प्रयोग का ही परिणाम है।

स्वा० श्रद्धानन्द की हिन्दी सेवा रचनात्मक है। वह महान् है, स्तुत्य है तथा अनुकरणीय है।

★

जीवन के उदात्ततम आदर्श

यह खेद का विषय है कि पुण्यश्लोक स्वामी श्रद्धानन्द जी इस समय इस भौतिक विश्व में नहीं हैं। वस्तुतः इस अपूर्व संस्था ने बड़ी दृढ़ता और श्रद्धा के साथ अपने छात्रों के सन्मुख जीवन के उन उदात्ततम आदर्शों को प्रस्तुत किया है जो वेदों और अन्य पवित्र शास्त्रों में ऋषियों द्वारा प्रचारित किए गए हैं। इस संस्था ने जातीय जीवन के विविध क्षेत्रों में काम करने वाले सार्वजनिक सेवक प्रदान किए हैं। उन कार्यकर्ताओं ने बड़े सराहनीय रूप में अपना कर्तव्य पूरा किया है। शिक्षा के क्षेत्र में तो संस्था की सेवाएं ऐसी हैं कि इसके संस्थापक उनके लिए अभिमान कर सकते हैं। मेरी यह शुभ कामना है कि यह संस्था भविष्य में सांस्कृतिक सेवा का और भी अधिक गौरवमय जीवन प्राप्त करे।

—माधवश्रीहरि अणे.
राज्यपाल, बिहार प्रान्त।



उनके अनुकरणीय गुण

स्वामी श्रद्धानन्द जी जिस काम को ठीक समझते थे उसे पूरा करने में जिस ज़बरदस्त लग्न, साहस और त्याग के साथ जुट जाते थे, वह बात आज देश के लोगों में बहुत ही कम दिखाई देती है। वे जिसे न्याय समझते थे उस के लिए 'निन्दतु नीतिनिपुणाः……' वाले श्लोक को अपने जीवन में पूरी तरह उतार देते थे; वे महान् थे। उन के कुछ गुण अगर हम में आ जावें तो देश आज के दुःखों को बहुत जल्दी पार कर जावे। —सुन्दर लाल।



जीवन को आदर्श बनाने का व्रत

प्रत्येक आर्य-पुरुष हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी को स्मरण करेगा। गुरुकुल कांगड़ी उन की अमर स्मृति है। यदि कुलवासी अपने कुलगुरु स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की उस सन्देश-परम्परा को प्रचलित रख सकें जिसे उन्होंने ऋषि दयानन्द से ग्रहण किया था, और उनके व्रत को धारण कर सकें जो अपने जीवन को आदर्श आर्य जीवन बनाने तथा प्रचलित असत्य प्रवाह के विरुद्ध बुद्धि स्वातन्त्र्य से निर्भीकता पूर्वक सत्य को ग्रहण करने तथा इस के लिए मृत्यु तक को सहर्ष आलिंगन करने का था, तो हम सभी का कल्याण होगा।—मदन मोहन सेठ
प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा
उत्तर प्रदेश।



शिक्षा के प्रथम प्रयोगकर्ता

यह एक सुन्दर उपलब्धि का विषय है कि वैदिक-शिक्षा के जिस प्रयोग का विचार स्वामी दयानन्द जी ने किया था और जिसे स्वामी श्रद्धानन्द जी ने कार्यरूप में परिणत किया है वह गुरुकुल आज अपने संस्थापक का सच्चा श्राद्ध मना रहा है। इस शुभ अवसर पर मैं ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की ओर से गुरुकुल के भावी जीवन के लिए अपनी सद्भावनाओं का हार्दिक सन्देश प्रेषित करता हूँ और अपनी श्रद्धा की अञ्जलि भेंट करता हूँ। —जौन फाउल,
वाइस-चांसलर, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय।



यशस्वी जीवन

स्वामी श्रद्धानंद जी को, भारत में ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जो न जानता हो। उन की देश-सेवा, बलिदान, त्याग की सराहना मात्र कर के नहीं अपितु उस से शिक्षा ग्रहण कर के ही हम उन के बलिदान पर्व को सच्चे अर्थों में मना सकते हैं। उन के यशस्वी जीवन के प्रधान गुण त्याग और सेवा से आज हम भारत-वासियों का मस्तक गर्व से ऊंचा है।

—गोविन्द वल्लभ पंत।

❀

साहस और त्याग का जीता जागता उदाहरण

स्वामी जी ने इस आदर्श संस्था गुरुकुल विश्वविद्यालय के संस्थापन में जो अनथक परिश्रम और आदर्श त्याग किया, वह भुलाया नहीं जा सकता। इस के अतिरिक्त राजनीतिक क्षेत्र में भी स्वामी जी ने साहस और त्याग का जीता जागता उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत किया। स्वामी जी के ये प्रशंसात्मक कार्य उन के अनुगामियों और प्रशंसकों का पथ प्रदर्शन करते रहेंगे और एक नई स्फूर्ति का सञ्चार करते रहेंगे।

—गोकुल चन्द्र नारंग।

❀

देदीप्यमान-स्मृति

मेरा दृढ़ निश्चय है कि भारत के आधुनिक संकट-मय समय में 'मानवता के प्रति निस्वार्थ सेवा' जिस के लिये अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने जीवन का समर्पण कर दिया, ही हमारा पथ प्रदर्शन कर सकती है। मुझे आशा है कि स्वामी जी की वह देदीप्यमान स्मृति यावच्चन्द्र दिवाकरौ हमारे अन्दर अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिये नवचेतना का संचार करती रहेगी।

—जी० एस० सरदेसाई।

❀

निर्भय और निस्वार्थ त्याग

स्वामी जी के अन्दर वे महान् गुण थे जो कि प्राचीन परम्पराओं के अनुरूप एक सच्चे संन्यासी में होने चाहियें। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी स्वामी जी की निर्भय और निस्वार्थ त्याग की भावना भारत की सच्ची राष्ट्रीयता के लिए एक महानतम आदर्श है।

— जी० वी० केतकर।

❀

स्वामी जी का सच्चा अनुयायी बनें

इस पुण्य तिथि में मैं श्री स्वामी जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अपने को धन्य मानता हूं। स्वामी जी की अमर आत्मा हम सब को अपना सच्चा अनुयायी बनने की क्षमता प्रदान करें।

—श्रीराम वाजपेयी।

❀

★

मस्ताना श्रद्धानन्द

श्री गुरुदत्त

वेद धर्म की बलि वेदी पर चढ़ा हुआ मस्ताना था ।
सदाचार में मानवता का बना हुआ मरदाना था ।।

मान मातृ आदेश आन पर खेल गया दीवाना था
देश जाति की लौ पर मिटने वाला वह परवाना था ।
देश जाति के प्राण रूप उस को प्रभु ने सन्धाना था
पर हाय ! अभागे देश नहीं तूने उस को पहिचाना था ।।

वह खेल गया अपनी बाज़ी, प्राणों की खेली होली थी
चढ़ वीर शहीदों में उस ने छाती पर खाई गोली थी ।
ओ धन्य वीर तेरे पीछे कट गई शहीदी टोली थी
तब गूंज उठी कोने २ में आज़ादी की बोली थी ।।

बने हुए थे अरे वीर वर, तीखी तेग भवानी तुम
बने हुए थे रूद्र रूप धर वीर शिवा की वाणी तुम ।
ज्वलित चिता की भस्म लगा कर टीका बने निशानी तुम
दीनों की करुणा में बने हुए थे करुण कहानी तुम ।।

तू नर पिशाच के लिये भभकती एक धधकती ज्वाला था
तू शूर वीर सहृदय मानव के लिये अनोखी माला था ।
तू देश जाति और वेद धर्म पर बना हुआ मतवाला था
तू ज्ञानवान विद्वान् जनों के लिये मधुर रस प्याला था ।।

सिंहासन हिल उठा, देश में बोली वैदिक बोली थी
छोड़ महल जंगल में डाली पर्ण कुटी अनमोली थी ।
दर दर बाल भिखारी बन ली हाथ फ़कीरी झोली थी
तपो भूमि वन में गुरुकुल की अनुपम संस्था खोली थी ।।

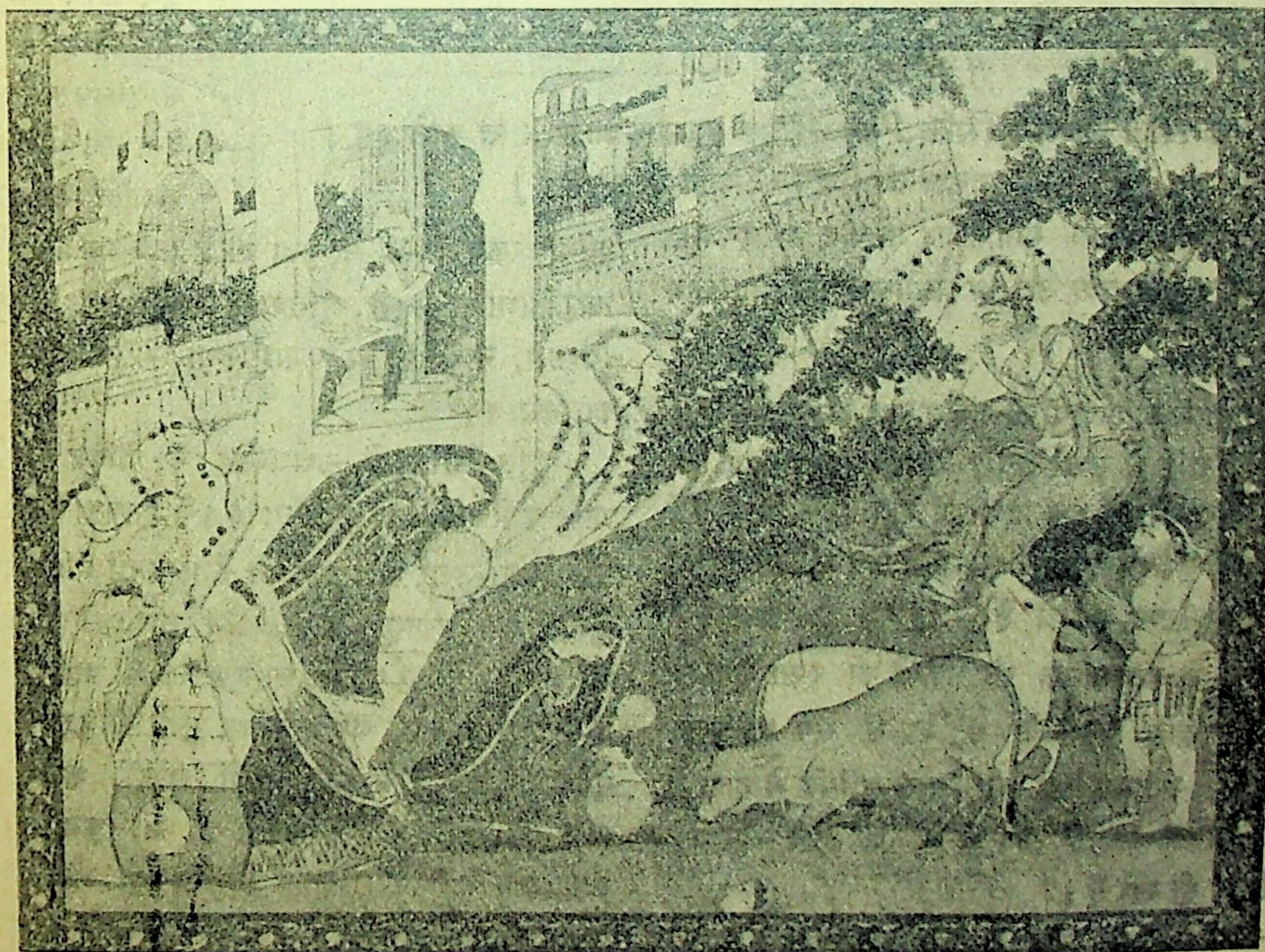


उत्तराखण्ड में लोक-शिक्षण का एक नया केन्द्र

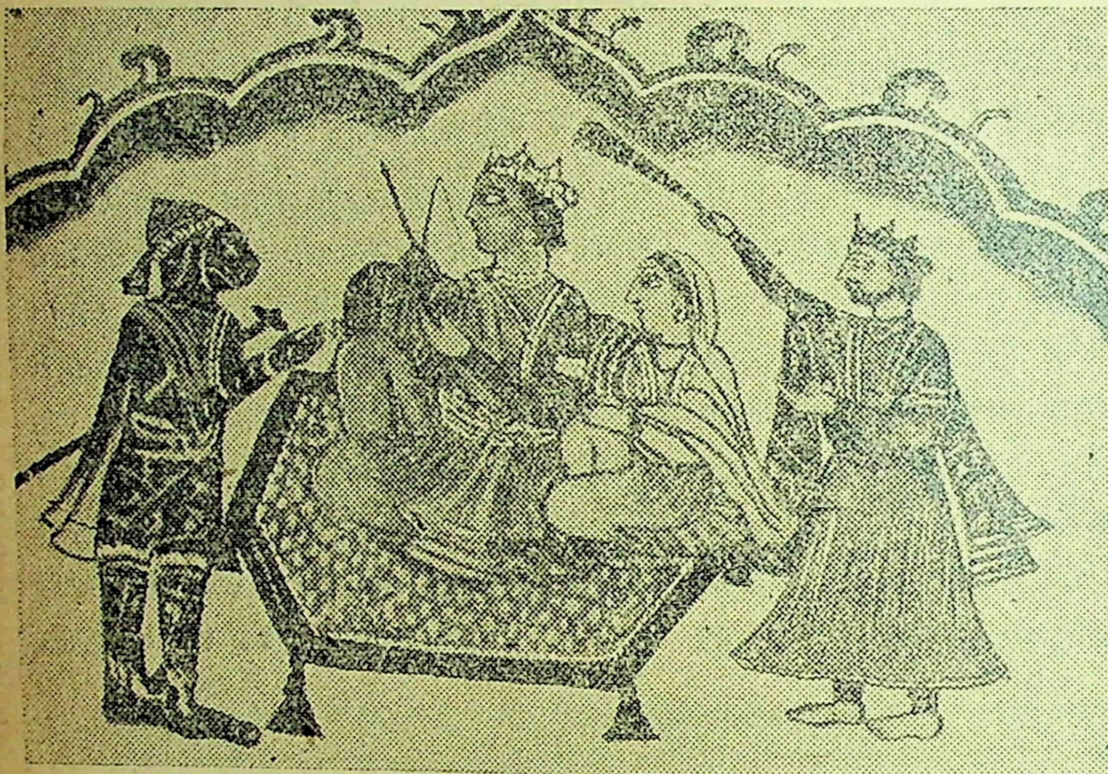
श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, पुरातत्त्व अधिकारी, उत्तर प्रदेश।

वर्तमान युग में संग्रहालयों की उपादेयता की ओर लोगों का ध्यान गया है। यूरोप और अमेरिका में तो विविध प्रकार के संग्रहालयों की संख्या बहुत बड़ी है और दिन पर दिन उसमें वृद्धि होती जा रही है। वहां प्रायः प्रत्येक नगर में एक न एक सार्वजनिक संग्रहालय मिलेगा। शिक्षा-संस्थाओं के अपने संग्रहालय अलग होते हैं, जिनमें विद्यार्थियों के उपयोग की वस्तुएं प्रदर्शित रहती हैं। पश्चिमी देशों में बहुत से संग्रहालय ऐसे मिलेंगे जो व्यक्तियों के द्वारा अपने निजी धन से स्थापित किये गये हैं। दुर्भाग्य से हमारे देश में इस दिशा में बहुत कम प्रगति हुई है। सारे भारत में सभी प्रकार के सार्वजनिक संग्रहालयों की संख्या १५० से अधिक न होगी। इन में से भी बहुत से केवल नाम के ही मिलेंगे। हमारे यहां के संग्रहालयों की सामग्री का वैसा उपयोग भी नहीं होता जैसा कि पश्चिम में

भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्थापत्य, मूर्तिकला एवं चित्रकला के अवशेष तथा प्राचीन सिक्के हस्तलिखित ग्रन्थ आदि वस्तुएं बहुत बड़ी संख्या में बिखरी पड़ी हैं। इनमें से बहुत सी कृतियां नष्ट हो रही हैं। शासन तथा जनता को अब इस ओर शीघ्र ध्यान



पनघट पर कन्हैया—पहाड़ी शैली का एक चित्र। १६वीं शती। गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी में सुरक्षित।
[श्री गंगा प्रसाद मिश्र के सौजन्य से।]



कनखल का एक भित्ति चित्र—सेवक हनुमान आज्ञा प्राप्त करते हुए।
[गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी से।]

देना चाहिए, जिससे हमारी यह प्राचीन धरोहर नष्ट होने से बच सके तथा उस का यथोचित उपयोग किया जा सके।

भारत में संग्रहालयों की संख्या तथा उनकी उत्तरोत्तर उन्नति की दृष्टि से उत्तर प्रदेश का स्थान अग्रगण्य है। पिछले चार वर्षों में इस दिशा में बहुत कुछ प्रगति हुई है, जिसका मुख्य श्रेय इस प्रदेश के विद्वान् शिक्षा मंत्री डा० सम्पूर्णानन्द जी को है। १९४७ ई० में उन्होंने इस प्रदेश के सार्वजनिक संग्रहालयों की दशा सुधारने एवं उनमें वृद्धि करने के उद्देश्य से एक सग्रहालय समिति की स्थापना की थी। इस समिति ने हाल में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है, जो अब धीरे-धीरे कार्यान्वित हो रही है।

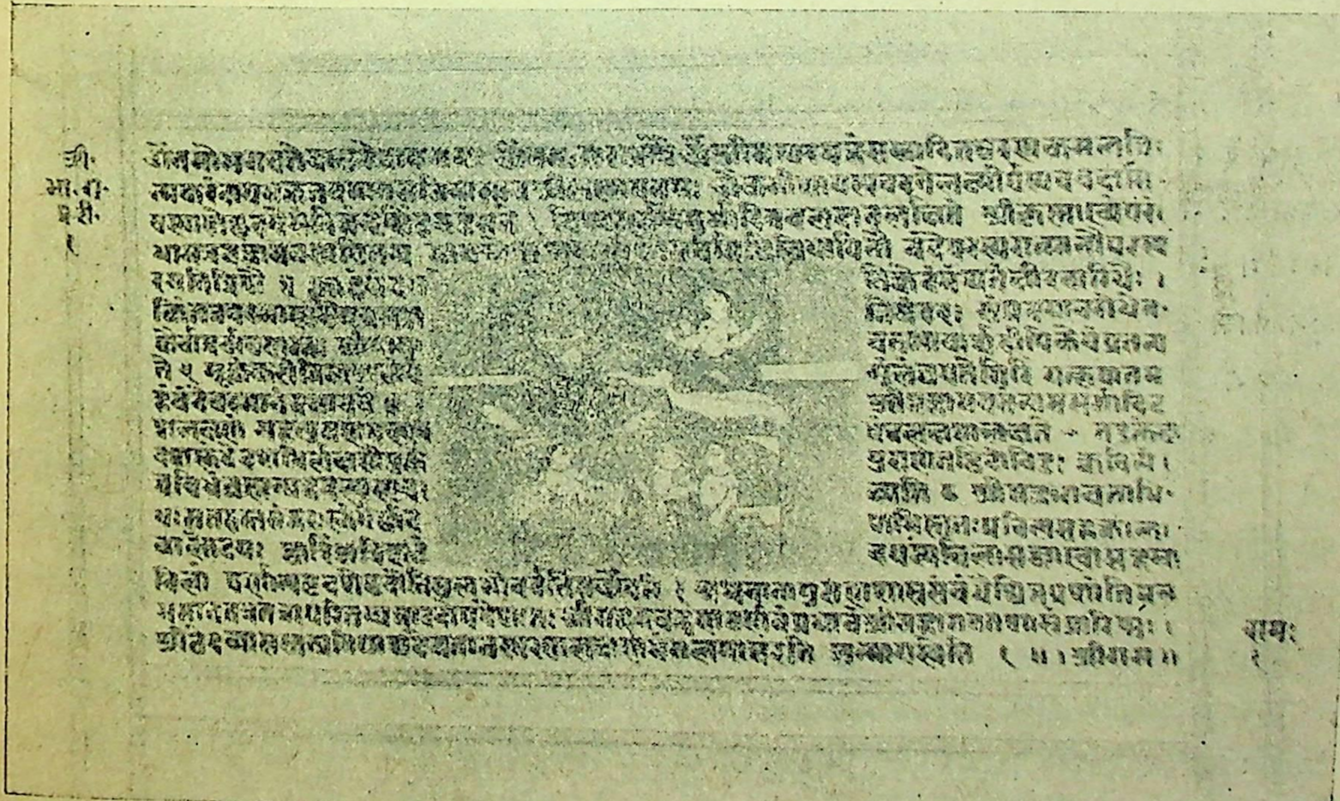
समिति ने इस प्रदेश के जिन नगरों में नये संग्रहालयों की स्थापना की सिफारिश की है उनमें एक हरिद्वार भी है। यह नगर हिन्दुओं के मुख्य तीर्थ स्थानों में है। प्रति वर्ष यहां भारत के कोने-कोने से बहुत बड़ी संख्या में लोग आते हैं, कुम्भ तथा अर्ध-कुम्भ के अवसर पर इन दर्शकों की संख्या बहुत अधिक हो जाती है। सौभाग्य से हरिद्वार की मुख्य शिक्षा संस्था गुरुकुल विश्वविद्यालय ने लगभग तीन वर्ष हुए अपने यहां के 'वेद मन्दिर' में एक संग्रहालय की स्थापना की है, जिसे हाल में उत्तर प्रदेशीय सरकार ने भी मान्यता दी है। इस संग्रहालय में चार विभाग हैं—१. मूर्तिकला विभाग, २. चित्रकला विभाग, ३. सिक्कों का विभाग तथा ४. विविध वस्तुओं का विभाग।

मूर्ति विभाग में उत्तराखंड के विविध स्थानों से प्राप्त अनेक मूर्तियां प्रदर्शित हैं। ये मुख्यतः पूर्व मध्यकाल तथा उत्तर मध्यकाल की हैं। इनमें महिषमर्दिनी दुर्गा, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, जैन तीर्थङ्करों आदि की मूर्तियां हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा का एक सिर भी यहां प्रदर्शित है जिसका अलंकृत जटाजूट तथा मुखों की मुद्रा अत्यन्त सुन्दर है। यह कला-कृति ईस्वी आठवीं शताब्दी के अन्त की है। हाल में मिट्टी की भी कुछ मूर्तियां संग्रहालय के लिए उपलब्ध हुई हैं, जो मौर्यकाल से लेकर गुप्तकाल तक की हैं। सहारनपुर जिले के भींवरहेड़ी नामक स्थान से एक शिलापट्ट मिला है, जिसमें देवताओं और असुरों के द्वारा समुद्र-मन्थन का दृश्य

बड़ी सजीवता के साथ अंकित किया गया है।

चित्र विभाग में पहाड़ी कला के अनेक चित्र प्रादर्शित हैं। इनमें से कुछ चित्र उच्चकोटि के भी हैं। टिहरी-गढ़वाल की रियासत में (जो अब उत्तर प्रदेश का एक जिला बन गयी है) १८वीं और १९वीं शती में चित्रकला की पहाड़ी शैली का अच्छा विकास हुआ। मुगल दरबारों में रहने वाले अनेक चित्रकार टिहरी नरेशों के संरक्षण में रहे थे। उनके तथा उनके वंशजों के द्वारा पहाड़ी चित्रकला को बहुत प्रोत्साहन मिला। इस शैली के कितने ही चित्र अब भी पूर्वी पञ्जाब, टिहरी-गढ़वाल, गढ़वाल तथा अल्मोड़ा जिले के विभिन्न स्थानों में पड़े हुए हैं। अच्छा हो यदि इनमें से कुछ चुने हुए चित्रों का संग्रह हरिद्वार के संग्रहालय में किया जा सके।

हाल में गुरुकुल संग्रहालय के कार्यकर्ताओं ने कनखल के कुछ भित्ति चित्रों का संग्रह अपने यहां किया है। ये चित्र 'निर्मला अखाड़ा' नामक एक बड़ी इमारत की दीवारों पर मिले हैं। इनमें से कुछ १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ के तथा कुछ मध्य के बने हुए हैं। मुझे पिछले वर्ष संग्रहालय के मन्त्री श्री हरिदत्त वेदालंकार के साथ इन भित्ति चित्रों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और इन्हें देखने पर तत्कालीन चित्रकला की एक झांकी मिली। इस कला में मुगल, पहाड़ी तथा यूरोपीय शैलियों का अच्छा संमिश्रण हुआ है। कुछ चित्रों में रंग, रेखा, वर्ण्य विषय तथा भाव की ओर कलाकारों ने काफी ध्यान दिया है। झूला झूलती हुई स्त्रियां, विविध राग रागिनियों के चित्र, पौराणिक दृश्य राजाओं की शोभा यात्रा आदि विभिन्न विषय इनमें मिलते हैं। मुख्य भित्ति-चित्रों के प्रतिचित्र बनवा कर संग्रहालय में प्रदर्शित कर दिये गये हैं, इनमें आसावरी रागिनी, शुक के साथ क्रीड़ा करती हुई वनिता, विरहिणी नायिका, होली का दृश्य, राम का अभिषेक,



हस्तलिखित सचित्र श्रीमद्भागवत की यह प्रति संग्रहालय में सुरक्षित है



चतुर्मुख ब्रह्मा–हरिद्वार की खुदाई से प्राप्त। स्थानीय पत्थर को गढ़ कर बनाई गई लगभग आठ फीट ऊंची मूर्ति का शीर्ष। गुरुकुल संग्रहालय में सुरक्षित।

[कॉपी राइट फोटो–गुरुकुल संग्रहालय]।



शृङ्गार में तल्लीन स्त्री तथा विविध नायिकाओं के चित्र उल्लेखनीय हैं।

संग्रहालय में सिक्कों का विभाग भी दर्शनीय है। इस विभाग में प्रारम्भिक आहत सिक्कों से लेकर अर्वाचीन काल तक के सिक्के प्रदर्शित हैं। विदेशों के सिक्कों का भी अच्छा संकलन किया गया है। विभिन्न कालों के अनुसार सिक्के अलग-अलग रक्खे गये हैं।

चौथे विभाग के अन्तर्गत विविध मानचित्र, लिपि-पत्तक आदि हैं। ब्राह्मी, खरोष्ठी आदि प्राचीन लिपियों के लगभग ६० चार्ट अब तक तैयार हुए हैं, जो कि कालक्रमानुसार भवन में प्रदर्शित किये गये हैं।

वस्तुत: यह संग्रहालय एक बड़ी कमी को दूर करता है। इसके द्वारा गुरुकुल विश्वविद्यालय तथा हरिद्वार की अन्य शिक्षा संस्थाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों का लाभ तो होता ही है; जन साधारण भी इससे लाभान्वित होते हैं। संग्रहालय के संचालकों ने इस बात का ध्यान रखा है कि उसमें संगृहीत सामग्री का पूरा उपयोग प्रादेशिक इतिहास के अन्वेषण में किया जाय। उनका यह भी उद्देश्य है कि इस संग्रहालय के द्वारा शिक्षण का कार्य अग्रसर हो तथा जनसाधारण का ध्यान भारत के प्राचीन गौरव की ओर आकर्षित हो। उत्तर प्रदेशीय सरकार ने हाल में प्रादेशिक संग्रहालय-निर्माण की जो महत्त्वपूर्ण योजना बनायी है उसकी पूर्ति की ओर गुरुकुल संग्रहालय अग्रसर है। आशा है कि शासन एवं जनता के सहयोग से उत्तराखंड के सम्बन्ध में पुरातत्त्व, नृतत्व, चित्रकला आदि की यथेष्ट सामग्री इस संग्रहालय में शीघ्र संकलित हो सकेगी, जिसके द्वारा विशेषकर इस प्रदेश के अज्ञात इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकेगा।



पुण्य स्मरण श्री श्रद्धानन्द

श्री बाल मुकुन्द मिश्र

एक दिन उनका दो शब्दों का 'मुन्शीराम' नाम था । जिसमें एक अहिन्दी और दूसरा हिन्दी शब्द था । 'मुन्शी' का अर्थ है—लेखक; और राम का अर्थ पौराणिकता अपौराणिकता से सरक कर है । रम रहे संसार में राम [प्रभु] । दोनों अलग-अलग शब्दों की संगति ऐसे बैठाना पसन्द है । अच्छे [मुन्शी] लेखक ने ईमानदारी के साथ, आजीवन सलोने विश्व में रम रहे प्रभु राम की सेवा के साथ-साथ कर्तव्य-निष्ठा के साथ, उनकी काया उनके अर्पण कर दी । इस लिए वे हमारे आदर के पात्र हैं ।

दूसरे किसी दिन उन्होंने अपना नाम रखा 'श्रद्धानन्द' । इसका भी सन्धि-विच्छेद कर लें । इसका आकार बनता है श्रद्धा+आनन्द । अब अपनी लो उधेड़ बुन को समेट लें...श्रद्धा के मानवीय मूर्त-पुञ्ज ने श्रद्धा सहित दुनियां के अन्तिम छोर यानी सत्-चित् से भी दो कदम आगे, तीसरे कदम पर जहां आत्मा का पूर्ण रूप आनन्द [सच्चिदानन्द] है, उसकी देहली पर अपने को समर्पित कर दिया था । और अपने अन्तिम श्वासों तक मस्ती के साथ झूमते हुए जग के साधारण जीवों की सर्वस्व रूपेण सेवा करते रहे इस लिए वे हमारी चर्चा के एक प्रशस्त विषय हैं ।

जिसकी हम आज याद कर रहे हैं वस्तुतः वह कुछ था, तभी तो हम आज अपनी स्मृति में उसे कुछ स्थान दे रहे हैं । वह कौन था ? कैसा था ? इस बात को जानने के लिए हम दूर क्यों भटकें । उसकी साधना और लगन के प्रतिफल की ओर ही हम क्यों न निहार लें । 'गुरुकुल कांगड़ी' उसकी आकांक्षा का एक साकार प्रकार है । जहां उसके बनाये ढांचे के नीचे ज्ञान-दान प्रदान किया जाता है । उस साहसी पुरुष की सच्ची धारणा ने 'गुरुकुल कांगड़ी' जैसे स्मारक को प्रेरणाओं के बल बूते पर रच दिया, पर नींव की ईंट श्रद्धानन्द जैसी भारी भरकम हस्ती नमूने के तौर पर कोई ही वहां निर्माण की जा सकी होगी । उसकी आशा आंशिक रूप में ही पूर्ण हुई थी कि श्रद्धानन्द के स्वप्न केवल स्वप्न बन कर ही शेष रह गये ।

उस तपस्वी पुरुष के शेष चिन्हों में से एक सुन्दर प्रतीक गुरुकुल कांगड़ी से थोड़ी दूर पर अनवरत रूप से प्रवाहित पतित पावनी गंगा की पवित्र धारा आज भी वैसे ही चल रही है, जैसी उसके सामने । और गुरुकुल में इठलाती रहने वाली ज्ञान परम्परा की विद्युत धारा भी वैसी ही आज तक है जैसी उनके सामने । पर जैसे गंगा ने अपना मार्ग अपनी या मानव की बलात् इच्छानुसार बदल लिया वैसे ही वहां के विचार वायु मण्डल में भी पूरा २ परिवर्तन हो चुका है जितना कि युग आगे निकल चुका है ।

केवल गुरुकुल कांगड़ी के निर्माण तक ही उनकी सेवायें सीमित नहीं रही थीं, प्रत्युत उनकी सेवा राष्ट्रीय महासभा को भी अर्पित थीं, इस लिए वे 'राष्ट्र सेवक' थे । 'हिन्दू महासभा' के एक दिन वे प्रमुख संचालक थे, इस लिए वे 'हिन्दुत्व संरक्षक' थे । वे एक दिन हिन्दी में—'सद्धर्म प्रचारक' और 'श्रद्धा' पत्र के प्रकाशक और सम्पादक थे, इस लिए वे—'हिन्दी सेवी' और एक कुशल—'पत्रकार' थे । उन्होंने 'मजहब ए इस्लाम' की आलोचना की थी और उनको 'वैदिक साहित्य' में रुचि और प्रगति थी, इस लिए वे

अज्ञानियों के उद्धारक

इस आनन्दमय शुभ पर्व पर आपकी महान् सफलता और प्रगतिशीलता के लिए मैं बड़े हर्षित मन से अपनी हार्दिक प्रेम-प्रसूनांजलि अर्पित करता हूँ।

आपका शिक्षणालय वनों में हरिद्वार के समीप, भगवती भागीरथी के पावन तीर पर अवस्थित है। वह प्रेरणाप्रद वातावरण के मध्य में विराज रहा है जहां पर गुरुजन और अन्तेवासी गण ज्ञानोपासना के निमित्त निवास करते हैं और जीवन संस्कार की शिक्षा प्राप्त करते हैं। ठीक इसी प्रकार की प्रेरणाप्रद परिस्थितियों और वायुमण्डलों में एथेन्स, कारडोवा, नालन्दा और तक्षशिला जैसे विश्वविश्रुत विश्वविद्यालय उत्कर्ष के शिखर पर पहुँच पाए थे।

यह बड़े महत्व का विषय है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा आपके विश्वविद्यालय ने विचारों की प्रेरणा और जीवन का सन्देश प्राप्त किया है तथा दीनों के बन्धु और अज्ञानियों के उद्धारक स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इस के मूर्त शरीर का निर्माण किया है। ये दोनों ही मानवता की सेवा और सत्य के लिए शहीद हो जाने वाले महाप्राण पुरुष थे। इन दोनों वीर पुंगवों ने रूढ़िवाद की बन्दीशाला के सीखचों को तोड़ गिराया और भारत के कल्याण के लिए, नहीं नहीं विश्व समस्त के हित के लिए वेदों को स्वाधीन किया जो वेद ऋषि मुनियों और साधकों की विद्वत्ता और प्रज्ञा के महान् ग्रन्थ हैं।

ज्ञान के प्रसार और मानवता की सेवा की उदात्त परम्परा में आपका विश्वविद्यालय फूला फला है। कोई आश्चर्य नहीं कि प्राची और प्रतीची के अनेक विख्यात मनीषी आपके समीप आकर इस शिक्षा-मन्दिर से प्रेरणाएं प्राप्त करें।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आपका भविष्य उज्ज्वल है और सेवा के विशालतर क्षेत्र में एवं भारतवर्ष के अन्य विश्वविद्यालयों में गुरुकुल अपना अनूठा स्थान प्राप्त करेगा।

—आर० कस्तूरीलाल चेट्टी,
उपकुलपति, मैसूर विश्वविद्यालय।



धार्मिक आलोचक' और एक 'साहित्यिक' थे। युग के प्रदीप दयानन्द सरस्वती जी के सन्देश को उन्होंने जीवन में विशुद्ध रूप से ग्रहण किया था, इस लिए वे 'श्री दयानन्द सरस्वती' के प्रतिनिधि और 'आर्य समाज' के प्रमुख नेता थे।

और वे क्या २ थे? यह बात उनके भक्तजनों और आर्य समाज के अतीत इतिहास पृष्ठों से अच्छी भांति जानी, पहिचानी जा सकती है। पर वे महान् थे, असाधारण थे, उनका व्यक्तित्व श्रेष्ठ था, उच्च था और अन्ततोगत्वा उनके द्वारा निर्मित सुन्दर कारनामों का ही प्रताप है, जो उनकी विरुदावली आज तक अक्षुण्ण है।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द, सच्चे मानों में एक कर्मठ तेजस्वी स्वामी थे। वे बहुत कुछ थे, जितनी हमारी उनके प्रति लम्बी कामना है, वे कहीं उससे भी बड़े थे।

अन्त में उनके प्रति महात्मा गांधी के ऐतिहासिक शब्दों में उद्गार समर्पित है—

'मालूम नहीं, स्वामी श्रद्धानन्द जी का अन्तिम सन्देश क्या था? परन्तु ... निस्सन्देह परमात्मा से यही प्रार्थना की होगी—परमात्मा हत्यारे को क्षमा कर दे।'



वे कुल-पिता थे

श्री चन्द्रमणि विद्यालंकार

दिसम्बर महीने की बात है। मेरे स्नातक होने में सिर्फ दो-ढाई मास बाकी थे। शाम के समय गुरुकुल-वाटिका के सामने के क्रीड़ा क्षेत्र में हम लोग हौकी खेल रहे थे। खेल में अच्छी तेजी आई हुई थी। कभी गोल का पासा इधर भारी हो रहा था और कभी उधर। इतने में निचली सड़क की ओर से शोर गुल की आवाज आयी। सब उधर एकदम भागे। पता लगा गुरुकुल का चौकीदार बहुत दिनों की ढूंढ तलाश के बाद एक भरकम शरीर वाले जंगली सूअर को मार लाया है। इस ने एक-दो आदमियों को कुछ दिन पूर्व जख्मी कर दिया था। उस अन्धाधुन्द भागने में मेरे दाहिने पांव को शीशा लग गया। उस समय तो उस का तनिक भी बोध नहीं हुआ, खुशी २ हंसते चले आए। आश्रम पहुंचने पर ध्यान आया अरे! यह खून ही खून कैसा? देखा तो सब रास्ते में खून की दाग बेल पड़ी है। अरे! यह तो पांव बुरी तरह चिरा पड़ा है। तब असह्य दर्द भी अनुभव होने लगी। तुरन्त चिकित्सालय पहुंचा।

कम्पौंडर डाक्टर जी के पास भागा गया। चिकित्सा में प्रभु से वरदान पाए हुए स्नेह-मूर्ति डा० सुखदेव जी और कुलपिता महात्मा मुंशीराम जी झट वहां आ पहुंचे। डाक्टर जी ने मुझे देखा और कहा कई टांके लगेंगे। आनन-फानन में शल्य-कर्म का सब सामान तैयार हो कर आ गया। कुल-पिता ने मेरा सिर अपनी गोदी में लिया, और डाक्टर जी ने चार टांके लगा दिए। कुल-पिता ने अनुभव किया कि मैंने दर्द को उन की गोदी में सिर होने के कारण पी लिया है, क्योंकि इस दिसम्बर की सर्दी में भी माथे पर पसीने की बूंदे चमक रही हैं। तुरन्त तीन पाव गर्म दूध का गिलास मेरे मुंह में लगा दिया, और मैं पी गया। बहुत चैन पड़ी।

कुलपिता के गंगातटवर्ती बंगले के पास पञ्चकुटी बनी हुई थी। उसी में मेरी श्रेणी के पांचों सहपाठी रहते थे। मेरी कुटिया बंगले की ओर पहले नम्बर की थी। यद्यपि कर्मचारी अनेक खड़े थे, परंतु कुलपिता ने और डाक्टर जी ने एक दूसरे की बांह में बांह डाल कर कुर्सी बनाई और मुझे उठा कर मेरी कुटिया में ले गये और तख्त पर लेटा दिया। बड़े आराम से रात को नींद आई।

प्रातःकाल ठीक चार बजे मेरी नींद खुल गई। उठ कर बैठा कि क्या देखता हूं कि कुलपिता मेरे सामने आ खड़े हुए हैं। सिर नमा कर प्रणाम किया। पूछा शौच जाना है? हां जी जाना तो है। झट मुझे गोदी में उठा लिया और बंगले के शौचालय में जा बैठाया। निवृत्त हो जाने पर फिर उसी तरह गोदी में लिया और कुटिया में तख्त पर ला लेटाया। सालों बीत गए, कुलपिता की वह प्यारी गोदी मुझे बार २ स्मरण आ कर

अन्तस्तल में हिलोरे मारती है। कुलपिता के स्नेह का वह अगम्य स्रोत! २२॥ साल की उम्र के युवक को भी गोदी में ले कर उस के दु:ख-दर्द को मिटाते हैं।

महात्मा मुंशीराम जी अब स्वामी श्रद्धानन्द हैं। मैं भी अब विद्यार्थी नहीं, उपाध्याय हूं। विश्वव्यापी प्रथम महायुद्ध के बाद पहली दिपावली का दिन है। रात्रि को जगमगाती दीप-ज्योतियों के बीच में दयानन्द निर्वाण पर्व की सभा जुटी हुई है। सभापति हमारे कुलपिता हैं। उन्होंने सभा में उपस्थित सब उपाध्यायों को देखा, परंतु मैं नहीं दीख पड़ा। पूछा क्या बात है? किसी उपाध्याय से पता लगा, घर में साली भीषण युद्ध-ज्वर से आज पीड़ित हो गई है, अभी २ इस की बड़ी बहिन मौत के मुंह से निकली थी, और अभी दो दिन पूर्व ही निरसन बास (सेग्रीगेशन कैम्प) से घर आए थे कि फिर पकड़े गए।

सभा समाप्त होते ही लगभग ६॥ बजे रात को कुलपिता मेरे पास घर पहुंचे। सब हालत देखी। लड़की को युद्धज्वर ने कस कर दबोच रखा था। पूछा, रात की क्या व्यवस्था है, क्या उपाध्यायों ने कोई ड्यूटियां लगायी हैं? मैंने कहा, अभी तो शायद कुछ नहीं हुआ, मैं ही सारी रात जागूंगा, कुलपिता ने कहा, नहीं, तुम आराम से सोवो, तुम बहुत थके हुए हो, कुलवती को तो पूरा आराम मिलना ही चाहिये, सब बोझ तुम्हारे पर है, रात भर आराम कर लो, मैं बीमार की चौकसी करूंगा। मैंने बहुत अनुनय विनय की, पर कुलपिता नहीं माने। मुझे जबरदस्ती लेटा दिया और आदेश दिया, बस सो जावो।

स्वामी जी जागते रहें और मैं सोता रहूं यह कहां होना था। मैं लेट तो गया पर नींद एक मीनट के लिये भी नहीं आई। कुलपिता से यह कहने की हिम्मत न थी कि मुझे नींद नहीं आ रही। बस, रात भर ऐसे लेटा रहा कि कुलपिता ने यही समझा कि मे सो रहा हूं। रात भर मैंने देखा कि लड़की ने १०-१० मिनिट बाद कुलपिता को खूब नाच नचाया, उन्हें बैठने नहीं दिया। कभी पानी पीना है, कभी दर्द होती है, कभी कुछ कभी कुछ। वे लगभग सारी रात खड़ी टांग ही रहे। उधर मैं देख रहा था कि कब ४ बजें और कब जाग जाने का रूप बना कर मैं कुलपिता से कहूं कि अब मैं आ गया। घड़ी ने टन-टन चार बजाए और मैं उठा, कुलपिता को प्रणाम किया। पूछा, नींद तो अच्छी तरह आ गयी न, चलो तुम्हें कुछ आराम तो मिला। इस लड़की का विशेष ध्यान रखना, ज्यादा बीमार है। मैं अब जाता हूं, उपाध्याय आते ही रहेंगे।

सचमुच ये कुलपिता कुल-पिता थे, सतयुग के महापुरुष थे, उनके पदचिन्हों पर चलने से ही गुरुकुल गुरु-कुल बनेगा। याद करिये आज के दिन उस कुलपिता को।

★

प्राचीन भारत के उदात्त आदर्श

प्रोफेसर एस० आर० शर्मा

गुरुकुल कांगड़ी का अवलोकन करने का सौभाग्य-पूर्ण अवसर अभी गत मास ही मुझे मिला। मैं बहुत थोड़ा काल गुरुकुल में बिता सका अतः उस महान् संस्था को सरसरी दृष्टि से ही देख पाया। आत्मा को प्रशस्त और उदात्त बनाने वाली गुरुकुल भूमि में बिताये एक घण्टे के परिमित काल में ही मैं ने वहां जो कुछ देखा उस ने मेरे मन और हृदय पर अमिट छाप अङ्कित कर दी है। गुरुकुल ने प्राचीन भारत और उस के उदात्त आदर्शों के प्रति मेरे मन को श्रद्धा से भर दिया। उस प्राचीन भारतीय जीवन की तरह आत्मा को विकसित करने वाली कोई चीज क्या आधुनिक संसार में मिल सकती है ? लेकिन प्राचीन के प्रति हमारा लगाव चाहे कितना ही अधिक क्यों न हो फिर भी हम वर्तमान को छोड़ कर अतीत में जा कर बस जायं यह सम्भव नहीं है। मानव के भाग्य में हमेशा से यही चलता आया है। मानव के भाग्य का पट अतीत और अनागत दोनों के तन्तुओं से बुना जाता है। इस लिए मुझे यह देख कर हर्ष हुआ कि गुरुकुल केवल अतीत की ही उपासना नहीं कर रहा है, बल्कि उस का भी निर्माण अतीत और वर्तमान के ताने-बाने से हुआ है। उस में न केवल अतीत और वर्तमान का अपितु पूर्व और पश्चिम का भी सब सार सञ्चित कर लिया गया है ताकि एक ऐसा सांस्कृतिक समन्वय तैयार हो जो उस नवीन भारत के लिए—जिस के निर्माण में हम सब प्रयत्नशील हैं, दृढ़ आधार का काम दे सके।

ऐसा कौन होगा जो गुरुकुल भूमि में आये लेकिन गुरुकुल के प्रतिष्ठाता श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के समुज्वल और तपोमय जीवन को स्मरण भी न करे। उन के अमर बलिदान के कुछ ही महीने पूर्व उन के दर्शनों का सौभाग्य मुझे मिला था। वे मेरी जन्मस्थली मंगलूर में पधारे थे। उस दिन उन्होंने जो भविष्य वाणी की थी वह अब भी मेरे कानों में गूंज रही है—'एक दिन मेरी मौत किसी धर्मान्ध के हाथों ही होनी है।' ये शब्द उन्होंने एक सार्वजनिक भाषण के दौरान में कहे थे। खेद, वह भविष्य वाणी उतनी जल्दी सत्य होने को थी! लेकिन उस लोकोत्तर आत्मा की स्पिरिट उस के द्वारा कांगड़ी ग्राम में संस्थापित संस्था के कण-कण में अब भी व्याप रही है! गुरुकुल श्री स्वामी जी की निजी देशभक्ति और सृजनात्मक प्रतिभा का तथा उन सब वैदिक आदर्शों का कीर्ति स्तम्भ है जिन्हें स्थिर रखना उस का ध्येय है।

मैं कभी भुला न सकूंगा कि श्री स्वामी जी ने मेरी पुस्तिका 'स्वामी रामतीर्थ—व्यावहारिक वेदान्त के कवि देवदूत' की प्रस्तावना लिख देने की मेरी कामना कितनी खुशी के साथ पूरी की थी। यह पुस्तिका आज से तीस वर्ष पहले छपी थी। यह थी मेरी तुच्छ श्रद्धाञ्जलि अपने उस महान् गुरु (श्री स्वामी रामतीर्थ जी) के चरण कमलों में जो कि मेरे प्रारम्भिक तरुण जीवन के निराशामय संघर्षों में मेरे लिए आशा के एक-मात्र ज्योतिः पुञ्ज थे। इस पुस्तिका की प्रस्तावना लिख देना मेरे लिए श्री स्वामी जी का अमोघ आशीर्वाद था। इस के लिये मैं सदा उन का ऋणी रहूँगा।

श्री स्वामी जी से व्यक्तिगत परिचय पाने का सौभाग्य मुझे पं० धर्मदेव जी सिद्धांतालंकार (अब 'विद्यावाचस्पति') के सौजन्य से मिला। मेरे लिए पं० धर्मदेव जी गुरुकुल में दीक्षित ब्रह्मचारियों की आदर्श निष्ठा और चारित्रिक दृढ़ता के जीते जागते नमूने थे। आर्यसमाज के उदात्त ध्येयों के प्रति पंडित जी की जो निराडम्बर और साधनामय निष्ठा है, उस का निदर्शन मंगलूर का आर्यसमाज और समाज-मन्दिर हैं। उन्हीं ने मेरे अन्तर में यह उत्कट अभिलाषा अंकुरित की कि मैं उस महान् संस्था का अपनी आंखों दर्शन करूँ जिस में उन्होंने दीक्षा पाई। इसीलिये चाहे बहुत थोड़े समय के लिये ही सही गुरुकुल की पुण्य-भूमि पर अपने को पा कर मुझे अपार आनन्द हुआ। मेरे लिये तो यह मानों एक तीर्थ यात्रा के पुराने संकल्प की सुखद पूर्ति थी।

जो सौभाग्यशाली कार्यकर्त्ता गुरुकुल संचालन के गौरव पूर्ण काम को सम्पन्न कर रहे हैं, उन की योग्यता के विषय में कुछ भी लिखने की क्षमता मुझ में नहीं है। मैं उन की प्रशंसा अवश्य करूंगा और उन के इस सौभाग्य पर ईर्ष्या भी करूंगा। मेरा यह सौभाग्य रहा है कि मैं भी एक शिक्षा संस्था से सम्बद्ध हूँ जो गुरुकुल की तरह ही आदर्श-निष्ठ है और जिस का इतिवृत्त गुरुकुल से भी अधिक लम्बा है। यह संस्था पूना की दक्खन शिक्षा-समिति है। बीस वर्ष तक इस की यथा शक्ति सेवा करने के बाद आज मैं अनुभव कर रहा हूं कि हमारी संस्था को अपनी हरिद्वार-स्थित सहयोगी संस्था से बहुत कुछ सीखना है।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि जो व्यक्ति शिक्षा के द्वारा भारत की सेवा करने के अभिलाषी हैं, वे उस नमूने का मनन करें जिसे श्री स्वामी श्रद्धानंद जी हमारे सन्मुख प्रतिष्ठित कर गये हैं; उस के प्रशस्त स्वरूप का अनुकरण करें।

श्रद्धा का स्वरूप

श्री अरविन्द

श्रद्धा एक ऐसी वस्तु है जो ज्ञान से पहले विद्यमान होती है, न कि ज्ञान के बाद उत्पन्न होती है। यह उस सत्य की झांकी होती है जिसे मन ने अभी ज्ञान के रूप में अधिगत नहीं किया होता।

❀

श्रद्धा—सक्रिय पूर्ण विश्वास तथा स्वीकृति।

विश्वास—केवल बौद्धिक स्वीकृति।

धारणा—सबल प्रतीत होने वाले हेतुओं के आधार पर धारण किया हुआ बौद्धिक विश्वास।

निभरता—किसी चीज़ के लिए दूसरे पर अवलम्बन करना, इस के आधार में होता है भरोसा।

भरोसा—दूसरे की सहायता के बारे में दृढ़ रूप से आशावान् अनुभव करना और उस के वाचन, चरित्र आदि पर निर्भर करना।

विश्रंभ—सुरक्षा का भाव जो भरोसे के संग रहता है।

❀

श्रद्धा मनुष्य के लिये अपरिहार्य है, क्योंकि इस के बिना वह अज्ञात में से भी अपनी यात्रा में आगे नहीं बढ़ सकता; किन्तु यह ऊपर से लादी हुई नहीं होनी चाहिये, यह अन्तरीय आत्म-सत्ता से स्वतन्त्र बोध के रूप में प्राप्त होनी चाहिये।

❀

श्रद्धा और साहस ही वह सच्चा भाव है जो जीवन तथा कर्म में और आध्यात्मिक अनुभव में भी सदा धारण करना चाहिये।

❀

पूर्ण श्रद्धा का अर्थ है सत्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अनुमति—उस सत्य के लिये जिसे कि व्यक्तित्व ने किंचित् देख लिया है अथवा जो स्वीकृति के लिये उस के सामने प्रस्तुत हुआ है। इस पूर्ण श्रद्धा की केन्द्रीय धारा है अन्तरात्मा की अपने अस्तित्व में, अपनी बुद्धि और सम्भूति में तथा अपने आप एवं अन्य वस्तुओं संबन्धी विचार में और अपने ज्ञान में श्रद्धा। बुद्धि का विश्वास, हृदय की सहमति तथा प्राणिक मन की संग्रह और प्राप्त करने की इच्छा इसी के (अन्तरात्मा की केन्दीय श्रद्धा के) बाह्य प्रतीक हैं। यह अन्तरात्मा की श्रद्धा, किसी न किसी रूप में, व्यक्ति को कर्म के लिये आवश्यक है। इस के बिना वह जीवन में कदम भर भी नहीं चल सकता, अप्राप्त पूर्णता की ओर एक सीढ़ी और ऊपर चढ़ना तो अलग बात रही। यह ऐसी केन्द्रिय और सार वस्तु है कि इस के सम्बन्ध में गीता का कहना कि किसी की जो श्रद्धा होती है वही वह होता है—यो यच्छ्रद्धः स एव सः—ठीक ही है। इस में इतना वास्तव में और जोड़ा जा सकता है कि कोई व्यक्ति जो कुछ श्रद्धा से अपने अन्दर सम्भव देखता है और उस के लिये यत्न करता है वह उसे उत्पन्न तथा चरितार्थ कर सकता है।

❀

श्रद्धा का शत्रु है संशय। किन्तु संशय भी उपयोगी और प्रयोजनीय वस्तु है. क्योंकि यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने अज्ञान में तथा

ज्ञान के लिए अपने वर्द्धमान पुरुषार्थ में कभी-कभी संशय से आक्रांत हो, अन्यथा वह अज्ञ विश्वास तथा सीमित ज्ञान में आग्रहशील और अपनी भूलों से बचने में असमर्थ रहेगा।



जैसे जीवन में वैसे योग में भी जो मनुष्य प्रत्येक पराजय तथा मोह भंग और सब प्रतिद्वन्द्वी, विरोधी तथा व्याघातक घटनाओं एवं शक्तियों के सामने बिना थके अन्तिम दम तक डटा रहता है उसी की अन्त में विजय होती है और वह देखता है कि उस की श्रद्धा ठीक थी क्योंकि मनुष्यस्थ आत्मा और शक्ति के लिये असम्भव कुछ भी नहीं है। यहां तक कि अन्ध तथा अज्ञ श्रद्धा भी उस अविश्वासी सन्देह से अधिक अच्छी वस्तु है जो हमारी आध्यात्मिक सम्भावनाओं से पीठ फेर लेता है। यह श्रद्धा संकीर्ण, तुच्छ-आलोचक असर्जनशील बुद्धि के उस सतत छिद्रान्वेषण—असूया—से भी अधिक उत्तम है जो पगु करने वाली द्विविधा के साथ हमारे प्रयत्न का पीछा करता है।



अज्ञान तथा श्रद्धा की अन्धता बृहत् सफलता में बाधक होते हैं. बहुत अधिक निराशा तथा मोह भंग को आमन्त्रित करते, मिथ्याभूत अन्तिम सिद्धांतों से चिमट जाते तथा सत्य और पूर्णता के अधिक महान् रूपों की ओर प्रगति में रुकावट डालते हैं। पराशक्ति अपनी क्रियाओं में अज्ञान तथा अंधता के सभी रूपों पर निर्दयता पूर्वक प्रहार करेगी तथा उस सब पर भी जो अशुद्ध तथा मूढ़ भाव से उस में विश्वास रखता है। हमें श्रद्धा के रूपों के प्रति अत्यन्त हठपूर्ण आसक्ति को त्यागने तथा केवल रक्षक सत्य का अनुसरण करने के लिए तैयार रहना होगा। महान् और विशाल आध्यात्मिक तथा बुद्धियुक्त श्रद्धा, उस व्यापकतर तर्क की बुद्धि से युक्त जो ऊंची सम्भावनाओं को स्वीकार करता है—यही है पूर्ण योग के लिए अपेक्षित श्रद्धा का स्वरूप।



यह श्रद्धा—अंग्रेजी का 'फेथ' शब्द इसे प्रकट करने में असमर्थ है—वास्तव में परम आत्मा से प्राप्त प्रभाव का नाम है और श्रद्धा का प्रकाश है हमारी उस अतिमानसिक सत्ता को प्राप्त संदेश जो निम्नतर प्रकृति को इस के क्षुद्र वर्तमान से निकाल कर महान् आत्म-सम्भूति और आत्म-अतिक्रमण की ओर उठने के लिये आवाहन कर रही है। और, जो सत्ता प्रभाव को अंगीकार करती और पुकार का उत्तर देती है वह बुद्धि, हृदय या प्राणिक मन नहीं बल्कि इन से कहीं अधिक आन्तरिक-आत्मा है जो अपनी भवितव्यता और अपने जीवन-कार्य के सत्य को अधिक अच्छी तरह जानती है।



जहां हमें जड़ीकारक सन्देह या कोरे बौद्धिक अविश्वास का परित्याग करना आवश्यक है, वहां जिज्ञासु बुद्धि को यह भी सिखाना होगा कि वह उस व्यापक शंका तथा बौद्धिक संशोधन को स्वीकार करे जो अर्ध-सत्यों, भ्रम के मिश्रणों या सत्यप्राय तथ्यों से सन्तुष्ट न हो, अत्यन्त भावात्मक तथा सहायक बात यह है कि अब तक के बुद्धि-सम्मत तथा स्वीकृत सत्यों से उन महत्तर संशोधक, पूरक या अतिक्रामक सत्यों की ओर बढ़ने के लिए सदा पूरी तरह से तैयार रहे

जिन्हें देखने की क्षमता या सम्भवतः रुचि पहले उस में नहीं थी। बुद्धि की कार्योपयोगी श्रद्धा आवश्यकीय है, प्रत्येक अस्थायी अवलम्ब या सूत्र में आसक्त, अन्ध, रूढ़ या अवरोधक विश्वास नहीं, बल्कि शक्ति के क्रमिक निर्देशों तथा सोपानों की उदार स्वीकृति, ऐसी श्रद्धा जो सत्यों पर संस्थित हो, छोटे सत्यों से पूर्णतर सत्यों की ओर बढ़ने वाली और सारी मचान को गिरा कर केवल विशाल तथा वर्धमान भवन को सुरक्षित रखने के लिए उद्यत हो।

*

हृदय और प्राण की स्वीकृति, अटूट श्रद्धा भी अनिवार्य है।

*

गुरुकुल समाचार

[पृष्ठ ३२ का शेष]

गुरुकुल की स्वर्ण जयन्ती पर वे सपरिवार कुल-भूमि में पधारे थे। अपनी धर्मनिष्ठा और नियम पालकता के द्वारा उन्होंने अपने चरित्र को स्पृहणीय बना लिया था। स्वदेशी के वे कट्टर पुजारी थे। देश सेवा यज्ञ में भी उनकी देन अभिनन्दनीय थी। तदर्थ कई बार बन्दीघर गये थे।

आपके ही प्रयत्नों से आर्य जगत् को 'वैदिक सम्पत्ति' और 'अक्षर विज्ञान' जैसे उच्चकोटि के ग्रन्थ प्राप्त हो सके हैं। अपनी वदान्यता से उन्होंने अनेक उपकारी संस्थाओं को लाभ पहुँचाया था। समस्त कुलवासी उनकी सेवाओं को प्रेम से याद करते हैं और उनके आत्मीय जनों के प्रति अपनी समदु:खत प्रकट करते हैं।



गुरुकुल-समाचार

ऋतु

शीत-काल अपने पूरे वैभव पर है। नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में वर्षा पड़ जाने से शीत में उग्रता आ गई है। इस से गेहूं की खेतियां एक दम पनप उठी हैं। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य खूब अच्छा है। रोगी-गृह शून्य पड़ा है। छुट्टी के दिनों में छात्रों की वन-यात्राएँ चालू हैं। पिछले दिनों गंगा पार के शिवालक के जंगल से एक छोटा सा अजगर ब्रह्मचारी पकड़ लाए हैं। अजगर की लम्बाई छः फीट है। आजकल पढ़ाई के लिए श्रेणियां सुहावनी धूप में मुक्ताकाश में ही लग रही हैं।

पढ़ाई और क्रीड़ाएं

महाविद्यालय और विद्यालय दोनों विभागों के शरद्कालीन सत्र की पढ़ाईयां बड़े जोर शोर से चल रही हैं। गुरु जन अपने-अपने पाठ्यक्रम को समय पर पूरा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। महाविद्यालय विभाग की वार्षिक परीक्षाएं प्रथम मार्च से प्रारम्भ होंगी। क्रीडाएँ भी प्रगतिशील हैं। सायंकाल को कुल के सभी क्रीड़ा-प्रांगण छात्रों के क्रीड़ोल्लास से गूँज रहे होते हैं।

अन्तर्विद्यालय प्रतियोगिताएं

(ब्रह्मचारियों के यशस्वी कार्य)

प्रति वर्ष की भांति इसबार भी पञ्चपुरी के छात्रों की शारीरिक और मानसिक दक्षता का परिचय प्राप्त करने के लिए विविध प्रकार की स्पर्धाएँ आयोजित हुई थीं। हर्ष का विषय है कि इन प्रतियोगिताओं में गुरुकुल के विद्यालय विभाग के छात्रों ने गत वर्ष की अपेक्षा विशेष प्रवीणता प्रदर्शित कर के अधिकतम विजयोपहार (विजय चिह्न) जीत कर कुलमाता का गौरव बढ़ाया है।

ब्रह्मचारियों द्वारा जीते गए पुरस्कारों का विवरण इस प्रकार है—

१ ओलम्पिक क्रीड़ाओं में गुरुकुल के छात्रों को एक बड़ी चांदी की ढाल प्राप्त हुई है।

२ कबड्डी के टूर्नामेंट में गुरुकुल दल ने एक रजत-निर्मित ढाल प्राप्त की है।

३ पादकन्दुक (फुटबाल) टूर्नामेंट में भी गुरुकुल दल ने एक ढाल जीती है।

४ हॉकी टूर्नामेंट में गुरुकुल दल ने चांदी का बड़ा प्याला (कप) जीता है।

५ सूत कताई की स्पर्धा में भी एक रजत-पात्र गुरुकुल दल ने जीता है।

ऊपर कथित विजय-चिह्न संस्था को प्राप्त हुए हैं। इस के अतिरिक्त व्यक्ति रूप में यशस्वी हो कर पुरस्कार प्राप्त करने वाले छात्रों के कार्यों का विवरण इस प्रकार है—

१ अधिकतम खेलों में भाग ले कर उन में विशेष प्रवीणता प्रदर्शित करने के उपलक्ष्य में ब्र० ताराचंद्र १० म श्रेणी को सन् १९५१ का चैम्पियन चांदीपात्र प्राप्त हुआ है।

२ सौ गज की दौड़ में ब्र० ताराचन्द्र १० म तथा ब्र० योगेश्वर ८ म क्रमशः प्रथम और द्वितीय आए हैं।

३ २२० गज की दौड़ में ब्र० ताराचन्द्र प्रथम आया।

४ ४४० गज की दौड़ में ब्र० जयकृष्ण ७ म तथा ब्र० शिवचन्द्र ८ म क्रमशः प्रथम और द्वितीय रहे हैं।

५ तीन टांग की दौड़ में ब्र० ताराचन्द्र और ब्र० देवेश्वर की जोड़ी प्रथम आई है।

६ झण्डी दौड़ में ब्र० ताराचन्द्र, ब्र० योगेश्वर, ब्र० जयकृष्ण ७ म तथा ब्र० शिवचन्द्र ८ म पुरस्कार भागी हुए हैं।

७ अङ्गद-कूद (ऊंची कूद) में ब्र० ताराचन्द्र द्वितीय रहा।

८ हनुमान कूद (लम्बी कूद) में ब्र० ताराचन्द्र द्वितीय रहा।

९ सूत कताई में ब्र० अभयदेव १० म तथा ब्र० कपिलदेव ८ म क्रमशः प्रथम और द्वितीय आए।

१० सुलेख की स्पर्धा में ब्र० सुखदेव १० म द्वितीय रहा।

११ स्मरण किए हुए साहित्यिक संदर्भ के सुभाषण में ब्र० कैलाश चन्द्र ८ म ने २ य नम्बर का पुरस्कार पाया है।

छोटे ब्रह्मचारियों की प्रतियोगिताएं पृथक् रूप से आयोजित हुई थीं। उन में गुरुकुल ने इस प्रकार विजयोपहार पाए हैं—

१ ओलम्पिक खेलों में गुरुकुल को चांदी की ढाल मिली है।

२ कबड्डी के सान्मुख्य में ढाल मिली है।

३ पादकन्दुक सान्मुख्य में भी गुरुकुल दल को ढाल मिली है।

छोटे छात्रों की ओलम्पिक क्रीड़ाओं के व्यक्तिगत पुरस्कारों का विवरण इस प्रकार है—

१ सौ गज की दौड़ में ब्र० वेद व्यास ६ ष्ठ तथा ब्र० तिलकराज ४र्थ क्रमशः प्रथम और द्वितीय आए।

२ २०० गज की दौड़ में भी ब्र० वेदव्यास और ब्र० तिलकराज प्रथम, द्वितीय नम्बर पर आए।

३ तीन टांग की दौड़ में ब्र० सुरेन्द्र ५ म, और ब्र० अश्विनी कुमार ५ म की जोड़ी प्रथम आई।

४ झण्डी दौड़ में ब्र० वेद व्यास ६ ष्ठ, ब्र० तिलकराज ४ र्थ और ब्र० सत्यप्रकाश ६ ष्ठ और ब्र० रामकृष्ण ५ म तीसरे पर आए।

५ लम्बी कूद (हनुमान कूद) में ब्र० तिलकराज ४ र्थ और ब्र० वेदव्यास ६ ष्ठ क्रमशः प्रथम और द्वितीय आये।

पुरस्कार भागी समस्त छात्रों के उत्साह वर्धनार्थ कुल सभा आयोजित हुई, जिस में श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने सब को साधुवाद और आशीर्वाद दिए। महाविद्यालय विभाग के बड़े बन्धुओं की ओर से ब्र० नारायणदत्त ने भी उन का सप्रेम अभिनन्दन किया।

अभिनन्दन

गुरुकुल के सुयोग्य और सौम्य स्नातक श्री रणजीतराव आयुर्वेदालंकार (आयुर्वेद कालेज सूरत के उपाचार्य) अपनी कुशल और खोजपूर्ण लेखनी के लिए अच्छी ख्याति प्राप्त कर रहे हैं। 'आयुर्वेदीय शरीर-क्रिया-विज्ञान' और 'आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान' का प्रणयन कर के आपने

हिन्दी भाषा के आयुर्वेदीय-साहित्य को अमूल्य ग्रन्थ प्रदान किए हैं। अभी हाल में ही पटने के प्रसिद्ध मासिक पत्र 'सचित्र आयुर्वेद' ने आप को गत वर्ष के अपने श्रेष्ठ लेखक के रूप में २५०) ढाई सौ रुपये का पुरस्कार प्रदान किया है।

इसी प्रकार गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक और और आयुर्वेदीय विषयों पर अच्छे स्वाध्यायपूर्ण लेख लिखने वाले तथा आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के संपादक श्री पुरुषोत्तमदेव जी आयुर्वेदालंकार (मुलतानी) हैदराबाद (दक्षिण) के राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय के प्रधान चिकित्सक बनाए गए हैं। इस अवसर पर कुल परिवार की ओर से हम इन दोनों स्नातक बन्धुओं का सप्रेम अभिनन्दन करते हैं।

शोक-वार्ता

शिल्पीगुरु श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

उस दिन भारत की सांस्कृतिक नवजागृति के एक अग्रनायक, प्राच्यकला के समुद्धारक, बंग भाषा के माने हुए गद्य लेखक, दर्जनों कला शिक्षकों के गुरु, स्वनामधन्य चित्राचार्य और विश्वभारती (शांति निकेतन) के आचार्य प्रवर डाक्टर अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की निधन वार्ता कुलभूमि (श्रद्धानन्द नगरी) में बड़े खेद से सुनी गई! शीघ्र ही उनके सन्मान में गुरुकुल के तीनों महाविद्यालय और विद्यालय बन्द हो गए कुल-वासियों ने मिल कर एक प्रस्ताव द्वारा उन की अमूल्य सेवाओं के प्रति अपनी नम्र श्रद्धांजलि देते हुए अपनी बन्धु-संस्था विश्व-भारती (शांति निकेतन) के छात्रों, गुरु-जनों तथा देश भर में फैले हुए उनके शत-शत शिष्य—प्रशिष्यों और और आत्मीयजनों के प्रति अपनी समवेदना के भाव प्रकट किए।

विद्यालय के छात्रों ने भी उनकी स्मृति में एक सभा की। जिसमें श्री शंकरदेव विद्यालंकार ने कलागुरु अवनीन्द्रनाथ जी के जीवन और कार्य-कलाप का विवरण देकर गुण-दर्शन और कीर्तन किया।

श्री लाला देशबन्धु गुप्त

दिल्ली राजधानी के माने हुए लोक-सेवक और विश्रुत पत्रकार श्री लाला देशबन्धु गुप्त की विमान दुर्घटना के कारण घटित मृत्यु को कुल-वासियों ने बड़े खेद से अनुभव किया। दिवगत गुप्त जी गुरुकुल के पुराने मित्र थे। कुलपिता श्रद्धानन्द जी द्वारा ही वे सार्वजनिक जीवन में दीक्षित हुए थे। दैनिक 'तेज' पत्र द्वारा और 'न्यूज क्रानिकल' द्वारा पत्रकार जगत् में आप ने अच्छी कीर्ति प्राप्त की थी। आपके निधन से आर्य जगत् का एक प्रभावशाली और उपकारी नेता उठ गया। आपकी स्मृति में कुलवासियों ने एक विशेष सभा करके आपकी सेवाओं के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

श्री सेठ शूर जी वल्लभदास

मुम्बई के सुविदित उद्योगपति और समाज सेवी श्री शूरजी वल्लभदास का एकाएक निधन आर्य-जगत की एक बड़ी अपूरणीय क्षति है। आप महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्य-समाज के परम भक्त और उदार चेता लोक-सेवक थे। गुरुकुल के प्रति उनकी अपार प्रीति थी। कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी और आचार्य रामदेव जी के प्रति उनका अद्भुत अनुराग था। गत वर्ष

[शेष पृष्ठ २६ पर]

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग ,, २॥), २॥), २॥)
ब्राह्मण की गौ ,, ॥)
वैदिक अध्यात्मविद्या श्री भगवद्दत्त १)
वैदिक स्वप्न विज्ञान ,, २)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां श्री रामनाथ १॥)
वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत ६)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द श्री चमूपति २), १॥)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १॥)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य श्री विश्वनाथ २)
धर्मोपदेश १, २, ३ भाग स्वा० श्रद्धानन्द, १), १), १॥)
आत्ममीमांसा श्री नन्दलाल २)
प्रार्थनावली ।) कविता मंजरी ।-)
आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति ।)
कविता कुसुमाञ्जली ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] ५)
लहसुन : प्याज श्री रमेश बेदी २॥)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] ,, ३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] ,, २)
सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] ,, १॥)
देहाती इलाज] दूसरा संस्करण] ,, १)
मिर्च [काली, सफेद और लाल] ,, १)
त्रिफला [तीसरा संस्करण] ,, ३।)
सांपों की दुनियां ,, ५)
स्तूप निर्माण कला सचित्र सजिल्द, ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १।)
जल चिकित्सा श्री देवराज १॥)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द ७), ६)
अपने देश की कथा सत्यकेतु १।=)
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)
ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार ।॥)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव ॥)
महावीर गेरीबाल्डी श्री इन्द्र १)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] १)
नीतिशतक [संशोधित] =)
साहित्य-दर्पण [संशोधित] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०] ।॥=)
,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण] ॥=)
अष्टाध्यायी, पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७), ७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] ।)
साहित्य-सुधासंग्रह १, २, ३ बिन्दु १।), १।), १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली ✓)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १।)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] २॥)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] ॥)
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] २॥)
ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ संस्कृत ट्रांसलेशन
एण्ड कपोजीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ १)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

गुरुकुल मुद्रणालय।

गुरुकुल पत्रिका

माघ
२००८



वर्ष ४
अङ्क ६

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ४
अङ्क ६

गुरुकुल-पत्रिका

माघ
२००८

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

कर्म-साम्य और ईश्वर कृपा

ऋषिः—मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रः, । देवता—इन्द्रः । छन्दः—गायत्री ।

स घा नो योगे आ भुवत्स राये स पुरन्ध्या ।

गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ऋग्वेद १-५-३

मेरी विचार धारा पवित्र और आह्लादक है, मेरे निश्चय मधुर हैं, और इच्छाएं दूसरों के लिए रुचिकर हैं। मैं विश्व का मित्र हूँ; किसी के लिए अशुभ नहीं सोचता, किसी का बुरा नहीं करता। यह मेरा पैतृक गुण है, मुझे उत्तराधिकार में केवल यही सम्पत्ति मिली है।

मेरा विश्वास है कि कर्म सब पवित्र हैं, समान हैं। कोई काम ऊँचा या नीचा नहीं। सब का अपना अपना स्थान है। चाहे बुद्धि का काम हो, चाहे बल का और चाहे धन का—इन्द्र (ऐश्वर्य-शाली) सब में सहायता करता है, सब में प्रकट होता है।

मैं जो काम करता हूँ, मन से करता हूँ, सारे समाज के लिए करता हूँ। अपनी शक्ति के अनुसार पूर्ण और उत्तम रूप से करना चाहता हूँ। इस लिए इन्द्र, हमारे पास अपने अन्न, जल, धन, शक्ति, गति और श्रुति के उपहारों सहित आवे।

मेरे सब काम राष्ट्र-हित व जनहित के लिये हैं। इस लिए इन्द्र (राजा-राज्य-परमात्मा) मेरी सब आवश्यकताओं को पूर्ण करे।

कर्म सब समान हैं। हमारे हिस्से में जो काम आया है, उसे पूर्णता से करने का प्रयत्न करना चाहिये। यही परमेश्वर को प्राप्त करने का सरलतम उपाय है।

अपने कर्तव्य को पूरा करना ही परमेश्वर का गान है। और जो परमेश्वर का गान करता है, परमेश्वर उस की रक्षा करता है।

अर्थः—मधु = पवित्र, आह्लादक, मधुर, रुचिकर। छन्द = विचार, निश्चय, इच्छा। पुरन्धी = बुद्धि व सामर्थ्य। योग = उत्साह, कर्म। वाज = अन्न, जल, धन, शक्ति, गति, श्रुति। गायत्री = गान करने वाले की रक्षा करने वाला।

—श्री मनोहर विद्यालङ्कार।



श्रद्धा का स्वरूप

श्री अरविन्द

बुद्धि की श्रद्धा की भांति हृदय तथा प्राणिक मन की श्रद्धा भी अनवरत संशोधन, विस्तार तथा रूपांतर के योग्य होनी चाहिये।

❀

हम से जिस श्रद्धा की मांग की जाती है वह अपने सामान्य सिद्धांत तथा अपने सतत विशेष प्रयोग—दोनों दृष्टियों से यही है कि हमारी सारी सत्ता तथा इस के सभी अंग ईश्वर और शक्ति की उपस्थिति एवं मार्गदर्शन को उदारता-पूर्वक, सदा अधिकाधिक, निरन्तर अधिक शुद्ध अधिक पूर्ण और अधिक प्रबल रूप में स्वीकार करें। जब तक हम शक्ति की उपस्थिति से सचेतन और ओतप्रोत नहीं हैं तब तक उस पर श्रद्धा से पहले या कम से कम उस के साथ साथ यह दृढ़ बलवती श्रद्धा अवश्य होनी चाहिये कि एकता, स्वतन्त्रता तथा पूर्णता की ओर सफलता-पूर्वक अग्रसर होने के लिये हमारे अपने अन्दर एक आध्यात्मिक संकल्प शक्ति, सामर्थ्य और क्षमता निहित है। मनुष्य को अपने में, अपने विचारों और अपनी क्षमताओं में श्रद्धा इस लिये दी गई है कि वह कर्म तथा सर्जन करता हुआ महत्तर वस्तुओं की ओर उठ सके और अन्त में अपनी शक्ति को आत्मा की वेदि पर योग्य अर्घ्य के रूप में चढ़ा सके। शास्त्र का वचन है कि दुर्बल व्यक्ति इस आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकते—नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। समस्त जड़ीकारक आत्म-विश्वास को, सफलता के सम्बन्ध में हमारे बल के समस्त सन्देह को अनुत्साहित करना आवश्यक है, क्योंकि यह तो असमर्थता की मिथ्या स्वीकृति, दुर्बलता की कल्पना तथा आत्मा की सर्वशक्तिमत्ता से इन्कार है।

वर्तमान असमर्थता, इस का दबाव चाहे कितना भी गुरुतर क्यों न मालूम हो, केवल श्रद्धा की कसौटी तथा अस्थायी कठिनाई होती है। असमर्थता की भावना के अधीन होना पूर्ण योग के अन्वेषक के लिए मूर्खता की बात है, क्योंकि उस का लक्ष्य है ऐसी पूर्णता का विकास जो सत्ता के अन्दर प्रसुप्त रूप में पहले से ही विद्यमान है। मनुष्य अपने अन्दर, अपनी आत्मा में दिव्य जीवन के बीज को धारण किये हुए है; उस की सफलता की सम्भावना उस के प्रयत्न में निहित और अन्तर्भूत है। उस की विजय निश्चित है क्योंकि उसके पीछे है सर्व समर्थ शक्ति की पुकार और प्रेरणा। परन्तु अपने आप पर हमारी श्रद्धा राजसिक अहम्भाव तथा आध्यात्मिक अभिमान की गन्धमात्र से शुद्ध होनी चाहिये। साधक को अपने मन में यथासम्भव यह भाव रखना चाहिये कि उस का बल अहंकारमय अर्थ में उस का अपना नहीं है बल्कि दिव्य वैभव शक्ति का है और उस के द्वारा इस बल के प्रयोग में अहंकारमय जो कुछ भी है वह सीमा बन्धन का कारण होगा और अन्त में बाधा पहुँचायेगा।

❀

जैसे जैसे उच्चतर ज्ञान खुलेगा श्रद्धा अधिकाधिक सम्पुष्ट होती जायगी, हम उन छोटे-बड़े मर्मों को समझने लगेंगे जो हमारे सीमित मन की पकड़ में नहीं आते थे और श्रद्धा ज्ञान

स्वामी श्रद्धानन्दो विजयतेतराम्

श्री जनमेजयः विद्यालंकारः

तपसा ब्रह्मचर्येण धाम्ना लोकातिशायिना ।
अप्रधृष्यो मनुष्याणा मादित्य इव यो ऽभवत् ॥ १ ॥

विश्वासभूमिर्यांणां भयकृद् भारतद्रुहाम् ।
दीनानां गतिहीनानां यः शरण्यो महान्भूत् ॥ २ ॥

महावैराग्यवांश्चापि प्रणवे यस्तु रागवान् ।
आस्तिकः श्रद्धधानश्च न निराशः कदाऽप्यभूत् ॥ ३ ॥

निर्माता नवराष्ट्रस्य रक्षिता चार्य संस्कृतेः ।
यस्य नामापि संस्मृत्य महाप्राणो भवेज्जनः ॥ ४ ॥

ऋषिकल्पं तमाचार्यं श्रद्धानन्दं दृढव्रतम् ।
परिव्राजं महात्मानं प्रणयामः सहस्रशः ॥ ५ ॥

अनुसर्तुं तमेवार्यं यथा च प्रयतेमहि ।
तथा दिशतु नो मार्गं भगवान् जगदीश्वरः ॥ ६ ॥



में परिणत हो जायेगी। तब हम संशय की पहुँच से भी परे, यह देखेंगे कि सब कुछ उस एक संकल्प के व्यापार के भीतर ही घटित होता है और वह संकल्प प्रज्ञा भी है क्योंकि वह जीवन में सदैव आत्मा और प्रकृति के सच्चे व्यापारों को विकसित करता है। सत्ता की श्रद्धा (स्वीकृति) की सर्वोच्च अवस्था वह होगी जब हम ईश्वर की उपस्थिति अनुभव करें तथा यह भी अनुभव करें कि हमारी सारी सत्ता, चेतना, विचार, संकल्प और कर्म उस के हाथ में हैं और जब हम परम आत्मा के प्रत्यक्ष, अन्तर्यामी तथा सर्वजयी संकल्प को सभी चीज़ों में एवं अपनी आत्मा प्रकृति के प्रत्येक भाग के द्वारा स्वीकार करें। श्रद्धा की यह सर्वोच्च पूर्णता दिव्य बल का अवसर तथा पूर्ण आधार होगी: अपनी पराकाष्ठा को पहुँच कर यह ज्योतिर्मयी अतिमानसिक शक्ति के विकास, अभिव्यक्ति तथा कर्मों की भित्ति बन जायगी।



वैदिक शिक्षा प्रणाली का प्रतिष्ठाता—स्वामी श्रद्धानन्द

श्री सन्त निहाल सिंह

इस शीतकाल से लगभग अर्द्ध शताब्दी जब कि मैं स्कूल का एक विद्यार्थी बालक था और अपने पिता के साथ होशियारपुर में रहता था, एक बार वे शाम को कचहरी से घर आए और मुझ से बोले—'तुम हमेशा लाहौर के अंग्रेज वकील मिस्टर रैटीगन के बारे में बात किया करते हो और दूसरे पंजाबियों की तरह जान पड़ता है कि तुम भी ऐसा ही समझते हो कि जीवित मनुष्यों में वही सब से अधिक बुद्धिमान है। वास्तव में तुम लोगों ने दूसरों को छेड़ने के लिए यह एक मुहावरा सा बना लिया है कि 'तू कोई रैटीगन है,' या आप तो अपने को रैटीगन ही समझते हैं। अच्छा बेटा, कल तुम एक ऐसे आदमी से मिलोगे जो रैटीगन से भी अधिक योग्य है और जिसने उसको उसके ही व्यवसाय में पछाड़ दिया है। उसने सब के सामने उसको खुली कचहरी में हराया है।' वह भी वकील है और जालन्धर में रहता है। वह कल कचहरी में एक मुकदमे का सलाहकार होकर आ रहा है। मैं तुमको अपने साथ ले जाऊँगा और उससे मिलाऊँगा। उसका नाम मुन्शीराम है और वह रायज़ादा भगतराम का जिसको तुम चाचा कहते हो भाई है।

सवेरा हुआ और मैं बड़े चाव से अपने पिता जी के साथ कचहरी को चला। हम वहां पहुँचे ही थे कि पिता जी ने खिड़की से एक बड़े लम्बे और चौड़े कन्धे वाले मनुष्य को आते देखा, वह मुझे तो वकील के बजाय एक पहलवान सा जान पड़ा।

पिता जी ने उन से वे सब बातें बतलाने को कहा कि किस प्रकार वे अपने मवक्किल के लिए कचहरी में हाजिर हुए, और कैसे उन्होंने उस भारी अंग्रेज वकील से—जो उन दिनों पंजाबियों की दृष्टि में बुद्धिमत्ता का अवतार माना जाता था, वाद-विवाद में लोहा लिया, कैसे दोनों ने अपने अपने तर्क रक्खे, तथा किस प्रकार न्यायालय ने रैटीगन के तर्कों को ठुकरा कर हिन्दुस्तानी वकील के पक्ष में फैसला किया।

चाचा मुन्शीराम जी—जैसा कि मैंने उनको तभी से पुकारना आरम्भ कर दिया था—खिल खिला कर हँस पड़े, वह खुले दिल की हंसी थी, उसकी आनन्दमयी गूंज आज तक मेरे कान में आ रही है।

'ओह!' उसने नम्रता-पूर्वक कहा, 'उस तरह की बातें तो कचहरी में प्रति दिन ही हुआ करती हैं, कम से कम दो पक्ष हरेक मामले में होते हैं। एक जीतता और दूसरा हारता है। उस मौके पर रैटीगन हारा और मैं जीता, किन्तु कौन कह सकता है कि कल ही रैटीगन दूसरा मुकदमा लेकर मेरे विरुद्ध खड़ा हो, वह जीते और मैं हारूं। वह बड़ा होशियार वकील है और मुझे तो इस समूचे व्यवसाय से घृणा है। मेरा मन इस में कभी नहीं लगा, मैं इसे छोड़ना चाहता हूं, मैंने इसका निश्चय कर लिया है। मेरे बालक मित्र ! तुम कभी वकील न बनना। यदि तुम्हारे मन में कभी ऐसा विचार भी आया हो तो उसको भुला दो।

मैंने दृढ़ता पूर्वक कहा कि मैं वकील कभी नहीं बनूंगा, कभी नहीं, कभी नहीं। मेरे पिता को मेरा यह निश्चय अच्छा न लगा। उनका विचार था कि मैं चाचा भगतराम के पद चिन्हों पर

चलूँ और लन्दन से सोलहों आना बैरिस्टर बन कर भारत लौटूं।

[२]

कुछ साल बाद जब कि मैं लाहौर में कॉलेज में पढ़ रहा था, मैंने सुना कि चाचा मुन्शीराम जी ने वकालत छोड़ दी और वे एक शिक्षा संस्था खोलने वाले हैं। वह एक शिक्षणालय होगा किन्तु ऐसा नहीं जिसमें कि मैं पढ़ता था। वास्तव में वह इस से बिल्कुल ही निराला होगा तथा प्राचीन ऋषियों की उस शिक्षण प्रणाली पर चलाया जायगा जो कि भारत के स्वर्णयुग में प्रचलित थी।

प्राचीन काल में विद्यार्थी उस तपोवन की गढ़ी में आते थे, कई राज महिषियों के पुत्र थे जो उनके वक्षःस्थल के क्षीर से, इन्द्रोपम वैभव सम्पन्न राज-प्रासादों में बड़े लाड़-प्यार से पाले गए थे। कई ऐसे दरिद्र परिवार की सन्तान भी थे, जिनकी कुटिया तथा वास-स्थान इतने छोटे तथा गन्दे थे जिनमें सूर्य का प्रकाश भी कठिनाई से ही प्रवेश करके वहां का अन्धकार इत्यादि यदा-कदा ही दूर कर सकता था। इस प्रकार जनता की प्रत्येक स्थिति के बालक गुरुकुल में ईन्धन के भार अपने कन्धों पर ढो लाते और ऋषि के चरणों पर मस्तक रख कर साष्टांग दण्डवत् करते। यह कार्य प्रतिज्ञा के स्वरूप में होता था कि उस दिन से वे गुरु की आज्ञा में रहेंगे और उनकी आज्ञा के प्रतिकूलाचरण कभी न करेंगे। उनकी सेवा-सुश्रूषा तथा पाकशाला की सहायता के लिए जड़ी-बूटी, कन्दमूल फल लाया करेंगे। ऋषि तथा उनकी पाकशाला एक ही हुआ करती थी। वे अपने विद्यार्थी जीवन के लिये गुरुकुल में प्रवेश किया करते थे। वे वास्तव में गुरु के पुत्र थे जो अपनी नित्य क्रिया के साथ अपने को गुरु की परिचर्य्या इत्यादि के लिये उत्सर्ग कर देते थे। मुझे स्मरण है कि किसी ने उन से (महात्मा मुन्शीराम जी से) प्रश्न किया था कि शिक्षा-प्रणाली के विषय में इन्होंने क्यों ऐसा दुस्साहस किया। उनका उत्तर था— अपने पुत्रों के लाभ के लिए।' जब वे शहर की गन्दी गलियों में रहते तथा घूमते फिरते हैं तो उनका वैसा चरित्र गठन होना कठिन है जैसाकि मैं चाहता हूँ। वे वहां स्त्री पुरुषों को गन्दी बातें बकते सुनते हैं और फल स्वरूप वैसा ही बोलने लगते हैं। वे जनता के व्यय से चलाये हुए शिक्षणालयों में जाते हैं। जहां वे केवल लिखना पढ़ना ही नहीं सीखते किन्तु बहुत सी दुष्टताऐं भी सीखते हैं। वे बालक जो उनके खेल तथा शिक्षण के साथी होते हैं उनको बुरी आदतें सिखा देते हैं। किन्तु प्राचीन प्रणाली के अनुसार चलाये हुए गुरुकुलों में बालक इन दुर्व्यसनात्मक प्रभावों से बचे रहेंगे। वे इन शिक्षकों के संरक्षण में न रहेंगे जो तुच्छ वेतन के लिए कार्य करते हों, बल्कि जिनके हृदय शुद्ध और उद्देश्य महान होंगे।'

जहां तक मुझे स्मरण है उस वक्तृता का उल्लेख सर रैमज़ मैक्डोन्डेल्ड जो प्रथम मजदूर पार्टी के नेता तथा पीछे ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री हो गए थे, १६१३ या १४ में मुझ से लन्दन में किया था। महात्मा मुन्शीराम जो उस समय इस नाम से पुकारे जाने लगे थे—मात गंगा के पूर्वी किनारे पर (कनखल के निकट) भारत जनता के पुत्रों के शिक्षण के लिए गुरुकुल निर्माण की चिन्ता में लीन थे। उनका यह शिक्षा सम्बन्धी सत्साहस भारत के सैंकड़ों, नहीं नहीं सहस्रों

सन्तानों के उत्कर्ष के लिये था।

(३)

वास्तव में यह संस्था (गुरुकुल) उस की शताब्दियों से प्रचलित शिक्षा की दूषित प्रणालियों की आलोचना का जनता को उत्तर था। वे लोग उस की ही भांति आर्यसमाजी थे। किन्तु वे प्रचलित शिक्षा पद्धति, जो ईसाई मिशनरी तथा तात्कालिक सरकारी अफसरों द्वारा निर्धारित की गई थी—से सन्तुष्ट थे। उन्होंने उन के कार्य की तथ्यहीनता तथा संकुचित दृष्टि की दिल खोल कर आलोचना की थी। उस ने कहा था कि वे सन्तानों को केवल व्यवहारिक दृष्टि से ही उपयुक्त बनाने के लिये शिक्षित कर रहे हैं। इन विश्वविद्यालयों के डिप्लोमा-प्राप्त विद्यार्थियों की नकेल सर्वदा सरकारी अधिकारियों के ही हाथ रहेगी और उन्हें जीविका के लिये सर्वदा इन्हीं के कार्यालयों के द्वार खटखटाने पड़ेंगे।

क्यों नहीं ये (शिक्षणालय) ऐसे स्नातक उत्पन्न करते जो प्रचारकों के उत्साह से पूर्ण हो कर भारत तथा देश देशांतरों में जा कर भारत के सांस्कृतिक स्वत्व इत्यादि का प्रचार करें।

उस की गुरुकुल-प्रतिष्ठा ने दिखा दिया कि यदि वह दूसरों की त्रुटियां निकालने में सिद्धहस्त था तो वह उन त्रुटियों को पूरा करने और उन के रिक्त स्थान को भरने में भी कुशल था। उसने अपनी विशेष शक्ति वैदिक शिक्षा प्रणाली के पुनः प्रतिष्ठित करने में लगा दी। इस का यह दृढ़ विचार था कि ऐसे मनुष्य उत्पन्न किये जावें जो प्राचीन वैदिक संस्कृति के प्रकाण्ड पारदर्शी हो कर पूर्ण उत्साह से इस ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाने की सदिच्छा रखें।

सब से अधिक इसी सिद्धांत की ओर उस का अपना ध्यान था। बहुत से स्नातक जो इस शिक्षणालय से शिक्षित हो कर निकले, वे देश के कितने ही धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक तथा अन्य शिक्षणात्मक कार्यों में लगे हुये हैं उन को इस महापुरुष के प्रति कृतज्ञ होना चाहिये, जिस ने इस उत्कृष्ट विचारधारा को जन्म दिया था, तथा जिस में इतनी नैतिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्ति थी कि अपने विचारों को कार्य-रूप में परिणत कर सका।

(४)

इन दिनों इन के जीवन में राजनीति का वही भाग था जो तबले का रागिनी की सुन्दर स्वरलहरी में हुआ करता है।

हरेक शब्द जो उस ने जनता के लिए कहे तथा बहुत से व्यक्तिगत पत्र व्यवहारादि तथा वाद विवादात्मक लेख इत्यादि जो उन के जीवन प्राण थे स्वभाविक ही उस के हृदय में दासता इत्यादि दुर्गुणों के उन्मूलन के लिए उद्भावित हुये थे—जिन से हमारा नैतिक शोषण हो रहा था। वास्तविकता तो यह है कि दासता मन में उत्पन्न होती है। जब तक मन किसी का दास न हो जावे तो शरीर के बन्दी होने से भी स्वतन्त्रता नहीं जा सकती, शारीरिक बन्धन अत्यन्त तुच्छ हैं। किन्तु मन जब दासता के मोहक मन्त्र के इतना वशीभूत हो जाता है कि

वह अपने प्रभु की अन्धभक्ति में ही अपने को धन्य मानता है तब उन्नति की आशा दुराशा-मात्र है।

इस ज्ञान का प्रकाश महात्मा मुन्शीराम के हृदय में हुआ था, जैसा कि थोड़े ही पञ्जाबी, नहीं नहीं, उस के समसामयिक थोड़े ही भारत वासियों के हृदय में हुआ होगा। इस लिये वह अकेला ही सामाजिक और नैतिक दृष्टि-कोण को सामने रखते हुए मानसिक—स्वतन्त्रता के रण क्षेत्र में उतरा तथा समस्त राजनैतिक प्रतिद्वन्दिता में मुख्य रहा। उस ने निश्चय कर लिया कि बालकों को दासोचित निम्न तथा पतनोन्मुख वातावरण से जिस में कि वे उत्पन्न हुए हैं, ऊपर उठावेगा। और जिस स्थान से यह बालक लिये जावेंगे वहां कोई भी न रह जावेगा, जिन पर गुलामी का जादू चल सके। इस के विरुद्ध उन बालकों को भोजन पान की भांति ही स्वाभिमान सुयोग्यता, पैत्रिक दिव्य-गुणों की प्राप्ति की सदिच्छा की घुटी दी जायेगी। और तब ही उन को इन गुरुकुलों से बाहर, दासता के प्रभाव से युक्त संसार में आने की आज्ञा मिलेगी, जब कि उन के मन इस प्रकार की शिक्षा और सुसंगति से पक्क तथा सुरक्षित हो जायें।

(५)

जब महात्मा जीवन के उस प्रांत में आ पहुँचे, जब कि ऋषियों की आज्ञा सन्यास लेने की है, उन्होंने त्याग का चिह्न—गेरवा वस्त्र—धारण कर लिया। और इस के उपरांत वह मुन्शीराम नहीं बल्कि श्रद्धानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुये। और उन के भक्त उन को स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से उन को पुकारने लगे। और इसी नाम से उन्हें भविष्य में आने वाली सन्तान जानेगी।

जिस समय उन्होंने यह पग उठाया था, वह भारत में बड़े आन्दोलन का काल था। प्रत्येक प्रांत के कोने कोने में विक्षुब्धता फैली हुई थी और वह उस के मस्तक पर विराजमान हुये। वहां हत्यारे का हाथ ऐसा पड़ा कि जिस की चोट से उन का यह भौतिक शरीर उभर न सका। नश्वर शरीर छोड़ कर अनन्त में लीन हो गये।

मैं कहता हूं 'केवल उन का शरीर–, आत्मा,– आत्मा तो इस समय भी हम लोगों के साथ है। आत्मा जो सर्वदा हमारी उन्नति में प्रयत्न-शील रहा है। उस की महान आत्मा हमारे साथ है, हमारे कांपते हुए चरणों को उस अनन्त और शाश्वत मार्ग पर चलने की सहायता देती है, जो उन महर्षियों ने बताये हैं, जिन्होंने वैदिक संस्कृति की नीव भारत में डाली थी।

प्रभात

श्री सत्यव्रत 'सुगम'

मैं नभ पर आता जाता हूँ ।
तुम शायद चांद कहो मुझको
पर चांद न मैं कहलाता हूँ ॥

हूँ तारागण भी क्षुद्र नहीं
शायद दिनकर मुझको जानो,
पर सब के मन भाने वाला
बस मैं प्रभात कहलाता हूँ ॥ मैं नभ······

प्राचीदिक् को जननी जानो
औ, पिता सूर्य को पहिचानो,
विकसित कर नव नव कुसुमों को
कवि में भावुकता लाता हूँ ॥ मैं नभ······

पुष्पों की सुमधुर गन्धों से
मस्तिष्क प्रफुल्लित कर सब के,
हो दीन दुखी चाहे, सबकी
हृत्कलिका को विकसाता हूँ ॥ मैं नभ······

हरियाले शष्प बिछौने में
जड़ ओस रूप सुन्दर मोती,
नव २ पल्लव विकसा वन की
शोभा अतिशय कर जाता हूँ ॥ मैं नभ······

अंधियारी निशि को दूर भगा
उजियारे का आभास दिखा,
घन अन्धकार से आच्छादित
क्षिति पर प्रकाश फैलाता हूँ ॥ मैं नभ······

—

श्रद्धा

श्री माता जी

श्रद्धा का मतलब है निश्चय, वह निश्चय अनुभव और ज्ञान पर ही आधारित हो यह आवश्यक नहीं।

*

श्रद्धा अन्तरात्मा के सहज ज्ञान का नाम है।

*

बाह्य चेतना-जन्य बोध आंतरात्मिक बोध को अस्वीकार कर सकता है, तथापि, अन्तरात्मा में सच्चा ज्ञान एवं सहज स्फुरित ज्ञान निहित है। अन्तरात्मा कहती है, 'मैं जानती हूं; मैं युक्तियां नहीं दे सकती, पर मैं जानती हूं।' क्योंकि इस का ज्ञान मानसिक अनुभव पर आश्रित या प्रमाणों से सत्य सिद्ध किया हुआ नहीं होता। यह प्रमाण दिये जाने के बाद ही विश्वास करती हो ऐसी बात नहीं; अन्तरात्मा का ज्ञान सहज स्फुरित एवं प्रत्यक्ष होता है और ऐसी अन्तरात्मा की क्रिया को ही श्रद्धा कहते हैं। चाहे सारा संसार इन्कार करे और विरोध में सहस्रों प्रमाण प्रस्तुत करे, तो भी उसका ज्ञान एक ऐसा अन्तर्ज्ञान एवं साक्षात् प्रत्यक्ष होता है, जो उन सब का निराकरण कर सकता है। वह होता है तादात्म्यलब्ध ज्ञान। अन्तरात्मा का ज्ञान एक मूर्त्त एवं गोचर वस्तु तथा ठोस पिण्ड होता है। तुम इसे अपना मन, अपने प्राण तथा अपने शरीर में भी ला सकते हो और तब तुम में पूर्ण श्रद्धा उदित होगी—ऐसी श्रद्धा जो सचमुच पहाड़ उठा सकती है। परन्तु हमारी सत्ता के किसी भाग को अविश्वासों के रूप में प्रकट हो कर यों नहीं कहना चाहिये, 'यह बात ऐसी नहीं है' और न उसे प्रमाण की मांग ही करनी चाहिये। जरा भी अधूरे विश्वास से तुम सब मामला बिगाड़ देते हो। यदि श्रद्धा पूर्ण एवं अटल न हो तो परम देव भला कैसे प्रकट हो सकते हैं। श्रद्धा अपने आप में सदा अविचल होती है—यह इस का निज स्वभाव ही है; क्योंकि अन्यथा इसे श्रद्धा कह ही नहीं सकते। परंतु, सम्भव है कि मन या प्राण या शरीर अन्तरात्मा की गति का अनुसरण न करें। यह हो सकता है कि किसी मनुष्य में एक रोगी के पास जा कर सहसा ऐसी श्रद्धा पैदा हो कि यह व्यक्ति मुझे मेरे लक्ष्य पर पहुंचा देगा। उसे मालूम नहीं कि इस व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त है या नहीं। उसे आंतरात्मिक आवेग का अनुभव होता है और ऐसा जान पड़ता है कि उसे गुरु मिल गये हैं। वह बहुत देर मन में सोच-विचार कर या अनेक चमत्कार देख लेने पर ही विश्वास नहीं करता और केवल इसी कोटि की श्रद्धा ही उपयोगी होती है। यदि तुम तर्क-वितर्क शुरू कर दो तो सदैव अपनी भवितव्यता से हाथ धो बैठोगे। कुछ लोग यह सोचने बैठ जाते हैं कि आंतरात्मिक आवेग युक्तिसंगत है या नहीं।

लोगों के पथभ्रष्ट होने का कारण वास्तव में तथाकथित अन्धविश्वास नहीं होता। वे प्रायः कहते हैं, 'अहो, मैंने अमुक-अमुक व्यक्ति में विश्वास किया और उस ने मुझे धोखा दिया है।' परंतु सच पूछिये तो दोष उस व्यक्ति का नहीं, बल्कि विश्वास करने वाले का होता है। उस के अपने अन्दर ही कोई कमजोरी होती है। यदि वह अपना

विश्वास अटूट बनाये रखता तो वह उस व्यक्ति को बदल देता। क्योंकि वह उसी श्रद्धामय चेतना में स्थिर नहीं रहा, अतएव उस ने अपने को प्रवञ्चित अनुभव किया और उस व्यक्ति को वह जिस रूप में देखना चाहता था, उस रूप में नहीं देख पाया। यदि उस में पूर्ण श्रद्धा होती तो वह उस व्यक्ति को बदलने के लिये बाध्य कर देता। श्रद्धा से ही सदा चमत्कारों की सृष्टि होती है। एक व्यक्ति किसी दूसरे के पास जाता है और वहां भागवत उपस्थिति का सम्पर्क प्राप्त करता है; यदि वह इस सम्पर्क को शुद्ध और सुरक्षित रख सके तो इस से भागवत चेतना अत्यंत जड़ भाग तक में प्रकट होने को बाध्य होगी। परंतु सब कुछ तुम्हारी अपनी आदर्श-मर्यादा एवं तुम्हारी अपनी सत्यता पर निर्भर है; जितना ही अधिक तुम आंतरात्मिक तौर पर तैयार होंगे, उतना ही अधिक ठीक मार्ग तथा ठीक गुरु की प्राप्ति की दिशा में प्रेरित होंगे। अंतरात्मा और उस की श्रद्धा सच्ची होती है; पर यदि बाह्य सत्ता में छल-कपट है और यदि तुम आध्यात्मिक जीवन के बदले वैयक्तिक सिद्धियों की प्राप्ति का यत्न कर रहे हो तो यह चीज तुम्हें पथभ्रष्ट कर सकती है। तुम्हें भटकाने वाली चीज़ यही है, न कि तुम्हारी श्रद्धा। यह सम्भव है कि श्रद्धा, अपने आप में शुद्ध होने पर भी, हमारी सत्ता में निम्न चेष्टाओं के योग से मिलावटी बन जाय; और जब ऐसा होता है, तभी तुम गलत रास्ते पर जा पड़ते हो।



प्रश्न—क्या केवल श्रद्धा, सब कुछ सृजन कर सकती है, सब कुछ जीत सकती है?

उत्तर—हां, किन्तु यह श्रद्धा सर्वांग सम्पूर्ण होनी चाहिए और निरपेक्ष होनी चाहिए। इस के अतिरिक्त यह सच्चे प्रकार की होनी चाहिये, यह केवल मानसिक विचार या संकल्प की एक शक्ति के रूप में हो इतने से ही काम नहीं चलेगा, यह होनी चाहिये इन सब से आगे बढ़ी हुई और अधिक गहरी। मन के द्वारा प्रयुक्त जो संकल्प होता है वह विरोधी प्रतिक्रियाओं को उभाड़ता और प्रतिरोध उत्पन्न करता है। रोगियों को अच्छा करने की एमिल कूकी चिकित्सा-पद्धति के बारे में तुम ने सुना होगा। वे इस शक्ति के रहस्य को कुछ-कुछ जानते थे और इस शक्ति का प्रयोग उन्होंने बहुत कुछ सफलता पूर्वक किया था। परंतु इस शक्ति को वे कल्पनात्मक मानते थे और उन की पद्धति से श्रद्धा की जो शक्ति उत्पन्न होती थी उसे उन्होंने बहुत ही अधिक मानसिक रूप दे दिया था। परन्तु केवल मानसिक श्रद्धा पर्याप्त नहीं है, इस श्रद्धा को प्राण की श्रद्धा द्वारा यहां तक कि भौतिक श्रद्धा अर्थात् शरीर

मधुमय हो जाऊं

श्री क्रांति कृष्ण

ऋषि—अथर्वा। देवता—मधु वनस्पति। छन्द अनुष्टुप्।

इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि।
मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि ॥१॥

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥२॥

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधु संदृशः ॥३॥

मधोरस्मि मधुतरो मदुधान्मधुमत्तरः।
मामित्किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ॥४॥

परि त्वा परितत्नुनेथुजागामविद्विषे।
यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगाः ॥५॥

अग्र जिह्वा से मैं,
मधु बोलूं।
जिह्वा-मूल से मैं,
मधु बोलूं।
मैं वाणी ही से,
मधु बोलूं।
× × ×
मैं मधु के सम,
मधुमय हो जाऊं।
मैं मधु से भी,
मधु तर हो जाऊं।
× × ×
हे! मधु की वीरुद्!
तुम मधु से जात।
तुम मधु से सिंचित,
हे! मुझे कर दो मधुमान।



की श्रद्धा द्वारा भी पूर्ण और शक्तिशालिनी बनाना होगा। यदि तुम अपने अन्दर अपनी समस्त सत्ता में इस प्रकार की एक सर्वांग सम्पूर्ण शक्ति की सृष्टि कर सको तो फिर कोई चीज भी इस शक्ति का प्रतिरोध नहीं कर सकती। परन्तु तुम्हें अपने अत्यंत अचेतन भागों तक पहुंचना होगा, अपने शरीर के एक-एक अणु तक में इस श्रद्धा को स्थापित कर देना होगा। उदाहरणार्थ, आजकल जड़ वैज्ञानिकों में भी इस ज्ञान का प्रारम्भ हो चुका है कि 'मृत्यु' आवश्यक नहीं है। परन्तु सारी मानव-जाति 'मृत्यु' में दृढ़तापूर्वक विश्वास करती है; ऐसा कहा जा सकता है कि यह मनुष्यों में सर्व साधारण रूप से बैठी हुई एक धारणा है जो एक ऐसे अनुभव पर स्थापित है जो दीर्घ काल से अपरिवर्तित रूप में होता चला आया है। यदि इस विश्वास को पहले तो सचेतन मन से और बाद में प्राण-प्रकृति और अवचेतन भौतिक स्तरों से निकाल बाहर कर दिया जाय तो मृत्यु एक अपरिहार्य वस्तु नहीं रह जायगी।

(अदिति कार्यालय के सौजन्य से)



व्रात्य का सिंहासन

श्री रामनाथ वेदालङ्कार

अथर्ववेद का एक छोटा सा कथानक है। एक बार व्रात्य किसी राष्ट्र में गया। वह लगातार एक वर्ष तक खड़ा रहा। देवों का ध्यान उस की ओर गया और उन्होंने व्रात्य से पूछा कि हे व्रात्य, खड़े क्यों हो ? व्रात्य ने कहा, मेरे लिये सिंहासन लाओ, तो मैं बैठूँ। उन्होंने तुरन्त सिंहासन बनाना प्रारम्भ कर दिया। ग्रीष्म और वसन्त उस सिंहासन के दो पैर हुए, शरद् और वर्षा शेष दो पैर। बृहत् और रथन्तर लम्बाई की पाटियां बनीं, यज्ञायज्ञिय तथा वामदेव्य चौड़ाई की पाटियां। ऋचाओं के तारों से ताना तना गया, यजुः के तारों से बाना डाला गया। उस पर 'वेदस्' का बिछौना लगाया, 'ब्रह्म' की चादर बिछाई। 'साम' का आसन बिछा, उद्‌गीथ का तकिया लगा। इस प्रकार जब सिंहासन बन कर तैयार हो गया तब व्रात्य उस पर बैठा। सब देव जन उस के परिचारक बन गये। संकल्प उस व्रात्य के दूत बने। सब भूत दरबारी बन कर उस के पास आ बैठे, उस के 'उपसद्' हो गये। जैसे उस व्रात्य के सब भूत उपसद हो गये वैसे ही जो इस रहस्य को समझ लेता है उस के भी सब भूत उपसद हो जाते हैं। (अथर्व. काण्ड १५, पर्याय ३)।*

---

* स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत्, तं देवा अब्रुवन् व्रात्य किं नु तिष्ठसीति। सोऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति। तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन्। तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ। बृहच्च रथन्तरं चानूच्ये आस्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये। ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः। वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम्। सामासाद उद्‌गीथोऽपश्रयः। तामासन्दीं व्रात्य आरोहत्। तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पाः प्रहाय्या विश्वानि भूतान्युपसदः। विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद॥

व्रात्य कौन है ?

वेदोत्तरकालीन साहित्य में अधिकतर 'व्रात्य' शब्द निन्दित अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। व्रात्य उसे कहा है जिस के जातकर्मादि संस्कार नहीं होते और उसे पतित माना गया है। पर कहीं २ 'व्रात्य' का प्रयोग अच्छे अर्थों में भी हुआ है। प्रश्नोपनिषद् में प्राण को व्रात्य कहा है, जिस का अर्थ शंकराचार्य ने 'जिसे संस्कारों की आवश्यकता ही नहीं, अर्थात् जो नित्य शुद्ध है' ऐसा किया है। बाद के युग में 'व्रात्य' शब्द का जो भी अर्थ रहा हो, पर अथर्ववेद के इस काण्ड में व्रात्य निःसन्देह अच्छे अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। उपर्युक्त कथानक में व्रात्य परमेश्वर है। उसे व्रात्य इस लिए कहा है क्योंकि वह व्रतनिष्ठ है। जगत् की उत्पत्ति, जगत् का धारण, यथासमय जगत् का संहार, समग्र नियम-व्यवस्था, पाप-पुण्य का फल-प्रदान आदि अनेक व्रतों को उस ने स्वेच्छा से ग्रहण किया हुआ है। 'व्रात्य' का दूसरा अर्थ 'व्रात अर्थात् समुदाय का स्वामी' भी होता है। तो परमेश्वर इसलिए भी व्रात्य है,

क्योंकि वह समग्र मानव-समुदाय का स्वामी या राजा है। वह व्रात्य सारे जगत् का सम्राट् है, अन्य मानवी राजा मानो सब उसी के सामन्त हैं।

व्रात्य खड़ा क्यों रहा ?

ऐसा अद्वितीय जगत् का सम्राट् वह व्रात्य किसी राष्ट्र में पहुँचा है। उस राष्ट्र के वासियों का चाहिये तो यह था कि सब प्रकार से उस के स्वागत का आयोजन करते। किन्तु किसी का उसकी ओर ध्यान नहीं गया। ध्यान देने की किसी को फुर्सत ही नहीं थी, सारा राष्ट्र भोग-विलास में डूबा हुआ था। न वहां धर्म था, न कर्म था, न विद्या थी, न सत्य था, न न्याय था। वह राष्ट्र पतन की चरम सीमा को पहुँचा हुआ था। वहां तो व्रात्य के विरोधी असुर का स्वागत हो रहा था। व्रात्य ने देखा कि इस राष्ट्र में मेरे योग्य स्थान नहीं है। इस लिए वह वहां खड़ा ही रहा। असल में व्रात्य सभी जगह है। जो उसे बैठने के लिये आसन देते हैं उन के यहां वह बैठ जाता है, जो आसन नहीं देते और उसे बैठाना नहीं चाहते वहां वह खड़ा रहता है। इसी प्रकार उस राष्ट्र में भी वह खड़ा रहा। व्रात्य के लिये खड़ा होने, बैठने आदि का व्यवहार आलङ्कारिक है। जिस राष्ट्र में ईश्वर की पूजा होती है, ईश्वर के आदेशों का पालन होता है है ऐसा कहा जा सकता है। जहां उस का नाम लेने वाला कोई नहीं है वहां मानों वह खड़ा हुआ है।

देवों का ध्यान गया

जब कोई राष्ट्र बहुत दिन तक पतित रहता है और वहां ईश्वर का निवास नहीं रहता तब कुछ ऐसे देव-जन उस राष्ट्र में जन्म लेते हैं जिन्हें राष्ट्र का यह पतन और राष्ट्र की यह ईश्वर-विमुखता अखरते हैं। उन्हें यह असह्य हो जाता है कि हम व्रतपति परमेश्वर का आतिथ्य न करें। वे प्रयत्न करते हैं कि उस राष्ट्र के सब लोग भगवान् का नाम लेने वाले हों और पुण्य कर्मों में में लगें। श्री कृष्ण, राम, बुद्ध, शंकराचार्य, ऋषि दयानन्द, महात्मा गान्धी आदि इसी देव कोटि के पुरुष रहे हैं। इसी प्रकार इस कथानक में भी देवों का ध्यान इस ओर गया। इसी बात को कहानी के रूप में इस तरह कह दिया गया है कि उन्होंने व्रात्य से कहा कि हे व्रात्य! तुम खड़े क्यों हो, हमारे राष्ट्र में बैठते क्यों नहीं? व्रात्य ने उत्तर दिया, मेरे योग्य सिंहासन ही नहीं है, बैठूं कहां?

सिंहासन का अभिप्राय

जब कोई सत्पुरुष हम से मिलने आता है तब हम उसे बैठने के लिए उस के योग्य आसन, चौकी, कुर्सी आदि देते हैं, इसी प्रकार व्रात्य जब हमारे राष्ट्र में अतिथि बन कर आया है तो हमें उसे आसन प्रदान करना चाहिये। उस का आसन क्या है? जैसे वह स्वयं भौतिक शरीर-धारी नहीं है, वैसे ही ये भौतिक कुर्सी, पलंग, मखमली गद्दे आदि उस के आसन नहीं हो सकते। उसे आसन देने का अभिप्राय है राष्ट्र में उस के बैठने योग्य वातावरण पैदा करना। बहुत दिनों की बात है, एक बार किसी संस्था के सञ्चालकों ने महात्मा गान्धी जी को अपने यहां आने का निमन्त्रण भेजा। महात्मा जी ने कुछ बातें लिख भेजीं, क्या आप के यहां खद्दर पहना जाता है, हरिजनों के साथ भेद-भाव तो

नहीं रखा जाता, क्या आप लोग सूत कातते हैं आदि। यदि आपकी संस्था में इन बातों की प्रवृत्ति है तब तो मैं आऊंगा, अन्यथा नहीं। मानों ये बातें ही महात्मा जी के बैठने योग्य आसन थीं। ऐसे ही किसी राष्ट्र में परमेश्वर का वास हो, परमेश्वर वहां बैठे, इस के लिए कुछ अनुकूल परिस्थितियों की आवश्यकता है। उन्हीं परिस्थितियों को व्रात्य का आसन या सिंहासन कह सकते हैं। देव पुरुषों ने उन परिस्थितियों को राष्ट्र में पैदा करने का यत्न किया। इसी को इस तरह भी कह सकते हैं कि उन्होंने व्रात्य के बैठने के लिये सिंहासन बनाना शुरू किया।

सिंहासन के चार पैर

सर्व प्रथम सिंहासन के पैर या पावे कल्पित किये जाने चाहियें, क्योंकि उन्हीं के ऊपर सिंहासन का सारा ढांचा खड़ा होना है। ग्रीष्म, वसन्त, शरद् और वर्षा ही उस के चार पैर हुए। वर्ष में छः ऋतुयें होती हैं। हेमन्त, शिशिर को शरद् के अन्तर्गत कर के इन ऋतुओं को पूर्वोक्त चार भागों में भी बांटा जा सकता है। आगे सिंहासन के जो भी अंग बताये जायेंगे अर्थात् व्रात्य के बैठने योग्य जो भी परिस्थितियां कही जायेंगी उन सब का आधार ये ही ऋतुयें होंगी। इस लिए इन्हें सिंहासन के पैर कहा गया है। अभिप्राय यह है कि देवों ने यह प्रयत्न किया कि जो भी हम व्रात्य के अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करें वे सभी ऋतुओं में अर्थात् सारे वर्ष भर बनी रहें, ऐसा न हो कि क्षणिक रूप में वे परिस्थितियां आयें और चली जायें।

चारों पाटियां

पावे बन जाने के बाद पाटियों का नम्बर आया। बृहत् और रथन्तर लम्बाई की पाटियां बनीं और यज्ञायज्ञिय तथा वामदेव्य चौड़ाई की पाटियां। ये चारों साम-गान के भेद हैं। देव पुरुषों ने अपने राष्ट्र में साम गायन का अधिकाधिक प्रचार किया। गीति ईश्वर-भक्ति को जगाने में बहुत सहायक है। इस सामगायन के प्रचार से परमेश्वर के निवास के लिये कुछ २ परिस्थिति पैदा हो गई। मानों उस के सिंहासन की पाटियां बन कर तैयार हो गईं। बृहत् आदि चारों शब्दों से अन्य भी विशेष भाव सूचित होते हैं। 'बृहत्' विशालता उदारता तथा महत्वाकांक्षी होने का द्योतक है। इस लिये 'बृहत्' को पहली पाटी बनाने का भाव यह भी है कि देव पुरुषों ने यह प्रयत्न किया कि सब राष्ट्रवासी विशाल और उदार हृदय वाले हों, संकुचित प्रवृत्ति और स्वार्थ भावना को छोड़ें तथा मनों में ऊंची आकांक्षायें रखें। दूसरी पाटी 'रथन्तर' है। 'रथन्तर' शब्द का अर्थ है 'रथ द्वारा तरने की कला'। सब मनुष्यों को शरीर रूपी उत्तम रथ मिला हुआ है। उस रथ की सहायता से कैसे विघ्न-बाधाओं से भरे हुए विकट मार्ग को तय कर के लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है यह विद्या रथन्तर-विद्या कहलाती है। देव-पुरुषों ने इस विद्या का भी राष्ट्र में प्रचार किया। उन्होंने अपने देशवासियों का ध्यान आकृष्ट किया कि तुम्हें यह मनुष्य-योनि या मनुष्य-रथ प्राप्त हुआ है, इस रथ पर तुम निरुद्देश्य मत बैठे रहो। जीवन में लक्ष्य बनाओ और उस तक पहुँचने के लिए शरीर-रथ को काम में लाओ। यह सिंहासन की दूसरी पाटी तैयार हो गई। तीसरी पाटी 'यज्ञायज्ञिय' है। 'यज्ञायज्ञिय' शब्द यज्ञ कर्मों को सूचित करता है। अतः इसे तीसरी पाटी कहने का भाव

यह है कि देव पुरुषों ने राष्ट्र में यज्ञ-कर्मों का प्रसार किया। ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, अतिथि यज्ञ, भूत यज्ञ इन पञ्च यज्ञों तथा अन्य विभिन्न यज्ञों को प्रोत्साहन दिया। चौथी पाटी 'वामदेव्य' है। 'वाम' का अर्थ श्रेष्ठ या सुन्दर होता है। इस प्रकार राष्ट्र में 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' की भावना का प्रचार ही वाम देव्य रूपी चौथी पाटी का निर्माण है।

ताना बाना

पाटियां तैयार हो गईं, अब उन पर बुनावट डाली जानी थी। ऋचायें ताने के तन्तु बनीं और यजुः बाने के तन्तु। इस प्रकार ऋक् और यजुः के तन्तुओं से वह सिंहासन बुना गया। ऋग्वेद का सम्बन्ध ज्ञान काण्ड से है और यजुर्वेद का कर्म काण्ड से। अतः ऋचाओं से ताना तनने का भाव है कि उन देव पुरुषों ने राष्ट्र में अधिकाधिक ज्ञान का प्रसार किया। ऐसा प्रयत्न किया कि गणित शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, भौतिक शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, संगीत शास्त्र आदि सब प्रकार के ज्ञान-विज्ञानों में हमारा देश शिरोमणि हो जाये। इस तरह ज्ञान का ताना तना गया। परन्तु केवल ताना किसी काम का नहीं, जब तक कि उस में बाने के तार न डाले जायें। इसी प्रकार केवल ज्ञान किसी समाज या राष्ट्र की उन्नति के लिए पर्याप्त नहीं है। उस के साथ उस से मेल खाते कर्म भी होने चाहियें। अतः जब देव पुरुषों ने ज्ञान के साथ कर्मों का भी प्रचार किया तब मानों उस सिंहासन का बाना भी पुर गया। अब उस राष्ट्र के लोग मूर्खता को छोड़ कर विद्या-ग्रहण में और सदाचरण में समय व्यतीत करने लगे। एवं व्रात्य के बैठने योग्य बहुत कुछ परिस्थिति उत्पन्न हो गई।

अन्य साज

पावे बन गये, उन में पाटियां पड़ कर सिंहासन का ढांचा बन गया। ताना-बाना डाल कर बुनावट भी कर दी गई। किन्तु अभी अन्य साज तो बाकी ही हैं। क्या सारे जगत् का सम्राट् खाली चौकी पर बैठ जायेगा? नहीं, अभी तो उस पर बिछौना बिछना चाहिये, बिछौने के ऊपर बढ़िया सी मखमली चादर बिछनी चाहिये, चादर के ऊपर एक सुन्दर सा कढ़ा हुआ आसन होना चाहिये, ढासने के लिए तकिया या मसनद भी चाहिये। तब व्रात्य उस पर बैठेगा।

कथानक में कहा है कि उस बुनावट के ऊपर 'वेदस्' का बिछौना बिछाया गया। वैदिक कोष निघण्टु के अनुसार 'वेदस्' का अर्थ धन है। अतः 'वेदस्' का बिछौना बिछाने का अर्थ है राष्ट्र में धन का बिछौना बिछा देना, अर्थात् राष्ट्र को पूर्णतः धनधान्यसम्पन्न और समृद्धिशाली बना देना। नहीं तो, जो राष्ट्र धनहीन है, जहां के लोगों के पास दो वक्त पेट भरने को भी अन्न नहीं है उस राष्ट्र में परमेश्वर को कौन पूछेगा?

बिछौना भी बिछ गया, अब उस के ऊपर एक चमकती चादर चाहिये जिस से वह सिंहासन जगमगा उठे। 'ब्रह्म' ही वह चादर है। 'ब्रह्म' का अर्थ है अध्यात्म-विद्या। यदि उस धन दौलत के बिछौने को अध्यात्म विद्या की चादर से नहीं ढका जायेगा तो वह एकांगी होने से राष्ट्र के लिए बड़ी घातक

पूर्व जैन तथा बौद्ध काल में जन्तु जीवन सम्बन्धी ज्ञान

(ईसा से लगभग ६०० वर्ष पूर्व)

श्री के० सी० जयराम, बी० एस० सी०

प्रस्तावना

प्राचीन हिन्दुओं के जन्तु ज्ञान सम्बन्धी प्रस्तावित 'भारतीय इतिहास' के एक अध्याय की तैयारी में बहुत सी उन प्राचीन पुस्तकों का जो ईसा से ३२५ वर्ष पूर्व भारत का वर्णन उल्लिखित करती हैं, अध्ययन किया जा रहा है, तथा जन्तुओं के वर्गीकरण, पारिस्थिकी (इकोलोजी), जैववासिकी (बायोनोमिक्स) आदि के सम्बन्ध में एक टिप्पणीमाला लिखी जा रही है। प्रस्तुत लेख उन्हीं टिप्पणियों में से एक है। इस कार्य के लिए सामग्री कलकत्ते के श्री डा० बी० सी० ला से प्राप्त हुई है। पूर्वकालीन जैन और बौद्ध साहित्य में जन्तुओं पर श्री डाक्टर जी के लेख में जन्तुओं की कई श्रेणियां, उन की प्रकृति, स्वभाव और निवास स्थान तथा अन्य वे विस्तृत बातें जो उस समय ज्ञात थीं लिखी गई हैं। प्रस्तुत लेख का ध्येय—मछलियों को छोड़ कर अन्य सब जन्तुओं के विषय में दी गई सामग्री पर आधुनिक विज्ञान के प्रकाश में आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करना है।

मैं श्री डा० एस० एल० होरा तथा डा० बी० सी० ला० का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने आवश्यक

और दुःखदायी वस्तु सिद्ध होगी। धन के नशे में चूर हो कर कौन उन्मत्त नहीं हो जाता ? इसलिए जहां एक ओर धन है वहां साथ ही उन धनी लोगों में अध्यात्म-पिपासा, योगाभिरुचि, अन्तर्मुखी वृत्ति होनी भी आवश्यक है। तभी वह देश ईश्वर के वास योग्य हो सकता है। नहीं तो इन्द्रियां तो स्वभावतः बाहर विषयों में भागने वाली हैं, वे धन को विषय भोग में ही लगायेंगी।

बिछौने पर चादर भी बिछ गई। अब उस पर एक सुन्दर सुनहरा आसन होना चाहिये, जिस के ऊपर व्रात्य बैठेगा। 'साम' ही वह आसन है। 'साम' का सम्बन्ध उपासना काण्ड से है, 'साम' शान्ति और भक्ति का प्रतीक है। लोग सच्ची शान्ति के अनुरागी हों, भक्ति उन का सोम रस हो, जीवन को समस्वरतायुक्त तथा संगीतमय बनाना उन का ध्येय हो, सामवेद की ऋचाओं का गायन करते हुए वे भक्ति में लीन रहते हों। ऐसी अवस्था जिस राष्ट्र की हो जाये वहां व्रात्य नहीं बैठेगा तो और कहां बैठेगा।

पर अभी सिंहासन पर तकिया, मसनद या ढासना तो लगा ही नहीं। आराम के साथ बैठने के लिए उस का होना भी आवश्यक है। देव पुरुष बड़े कुशल होते हैं, उन्होंने उस की भी व्यवस्था कर दी है। 'उद्गीथ' ही उस सिंहासन का तकिया या मसनद है। उद्गीथ का अर्थ है ॐ कार या प्रणव का जप। देव पुरुषों की प्रेरणा से उस राष्ट्र के वासी लोग अपने अन्दर परमेश्वर को बद्ध मूल करने के लिए ॐ का जाप भी करने लगे। अब किस बात की कमी रही ? अब तो सिंहासन के सब अंग पूर्ण हो गये, पूरा साज एकत्र हो गया। अब तो व्रात्य को बैठना ही चाहिये। [असमाप्त]

सामग्री मेरे लिये उपस्थित की है तथा अन्य अनेक उपयोगी प्रस्ताव दिये हैं।

जन्तुओं का प्राचीन वर्गीकरण और पूर्व-कालीन यूरोपीय लेखकों से तुलना

जन्तुओं के वैज्ञानिक नामकरण में यूनानी तथा लेटिन भाषाओं के कुछ वे उपसर्ग तथा प्रत्यय प्रयोग में आते हैं जो उन जन्तुओं के स्वभाव तथा निवास-स्थान को सूचित करते हैं। इस में आश्चर्य ही क्या है कि प्राचीन हिन्दू भी संस्कृत के उपसर्ग और प्रत्ययों का प्रयोग करते थे। उदाहरण के लिए जन्तुओं को दो समूहों में बिभाजित किया गया था—(१) अट्टिहिक अर्थात् रीढ़ सहित और (२) अनट्टिहिक अर्थात् रीढ़रहित जन्तु। ये दोनों समूह आधुनिक वर्गीकरण के क्रमशः वर्टीब्रेट्स और इन्वर्टीब्रेट्स हैं। इसी प्रकार पैरों के लक्षणों पर जन्तुओं के दिपद, चतुपद, छप्पद, सत्तपद समूहों में बिभाजित किया गया था जिन का अर्थ क्रमशः दो पैर वाले, चार पैर वाले, छः पैर वाले तथा सौ पैर वाले जन्तु हैं। ज्ञानेन्द्रियों की संख्या के आधार पर उन के दो समूह हैं—(१) 'एकेन्द्रिय' अर्थात् एक ज्ञानेन्द्रय वाले तथा (२) 'द्विन्द्रिय' अर्थात् दो ज्ञानेन्द्रियों वाले। विशेष रूप से देखने की बात यह है कि इन लेखकों ने वर्गीकरण के लिये जीवन विषयक लक्षणों को चुना। उन्होंने पारिस्थिकी (इकोलोजी) की भी उपेक्षा नहीं की जैसा कि जलगोचर, थलगोचर, घर और अरन्नक आदि शब्दों से स्पष्ट है, जिन का अर्थ है क्रमशः जल वाले, स्थल वाले, पालतू तथा जंगली जन्तु।

पूर्वकालीन जैन और बौद्ध लेखकों के जन्तुओं का संक्षिप्त विवरण अगले अङ्क में दिया जा रहा है।

अब हम जन्तुओं की विविध श्रेणियों सम्बन्धी प्राचीन हिन्दुओं के ज्ञान की विवेचना करेंगे।

वर्णित जन्तु

(क)—स्तनधारी जन्तु

सारे साहित्य में पक्षियों और स्तनधारी जन्तुओं को मुख्य स्थान दिया गया है। जन्तुओं के राजा सिंह (लायन) के विषय में लिखा गया है कि वह गुफाओं और पहाड़ियों में रहता है और सामान्य पशुओं को खा कर जीवन निर्वाह करता है। इस के विषय में इस कथन की, कि यह नियत अन्तरों पर खाता है, पुष्टि करना कठिन है। बाघ (टाइगर) को मांसाहारी जन्तु बताया गया है और कहा गया है कि इस की आदतें भी सिंह की आदतों के ही सदृश होती हैं। चीते की चालाकी तथा अपने शिकार पर आक्रमण करने की विधि का बर्णन निष्ठापूर्वक किया गया है। प्रमाणरहित कथन यह भी मिलता है कि चीतों में सन्तान एक ही बार पैदा होती है और मादाएं बार-बार नरों से सम्भोग नहीं करतीं। जंगली अबस्था में सन्तानोत्पत्ति के अन्तर अभी तक भी पूरी तरह ज्ञात नहीं हो सके हैं। भेड़ियों और गीदड़ों को एक ही समूह में रखा गया है, यह ठीक है। यह भी ठीक ही कहा गया है कि रीछ चींटियों के भोजन को पसन्द करता है। साही पांच ज्ञानेन्द्रियों वाले छोटे स्थलचर चौपाये माने गये हैं। हाथियों के विषय में उल्लेख है कि वे हिमालय के सघन बनों में बहुतायत से पाये जाते हैं, और ठण्डे तथा साफ पानी के जलाशयों पर प्रायः आते हैं। यह

भी लिखा है (ला, १६४८) कि जब हाथी दौड़ता है तो उस की पूंछ ऊपर चली जाती है, और उस के रहने का स्थान कोई निश्चित नहीं है। लड़ाई के आदर्श हाथी का पूर्ण यौवन काल ६० वर्ष की उम्र में बतलाया जाता है। हाथियों के विषय में आधुनिक ज्ञान बहुत अपूर्ण है और इस लिए प्राचीन ज्ञान के विषय में कोई सम्मति प्रकट करना कठिन है। हिरन का वर्णन विस्तार से किया गया है। हिरन का शिकार प्राचीन काल में भी प्रचलित जान पड़ता है। जंगली सूअरों के विषय में कहा गया है कि वे सम्भोग के समय बड़ी संख्या में इकट्ठे हो जाते हैं। इस कथन की पुष्टि आधुनिक निरीक्षणों के द्वारा भी होती है (प्रेटर, १६४८)। उन के विषय में यह धारणा कि वे बाघ और मनुष्य का मांस खाते हैं, ठीक नहीं है।

बिल्लियों के विषय में कहा गया है कि वे कष्ट-दायक चौपाये हैं, बड़ी चतुर होती हैं और घरों के भीतरी भागों में रह कर चूहों की ताक में रहती हैं। अपने शिकार का पीछा करने में वे दुबक कर बैठ जाती हैं, और उन में पांच ज्ञानेन्द्रियां होती हैं। न्योलों के विषय में ठीक कहा गया है कि वे चिड़ियों और उरोगामियों (रेप्टाइल्स) के अण्डों को खाते हैं। यह भी बतलाया गया है कि न्योला भोजन की खोज में अपनी नाक एक सूराख में घुसा देता है, किन्तु ऐसा हमेशा नहीं होता। इस प्रकार यह कथन भी गलत है कि सांप के काटने से न्योले की मृत्यु नहीं होती। कुत्ते की बुद्धि की अतिवृद्धि दी गई है और कहा गया है कि वह मनुष्यों की बात-चीत समझ सकता है। गिलहरी के विषय में बतलाया गया है कि शत्रु द्वारा आक्रमण होने पर वह अपनी पूंछ पृथ्वी पर पटक पटक कर मारती है। इसी प्रकार गधे के विषय में कहा गया है वह चावल खाता है और पशुओं के झुण्ड के पीछे चलता है। इन निरीक्षणों की पुष्टि की आवश्यकता है।

घोड़ों के विषय में कहा गया है कि वे भारत के उत्तरी प्रदेशों जैसे कि सिन्ध तथा अन्य स्थानों में बहुलता से होते हैं और वहां से वे बेचने के लिए बनारस (उत्तर प्रदेश) को भेजे जाते हैं। यह भी बतलाया गया है कि बैल भूसा और घास खाते हैं। सांड के विषय में कहा गया है कि वह क्रीड़ा के लिए अपने सींग से मिट्टी उछा-लता है और उस की आदत बहुत अधिक जल पीने की है। वर्गीकरण में चमगीदड़ों को चिड़ियों के साथ रख कर गलती की है।

(ख) पक्षी

स्तनधारी जन्तुओं की अपेक्षा पक्षियों का वर्णन कम मिलता है। अधिकतर पालतू चिड़ियां ही उल्लिखित की गई हैं। यह कहा जाता है कि बगुलों (हेरन्स) को संदेश वाहन के लिए सधाया जाता था। स्वर्ण हंस (गोल्डन गूज़) को चिड़ियों का राजा बतलाया गया है। यह कहा गया है कि लाल हंस जल जन्तुओं को नहीं खाते। वे रङ्ग में लाल होते हैं। हंसों के बच्चे चित्रकूट पर्वत में पाये गये थे। इस वाक्य का पहिला भाग सम्भ-वतः सत्य नहीं है। लाल हंस और ब्राह्मणी बतख का मांस त्रुटि से विषैला समझा गया है। गिद्धों की निरीक्षण शक्ति पर विशेष प्रकार से बल दिया गया है और कहा गया है कि वे सड़े

हुए माँस को सौ कोस से भी देख सकते हैं। मुर्गे रात्रि में नहीं देख सकते यह भी सत्य नहीं है। अण्डों में से बच्चों के निकलने के विषय में भी मोटे तौर पर निरीक्षण किए गये हैं।

कान्निकर (कर्णिकार) चिड़िया के अण्डे के सदृश मोरनी के अण्डे भी पीले माने गये हैं। यह बात सत्य नहीं है। सारसों के विषय में कहा गया है कि वे मरी हुई मछली का सिर से पकड़ते हैं इस कथन की पुष्टि की आवश्यकता है। कोयल का मधुर स्वर, कौवे के द्वारा कोयल के अण्डों का सेया जाना, तथा तोतों को पालतू करना आदि निरीक्षणों का उल्लेख मिलता है। कौवे की पुकार के विषय में मूढ़ कल्पनाएं भी हैं। गलती से यह भी कहा गया है कि उल्लू दिन में बोलते हैं। ऐसा बतलाया गया है कि कौवों को बदहज़मी नहीं होती। सम्भवतः यह कथन इस बात को बढ़ा कर कहने की एक विधि है कि कौवा एक प्रकार का मेहतर है। यह ऊपर कहा ही जा चुका है कि वर्गीकरण में चमगीदड़ ग़लती से चिड़ियों के साथ रक्खे गये हैं।

(ग) उरोगामी (रेप्टाइल्स)

कहा गया है कि हिमालय के बनों में छिपकलियां, अजगर और अन्य सांप बहुत होते हैं। गिरगिट के विषय में यह समझना कि इस के आकार की वृद्धि कभी नहीं होती त्रुटिपूर्ण है। इस की रङ्ग बदलने तथा कीट भक्षण की आदत के विषय में लिखा गया है। छिपकलियों के विषय में लिखा गया है कि वे बांबियों (आन्ट-हिल्स) में रहती हैं और चींटियां, सिरका तथा शक्कर खाती है। यह भी लिखा है कि भुनी हुई छिपकली आदमियों का भोजन है और छिपकली का मांस बहुत स्वादिष्ट होता है। सपेरों के विषय में वर्णन मिलता है कि वे सांपों के साथ खेलने के लिए बन्दरों को सधाते हैं। फनियरों के विषय में लिखा है कि वे उत्सिक्त द्रव की गन्ध से आकर्षित होते हैं।

(घ) कुछ जलचर

स्तनधारी जन्तु ऊदबिलाव के विषय में ठीक लिखा गया है कि यह एक जलचर मांसाहारी जीव है जिस के पैर जालेदार (वेब्ड) होते हैं तथा शरीर पर कपिल रोवां होता है और मछली इस का मुख्य भोजन है। कहा गया है कि नदियां मगर और सूसों (पारपाइज़ेज) से भरी हुई हैं। जलचर-स्वभाव के कारण गलती से मगरमच्छों को उरोगामियों से पृथक बतलाया गया है। मगरों के विषय में कहा गया है कि उन को बन्दर का हृदय बहुत पसन्द है, किन्तु यह कथन कसौटी पर ठीक नहीं उतरता। यह भी कहा गया है कि जब एक मगर जल के भीतर अपना मुख खोलता है तो उस के नेत्र बन्द हो जाते हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि नेत्र नहीं अपितु केवल उन के ऊपर की झिल्ली अर्थात् निमेषक कला (निक्टीटेटिंग मेम्ब्रेन) ही जन्तु की स्वेच्छा से बन्द होती है। ग़लत कहा गया है कि मेंढ़क के काटने से विष चढ़ता है। लिखा है कि कछुए और मछलियां अन्तः प्रेरणा से जानते हैं कि आगामी वर्ष शुष्क रहेगा या तर किन्तु इस धारणा का कोई प्रमाण नहीं है।

विमर्श

(क) संकरण [क्रास ब्रीडिंग] और जन्तु समाज

जन्तुओं के संकरण के विषय में प्राचीन साहित्य में वर्णन मिलता है। ज्ञात होता है कि प्राचीन लोग गधे और घोड़े के बीच संकरण जानते थे किन्तु सम्भवतः उन को यह न मालूम था कि इस संकरण का परिणाम वही खच्चर होता है जिस का आयात केम्बोडिया से ज्ञात होता है। शेर और गीदड़ों के बीच तथा कौवा और हंस के बीच भी सकरण लिखे मिलते हैं किन्तु इन की पुष्टि की आवश्यकता है। हाथी और बन्दर के बीच, तथा शेरनी और गौ के बीच मित्रता या सह-वास का वर्णन है, किन्तु आजकल इस प्रकार की मित्रता और समाज कृत्रिम रूप से ही उत्पन्न की जा सकती है, जंगली अवस्था में नही मिलती।

(ख) सारांश

येह कहा जाता है कि प्रेम और ज्ञान पर आश्रित, तथा कारण और सत्य पर श्रद्धा रखने वाले हिन्दू धर्म और बुद्ध की शिक्षाओं ने वैज्ञानिक ज्ञान संसार को बहुत कम दिया है। प्राचीन तथा मध्य काल में मनुष्यों का यह विश्वास था कि जीवित पदार्थ मृत पदार्थों से स्वतः (स्पान्टेनियसली) ही उत्पन्न हो सकते हैं। बहुत से जन्तुओं का वर्गीकरण वे 'स्वेदजा' समूह में करते थे जिस का अर्थ है स्वेद या पसीने से पैदा होने वाले। स्वतोजनन के विषय में प्रथम गम्भीर भ्रम केवल यूरोपीय पुनरुद्भव (रेनेसेन्स) के बाद हुआ अर्थात् रेडी (१६२६-१६७६) और स्पलेंजेनी (१७२६—१७६९)के द्वारा। यह सिद्धांत उन्नीसवीं शताब्दी में पास-चर के द्वारा अन्तिम रूप से गलत साबित कर दिया गया।

सारांश यह है कि यद्यपि प्राचीन हिन्दुओं ने जीवन विज्ञान को ज्ञान के दान बहुत अधिक नहीं दिया, तो भी उन को भारतवर्ष में पाये जाने वाले साधारण जन्तुओं के जीवन के विषय में घनिष्ट ज्ञान था।

संक्षेप

भारतवर्ष में पाये जाने वाले साधारण जन्तुओं के वर्गीकरण, पारिस्थिकी, जैववासिकी और निवास स्थान का ठीक और अच्छा ज्ञान प्राचीन हिन्दुओं को था। अधिकांश अवस्थाओं में उन के निरीक्षण ठीक हैं किन्तु प्रमाणरहित धारणाओं की भी कमी नहीं है।

[मूल लेख अंग्रेज़ी में प्राप्त। अनुवाद के लिए श्री चम्पत स्वरूप एम. एस. सी. के आभारी हैं।
—सम्पादक]



पर्णडम शिखर अभियान

श्री मनोहर विद्यालंकार

अन्तिम प्रयत्न

क्षितीश और अग्निहोत्री बिना भोजन किए ही उठ खड़े हुए। जिस स्वच्छ मौसम की प्रतीक्षा में थे, वह आ गया। दोनों ने अपनी-अपनी ऐनकें लगा लीं, हिम-कुठार हाथ में लिए और जैसे थे वैसे के वैसे गल की ओर दौड़ चले। आगे का वर्णन क्षितीश की जबानी सुनये—

'पथ का मैदान वाला भाग हम ने भागते-भागते पार किया। फिर चढ़ाई आ गई। हम तेजी से चढ़ते चले गये। लगभग मील भर की चढ़ाई के बाद गल का बीसियों फीट गहरा हिम शुरू हो गया। किन्तु अभी हिम से जूझना अनिवार्य नहीं था। हिम के किनारे किनारे पर्वत पृष्ठ पर चल सकने की गुञ्जाइश थी, हम उसी पर चलते गए। धीरे-धीरे चढ़ाई कठिनतर होती गई। हमारा सांस कदम-कदम पर फूलने लगा। चढ़ते गए, चढ़ते गए। प्रकेलू के उद्गम वाली झील के गल और गोचा ला की सतह से हम बहुत काफी ऊपर चढ़ गए। हम लगभग डेढ़ हजार फीट हिम के साथ साथ पर्वत-पृष्ठ पर चढ़ते गए, किन्तु आगे एक इञ्च भी ऐसा स्थान नहीं था जहां हिम न हो। ऊपर-नीचे, दाएं-बाएं चारों ओर हिम ही हिम। अनन्त हिम, अगाध हिम। अब आगे हिम पर चलने के सिवा अन्य कोई गति नहीं थी।'

'हम ने अपनी-अपनी कमर में रस्सी बांध ली। दाएं हाथ में हिम कुठार लिए और बाएं हाथ से रस्सी को इस ढङ्ग से पकड़े कि कोई फिसले तो अवशिष्ट साथी उसे सहारा दे कर फिसलने से बचा सकें, हम हिम पर आगे बढ़ने लगे।

'पर हिम पर यह आगे बढ़ना भी कैसा था। एक-एक कदम पर पांव को हिम के साथ कुश्ती लड़नी पड़ती थी। पांव की एडी पर जोर देते हुए खूब दबा कर पांव रखना पड़ता था। जितना गहरा पांव चला जाता उतना ही ढलान में फिसलने के भय से बचाव हो जाता। किन्तु हिम में गहरे पांव को बाहर निकालने में भी जोर पड़ता है। फिर उतने ही जोर से अगला कदम रखना पड़ता है। इधर पांव हिम के साथ कुश्ती लड़ते हैं तो उधर हाथ भी कम संघर्ष नहीं करते। प्रत्येक कदम रखने से पहले कुठार को हिम में गड़ा कर देखना होता है कि कहीं हिम इतना नरम तो नहीं कि पांव के बजाय पूरा आदमी ही अन्दर समा जाए।…जब हाथ और पांव इतने व्यस्त थे तो फेफड़ों का उन से भी अधिक व्यस्त होना स्वाभाविक है। ऊंचाई पर चढ़ने के कारण तथा हवा हल्की होने के कारण उन्हें वायु से अधिक से अधिक मात्रा में ओषजन खींचने के लिए अपनी धौंकनी खूब तीव्र चलानी पड़ती है। एक-एक कदम एक एक मोर्चा है और प्रत्येक मोर्चे पर ऐसा लगता है जैसे कोई अदृश्य दैत्य आ कर शरीर की शक्ति का कुछ अन्श खींच ले गया।

'आगे बर्फ की दरारें आनी लगीं। आगे बढ़ना खतरे से खाली नहीं था। साथी अग्निहोत्री ने कहा—'हमें जान बूझ कर अपने आप को जोखिम में नहीं डालना चाहिये।' किन्तु मेरा खयाल था कि जब तक यह महान् 'हिमाल' हमें

स्वयं पीछे न धकेल दे तब तक हमें आगे ही बढ़ना चाहिये।

'हम ने एक दरार की बगल से हो कर आगे बढ़ने का प्रयत्न किया। किन्तु यहां हिम इतना नरम था कि अगला आदमी कमर तक उस में धसने लगा। तुरन्त पीछे से रस्सी से उसे खींचा और संकट की तीव्रता समझ कर पीछे लौट आये। हम हिम के अपेक्षाकृत सपाट और ठोस भाग पर बैठ कर सुस्ताने लगे।

'उस चमकती धूप में एक बार ऐनक उतार कर हिम के अनन्त साम्राज्य को दृष्टिगम करने की मन में तीव्र अभिलाषा हुई। कितना रमणीय था वह साम्राज्य, साथ ही कितना भयंकर।

'उस 'भयंकर रमणीयता' के साथ ही हिमालय के अदृश्य आकर्षण का यहां आकर पता लगता है। शिखर अबाध वेग से अपनी ओर खींचता है और जब मानव सम्मोहनावस्था में आगे बढ़ता है, तो पृथ्वी की समस्त ठोस सृष्टि का प्रतीक यह महान् हिमालय उसे थप्पड़ मार कर पीछे हटा देता है। जितना तीव्र आकर्षण है, उस का उतना ही तीव्र विकर्षण है। यदि कोई दुस्साहसी व्यक्ति हिम के प्रहार से आहत हो कर भी आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है तो यह हिमालय उस की शक्ति का अणु-अणु खींच कर पराभूत करने का प्रयत्न करता है। फिर भी जो साहस न खोए और उस मानसिक आकर्षण का बड़े से बड़ा मूल्य चुकाता जाय, उसी महाप्राण मानव को हिमालय अपने शिखर पर चढ़ने देता है। हिमालय के शिखर के सिंहासन पर चरण रखने वाले व्यक्ति से बढ़ कर सौभाग्यशाली पुरुष और कौन होगा? हमें यह सौभाग्य नहीं मिलना था।

'धूप की गरमी से सिर और शरीर में सनसनाहट हो रही थी। बर्फ के सतत सामीप्य से जूतों के अन्दर पैर ठिठुर रहे थे और इतना कठिन परिश्रम करने के कारण प्यास से गला सूख रहा था। तीव्र धूप होने पर भी बर्फ पिघल कर कहीं पानी बनता नजर नहीं आता था। इतनी ऊंचाई पर आकर बर्फ गरमी पाकर सीधी वाष्प बन जाती है, इसलिए पानी की आशा भी बेकार थी। प्यास से तंग आ कर मैंने हाथों से बर्फ कुरेद कर खाना शुरू किया। अग्निहोत्री भी मेरा अनुकरण करने लगा।

'अभी हम पूरी तरह सुस्ता भी नहीं पाये थे कि आसमान में बादल छा गये। धीरे-धीरे तुषारपात शुरू हो गया, साथ ही हमारे मनों में भी निराशा छा गई। सोचा था कि विश्राम करने के पश्चात् फिर प्रयत्न कर के देखेंगे कि किसी ओर दरारों और नरम हिम से बच कर आगे बढ़ने का उपाय है या नहीं? आध घण्टे तक वहीं बैठे-बैठे हम बादलों के हटने और तुषारपात बन्द होने की प्रतीक्षा करते रहे। किन्तु सब व्यर्थ। अन्त में देखा कि मध्याह्न का १ बज गया है और सूर्यास्त से पूर्व अपने पड़ाव पर पहुँचने के लिए अब हमें लौट पड़ना चाहिये।

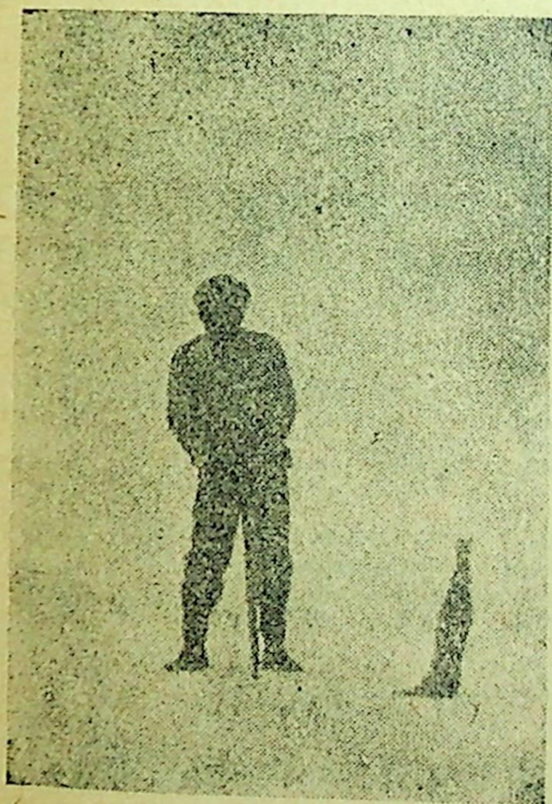
'यन्त्र से ऊंचाई देखी तो १८५००० फीट थी। हम यहां से लौट पड़े। लौटने से पहले जिस स्थान पर हम बैठे थे वहां एक लकड़ी में तिरङ्गी झण्डी लगा दी और तब अनायास ही हमारे मुख से निकल पड़ा—'भारत माता की जय!'

× × ×

वापसी

यों यह पण्डिम-शिखर के अभियान का अन्तिम प्रयत्न भी असफल रहा। १५ सितम्बर को हम वापिस चेमाथंग से दार्जिलिंग की ओर चल पड़े।

पर 'चल पड़े' कहने मात्र से ही चलना सम्भव नहीं हुआ। बेस कैम्प पहुँचने वाले दिन से मेरी हालत लगातार खराब होती गई थी और पिछले ५ दिन से कुछ भी न खा सकने के कारण शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि मेरे लिये एक कदम भी चल सकना दूभर था। यहां सवारी कहां? सब कुली भी अपने-अपने बोझ से बंधे हुए थे। यकसाम से इधर बस्ती का सर्वथा अभाव होने के कारण कोई अन्य कुली या किसी भी तरह की मानवीय सहायता मिल सकना सम्भव नहीं था।



'१८॥ हजार फीट की ऊंचाई पर झण्डा गाड़ दिया और हमारे मुख से निकला—भारत माता की जय।'

मैंने मानसिक उत्साह के भरोसे कुछ कदम चलने की हिम्मत की, किन्तु तीन-चार कदम भी न चल पाया हूंगा कि थक कर गिर पड़ा। आखिर मानसिक उत्साह पैरों में कहां तक चलने की शक्ति भरता।

यहां तक पहुँचने में जिन-जिन कष्टों का सामना करना पड़ा था, वे सब अब ओछे लगने लगे और मैं वापिस पहुँच भी पाऊंगा या नहीं—जीवन की यही समस्या सब से अधिक उग्र दिखाई देने लगी। एक बार फिर जीवन के प्रति नैराश्य का भाव मन में छा गया।

किन्तु यहां फिर शेरपा कुलियों की सूझ और उन की हिम्मत काम आई। पेम्बा नरबु और कुसांगकेशी अपने-अपने बोझ सुंगमोथंग की जोत के शिखर पर रख आये और अपने हिमकुठार ले कर वापिस आ गये और उस कुठार के दोनों ओर रस्सी बांध कर और बीच में कपड़े की गद्दी बिछा कर मुझे उस पर बैठा लिया और अपनी पीठ पर लाद लिया। वे दोनों बारी बारी से इसी प्रकार मुझे पीठ पर लाद कर ले चले।

जब इसी प्रकार शाम तक इन दोनों शेरपाओं ने मुझे ओंगलाथंग के कैम्प तक पहुँचा दिया और वहां मक्खन और औषधि डाल कर मेरी इच्छा न होते हुए भी प्रेमपूर्ण आग्रह से मुझे चाय पिलाई तो लगा कि अब जीवनी-शक्ति—जो पिछले दिनों मुझ से कुपित

प्रतीत होती थी—अब फिर मुझ पर सदया हो उठी है। रात को सोते समय केवल एक ही विचार मन में घूमता रहा—'मनोहर, क्या कभी तूने स्वप्न में भी सोचा था कि तुझे जीवित रूप में भी इस प्रकार मनुष्य के कन्धे की सवारी करनी पड़ेगी।'

जोंगरी पहुँच कर जब मैंने गरम चाय की छुरपी (पनीर) के साथ भात खाया और मुझे वह रुचिकर भी लगा, तब सहसा ही मुझे सुजाता की पायस से तपस्यारत महात्मा बुद्ध की व्रतांतपारणा का और उन के बोधिलाभ का ध्यान हो आया। जोंगरी से ज्यों-ज्यों और नीचे उतरते गये, त्यों-त्यों मैं अधिकाधिक स्वस्थ होता गया और गेजिंग तक पहुँचते-पहुँचते तो मैं लगभग सामान्य स्थिति पर पहुंच गया।

२ अक्टूबर को यथासमय हम दार्जिलिंग पहुँच गये। जब सर्दी के कारण हमारे फटे हुए गाल, फटे हुए होंठ और फटी हुई नाक तथा बढ़ी हुई दाढ़ी की ओर लोगों का बरबस ध्यान खिचने लगा, तब हमें भी लगा कि हम पिछले १५ दिन इस दुनिया से बाहर किसी और लोक में रहे हैं।

भविष्य में इस पथ पर आने वाले मेरे देश के साथियो! पण्डिम के शिखर पर आरोहण में हमारी असफलता तुम्हारी सफलता की पूर्वपीठिका बने !!

अमरत्व प्राप्ति का निश्चित मार्ग

सान्ध्य पुष्प के समान यौवन विनष्ट हो जाता, मेघ-मण्डल के समान शक्ति क्षय हो जाती है और शारीरिक सौन्दर्य शीघ्र ही कुरूप मृत्यु को स्थान दे देता है। वैराग्य की शरण लो। मानव-जाति के हित के लिए कार्य करो। अनवरत ध्यान करो। यही शाश्वत आनन्द तथा अमरत्व प्राप्ति का सब से निश्चित मार्ग है।

—स्वामी शिवानन्द।

गुरुकुल में विज्ञान की शिक्षा

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के शिक्षा-क्रम की यह मौलिक विशेषता है कि भारत के प्राचीनतम वाङ्मय के साथ साथ विज्ञान शिक्षा आदि विषयों की अर्वाचीनतम शिक्षा दी जाय। प्रारम्भ से ही गुरुकुल में वेद दर्शनादि प्राचीन ग्रन्थों के अतिरिक्त गणित, विज्ञान, प्राणिशास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती रही है। ये विषय प्रगतिशील हैं और इन का प्रति दिन विकास होता है। अब तक गुरुकुल महाविद्यालय में विज्ञान के एक विभाग रसायन के शिक्षण की मुख्यरूप से व्यवस्था थी। भौतिकी आदि विषयों की शिक्षा की व्यवस्था केवल अर्थाभाव के कारण नही हो सकी। परन्तु अब यह अनुभव किया जा रहा है कि विज्ञान की शिक्षा को अधिक उन्नत और विस्तृत करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। विज्ञान अत्यन्त प्रगति-शील विषय है, मनुष्य के जीवन के प्रत्येक भाग में वह ओत-प्रोत है। इस लक्ष्य को सामने रख कर गुरुकुल की प्रबन्धकर्तृ सभा ने निर्णय किया है कि इस समय न्यून से न्यून एक लाख रुपया शीघ्र एकत्र किया जाय, ताकि आगामी सत्र से, जो नये विक्रमी संवत्सर से आरम्भ होगा, गुरुकुल महाविद्यालय में विज्ञान का उन्नत और विस्तृत शिक्षण प्रारम्भ कर दिया जाय। रसायन के अतिरिक्त भौतिकी प्राणीशास्त्र आदि विज्ञानों के पाठ्य क्रम को पूर्णरूप से जारी करने के लिए यद्यपि न्यून से न्यून १० लाख की आवश्यकता होगी, परन्तु इस समय प्रारम्भ में एक लाख रुपया हाथ में होने से आवश्यक उपकरणों और शिक्षकों की व्यवस्था की जा सकेगी।

गुरुकुल विश्वविद्यालय की प्रारम्भ से ही यह विशेषता रही है कि वह अपने पांव पर खड़ा होने का यत्न करता है। वह जनता का बनाया हुआ शिक्षणालय है और अब तक उन्हीं के भरोसे पर चलता रहा है। भविष्य में भी वह जनता की सहायता पर ही अवलम्बित रहना चाहता है। हमारे कार्य को देख कर राष्ट्रीय सरकार गुरुकुल की जो आर्थिक सहायता करती है या करेगी, इस का हम हृदय से स्वागत करते हैं और करेंगे, परन्तु हम वहां से प्रारम्भ नहीं करना चाहते। इस समय विद्या सभा ने निश्चय किया है कि गुरुकुल में विज्ञान की पढ़ाई को उन्नत कर के एक विज्ञान महाविद्यालय के रूप में परिणत करने के लिए एक लाख रुपये की राशि एकत्र की जाय। मैं अपने देशवासियों से यह प्रार्थना करता हूं कि वे अपने सब से पुराने और प्रगतिशील विश्वविद्यालय को सर्वांग सम्पन्न बनाने के लिए इस छोटी सी राशि को पूर्ण करने में विलम्ब न करें। शुभस्य शीघ्रम्। शुभ कार्य में विलम्ब होना अच्छा नहीं।



साहित्य-परिचय

प्रबन्ध प्रकाश (द्वितीय भाग)—

लेखक श्री मंगलदेव शास्त्री, डी० लिट्०। प्रकाशक इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग। पृष्ठ संख्या ३२५। मूल्य ३)।

भारतीय वाङ्मय के क्षेत्र में डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम० ए०, डी० फिल०, विद्या मार्त्तण्ड का अध्ययन तो विशेष गंभीरता, व्यापकता तथा सूक्ष्मता के लिये प्रसिद्ध है ही, किन्तु सरल और सरस संस्कृत भाषा में नवीन विचारों को भी सफलता पूर्वक अभिव्यक्त करने की आपकी क्षमता अत्यन्त प्रशंसनीय है। बहुत समय से संस्कृत दैनिक व्यवहार की भाषा नहीं रही अतः पाण्डित्य, प्रयत्न तथा अभ्यास के बल पर यद्यपि विद्वज्जन उस में पर्याप्त सुन्दर रचना कर लेते हैं तथापि उस में स्वाभाविक प्रवाह का भङ्ग कहीं २ अवश्य खटक ही जाता है, डाक्टर शास्त्री इसके अपवाद हैं। आप अनेक वर्षों तक काशी के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के आचार्य तथा वहां की संस्कृत परीक्षाओं के रजिस्ट्रार रहे। उस समय आप संस्कृत के शिक्षकों तथा छात्रों के साथ सीधे संपर्क में आये और आपने इस त्रुटि को विशेष रूप से अनुभव कर 'प्रबन्ध प्रकाश' द्वारा इसका परिमार्जन करने का प्रयत्न किया। आपका प्रयत्न इस दिशा में सर्वोत्तम है, यह पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है। डाक्टर शास्त्री ने भारतीय साहित्य का अध्ययन विशुद्ध प्राचीन परम्परा से प्रारम्भ कर युरोप की आधुनिकतम पद्धति में समाप्त किया और फिर उसे दीर्घकाल के स्वाध्याय, साधना और अनुभव से परिपक्व किया और इनके भी आधार में स्थित उनकी नैसर्गिक प्रतिभा ने इस में सोने में सुहागे का काम किया।

प्रबन्ध प्रकाश जिस शैली में लिखा गया है वह सजीव तथा स्वाभाविक है। उसे पढ़ते समय हमें यह प्रतीत नहीं होता कि अंग्रेजी या हिन्दी मुहावरों को संस्कृत का चोला पहना दिया गया है! निबन्ध लिखने के लिये आवश्यक विचारों का संग्रह, उन विचारों का क्रम से विन्यास; विकास तथा उपसंहार और विचारों को व्यक्त करने के लिये उपयुक्त शब्दों तथा उनके प्रयोग की कला को सीखने के लिये प्रबन्ध-प्रकाश अद्वितीय पुस्तक है। इसका अनुशीलन तथा इसकी शैली के अनुकरण का अभ्यास करके छात्र सफल लेखक बन सकते हैं। यही कारण है कि देश के सभी प्रधान विश्वविद्यालयों ने संस्कृत की उच्चतम परीक्षाओं के रचना सम्बन्धी पत्र में इसे स्थान दिया हुआ है। अभी डाक्टर शास्त्री ने इसका द्वितीय भाग भी प्रकाशित कर संस्कृत छात्रों का महान् उपकार किया है।

प्रबन्ध प्रकाश के इस द्वितीय भाग में डाक्टर शास्त्री द्वारा समय-समय पर विविध विश्वविद्यालयों में दिये गये दीक्षान्त अभिभाषण आदि के अतिरिक्त ऐसे निबन्ध भी हैं जिन में वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, रामायण, गीता आदि ग्रन्थों का समुद्र मंथन कर निकाले गये बहुमूल्य रत्नों की माला है। इन में प्राचीन साहित्य पर नूतन प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थ के अन्त में 'सुविचार माधुरी' शीर्षक के नीचे वेदादि विविध शास्त्रों से सुन्दर सूक्तियों का संग्रह किया गया है। निबन्धों में सूक्तियों का यथावसर प्रयोग रचना को चमत्कृत कर देता है। प्रबन्ध-प्रकाश के ये दोनों भाग संस्कृत साहित्य के उज्वल रत्न हैं। कागज छपाई आदि सुन्दर हैं।

—वागीश्वर विद्यालंकार

विरहिणी गोपिका—

लेखिका—कृष्णा। प्रकाशक श्री राधाभवन, वृन्दावन। पृष्ठ सं० १६२, मूल्य ३)।

प्रस्तुत पुस्तक श्री कृष्ण भक्ति की प्रचलित धारा के अनुसार लिखी गयी है। यह सुन्दर गद्य काव्य एक प्रेम भरे हृदय के उद्गारों से पूर्ण है। प्रेम पन्थ की यात्री एक विरहिणी गोपिका किस मस्ती से भगवान् की खोज करती है उस का एक सुन्दर चित्रण इस में चित्रित है। इस मार्ग का विरह ही गुरु है, प्रेम पन्थ है और कृष्ण दर्शन प्राप्ति ही ध्येय है। पुस्तक के अध्यायों के शीर्षकों—'श्याम दर्शन दो एक बार!' 'मेरी सूनी पड़ी रे सितार!' 'पपीहे बता पी कहां!' 'शाम आई श्याम न आया' से ही अनुमान हो सकता है कि इन में कैसा रस भरा होगा। भावुक भक्तों के लिए इस पुस्तक में मानसिक सुख प्राप्ति की पर्याप्त सामग्री है। भाषा विषय के अनुकूल मञ्जी हुई, काव्यमयी तथा सरस है। पुस्तक को पढ़ कर एक बार व्यक्ति भक्ति रस में निमग्न हो जाता है। छपाई तथा गेट अप सुन्दर हैं।

संकीर्तन तरंगनी--

प्रकाशक राधाभवन–वृन्दावन, मूल्य ॥)।

राधाभवन के सत्संग में प्रतिदिन पढ़े जाने वाले स्तोत्र, गीत, ध्वनियों आदि का यह संग्रह है। संस्कृत के संगृहीत स्तोत्रों का अर्थ दे दिया गया है। हिन्दी के मीरा, सूर आदि भक्त कवियों के चुने हुए भजन भी इस में सम्मिलित हैं। नित्य पाठ के लिए भक्तों के लिए उपयोगी है।

महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी—

लेखक श्री धर्मदेव सिद्धांतालंकार। प्रकाशक वैदिक साहित्य सदन, लाल दरवाज़ा, सीताराम बाज़ार, देहली। प्रथम संस्करण, पृष्ठ १८४, सजिल्द, मूल्य २)।

वर्ण व्यवस्था, जाति भेद, स्वराज्य, ईश्वर का स्वरूप, अवतारवाद, मूर्ति पूजा, मृतक श्राद्ध, अहिंसा आदि विषयों पर दोनों महापुरुषों के विचारों का तुलनात्मक अनुशीलन इस पुस्तक में किया गया है। प्रायः सब महत्वपूर्ण विषयों पर दोनों के विचारों में कितना अधिक साम्य है, यह इसे पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है। श्री धर्मदेव जी ने महात्मा गांधी जी से ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों के सम्बन्ध में अनेक बार जो बातचीत और पत्र-व्यवहार किया था वह भी इस में दिया गया है।

सत्यार्थ प्रकाश के सम्बन्ध में महात्मा गांधी को जो प्रतिकूल बातें बताई जाती रही थीं और उनके आधार पर महात्मा गांधी के जो विचार बन गये थे उन्हें बदलने में श्री धर्मदेव जी को कुछ सफलता भी मिली थी, ऐसा इस पुस्तक को पढ़ने से पता चलता है। श्री धर्मदेव ने सत्यार्थ प्रकाश की विशेषता और महत्ता समझाने की चेष्टा करते हुए वास्तविक तथ्य से उन्हें अवगत कराया था। पुस्तक जन-साधारण के लिए उपयोगी है।

—रामेश बेदी।



गुरुकुल-समाचार

ऋतु

शीत-काल अपने पूरे यौवन पर है। प्रातः सायं करारी ठण्ड पड़ रही है। ढाढू के झोंके भी बराबर आते रहते हैं। जनवरी के प्रारम्भ से आकाश में सूर्य और मेघों की आंख-मिचौनी प्रारम्भ हो चुकी है। इन दिनों में शरद्-कालीन वर्षाएं आंधी और ओले के साथ रंग ला रही है। उपवनों में गुलदाऊदी और गेंदे के फूल बहार दे रहे हैं। खेतियाँ लहलहा रही हैं। छात्रों की वन-यात्राएं चालू हैं। कुल-वासियों का स्वास्थ्य उत्तम है।

श्री श्रद्धानन्द-बलिदान पर्व

प्रति वर्ष की भांति यह पर्व २३ दिसम्बर से २८ दिसम्बर तक कुलवासियों ने उत्साह और प्रेम से मनाया। २३ ता० को प्रभात में श्रद्धानन्द प्रवेश द्वार से कुलवासी शोभा-यात्रा (जुलूस) के रूप में समवेत हो कर कुलपताका की छाया में एकत्र हुए। आगे-आगे विश्वविद्यालय का वाद्यदल सुहावने स्वर [बजा] रहा था। चौराहों पर सामूहिक गीतों द्वारा [कु]ल-माता की यशगाथा गाई जा रही थी। झण्डा चौक में श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने वाद्य-निर्घोषों के साथ नवीन ध्वजा फहराई और कुलपिता के जीवन-संकल्पों का स्मरण कराते हुए गुरुकुल के आदर्शों का उद्बोधन किया। पताका-गीत गाया गया और कुलपिता के जयकारों से पर्व की प्रातर्विधि समाप्त हुई।

अपराह्न में वेद-मन्दिर में विशाल सभा में कुल-वासियों ने मिल कर कुलपिता के तेजोदीप्त कार्य-कलापों के प्रति श्रद्धा के फूल चढ़ाए। कुलमन्त्री ब्र० नारायणदत्त ने बाहर से भेजे हुए विद्वानों और विशिष्ट व्यक्तियों के संदेशों और श्रद्धा-वचनों का पाठ किया। सभाध्यक्ष की वेदिका पर श्री आचार्य प्रियव्रत जी तथा कुलपति श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति विराज रहे थे।

कुलपति श्री इन्द्र जी ने अपने प्रवचन में गुरु-कुल के आदि काल के संस्मरणों को प्रस्तुत करते हुए भावपूर्ण वाणी में यह बताया किस प्रकार कुल के प्रतिष्ठाता ने अपने निजू जीवन द्वारा गुरुकुल के आदर्शों को अपने अन्तेवासियों और सहकर्मियों के हृदय में प्रबुद्ध किया। क्रियात्मक दृष्टान्त द्वारा शिक्षण के मनोवैज्ञानिक सत्य को उन्होंने अपना जीवन-मन्त्र बनाया। आज हम सब को कुलगुरू की उन्हीं भावनाओं द्वारा प्राण और प्रेरणा प्राप्त करनी है।

पर्व के उपलक्ष्य में अनेक क्रीड़ा-सान्मुख्य आयो-जित किए गए थे। जिन के कारण सप्ताह भर खिलाड़ियों और प्रेक्षकों के उल्लासों से कुल के क्रीड़ाक्षेत्र गूंजते रहे। एक दिन गुरु जनों और छात्रों के बीच में हॉकी सान्मुख्य रखा गया था। जिस में गुरु-जनों ने बड़े प्रेम और उत्साह के साथ छात्रों से मोर्चा लिया था। उस दिन प्रेक्षकों के हर्षोल्लास और प्रोत्साह-वचनों से क्रीड़ाभूमि गूंज रह थी। 'शिष्यादिच्छेत् पराजयम्' के वचनानुसार गुरु-जनों ने एक गोल से पराजित हो कर शिष्यों का मन बनाए रखा।

२६ ता० को महाविद्यालय साहित्य-गोष्ठी की ओर से छात्रों ने श्री हरिकृष्ण प्रेमी कृत आहुति नामक वीर-रस प्रधान नाटक का अभिनय प्रस्तुत किया। अभिनय की सज्जा और व्यवस्था में ब्र० क्रांति-कृष्ण और ब्र० वेद कुमार का उत्साह प्रशंसनीय था। ब्र० सत्यव्रत का अभिनय सराहनीय रहा।

विशेष व्याख्यान

श्रद्धानन्दपर्व के दिनों में श्री इन्द्र जी विद्या-वाचस्पति ने 'स्वराज्य और सस्कृति' विषय पर एक विचारोत्तेजक भाषण दिया। आपने बताया कि स्वराज्य की रक्षा संस्कृति-सेवा से ही हुआ करती है। हमारे

देश का यह दुर्भाग्य है कि इस समय देश के अधिकांश नेताओं और कार्यकर्ताओं का ध्यान राजनीति की ओर विशेष रूप से है। संस्कृति-सेवा से ही हमारी परम्पराएं और भावनाएं प्रबुद्ध रहता है और राष्ट्र का प्राण बल प्राप्त करता हैं। अकबर के समय के तहसीलदारों और जिलाध्यक्षों के नाम और काम आज हमें मालूम नहीं पर तुलसीदास की साहित्य-सेवा और संस्कृति-पूजा को प्रत्येक भारतीय जानता है। जिस से राष्ट्र के चरित्र-निर्माण में अद्भुत प्रेरणा और सहायता मिलती है। हमारे नवनिर्मित राष्ट्र-वृक्ष को संस्कृति-सलिल से वृद्धि और पुष्टि मिल सकती है, यह तत्व हमें सदा स्मरण रखना चाहिए।

शाहजहांपुर निवासी श्रीयुत मेजर वासुदेव जी उस दिन गुरुकुल पधारे। आप ने कालेज यूनियन की ओर से मन, प्राण, शरीर और अध्यात्म की उन्नति को ले कर एक उत्साह-प्रद व्याख्यान दिया। सभापति का आसन उपाचार्य श्री प्रो० लालचन्द्र जी ने ग्रहण किया था।

गुरुकुलीय आयुर्वेद-परिषद् में ऋषिकुल आयुर्वेद कालेज के अध्यक्ष श्री गणेशदत्त जी सारस्वत ने आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति पर विवेचनापूर्ण और तुलनात्मक व्याख्यान दिया।

विशेष अतिथि

वनस्थली बालिका विद्यापीठ (जयपुर) के व्यवस्था मन्त्री श्री प्रकाशचन्द्र जी उस दिन गुरुकुल पधारे। आपने गुरुकुल की कार्य शैली और दैनिक-चर्या का विशेष अवलोकन किया। गुरुकुल के आर्थिक-तन्त्र का भी आपने निरीक्षण किया और कार्य विधि से बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए।

श्री विनोबा जी के साधुवाद

पिछले दिनों अपनी पैदल भूदान यात्रा के सिलसिले में सन्त विनोबा जी हरिद्वार पधारे। आप अपनी पुरानी गुरुकुल प्रीति का परिचय देने के लिए गुरुकुल पधारने वाले थे परन्तु पैर में चोट आने से नहीं आ पाए। उस दिन की हरिद्वार की भरी सभा में सब से पूर्व उन्होंने अपनी इस अवशता और गुरुकुलप्रीति को अत्यन्त भाव भरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया था--'आज से कोई पन्द्रह साल पहले मैं कांगड़ी गुरुकुल की उस महान् संस्था का मेहमान बन कर हरिद्वार आया था। शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल और उस के संस्थापकों ने भारतीय समाज की अद्भुत सेवा की है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपना सर्वस्व दे कर तथा श्री अभयदेव जी आदि उन के शिष्यों ने अपना बौद्धिक-सर्वस्व दे कर इस का संवर्धन किया है। गुरुकुल द्वारा समाज-सेवा का जो सुन्दर कार्य हो रहा है उसे मैं अच्छी प्रकार जानता हूँ। उस के कार्य वाहकों और ब्रह्मचारियों के प्रति मैं अपना प्रेम और सद्भाव प्रकट करता हूं और गुरुकुल में न आ सकने की लाचारी के लिए क्षमा चाहता हूँ।'

समस्त कुलवासी आप के दर्शनों के लिए हरिद्वार गए थे। वहां पर गुरुकुल के छात्रों ने एक घंटे तक कताई यज्ञ में भाग लिया और आप का प्रवचन सुना।

प्रवचन के पश्चात् भी विनोबा जी गुरुकुल के अनेक छात्रों के साथ बातचीत कर के गुरुकुल के कार्यों का परिचय प्राप्त करते रहे। कौन कौन प्रांत के कितने कितने छात्र गुरुकुल में अध्ययन कर रहे हैं यह भी आपने पूछा और स्वनिर्मित गीता-प्रवचन पुस्तक पर लिखित रूप में छात्रों को अपने आशीर्वाद और साधुवाद प्रदान किए।

जीवविज्ञान के छात्रों की वन में ज्ञानयात्रा

हिमाचल के जीव जन्तुओं और पेड़ पत्तों का परिचय प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों का एक दल श्री चम्पत स्वरूप जी एम्० एस-सी० की अध्यक्षता में

आसपास के वनों में इन्हीं दिनों गया था। चिल्ला, खारा आदि के घने जंगलों में जंगली पशु पक्षी अपने प्राकृतिक निवासों में किस प्रकार रहते हैं यह देखने का अवसर विद्यार्थियों को भली भांति हुआ। एक विशालकाय लम्बदन्त जंगली हाथी को मस्ती में सूंड उठाये हुए कोई ५० गज की दूरी पर देखा। उस की पुष्ट पेशियां उसे अनोखा सौन्दर्य प्रदान करती थीं। पहाड़ी नदियों और स्रोतों में रहने वाले नानाविध जीवों के नमूने विद्यार्थियों ने गुरुकुल के प्रकृति विज्ञान सम्बन्धी संग्रहालय के लिए उत्साह से संगृहीत किये। व्याघ्र, भालू, चीता आदि के पादचिन्हों का अध्ययन, धनेश (हौर्नबिल) आदि हिमालय के सुन्दर पक्षियों का तथा नीलगाय, हिरण आदि का निरीक्षण विद्यार्थियों के लिए एक रोचक शिक्षा थी। इस दल के साथ प्रसिद्ध वन प्रेमी श्री हरिवंश वेदालंकार और श्री रामेश वेदी भी थे। भिलावा, कम्पिल्ल, शतावरी, वनपलांडु, वराही कन्द, विदारी कन्द, वन हरिद्रा, आदि अनेक प्रकार के पेड़ पौदों और कन्द मूलों को निसर्ग में उगा हुआ देख कर उन की पहिचानें की गईं।

उन्मुक्त आकाश के नीचे एक रमणीय घने जंगल में, नाले के अन्दर एक रात बिताई गई। इस सरस्वती भ्रमण ने विद्यार्थियों के अन्दर जहां क्रियात्मक ज्ञान के प्रति उत्कट अभिलाषा और प्रेम पैदा किया वहां उन के साहसिक भावनाओं को भरने का भी बड़ा सुन्दर कार्य किया।

श्री रामेश वेदी ने लगभग पांच मन का एक आमलक खोजा था। यह दल इस आमलक को गुरुकुल के पुरातत्व-संग्रहालय के लिए अपने साथ ले आया है। मध्यकालीन वास्तुविद्या में मन्दिरों के शिखर पर जो आमलक लगाये जाते थे उस का यह सुन्दर नमूना है। एक ही पत्थर को तराश कर इस आमलक का निर्माण हुआ है। स्थानीय बलुआ पत्थर से बनाया गया है। अन्दर पेली के मुकर्जी फार्म के स्वामी श्री मुकर्जी का आमलक के लिए हम धन्यवाद करते हैं।

विज्ञान-संग्रहालय

भारत सरकार की मलेरिया पर अनुसन्धान करने वाली संस्था के सञ्चालक महोदय ने गुरुकुल के प्रकृति-संग्रहालय को कुछ उपयोगी तथा शिक्षा-प्रद प्रदशन द्रव्य भेजे हैं। जिसमें विभिन्न प्रकार के चार्ट स, मच्छरों के नमूने, माइक्रोस्कोपिक स्लाइड्स इत्यादि हैं। आयुर्वेद के छात्रों के लिए इस सामग्री की उपयोगिता तो है ही साथ ही जन-साधारण के मलेरिया सम्बन्धी ज्ञान के लिये अत्यन्त उपादेय हैं। मलेरियल इन्स्टिट्यूट की इस देन के लिए संग्रहालय आभार प्रदर्शित करता है।

पुरातत्व-संग्रहालय

गुरुकुल संग्रहालय को गत मास स्वामी दयानन्द जी से सम्बन्ध रखने वाले कुछ पत्र प्राप्त हुए है। यह पत्र श्री मामराज जी आर्य, खतौली की कृपा से मिले हैं और इन के लिए गुरुकुल संग्रहालय उन का विशेष रूप से आभारी है। इन में से एक पत्र से स्वामी दयानन्द जी के हरिद्वार में ठहरने के स्थान पर प्रकाश पड़ता है। अन्य भी जिन आर्य महानुभावों के पास ऐसी बहुमूल्य सामग्री हों वे गुरुकुल-संग्रहालय को प्रदान करने की कृपा करें।

पिछले मास संग्रहालय में मुगल बादशाहों के चौबीस महत्वपूर्ण सिक्के आए हैं, इन में बाबर, हुमांऊं, अकबर, जहांगीर और शाहजहां की मुहरें हैं। जहांगीर की राशि-चक्र सम्बन्धी कुछ मुद्राएं भी इन

में हैं, इन में मेष, मिथुन, मकर, धन, तुला, मीन और वृष उल्लेखनीय हैं।

गत मास संग्रहालय से लाभ उठाने वाले दर्शकों की संख्या १५७६ थी। पहली जनवरी १९५१ से ३० नवम्बर तक १७५८२ दर्शक संग्रहालय देखने आए।

लेखा-निरीक्षक श्री बन्नाराम जी

गुरुकुल के पुराने मित्र और भक्त आर्यसमाजी श्रीयुत बन्नाराम जी को विद्या सभा ने गुरुकुल का लेखाध्यक्ष नियुक्त किया है। श्री बन्नाराम जी भारत सरकार के सैन्य-विभाग में लेखा और हिसाब के एक प्रमुख अधिकारी रहे हैं। सरकारी सेवाओं से निवृत्त हो कर आपने बड़े प्रेम और सेवा भाव से गुरुकुल में लेखा निरीक्षण का कार्य सम्भाला है। इस प्रकार आप की अमूल्य सेवाओं से गुरुकुल कार्यालय को बहुत लाभ मिल रहा है और आप के कीमती अनुभवों और सुझावों से गुरुकुल के लेखा विभाग को बहुत सी नई सूचनाएं व क्रियात्मक हल प्राप्त हो रहे हैं। कुलवासी आप जैसे निष्ठावान् और निस्पृह गुरुकुल प्रेमी की सेवाओं के लिए आप का सप्रेम अभिनन्दन करते हैं। संरक्षकों आदि की सुविधा को ध्यान में रखते हुए सभा ने लेखा सम्बन्धी सब पत्र व्यवहार भी श्री लेखाध्यक्ष को सौंप दिया है।

संरक्षक-सभा के प्रधान द्वारा गुरुकुल का निरीक्षण

संरक्षक सभा के अध्यक्ष श्री लाला बिहारीलाल जी पिछले दिनों गुरुकुल में रह कर विभागों का सूक्ष्म निरीक्षण कर रहे थे। लाला जी गुरुकुल के पुराने मित्र और भक्त हैं और गुरुकुल की उन्नति के सम्बन्ध में सदा प्रयत्नशील रहे हैं। इन दिनों गुरुकुल का विशेष निरीक्षण करते हुए आप ने जो परामर्श दिये हैं वे बहुत उपयोगी हैं। उन के सम्पर्क और सहयोग से कार्यकर्ताओं को बहुत रचनात्मक सुझाव प्राप्त हुए हैं।

कुलपति जी अस्वस्थ

गुरुकुल प्रेमियों को यह जान कर खेद होगा कि कुलपति श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति दिल्ली में अपने निवास-स्थान पर चलते हुए पैर फिसल जाने से आहत हो गए हैं और उन के पैर की हड्डी टूट गई है। प्रसिद्ध सर्जन डा० खेड़ा ने आप की हड्डी बैठा कर पट्टी लगा दी है। समस्त कुलवासी उन की आरोग्य-प्राप्ति के लिए प्रभु से प्रार्थना करते हैं।

गुरुकुल के जयन्ती नोट

गुरुकुल की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर गुरुकुल ने जयन्ती नोट प्रचारित किए थे उन के सम्बन्ध में श्री आचार्य जी सूचित करते हैं कि निम्न लिखित महानुभावों तथा आर्यसमाजों से उन नोटों का प्राप्तव्य धन अब तक नहीं आया है, नाहीं उन्होंने बार बार स्मरण पत्र तथा रजिस्टर्ड पत्र देने पर भी न तो जयन्ती नोट ही वापिस लौटाए हैं और न ही कार्यालय के मन्त्री को कोई उत्तर ही दिया है। उन से नम्र निवेदन है कि वे शीघ्र ही इस विषय में गुरुकुल कार्यालय को योग्य उत्तर देने की कृपा करें। सूची इस प्रकार है—

सं०	नाम पता	नोट भेजे
१	आर्यसमाज मुडेरवा, बस्ती	५०)
२	श्री जयप्रकाश जी, सिकन्दराबाद द०	१००)
३	आर्यसमाज, वार्सलीगञ्ज, गया	५०)
४	आर्यसमाज, मुशिराबाद, हैदराबाद	१५०)
५	आर्यसमाज, शिरोंदा, हैदराबाद	५०)

६ आर्यसमाज, वीड, हैदराबाद १००)
७ आर्यसमाज, औसा, हैदराबाद ५०)
८ आ० स० नांदेड़, हैदराबाद २००)
९ आर्यसमाज गुनटाकल, हैदराबाद १००)
१० आ० स० औरंगाबाद, हैदराबाद २००)
११ आ० स० जालना, हैदराबाद २००)
१२ आ०स० आबोसागी, हुमनाबाद, हैदराबाद १००)
१३ आ० स० कोहिर, हैदराबाद ५०)
१४ आ० चन्दौरी, हैदराबाद १५०)
१५ आ० स० उमरी, हैदराबाद ५०)
१६ आ० स० मन्दसौर, ग्वालियर ५०)
१७ श्री कुंवर महामाया प्रसाद जी चंगेरा राज्य, बस्ती २५०)
१८ श्री रामलाल जी, माघोगञ्ज, हरदोई १००)
१९ श्री करणसिंह जी, ऐतमादपुर, आगरा १००)
२० श्री मोहनलाल जी चूनेवाले, आगरा ५०)
२१ श्री बद्रीनारायण जी खन्ना, बनारस ५०)
२२ श्री हनुमान जी, सहारनपुर ५०)
२३ श्री ओम्प्रकाश जी, सहारनपुर ५०)
२४ श्री भरतसिंह जी, नसीरपुर, सहारनपुर ५०)
२५ श्री वैजनाथ जी, नगीना, बिजनौर ५०)
२६ श्री किशोरीलाल जी वकील, बसी पठान ५०)
२७ श्री मोरार जी, उमराख १००)
२८ श्री मनुभाई,वेमार, B.B.&C. I. Rly. १००)
२९ श्री नाथूभाई, ओरगांव, सूरत ५०)
३० श्री सोहरावसिंह जी, पिलवाकलां,शाहजहांपुर १००)
३१ श्री अमरचन्द जी, देहरादून १००)
३२ श्री कबूराम जी, त्यागी, राजाका ताजपुर, बिजनौर १००)
३३ आ० स० बेतिया, बिहार १००)
३४ आ० स० कलमुगली, हैदराबाद ५०)
३५ आ० स० धनबाद, बिहार ५०)
३६ आ० स० ससराम, बिहार ५०)
३७ आ० स० मधुबनी, बिहार ५०)
३८ आ० स० हिलसा, पटना ५०)
३९ आ० स० हरपुरजान, सारन, बिहार ५०)
४० आ० स० भोपाल ५०)
४१ स्त्री आ० स० भोपाल ५०)
४२ आर्य स० शाहपुरा, मेवाड़ १००)
४३ आ० स० हींगनघाट, वर्धा १००)
४४ आ० स० कटनी, जबलपुर १००)
४५ आ० स० सहजनवा, गोरखपुर ५०)
४६ आ० स० नरसिंहगढ़ स्टेट ५०)
४७ आ० स० रायसिंह नगर, बीकानेर ५०)
४८ आ० स० भिलसा, ग्वालियर ५०)
४९ आ० स० राघोगढ़, ग्वालियर ५०)
५० आ०स० बडवानी, इन्दौर ५०)
५१ आ० स० जुलवानिया, इन्दौर ५०)
५२ आ० स० विजय नगर, अजमेर ५०)
५३ आ० स० मुगेड, डूंगरपुर ५०)
५४ आ० स० प्रतापगढ़, राजस्थान ५०)
५५ आ० स० मालाखेड़ा, अलवर ५०)
५६ स्त्री आ० स० बरेली ५०)
५७ आ० स० बालागांव, कामरूप, आसाम ५०)
५८ आ० स० भावनगर, काठियावाड़ ५०)
५९ स्त्री आ० स० अलीगञ्ज, लखनऊ ५०)
६० आ० स० कालाकांकर राज, प्रतापगढ़ ५०)
६१ आ० स० हमीरपुर ५०)
६२ आ० स० सेदड़ा, राजस्थान १००)
६३ आ० स० गोंगरी जमालपुर, मुंगेर, बिहार २५०)
६४ आ० स० इस्लामनगर, बदाऊं ५०)



मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग ,, २॥), २॥), २॥)
ब्राह्मण की गौ ,, ॥)
वैदिक अध्यात्मविद्या श्री भगवद्दत्त १।)
वैदिक स्वप्न विज्ञान ,, २)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां श्री रामनाथ १॥)
वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत ६)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द श्री चमूपति २), १॥)
थर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १॥)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य श्री विश्वनाथ २)
धर्मोपदेश १, २, ३ भाग स्वा० श्रद्धानन्द, १), १), १॥)
आत्ममीमांसा श्री नन्दलाल २)
प्रार्थनावली ।) कविता मंजरी ।-)
आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति ।)
कविता कुसुमाञ्जली ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] ५)
लहसुन : प्याज श्री रामेश बेदी २॥)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] ,, ३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] ,, २)
सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] ,, १॥)
देहाती इलाज] दूसरा संस्करण] ,, १)
मिर्च [काली, सफेद और लाल] ,, १)
त्रिफला [तीसरा संस्करण] ,, ३।)
सांपों की दुनियां ,, ५)
स्तूप निर्माण कला सचित्र सजिल्द, ३
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १।)
जल चिकित्सा श्री देवराज १॥)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द ७), ६)
अपने देश की कथा सत्यकेतु १।=)
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)
ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार ।॥)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव ॥)
महावीर गेरीबाल्डी श्री इन्द्र ३।)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] १)
नीतिशतक [संशोधित] =)
साहित्य-दर्पण [संशोधित] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०] ॥।=)
,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण] ।|=)
अष्टाध्यायी, पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७), ७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] ।)
साहित्य-सुधासंग्रह १, २, ३ बिन्दु १।), १।), १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली ≠)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १।)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] २॥)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] ॥)
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] २॥)
ए गाइड टु दी स्टडी औफ़ संस्कृत ट्रांसलेशन एण्डकपोज़ीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ १)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

गुरुकुल मुद्रणालय।

गुरुकुल पत्रिका

फाल्गुन
२००८



वर्ष ४
अङ्क ७

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ४
अङ्क ७

गुरुकुल-पत्रिका

फाल्गुन
२००८

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव
दर्शनवाचस्पति

श्री रामेश बेदी
आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

वैदिक सिद्धान्तों की श्रेष्ठता	श्री बुद्धदेव विद्यालंकार
सिन्धू घाटी का धर्म तथा रहन-सहन	श्री हरिदत्त वेदालंकार
सांस्कृतिक चेतना और अवनीन्द्रनाथ ठाकुर	श्री शंकरदेव विद्यालंकार
क्षय रोग की अव्यर्थ चिकित्सा--लहसुन	श्री रामेश बेदी

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वेद का सही अर्थ

श्री भगवद्दत्त वेदालंकार

वेद के सत्य अर्थ का प्रकाशन किस प्रकार हो, यह एक बड़ी भारी समस्या है। प्राचीन शास्त्रों में वेद के सत्य अर्थों के निर्णय के लिए ज्योतिष, व्याकरण व निर्वचन आदि कई साधन बताये हैं जिन का कि आजकल अवलम्बन किया जाता है। परन्तु इन साधनों के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों ने कुछ और भी साधन ढूंढे हैं जिन को कि भाषा विज्ञान (फाइलोलोजी) और पौराणिक कथा विज्ञान (माइथौलोजी) नाम से कहा जाता है। आधुनिक समय में वेदार्थ के लिये प्रमुख रूप से इन्हीं साधनों का सहारा लिया जाता है। ये सब साधन होते हुए भी हमें यह कहना पड़ता है कि वेद के विद्वान् वेदार्थ में एकमत नहीं हो सके। वेदों के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण रखने वाले विद्वानों में मन्त्रार्थ में विरोध हो जाना तो स्वाभाविक बात है, परन्तु एक दृष्टिकोण रखने वाले विद्वानों द्वारा मन्त्र के जो अनेकार्थ किये जाते हैं, उन में भी कौन सा अनुकूल है और कौन सा नहीं, यह निर्णय तो करना ही होगा। प्रश्न यह है कि यह कैसे किया जाये? अभी तक जिन साधनों का अवलम्बन किया जाता है उन से तो पूर्ण सत्यार्थ सम्भव नहीं। इस लिए विचारणीय यह है कि वह कौन सा अनुपम साधन है जिस के सहारे हम वेद के सत्य अर्थ तक पहुँच सकें।

इस सम्बन्ध में हम यह कह सकते हैं कि वेद के सत्यार्थ के प्रकाशन के लिये सब साधनों में अनुपम साधन जिस को कि प्राचीन शास्त्रों में एकमात्र सहारा बताया है वह है आध्यात्मिक शक्ति द्वारा मन्त्रों का साक्षात्कार करना। कईयों का इस निरुक्त वचन के आधार पर यह कहना है कि "पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति" अर्थात् वेदार्थ में वही विद्वान् प्रशस्य है जो कि अनेकों विद्याएँ जानता हो। अर्थात् इतिहास, भूगोल, ज्योतिष तथा नाना प्रकार के विज्ञान (साइन्स) जानता हो वह वेदों के सही अर्थ कर सकता है। परन्तु हम इस व्याख्या से पूर्ण सहमत नहीं हैं। हमें तो यहां पर 'भूयोविद्यः' का अर्थ 'ब्रह्मिष्ठ' लगता है। ऐसे बहुत से विद्वान् होंगे जो अनेकों विज्ञानों तथा संस्कृत साहित्य से परिचित हों परन्तु वेदार्थ में उन की गति न हो। अथवा 'भूयोविद्यः' का उपर्युक्त भाव हम मान भी लेंवे

तो भी आधार में तो 'पारोवर्यवित्' होना आवश्यक है। जो अपनी आध्यात्मिक दिव्य शक्ति द्वारा पर अवर को जानता है और साथ में अनेकों विज्ञान भी उसे आते हैं तो वह सर्वश्रेष्ठ है। परन्तु यह सब होते हुए भी हमारी धारणा तो दूसरी है और वह यह है कि जिन ऋषियों के मनरूपी दर्पण पर मन्त्रों का प्रतिबिम्ब पड़ा वहां तो अन्य विद्याओं की आवश्यकता ही नही। आवश्यकता तो इस बात की है कि मन को मन्त्र के प्रतिबिम्ब के लिए अतिनिर्मल बनाये जाये। प्रायः अनुसन्धान करने वालों का यह अनुभव होगा कि जब वे अत्यन्त तल्लीनावस्था में मन्त्र पर विचार करते हैं अथवा इस बिचारकोटि से भी ऊपर पहुँच कर अत्यन्त एकाग्र अवस्था में होते हैं तो सहसा उन के बुद्धि दर्पण पर कोई नई सूझ व नया रहस्य आ उतरता है। जिस के सम्बन्ध में वे नहीं जानते होते कि यह कैसे हुआ, इस में पौर्वापर्य क्या था इत्यादि। यदि इस अवस्था को हम मन्त्रों के साक्षात्कार की सही अवस्था तक बढ़ा लेंवे तो हमें सत्य अर्थ का प्रकाश हो सकता है। हम यह समझते हैं कि अभी तक इस तरफ सामूहिक तौर पर कोई प्रयत्न नहीं किया गया। वैयक्तिक प्रयत्न तो हुए हैं। परन्तु वे नगण्य हैं। और समाज की तरफ से वेदार्थ के लिए जो प्रयत्न किया जाता है उस को बाजारू भाव से मापा जाता है और उन का परिमाण तोला जाता है। क्या! सत्य अर्थ के प्रकाशन का यह सही तरीका है, अब हम इस कथन को यहीं समाप्त कर वेदार्थ के सम्बन्ध में अन्य बातों पर विचार करते हैं।

तर्क ऋषि

कईयों का यह कहना है कि ऋषि मन्त्रों के साक्षात्कार कर्ता थे उन्होंने हम साधारण आदमियों को सही अर्थ तक पहुँचने के लिए तर्करूपी प्रदीप दिया है। जैसा कि निरुक्त में कहा भी है—मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन्। को न ऋषिर्भविष्यतीति। तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन्॥

अर्थात् जब इस पृथ्वी पर से ऋषि उत्क्रमण कर गये तो मनुष्यों ने देवों से पूछा कि अब हमारा ऋषि कौन होगा? इस पर देवताओं ने मनुष्यों को तर्क ऋषि प्रदान किया।

यह ठीक है कि उस समय मन्त्रार्थ का द्रष्टा तर्क ऋषि था। परन्तु हमें कहना पड़ता है कि अब तर्क ऋषि नहीं है। आप पूछ सकते हैं कि अब क्यों नहीं? कारण यह है कि ऋषियों के शिष्य मनुष्यों को जो तर्क ऋषि प्रदान किया गया था तो वे शिष्य भी ऋषि न सही ऋषि समकक्ष व ऋषिकल्प तो थे ही। उस समय तर्क उन के कार्य को सिद्ध कर दिया करता था। महाराणा प्रताप के हाथ में आई हुई तलवार तो शत्रुओं का विनाश कर देगी परन्तु वही तलवार यदि एक कायर आदमी के हाथ में दे दी जाये तो वह शत्रुओं के विनाश की अपेक्षा उसी का विनाश कर देगी। इस लिए हमें वेदार्थ में तर्क का बहुत अवलम्बन नहीं करना चाहिये। और वास्तव में देखा जाये तो तर्क का भाव ही दूसरा है। इस तर्करूपी साधन द्वारा तो देवों ने मनुष्यों को वेद के सही अर्थ तक पहुँचने का मार्ग बताया था। 'तर्क' शब्द कृती छेदने धातु से बनता है। अर्थात् इस तर्करूपी शस्त्र द्वारा मनुष्य को अपनी बुद्धि पर आये हुए आवरणरूपी शत्रुओं का छेदन करना चाहिये। ये आवरण जो नानाभांति के प्रलोभन व मिथ्या

दो

युक्तियां दे कर हमें भुलावे में रखते हैं। उन का इस तर्क द्वारा खण्डन करना चाहिये। जिस समय उस दिव्य सूर्य पर से आवरण हट जायेगा तो सत्यार्थ का हमें स्वयं प्रकाश हो जायेगा। क्योंकि चारों वेद तो हमारे अन्दर ही विद्यमान हैं जैसा कि मन्त्र कहता भी है 'यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवारा' अर्थात् ये ऋगादि वेद रथनाभ में आरों की तरह मन में चारों ओर विद्यमान हैं। इस लिये आवश्यकता इस बात की है कि आवरणों को हटा कर उन को देखा जाये। तर्क का यह उपर्युक्त भाव लेने से उस का प्रयोग ही दूसरा हो जाता है। वह तर्क बाह्य कुतर्क का रूप न धारण कर के आवरण को हटाने का साधन बन जाता है।

वेद का कोई भी शब्द जब हमारे सामने बोला जाता है तो सहसा उस का वाच्य स्थूल रूप में हमारे सामने आ उपस्थित होता है। उदाहरण के तौर पर अग्नि, अश्व, गृह, रथ आदि शब्द लिये जा सकते हैं। अग्नि व अश्व शब्द बोलते ही हमारे सामने स्थूलाकृति आग और घोड़ा आ पहुँचते हैं। परन्तु हमारा कहना यह है कि वेद के शब्दों का स्थूलजगत् से विशेष सम्बन्ध नहीं है वेद के पद अर्थात् संज्ञाएं आदि स्थूलाकृति के आधार पर नहीं रक्खी गईं। उन का सम्बन्ध गुण, क्रिया, शक्ति व सूक्ष्म जगत् से ही है। यदि स्थूलाकृति से ही वेद के पदों का स्वरूप व इयत्ता निर्णीत होनी हो तो एक पद का एक ही अर्थ हो सकता है अनेकार्थ नहीं, और नाही क्षेत्र भेद हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर कोई भी शब्द लिया जा सकता है! अश्व शब्द लौकिक साहित्य में घोड़े का वाचक है परन्तु वेदों में यह घोड़े के अतिरिक्त सूर्य, अग्नि आदि अनेकों पदार्थों का वाचक बना है। यदि अश्व शब्द से घोड़े की स्थूलाकृति अभिप्रेत होती तो इस अश्व शब्द के सूर्य व अग्नि आदि अर्थ कैसे हो सकते थे। इस लिए वेद के शब्दों का अर्थ करते हुए हमें स्थूलाकृति को सामने न रख कर किसी सूक्ष्म शक्ति, गुण व क्रिया आदि जो कि अनेकों पदार्थों में ओतप्रोत हों—को सामने रखना चाहिए। तत्तत् पदार्थ की स्थूलाकृति तो अविनाभाव से स्वयं आ ही जाती है। इसी दृष्टि से वेदों में शरीरावयव, कर हस्त पाद आदि शब्दों का व्यवहार केवल प्राणियों के अंगों के लिये ही नहीं हुआ अपितु सूर्य, अग्नि आदि भौतिक शक्तियों के भी ऐसे ही अंग माने गये हैं। इसी प्रकार स्थूल जगत् के गृह, रथ आदि शब्द भी बहुत विभिन्न स्वरूप रखते हैं। इस से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि अभी तक हम वेदार्थ का निर्णय करते हुए जहां मनुष्य के अंगादि द्वारा मनुष्य का वर्णन प्रतीत हुआ वहां हम मनुष्य अर्थ कर लिया करते थे इस से हमें अत्यधिक सावधान होना पड़ेगा।

यह हमें निर्णय करना पड़ेगा कि स्वयं 'मर्त्य' शब्द भी मनुष्य का ही वाचक हो और अन्यों का नहीं। क्योंकि मर्त्य तो मरणधर्मा को बताता है, उस में पशु पक्षी, ओषधि वनस्पतियां भी आ सकती हैं। दूसरा परिणाम यह निकलता है कि वेद के शब्दों का इतना व्यापक प्रयोग किसी सूक्ष्म व सर्वत्र ओतप्रोत होने वाली सूक्ष्म शक्ति के कारण है। अर्थात् वेद का व्यवहार सूक्ष्म शक्ति व सूक्ष्म जगत् से है स्थूलाकृति व स्थूल जगत् को तो छोड़ा भी जा सकता है। इस लिए वेदार्थ में हमें इन बाह्य अंगों की

हड़प्पा तथा मोहेन्जोदड़ो की सभ्यता

श्री हरिदत्त वेदालंकार

मोहेन्जोदड़ो की खोज और महत्व

आज से तीस वर्ष पहले भारत में प्रागैतिहासिक युग के प्राचीन अवशेष बहुत कम मिले थे, पाश्चात्य विद्वानों द्वारा उस समय वैदिक सभ्यता को सब से पुराना माना जाता था किन्तु उस का काल अधिक से अधिक १५०० ई० पू० ही समझा जाता था। १६२२ ई० में सिन्ध में लारकाना से २५ मील दक्षिण मोहेन्जोदड़ो में इस की तीसरी श० ई० के एक बौद्ध स्तूप की खुदाई कराते हुए श्री राखालदास बैनर्जी ने इस स्थान के प्रागैतिहासिक महत्व की ओर पुरातत्वज्ञों का ध्यान आकृष्ट किया, इस से पहले हड़प्पा (जि० मिन्टगुमरी पश्चिमी पञ्जाब) से कुछ प्रागैतिहासिक मुहरें मिल चुकी थीं। १६३१ ई० तक भारत सरकार की ओर से इन स्थानों की खुदाई होती रही। इसी बीच में सिन्ध और बिलोचिस्तान में ऐसे अनेक टीलों और बस्तियों का पता लगा जहां हड़प्पा और मोहेन्जोदड़ो से मिलती जुलती, इन से पूर्ववर्त्ती और परवर्त्ती काल की वस्तुयें पायी गयी हैं। इन स्थानों की खोज भारतीय इतिहास में युगान्तर करने वाली थी। पहले भारतीय सभ्यता का प्रारम्भ डेढ़ हजार वर्ष ई० पू० समझा जाता था, पिप्रावा का प्राचीनतम ऐतिहासिक अवशेष ५०० ई० पू० का माना जाता था, किन्तु इन खुदाइयों

आवश्यकता नहीं—अन्तर्मुखी अवस्था की आवश्यकता है जिस से कि सूक्ष्म जगत् प्रत्यक्ष हो सके। परन्तु इस सम्बन्ध में हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि सूक्ष्म शक्तियों व क्रियाओं आदि का भी कोई सीमा निर्धारणाह में अवश्य करना पड़ेगा। अश्व पद यदि (अशूङ् व्याप्तौ) व्याप्ति भाव से अग्नि सूर्य आदि के लिए आ सकता है तो आपः (आप्लृ व्याप्तौ) के लिये क्यों नहीं आ सकता, परन्तु वेदों में आपः के लिए अश्व पद का प्रयोग नहीं हुआ। इस लिये विचारणीय यह है कि वह कौन सी ऐसी सूक्ष्म विभेदक शक्ति है जो कि प्रत्येक शब्द की सीमा का निर्धारण कर देती है, उसे ढूंढना होगा। इस लिये यौगिकवाद होते हुए भी सीमा बन्धन अवश्य है। उस के भी नियम हैं जिस में कि हम एक पग भी इधर उधर नहीं जा सकते। इस लिये वेदार्थ के ठीक २ निर्णय में हमें वेद के एक २ शब्द पर पूर्ण विचार करना चाहिये। अभी वेदों के भाष्य का समय नहीं है अभी तो शब्द भाष्य का समय है। वेदार्थ करते हुए हम ने किन्हीं बातों को बहुत संकुचित कर दिया है और किन्हीं में हम कतई निरंकुश हो गये हैं। यह हमें एक २ शब्द पर विचार कर निर्णय करना होगा। विद्वानों का ऐसा विचार है कि वेद का कोई भी शब्द किसी का पूर्ण पर्यायवाची नहीं है। परन्तु अर्थ करते हुए हम शब्दों का ऐसा खुल कर ढीला प्रयोग कर देते हैं कि शब्द का औचित्य व युक्तता विनष्ट हो जाती है। शब्द की वह सर्वत्र व्यापिनी सूक्ष्मता हमारी दृष्टि से ओझल हो जाती है।



से आज से ५००० वर्ष पुरानी अत्यन्त उन्नत, समृद्ध एवं सम्पन्न नागरिक सभ्यता का ज्ञान हुआ जो न केवल मिश्र और मेसोपोटामिया की विश्व में प्राचीनतम समझी जाने वाली संस्कृतियों के समकालीन थी किन्तु नगरों की सफाई, नियमित प्रणाली व्यवस्था, निश्चित ये जना के अनुसार शहरों को बसाने आदि कई अंशों में अपनी समकालीन सभ्यताओं से बहुत बढ़ी चढ़ी थी। इस के अवशेष हड़प्पा में सर्वप्रथम पाये गये थे अतः इसे हड़प्पा सभ्यता कहा जाता है, सिन्ध नदी की घाटी में फलने फूलने से इसे सिन्धु सभ्यता का भी नाम दिया गया।

सिन्धु सभ्यता का विस्तार और साम्राज्य

इस सभ्यता के अवशेष जिन बस्तियों से मिले हैं उन से यह ज्ञात होता है कि ये पश्चिम में मकरान, दक्षिण में काठियावाड़ और उत्तर में हिमालय की शिवालक पर्वतमाला तक एक त्रिभुजाकार क्षेत्र में फैली हुई हैं। इस त्रिभुज की भुजायें ९५०, ७०० तथा ५५० मी० हैं। इन बस्तियों के खण्डहर प्राचीन काल के एक विस्तृत और सुसंघटित साम्राज्य के सूचक हैं। इस के विविध भागों से पायी गई मुहरों, ईंटों, बाटों तथा अन्य सामग्री में इतनी गहरी एकरूपता और सादृश्य है जो सुदृढ़ केन्द्रीय शासन के बिना सम्भव नहीं प्रतीत होता। मिश्र, बेबीलोन और असीरिया जैसे शक्तिशाली प्राचीन काल के इस विस्तृत साम्राज्य की हड़प्पा और मोहेन्जोदड़ो उत्तरी एवं दक्षिणी दो राजधानियां प्रतीत होती हैं, जैसे परवर्त्ती युग में कुशाणों के पेशावर और मथुरा में दो शासन केन्द्र थे। उत्तरी भाग में हड़प्पा के अतिरिक्त १७ अन्य छोटे कस्बों से हड़प्पा संस्कृति की वस्तुयें प्राप्त हो चुकी हैं. पूर्व में बक्सर (बिहार) और पटना से तथा गाज़ीपुर और बनारस जिलों से तथा २०० मी० पूर्व में रोपड़ के पास सतलुज नदी पर कोटलानिहंग खान में भी ये अवशेष पाये गये हैं। मोहेन्जोदड़ो के दक्षिणी भाग में इस शहर के अतिरिक्त सत्रह अन्य बस्तियों में इस के अवशेष मिले हैं। इन में चन्हुदड़ो (मोहेन्जोदड़ो से ८० द० पू०) तथा अमरी महत्वपूर्ण हैं। इन के अतिरिक्त सिन्ध नदी के पश्चिमी किनारे पर लोहुन्जोदड़ो, अली मुराद, भूकर, झगर गाज़ी शाह, उत्तरी बिलोचिस्तान में दबर कोट, नाल, सुर जंगल, राना गन्डई और दक्षिणी बिलोचिस्तान में कुल्ली, मेही और शाही टम्प भी इसी सभ्यता से संबद्ध हैं। इस प्रकार मोहेन्जोदड़ो सभ्यता और साम्राज्य का क्षेत्र समूचा बिलोचिस्तान, सिन्ध और पञ्जाब तथा गंगा की घाटी का कुछ अंश था। यह प्राचीन पश्चिमी एशिया का एक बृहत्तम साम्राज्य था।

सिन्धु सभ्यता के नगर और भवन—मोहेन्जोदड़ो तथा हड़प्पा में विकसित होने वाली शहरी सभ्यता की विशेषतायें इन की खुदाई से भलीभांति प्रकट हुई हैं। पहले शहर के खण्डहर १ वर्ग मील में पाये गये हैं। यह शहर पहले से ही सोच विचार कर एक निश्चित योजना के अनुसार बसाया गया था। सब सड़कें बिल्कुल सीधी बनाई गयी हैं और क्योंकि मोहेन्जोदड़ो में हवा दक्षिण और पश्चिम से उत्तर तथा पूर्व की ओर बहती है अतः सड़कों का भी यही रुख रखा गया है। सब से बड़ी सड़क की चौड़ाई ३३ फी० है। सड़कें एक दूसरी को समकोण

पर काटती हैं और शहर को वर्गाकार तथा आयताकार खण्डों में बांट देती हैं। प्रत्येक गली में एक सार्वजनिक कुंआ है, मकानों से गन्दा पानी निकालने के लिये नालियों की बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। हड़प्पा मोहेन्जोदड़ो से भी बड़ा शहर है दोनों शहरों में रक्षा के लिये बनाये गये परकोटे के अवशेष भी मिले हैं।

मोहेन्जोदड़ो की उल्लेखनीय इमारतें, विशाल स्नानागार, बड़ा हाल, संघीय भवन और राजमहल है। पहली इमारत की पूरी लम्बाई चौड़ाई १८०×१०८ फीट है। इस में नहाने का तालाब ३९ फीट लम्बा, २३ फीट चौड़ा और ८ फ़ीट गहरा है, इस में उतरने चढ़ने के लिये सीढ़ियां हैं, इस का सारा फर्श खड़ी ईंटों का है तथा राल बिछा कर इस की नमी नीचे जाने से रोकी गयी है। कहा जाता है कि ऐसा 'सुन्दर स्नानागार समुद्र तटवर्ती किसी भी आधुनिक होटल के लिए गर्व का कारण हो सकता है।' मोहेन्जोदड़ो में इस का उपयोग सम्भवतः धार्मिक कार्य के लिए होता था। इस के दक्षिण पश्चिम में एक अन्य इमारत में पानी को गरम कर के नहाने की व्यवस्था भी थी। स्तूप वाले टीले के दक्षिण में एल क्षेत्र में ८५ फीट लम्बा और इतना ही चौड़ा एक विशाल हाल पाया गया है जिस की छत ईंटों से बने २० आयताकार खम्भों पर टिकी हुई थी। इस हाल के उपयोग के सम्बन्ध में श्री मार्शल का यह मत था कि यह बौद्धों के चैत्यों से मिलता है, इस का व्यवहार धार्मिक कार्य के लिए होता था। श्री मैके का यह विचार है कि यह उस समय की बड़ी मण्डी थी और यहां विविध वस्तुओं की स्थायी दुकानें थीं। स्तूप वाले टीले के पश्चिम में २३० फीट × ७८ फीट की एक बड़ी इमारत है, इसकी दक्षिणी और पश्चिमी दीवारें पौने सात फीट मोटी हैं। यह किसी ऊंचे राजकर्मचारी का अथवा पुरोहित वर्ग का निवास स्थान समझा जाता है। राजमहल कहा जाने वाला एक अन्य भवन २२० फीट लम्बा, ११५ फीट चौड़ा है, इस की दीवारें कई स्थानों पर ५ फीट मोटी हैं। इस में दो विशाल आंगन, नौकरों के घर तथा सामान रखने के कई कमरे हैं। हड़प्पा की सब प्रसिद्ध इमारत विशाल अन्नागार है। यह १६९ फीट लम्बा, १३५ फीट चौड़ा है। इस के पास ही अनाज पीसने का फर्श, मजदूरों के रहने के बहुत से मकान पाये गये हैं। इन दोनों शहरों में सामान्य मकान बहुत सुविधापूर्ण थे। इन सब में आंगन, कुंआ, स्नानगृह, नालियां बनी होती थी। आंगन प्रायः पक्का होता था और उस के चारों ओर गोदाम, कुंआ, रसोई तथा स्नानागार होते थे। स्नानागार प्रायः सड़क की ओर पक्के तथा ढालदार फर्श का बना होता था, इस का सारा पानी एक पक्की नाली से बाहर की ओर सड़क में मिला दिया जाता था था। घरों के दरवाजे आजकल की भांति प्रायः दीवार के के बीच में न हो कर सिरे पर होते थे। बाहर की ओर खिड़कियां नहीं होती थीं। मकान प्रायः दुमञ्जले होते थे, छतें चपटी और शहतीरों से बनी होती थीं। घर का मुख्य द्वार गली में होता था और उस के पास पहरेदार की व्यवस्था होती थी।



व्रात्य का सिंहासन

श्री रामनाथ वेदालङ्कार

व्रात्य बैठ गया

यह लीजिये, व्रात्य बैठ गया। जो व्रात्य असन्तुष्ट हो कर लगातार वर्ष भर खड़ा रहा था वह आज सन्तुष्ट हो गया और बैठ गया है। किन्तु अब भी सावधानी की आवश्यकता है। बड़ी कठिनाई से व्रात्य ने बैठना स्वीकार किया है। कहीं ऐसा न हो कि उस के सत्कार में कुछ त्रुटि रह जाये और वह फिर उठ जाये। देव-पुरुषों का अब तक का सब प्रयत्न बेकार हो जाये। नहीं, देव जनों को इस की भी पूरी चिन्ता है। जो दिन रात अपने सुख-दुःख की परवा न कर के व्रात्य के सिंहासन को बनाने में, देश में ईश्वर-वास के योग्य वातावरण पैदा करने में, तल्लीन रहे हैं, उन्हें क्या इस की चिन्ता नहीं होगी कि व्रात्य के बैठने के बाद उस के आतिथ्य में कुछ त्रुटि न रहे।

परिचारक, दूत और दरबारी

सब देवजन उस के परिचारक (परिष्कन्द) बन गये हैं। वे सर्वात्मना उस की परिचर्या में लीन हैं। जब एक बार अपने देश में उन्होंने व्रात्य को बैठा लिया है तो अब उसे वे उठने नहीं देंगे। जिन बातों से व्रात्य प्रसन्न होता है उन का वे देश में अहर्निश प्रचार करते रहेंगे।

पर दूत कौन बनेगा? जब व्रात्य राजा बन कर सिंहासन पर आरूढ़ हो गया है तो उस के दूत भी होने चाहियें, जिन्हें राष्ट्र में इधर-उधर भेज कर वह कार्य करायेगा। 'संकल्प' ही उस के इधर-उधर भेजे जाने वाले दूत (प्रहाय्याः) हैं। मानवी राजाओं की तरह उसे शरीरधारी दूतों की आवश्यकता नहीं है। उस के संकल्प में बड़ा बल है। अपनी संकल्प शक्ति से ही उस ने सृष्टि की रचना की है और सृष्टि का धारण भी कर रहा है। वे उस के संकल्प ही उस के लिए दूतों का कार्य करेंगे। जैसे कोई मानवी राजा अपने किसी राष्ट्रवासी को कोई सन्देश भेजना या प्रेरणा करना चाहता है तो दूतों द्वारा करता है, वैसे वह जिस व्यक्ति में जो प्रेरणा करना चाहेगा अपने संकल्प से ही कर देगा।

जब राष्ट्रवासियों ने ऐसे विलक्षण सम्राट् को अपने बीच में सिंहासन पर बैठा लिया है तब कौन है जो उस के उपसन्न न हो, दरबारी बन कर उस के दरबार में उपस्थित न हो। सब भूत, सब राष्ट्रवासी उस के चरणों में सिर झुका रहे हैं और उन्होंने अपने सब आपसी झगड़े, अपनी सब फरियादें उसी पर छोड़ दी हैं। वे अपने आप को उस के दरबार में बैठा हुआ अनुभव कर रहे हैं और प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वह किन कर्तव्य कर्मों की, किन राज-नियमों की, हमारे लिए घोषणा करता है। जैसी व्रात्य की इच्छा होती है उसे पालन करने के लिए सब नर-नारी तैयार हैं।

क्या हम व्रात्य नहीं बन सकते?

कथानक के अन्त में कहा है कि हम चाहें तो हम भी व्रात्य बन सकते हैं। व्रात्य की इस महिमा को हम समझें और अपने जीवन में घटाने का प्रयत्न करें। हम भी उस बड़े व्रात्य की तरह व्रत-

ष्ठि बनें, जन समुदाय का नेतृत्व करने की शक्ति अपने अन्दर पैदा करें। तब हमें भी जनता सिंहासन देगी और हमारे भी सब लोग उपसद् बनेंगे। अपनी २ फरियादें और समस्यायें लेकर सुलझाने के लिए हमारे पास आयेंगे और हमारे निर्णय तथा आदेश की प्रतीक्षा में खड़े रहेंगे। हमारे मुख से जो कुछ निकलेगा उस का अक्षरशः पालन करने के लिए, उस पर मर मिटने के लिए वे तैयार रहेंगे।

एक और व्याख्या

इस कथानक की एक और व्याख्या भी की जा सकती है। 'व्रात्य' एक राजा है। किसी देश ने अपना नया राजा चुना है। वह एक वर्ष तक खड़ा रहता है। एक वर्ष उसके शासन के आरम्भ-काल का द्योतक है। देवजन राज्य के अन्य अधिकारीवर्ग हैं। जब कोई नया राजा बनता है तब प्रारम्भ का एक वर्ष या उस के शासन का आरम्भिक काल उस के लिए अनथक परिश्रम करने का काल होता है। उसे अस्तव्यस्त राष्ट्र को एक नये ढांचे में ढालना होता है, नवीन रूप में व्यवस्थित करना होता है। इस के लिए वह रात-दिन जी तोड़ कर परिश्रम करता है। अलङ्कार-मयी भाषा में हम कह सकते हैं कि उसे बैठने तक की फुर्सत नहीं मिलती। यही उस का एक वर्ष खड़ा रहना है। देवजन उसे कहते हैं, राजन्! बैठिये, विश्राम कीजिये। राजा उत्तर देता है, मैं बैठूँ कैसे? पहले मेरे बैठने के लिए सिंहासन तो तैयार हो जाये। मैं इस लकड़ी के तख्त को सिंहासन नहीं समझता। मैं तो उस दिन आराम से बैठूंगा जिस दिन मेरे लिए असली सिंहासन तैयार हो जायेगा, ऋतुए जिस सिंहासन के पैर होंगे, बृहत्, रथन्तर आदि पाटियां होंगी, ऋग - यजुः ताने-बाने के तार होंगे, 'वेदस्' का जिस पर बिछौना बिछेगा, 'ब्रह्म' की चादर होगी, 'साम' जिस में आसन का स्थान लेगा, 'उद्गीथ' जिस का तकिया होगा। जिस दिन यह असली सिंहासन बन जायेगा अर्थात् जिस दिन राष्ट्र में ऐसी उच्च परिस्थितियां दिखाई देने लगेंगीं वह दिन मेरे बैठने का होगा, तब मुझे सांस ले मिलेगी। जब तक यह नहीं हो जाता तब तक मुझे खड़ा ही रहना है, खड़े हो कर निरन्तर उद्यम करते रहना है। तुम सब देव, सब राज्याधिकारी राष्ट्र में ऐसी परिस्थिति लाने का यत्न करो।

कथानक के अनुसार देवजनों के उद्योग से ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गईं। सिंहासन बन गया। तब राजा बैठा। सब देव या अधिकारिवर्ग उस के परिचारक हुए। जिस ने राष्ट्र का इतना भला किया उस की परिचर्या सब देव करेंगे ही। उस के संकल्पों और इरादों में भी बड़ी शक्ति होगी। वे ही उस के दूतों का कार्य करेंगे। उस के संकल्प या उस की इच्छा ही प्रजा के लिए सब कुछ होगी। सब राष्ट्रवासी उस के दरबारी होने में अपना गौरव समझेंगे।

जो भी इस रहस्य को समझ लेता है और अपने अन्दर घटाने का यत्न करता है वह सच्चा राजा बनता है और उसे भी यही गौरव प्राप्त होता है।



हमारी लिपि

श्री स्वामी शंकरानन्द

अध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों के अमूर्त और मूर्त दो स्वरूप हैं। आकाश और वायु अमूर्त माने हैं। प्रथम सर्वव्यापक और दूसरा सर्वत्रगः माना है। आकाश का गुण शब्द और वायु के स्पर्श और शब्द गुण हैं। ये धर्मचक्षु के विषय नहीं हैं। मूर्त अग्नितत्व से आरम्भ होता है। अग्नितत्व के गुण, रूप, स्पर्श और शब्द हैं। रूप-सौन्दर्य-सुरूपता या कुरूपता, अग्नितत्व विषय स्थित, आकार-प्रदायक अग्नि की आंशिक-शक्ति पर निर्भर है। अतः सुडौल या बेडौल आकार अग्नि तत्व का ऋणी है। प्रत्येक पदार्थ में अग्नि की दिव्य मात्रा है। विश्व भर की दृष्टि-विषयक स्थूल लीला, साइक्लोट्रोन र० की सूक्ष्मतम लीला, अग्नितत्व के आविर्भाव और तिरोभाव का खेल है।

वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में, प्रत्येक प्रयोग अग्नितत्व की या अग्नितत्व के विकार की सहायता से किया जाता है। वे प्रयोग प्राकृतिक नियम के पोषक होते हैं। अग्नि की अधिक या कम मात्रा से रूप-रंग और आकार में रूप-रूपान्तर हो जाता है। प्रत्येक प्रयोगशाला में अग्नि के सच्चे उपासक अग्नि की उपासना करते हैं। अग्नि का आविर्भाव गूढ़ रहस्योद्घाटन-अग्नि शक्ति द्वारा करते हैं। अमूर्त को मूर्त स्वरूप दे कर गर्भित और अव्यक्त-सूक्ष्म-प्राकृतिक घटनाओं का पृथक्करण या वर्गीकरण करते हैं।

स्थूल आकारों का मूल बिन्दु है। अध्यात्मिक बिन्दु और नैसर्गिक बिन्दु में भेद है। अध्यात्मिक बिन्दु संसार के सचराचर पदार्थ मात्र का कारण है। वैज्ञानिक बिन्दु पदार्थ मात्र के आकार का मूल है। वैज्ञानिक बिन्दु की लम्बाई चौड़ाई और मोटाई नहीं होती है। वह तो भूत-कालिक और आगामी आकृति-स्रोत का मूल है। बिन्दुओं की आवली से रेखा खींची जाती है। रेखा की केवल लम्बाई होती है। ऐसी दो रेखा-भुजाओं के दो अन्त के संयोग से कोण बनता है। यह कोण का ज्ञान अंश द्वारा होता है। भूमिति के सिद्धान्तों के अनुसार भुजाओं के नाना संयोग और वियोग से नाना प्रकार की आकृतियां बनती रहती हैं। अर्थात् जैसी बिन्दुओं की संकलना, वैसा आकार। प्रायशः संसार के पदार्थ मात्र का बोध लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई युक्त आकृति सापेक्षिक दृष्टि से देश और काल में व्यक्त होती दृष्टिगोचर होगी। उपरोक्त आकृतियों का प्राण स्पन्द माना जाता है। स्पन्द अतिसूक्ष्मतम विचार और दृष्टि का विषय है। यह विश्व एक स्पन्द आत्मिक लीला है।

संस्कृत में प्रणव अद्भुत और चमत्कारी, आश्चर्यजनक शब्द है। प्रणव वह शक्ति-स्रोत का मूल है, जिस मूल से नये २ रूप और आकार निकलते रहते हैं। हमारे स्थूल आकारों का प्रणव बिन्दु मानने में दोष नहीं है। सुषुप्ति से परे तुरीया में प्रणव-विकसित प्रणव-बिन्दु अध्यात्मिक बिन्दु में घनीभूत हो जाता है। अर्थात् 'कूर्मोऽजानीव सदृश' बिन्दु है। बिन्दुओं की विशेष संकलनाओं-रचनाओं से आकार-वाहक और आकार-वाचक बनती हैं। सर्वव्यापक आकाश तत्व का लिंग संकेत-बिन्दु या बिन्दुओं से बना हुआ सूक्ष्म वर्णन है। यह तो अतिप्राचीन और आधुनिक नीति है कि लिंग

संकेत रहित तात्विक भाव को संसार में पूजनीय स्थान नहीं है। लिंग में प्राण प्रतिष्ठा श्रद्धारूपी भाव से की जाती है। उस के अस्तित्व का भान पूर्ण रूप से श्रद्धा देवी कराती है। देखिये, इस विनाशशील विश्व में प्राण प्रतिष्ठा से सुदीप्त लिंग के लिए पारमार्थिक और व्यवहारिक दृष्टि से इस का सन्मानार्थ और अखण्डित प्रतिष्ठा के लिए क्या क्या नहीं किया जाता है। त्याग की पराकाष्ठा को सामान्य आचार-विचार में स्थान दे कर या होम कर स्वात्मार्पण नहीं किया गया है? ऐसी शिक्षा नहीं दी जा रही है?

सत्य है, संसार में भावनाओं के चिन्ह पन्थों ने या राजनीति ने निश्चित किये हैं। वे स्थिर और दृढ़ नहीं पाये जाते हैं। जो सापेक्षिक सत्य आज जिस प्रकार से समझाया और समझा जाता है, कल निकट या दूर के भविष्य में अन्य प्रकार की रीति-नीति से समझाया और समझा जायेगा? एक ही सत्य का प्राकट्य देश-कालानुसार यथार्थ स्वरूप में होता रहता है। सिद्धान्त है कि 'कर्मानुसार गति और यति'। कर्म-मति और गति के अनुसार सत्य का आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। अर्थात् सत्य का सापेक्षिक प्राकट्य समझने और समझाने की रीति और नीति में परिवर्तन का सूक्ष्म बीज है।

संस्कृत लिपि के वर्णों के बारे में और उन की मूल आकृतियों के बारे में विविध अनुमान प्रचलित हैं! कुछ प्राप्त भूगर्भित और अन्य प्राप्त सामग्री से अनुमोदित हैं। और कुछ काल्पनिक भाव से समर्थित हैं। पाश्चात्य और पौर्वात्य प्रयासों के फलस्वरूप लिपि के आदर्श को श्री ओझा जी ने और पं० श्री रघुनन्दन शर्मा ने भारतवासियों के सामने रक्खा है। दोनों स्वर व्यक्ति दृष्टिकोण से यथार्थ और सत्य कहते हैं। लिपि को वर्णों का मूल रूप आकार कुछ भी हो परन्तु आधुनिक विद्यमान वर्णों की आकृति पर वे सहमत हैं। यह विश्व मान्य वैज्ञानिक लिपि भारत में सार्वभौम पद पर किस प्रकार से आरूढ़ हो, यह वाञ्छनीय नहीं है।

विश्व विद्वानों का अभिप्राय है कि संस्कृत लिपि अपूर्व वैज्ञानिक है। महर्षि पाणिनि के अनुसार वर्णोच्चार (स्पन्दित प्राण की एक कला) उच्छ्वास पर निर्भर है। प्रयत्न दो प्रकार के हैं—१. आभ्यन्तर, २—बाह्य। उनमें अवान्तर भेद भी है। तत्वज्ञान भेद में एक ही वर्ण के एक से अधिक प्रकार के उच्चारण विधि का संस्कार सम्भव पाया जाता है। एक वर्ण के भिन्न २ उच्चारण का बोध कराया है। आधुनिक स्वरशास्त्र उपरोक्त कथन का बहुशः समर्थन करता है। विशेष यन्त्र द्वारा वर्णोच्चारण या वर्णों से बने हुए शब्दोच्चारण के फोटो खींचे गये हैं। उन फोटों के निरीक्षण से स्पष्ट होता है कि नादयन्त्र के अंग और उपाङ्गों में किस वर्ण या शब्द उच्चार में कैसी गति और उन की स्थिति कैसी रहती है, इस का बोध होता है। उन हरकतों और अंग उपांगों की सापेक्षिक स्थितियों से उच्छ्वासित प्राण की अमुक वर्ण में हरक़त किस स्थान से स्पर्श करती हुई वर्णानुकूल वैखरी रूप धारण करती है। यह तो सामान्य व्यवहारिक शक्ति मानी जाती है। विश्व रूप से वह परानुभावरूप से रूपान्तर हो कर गद्य-पद्य का विषय बन कर साहित्य कला की अभिवृद्धि करने में सहायक

होती है। 'कला कला के लिये है'। श्रम करने से क्या यह भी मालूम हो सकता है कि उदात्त, स्वरित और अनुदात्त में किस वर्णोच्चार में प्राण-शक्ति का आनुपातिक कितना व्यय होता है।

पञ्चमहाभूत से विश्व बना है, ऐसा पौर्वात्य सिद्धान्त है। मन्त्र द्रष्टाओं ने मन्त्र का हृदय और शरीर वर्णों की विशेष छन्द बद्ध रचना से बना है, ऐसा संकेत किया है। वर्ण माला के वर्ण पाञ्चभौतिक हैं। मन्त्रों का वर्गीकरण भी मन्त्रान्तर्गत प्रधान वर्ण के अनुसार किया गया है। कर्मानुसार मन्त्रों का प्रयोग होता है। तत्वानुसार मन्त्र गति और कर्म गति होती है। उपरोक्त कथन का समर्थन, भाव और छन्द-बद्ध कवित्व शक्ति और कविता में, राग-रागनियों में, प्रतिबिम्बित होता है। शब्द शक्ति के माहात्म्य का कैसा अमूल्य प्रभाव है ? इस का भान शारीरिक अवस्था में और मानसिक अशान्ति में होता है। शारीरिक और मानसिक स्थिति से, प्रतिकूल शब्द से, राग से, कैसी अशांति कारक विषमता पैदा होती है। शब्द साम्राज्य के प्रभाव और वैभव का अनुभव जीवन के प्रत्येक पहलु में और विशेष कर के, तन्मयता का अविच्छिन्न, अखण्डित, आन्दोलन रहित शान्त सुख सागर में होता है।

प्रकृति, परिवर्तनशील पदार्थों से पूर्ण है। अस्थिरता और अदृढ़ता के क्षेत्र में, यौवन की प्रौढ़ता और दृढ़ता के बीज बोये जाते हैं। अतः ऐसी अकूटस्थ प्रकृति में रूपान्तर रहित प्रौढ़ता का दर्शन स्वप्नवाद है। प्रत्येक पदार्थ को सौन्दर्य की रक्षा के लिए नवीन रूप धारण करने की आवश्यकता और स्वतन्त्रता है। परन्तु नवीनता मूलरूप के संस्कार से हीन न होनी चाहिये। ऐसा रूपान्तर मानो विनाश का ग्रास है। अतः देशकाल के अनुसार, अनुकूल रूप-रूपान्तर के अभिलाषी मूल स्वरूप को दृढ़ रख कर यथोचित रूपान्तर लिपि में करें, जिससे पढ़ने, बोलने और लिखने में भेद रूपी विषमता जड़ न कर बैठे। जिस विषमता का अशुभ दर्शन अन्य साहित्य के पढ़ने-बोलने-लिखने की प्रणाली में पाया जाता है। अर्थात् बोलना कुछ और लिखना कुछ। कुछ पौर्वात्य और पाश्चात्य लेखन और बैखरी में उपरोक्त दोष पाया जाता है। संस्कार रूढ़ होने पर सदोष लेखन विधि का निष्कलंक बनाने के लिये भगीरथ प्रयत्न भी असमर्थ सिद्ध होता है। अतः हमारा प्रयत्न लिपि-विषय के परिवर्तन में ऐसा प्रशंसनीय होना चाहिये कि जिस से वह आदर्शनीय बने। समय के बहाव में बह कर, आवश्यकता की पिपासा को शान्त करने के लिए उपरोक्त सिद्धान्त का विस्मरण न होना चाहिए। निम्न प्रकार का प्रयत्न कुछ ग्रन्थ और समाचार पत्रों में देखा जाता है—'उ' के स्थान पर 'अु' लिखने का प्रयास पाया जाता है। व्यञ्जन के साथ 'उ' के चिन्ह का जो प्रयोग होता है, वह अब 'अ' स्वर के साथ किया जाता है। अब यह सोचना है कि उपरोक्त दोष अन्य लिखित भाषाओं में जो पाया जाता है वह दोष भविष्य में हमारे साहित्य को दूषित नहीं करेगा ? विद्वान् हमारी दोष-रहित भाषा मानते हैं, वह दूषित नहीं बनेगी ? आधुनिक हमारी लेखन पद्धति से सुशिक्षित वर्ग परिचित है। अब न ये ढंग की लिपि का परिचय कराने में क्या २ व्यय

करना पड़ेगा, यह भविष्य बता सकता है। भाषा की फलद्रुमता, कहते हैं, स्वरों की अधिकता पर निर्भर है, और इतने स्वर ऐसे सुप्रयोग वाले अन्य भाषाओं में हैं या नहीं शंकास्पद है।

लिपि में परिवर्तन होता रहा है। आधुनिक रूप, लिपि का कई परिवर्तन के बाद बना है। ऐसा लिपि-विज्ञान वेत्ताओं का अभिप्राय है। परन्तु स्वर की संख्या में कमी नहीं पाई जाती है। कहते हैं, कि लिपि की मौलिकता स्वरों की अधिकता है। यदि स्वर और व्यञ्जन की आधुनिक आकृतियों में परिवर्तन करना अत्यावश्यक और उचित है तो हमारा हार्दिक प्रयत्न स्वतन्त्र भारत में एक ही सामान्य लिपि की जड़ को सुदृढ़ करना क्या मंगलकारक नहीं होगा ? और कैसा सुन्दर होगा कि उस ही लिपि में भारतीय सर्वभाषाओं का साहित्य भविष्य में लिखा जाये ? हिन्दुस्तान की प्रत्येक प्रान्तीय लिपि संस्कृत लिपि से दूर या नकट का सम्बन्ध रखती है। और प्रान्तीय अनुकूलता के अनुसार उन में परिवर्तन करने की आवश्यकता भी अनुभव होगी ! अतः, स्वभावतः ऐसे प्रयत्नों में आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, शारीरिक और मानसिक शक्ति का व्यय जरूर होगा और उस का मूल्य क्या होगा, यह तो अनुभवी बता सकते हैं। एक ही लिपि में उचित और अल्प परिवर्तन से यदि वह लिपि भारतवर्ष में सार्वभौमिक पद प्राप्त कर के अमूल्य, अखण्डित और मौलिक संघटन के शुभ प्रयत्नों का स्मारक बनावे। क्या वाञ्छनीय, और मंगलकारक नहीं है ? ऐसी लिपि द्वारा भारत के भावी सुशिक्षित नागरिक प्रत्येक प्रांतीय लिखित साहित्य कला से अल्प श्रम में परिचित होने का और परिचय बढ़ाने का सौकर्मकता से सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सकता है ? शिक्षा विभाग की बहुत सी उलझनें सुलझ जायेंगी और जीवन में अपरोक्ष राष्ट्रीय चैतन्य भाव को दृढ़ करेगी।

आदरणीय श्री मैक्समूलर ने पौर्वात्य लिपियों के वर्णों के शब्दोच्चार का परिचय स्वरशास्त्र से संबन्धित परिभाषा में कराया है। पौर्वात्य लिखित व उच्चारित लिपियों के व्यञ्जनों का कुल ५६ प्रकार से उच्चार किया जाता है और स्वरों का उच्चार का सम्भव २६ प्रकार का जताने की प्रसंशनीय चेष्टा की है। आंगल लिपि के वर्णों के उच्चार, वर्ण या शब्द द्वारा बताने का जो प्रयत्न किया है उस की संख्या ४५-५० तक पहुँचती है। संस्कृत लिपि के बारे में महर्षि पाणिनि ने साधारणतः वर्णोच्चार १०८ प्रकार के होने का सम्भव बताया है। इस में ह्रस्व, दीर्घ प्लुत, ह्रस्वउदात्त अनुनासिक, ह्रस्वउदात्त अननुनासिक इत्यादि श्रेणियां को स्थान नहीं है। आजकल साहित्य में ठेठ भाषा के रूढ़ शब्दों के उच्चारण के विषय में जो टीका-टिप्पणियां हो रही हैं, इस का हृदयंगम समाधान शायद महर्षि पाणिनि याचना पर करे, ऐसा अनुमान है।



बीसवीं सदी के पूर्व भाग में बडिशन (कांटे से मछली पकड़ना) पर संस्कृत की एक रचना

श्री एस० एल० होरा

वेशफार्ड डीन की 'बिबलियोग्रेफी आफ फिशेज़' में एक अनाम कृति का उल्लेख है।

इस कृति का प्रकाशन एनटवर्प में १६४२ में हुआ था और डीन की बिबलियोग्रेफी के अनुसार मछली पकड़ने की कला पर यह सर्व प्रथम पुस्तक है। सन् १८७२ में एलफ्रेड डेनिसन ने सम्पादक पद से 'एनट्वर्प में १६४२ में छपी और फ्लेमिश भाषा में लिखी गई मछलियों के शिकार पर सर्व प्रथम पुस्तक का शब्दशः अनुवाद' किया। डीन की 'बिबलियोग्रेफी आफ फिशेज़' के सम्पादकों ने बडिशन पर एक और अधिक प्राचीन पुस्तक के विषय में निम्न लिखित लाभदायक बातें बतलाई हैं:—'जहां तक मछली पकड़ने की कला का सम्बन्ध है, छपे हुए रूप में, फ्लेमिश भाषा की यह छोटी पुस्तक 'बोक आफ सेन्ट एलबन्स' से अधिक प्राचीन जान पड़ती है। सन् १५५२ से सन् १७०० तक छपे 'बुचलिन' और 'फिशबुचलिन' शीर्षकों के कई प्राचीन जर्मन भाषान्तर हैं। इन में से एक को १५६८ में ज्यूरिच में छपी हुई 'फिशबेच आफ ग्रिगरी सेन्गोल्ट' नामक पुस्तक में सम्मिलित किया गया है। तीन अन्य संस्करण ज्ञात हैं:—एक ४° में है, तिथि तथा स्थान रहित है और शीर्षक उसी प्रकार का है, दूसरा स्थान रहित सन् १५८३ का है और शब्दों में कुछ भिन्न है; और तीसरा सन् १५८४ का है।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के चौदहवें संस्करण (१, पृष्ठ ६३२) में 'बोक आफ सेन्ट एलबन्स' 'जिस का कुछ भाग का द्वितीय संस्करण सन् १४६६ में छपा था, पर अधिक प्रकाश डाला गया है। हस्तलिखित प्रति पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व भाग की बतलाई जाती है। इस कृति की और भी अधिक पुरानी प्रतियों की सम्भावनाएँ हैं। गायकवाड़ ओरियेन्टल सीरीज़ (प्रकाशन संख्या २८ वीं, बड़ौदा, १६२५ में पश्चात् चालुक्यों के छठे राजा विक्रमादित्य के पुत्र राजा सोमेश्वर द्वारा लिखित 'मानसोल्लास' की संस्कृत हस्तलिखित प्रति के प्रकाशन ने मछली पकड़ने की कला पर एक अध्याय प्रकट किया है जिस में इस मनोरञ्जक विनोद पर वे विस्तृत बातें लिखी हैं जो कि क्रियात्मक दृष्टि से आधुनिक हैं। मानसोल्लास एक प्रकार का विश्वकोषीय ग्रन्थ है जो कि ११२७ में लिखा गया था। सोमेश्वर का राज्य लगभग सारे दक्षिण प्लेटो पर था और उस में गोदावरी, नर्वदा, तापती और कृष्णा नदियां सम्मिलित थीं। यह राज्य भारतवर्ष के पूर्वी किनारे से पश्चिमी किनारे तक फैला हुआ था और इस में मराठी, तामिल और तेलेगू लोग सम्मिलित थे।

बडिशन पर लिखे गये अध्याय का नाम 'मत्स्यविनोद' है जिस का अर्थ है मछली पकड़ने की क्रीड़ा। क्रीड़ा मछलियों की लगभग सैंतीस जातियों का वर्णन आया है। इन को तीन समूहों में विभाजित किया गया है : (१) समुद्री, (२) अलवण जल वाली, और (३)

वे समुद्री जो कि अण्डे देने के लिए नदियों में चली जाती हैं। आगे इन का विभाजन शल्की (स्केली) तथा शल्कहीन भेदों में हुआ है और फिर प्रत्येक समूह को आकार की दृष्टि से छोटे, मध्यम और बड़े विभागों में बांटा गया है। मत्स्य नामों की व्युत्पत्तियों तथा प्रत्येक मछली के विषय में पुस्तक में दिये गये अन्य विवरणों से सैंतीस में से तेतीस का लगभग ठीक ठीक पता लगा लिया गया है। मछली पकड़ने के उपकरण को तीन मुख्य भागों में लिखा गया है अर्थात् डोरी, छड़ी और कांटा। डोरी बनाने के लिये कई प्रकार के रेशे बतलाये गये हैं और उन सब के आपेक्षिक गुणों पर प्रकाश डाला गया है। बांस का ठोस तना या कदोल (मेनग्रूव) की शाखा छड़ी बनाने के लिए उपयुक्त लिखे गये है। उपयुक्त लोहे के कांटों का भी वर्णन है।

मछलियों की विभिन्न जातियों के लिये कि भिन्न प्रकार के आकर्षक भोजनों की निर्माणविधि तथा उन को भोजन खिलाने की विधियां पृथक पृथक बतलाई गई हैं। सोमेश्वर ने मछली पकड़ने की वास्तविक कला लिखी है तथा आकर्षक भोजन, उपकरण, बेड़ा, डोरी डालना, मछलियों की काट, मछली पर प्रहार तथा मछली के साथ क्रीड़ा आदि के विषय में विस्तार से वर्णन किया है।

दक्षिणी भारत के आबपाशी के तालाबों पर अंकित शिलालेखों के अध्ययन से इन तालाबों में मछली पकड़ने की कला के क्रमिक विकास को बतलाना सम्भव हो सका है। पांचवीं और छठी शताब्दी के ऐसे शिलालेख उपस्थित हैं जिन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि धान की खेती के लगान से प्राप्त आय से आबपेशी के तालाब चलाये जाते थे। दसवीं शताब्दी के मध्य के एक शिलालेख में मछेरे का वर्णन मिलता है किन्तु उस का काम उन नावों की मरम्मत के लिए लकड़ी प्राप्त करना लिखा गया है जो तालाबों से कीचड़ निकालने के काम में लाई जाती हैं और उस की मज़दूरी धान के रूप में दी जाती है। १११२ के एक तामिल शिलालेख में उस लगान का वर्णन है जो कि मछली पकड़ने से प्राप्त होता था और तालाब पर खर्च किया जाता था। इस लेख से स्पष्ट सारांश यह निकलता है कि तालाब में मछली पालना तथा बडिशन दोनों कलायें अच्छे प्रकार से उन्नत थीं। राजा सोमेश्वर ने मानसोल्लास ११२७ में लिखा था। १३ वीं से ले कर १६ वीं शताब्दी के सब शिलालेखों से यह बात ज्ञात होती है कि मछली पकड़ने का लगान आबपाशी के तालाबों को चालू रखने के लिये पर्याप्त था। इस प्रकार के ऐतिहासिक वर्णन से मत्स्य क्रीड़ा की कला दक्षिण भारत में ठीक प्रकार से दसवीं शताब्दी के मध्य में मानी जा सकती है।

इस लेख में वर्णित पुस्तक यह स्पष्ट बतलाती है कि प्राचीन भारत में बडिशन की कला बहुत ऊंचे पैमाने तक विद्यमान थी क्योंकि उस समय की वर्णित विधियां बहुत कुछ भारत में प्रचलित आधुनिक विधियों से मिलती जुलती है। यूरोप के खानेबदोश जो मंगोल, हिन्दी तथा एशिया की अन्य भाषाएं बोलते हैं ठीक वे ही विधियां प्रयोग में लाते हैं जिन का वर्णन राजा सोमेश्वर ने किया है और यह बात सम्भव है कि वे घूमते-घूमते भारत से यूरोप चले गये हों और वहां

अर्य और शिश्न देव

न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो, न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोः मा शिश्नदेवा अपिगुर्ऋतं नः ॥

ऋग्वेद ७—२१—५

वसिष्ठः ऋषिः । इन्द्रः देवता । त्रिष्टुप् छन्दः।

(वसिष्ठ) मैंने अपने राष्ट्र को संयम का पाठ पढ़ा रक्खा है, तथा उस के वसन, आच्छादन व खान पान का प्रबन्ध कर दिया है। हे इन्द्र, इस लिये (यातवः) हिंसा का आश्रय लेने वाले शत्रु (ना नजूजुवुः) हमें किसी प्रकार की हानि न पहुँचावें। (यातवः) हमारे देश में यात्री रूप से आने वाले दूसरे धर्मों के उपदेशक या गुप्तचर हमारी संस्कृति पर कोई बुरा प्रभाव न डालने पावें। साथ ही (यातु) समय हमारी हिंसा न कर सके, क्योंकि हम समय के साथ प्रगति करने वाले हैं। समयानुकूल परिवर्तन के लिये सदा तत्पर हैं।

(शविष्ठ) हे बलवन् इन्द्र (वन्दनाः) खुशामदी लोग तथा कुमारी युवतियां अपनी स्तुतियों द्वारा अथवा विषयों के प्रलोभनों द्वारा हमारी हिंसा न करने पावें, क्योंकि बुराई की अपेक्षा प्रशंसा और सैनिक की अपेक्षा युवती मनुष्य को अन्धा करने में अधिक समर्थ है।

जो मनुष्य (अर्य) अपने सारे काम नियम से करता है, वही व्यक्ति (विषुणस्य जन्तोः) अनाचारी कर्मचारियों का मुकाबला कर सकता है। और वही शासक अनाचारी प्रजाजनों के प्रलोभनों का प्रतीकार करने में (शर्धत्) उत्साहित होता है।

इस के विपरीत (शिश्न देवाः) अनाचारी या अब्रह्मचारी अर्थात् रिश्वत लेने वाले अफसर और काला बाजार करने वाले व्यापारी लोग (नः ऋतं) हमारे समाज के नियमों व सत्य व्यवहारों पर (न अपिगुः) न तो परदा डाल सकें और न ही उल्लंघन कर सकें।

जो समाज या व्यक्ति इस प्रकार का आचरण करता है, (त्रिष्टुप्) उस की प्रशंसा होती है, उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता, मूर्ख नहीं बना सकता।

देवता—वसिष्ठ, अर्य, इन्द्र, शविष्ठ।

राक्षस—यातु, वन्दना, विषुण, शिश्नदेव।

अर्थः—यातुः-यात्री, समय, राक्षस। वन्दना-प्रशंसक-विवाह योग्य युवतिः। विषुण-अनाचारी, मायावी। वेद्य-ज्ञातव्य=विषय। शिश्नदेव—अब्रह्मचारी, अनाचारी। जन्तुः-मनुष्यमात्र। अर्यः-मान्य, उत्तम, सत्यान्वेषी, प्रिय, दयालु। त्रिष्टुप् = त्रि-स्तुभ्-प्रशंसा करना, नष्ट करना, मूर्ख बनाना।

—श्री मनोहर विद्यालङ्कार।



पर बडिशन की कला प्रचलित की हो। मोर के पर की प्रकार का वह बेड़ा जो कि 'टामस डिटेक्टिव बेड़े' के नाम से प्रसिद्ध है, 'मत्स्य-विनोद' में वर्णित है। वह कोई १६ वीं ही शताब्दी की नवीनता नहीं है

[श्री होरा से यह लेख अंग्रेजी में प्राप्त हुआ था। हिन्दी रूपान्तर के लिये श्री चम्पत स्वरूप गुप्त एम० एस० सी० के सम्पादक आभारी हैं। अंग्रेजी भाषा में यह लेख 'नेचर' के १२ मई १६५१ के अङ्क में छपा है।]



धर्मनिरपेक्ष राज्य

श्री सत्यव्रत

आज जब कि सारे देश के समझदार लोग धर्म को राजनीति में घसीटने से होने वाले दुष्परिणामों से सचेत हो कर धर्म-निरपेक्ष राज्य की मांग कर रहे हैं तब कुछ प्रतिक्रियावादी लोग नारा लगा रहे हैं कि देश की राजनीति को धर्म से अनुप्राणित होना चाहिये तभी रामराज्य स्थापित हो सकता है। वे स्वार्थी लोग इस बात को खूब अच्छी तरह समझते हैं कि आज सारा देश राष्ट्रपिता बापू के रामराज्य को पाने के लिए इतना उतावला हो रहा है कि रामराज्य का लालच दे कर उस से कोई भी बात मनवाई जा सकती है, जैसे कि मिश्री का लालच दिखा कर बच्चे को कुनीन पिलाई जाती है। लेकिन याद रखिये धर्म से अनुप्राणित राजनीति से राम राज्य की आशा करना ठीक ऐसा ही है जैसा कि पौधे को खौलते हुए पानी से सींच कर हरा-भरा करने की आशा करना या यहां से दिल्ली जाने वाली मोटर पर बैठ कर मंसूरी पहुँचने की आशा करना।

रामराज्य उस राज्य का नाम है जहां समाज शोषक और शोषित नाम के दो विरोधी वर्गों में बंटा हुआ नहीं है जहां सब अपने गाढ़े पसीने की कमाई का निर्बाध उपभोग करते हैं, जहां सब को विश्वास, विवेक और पूजा पाठ की स्वाधीनता है, जहां शिक्षा का प्रचार है और विचार की स्वतन्त्रता है और जहां मनुष्य मनुष्य का बन्धु और मित्र है। क्या ऐसे स्वर्गीय राम राज्य की स्थापना उस धर्म के द्वारा हो सकती है जो कि मुट्ठी भर धनियों को यह कह कर लाखों गरीबों का खून चूसने देता है कि इन के पूर्व जन्म के कर्म ही ऐसे थे, जो धर्म पण्डों और महन्तों से नादान श्रद्धालुओं को ठग कर पेट पालने की सनद देता है, जो धर्म दूसरे धर्म के अनुयायियों को काफिर और म्लेच्छ कह कर उन के लिये नरक में सीट रिजर्व कर देता है। और जो धर्म 'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्' कह कर समाज के बड़े अन्श को विद्या और विज्ञान के प्रकाश से वञ्चित रखता है, जो धर्म 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' कह कर विचार स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करता है और जो धर्म मनुष्य के स्वाभाविक प्रेम बन्धुत्व की भावना को जाति, उपजाति और छूतछात के बन्धनों में जकड़ कर पङ्गु बना देता है, उस धर्म से रामराज्य की स्थापना की आशा करते हैं, भले ही सुई के छेद में से ऊंट पार हो जाय और बालू को पेलने से तेल निकल आये लेकिन धर्म से राम राज्य की स्थापना नहीं हो सकती। धर्म से अनुप्राणित राजनीति से वह रामराज्य भले ही स्थापित हो जाय जिस में शम्बूक का सिर्फ इस लिए वध कर दिया गया था कि वह शूद्र होते हुए तपस्या कर रहा था, लेकिन धर्म द्वारा मानवमात्र की समता पर आश्रित उस रामराज्य की स्थापना कभी नहीं हो सकती जिस का राष्ट्रपिता बापू ने स्वप्न लिया था।

हम ने राजनीति और धर्म को मिला दिया उस का भीषण परिणाम हुआ पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के रूप में देश का विभाजन। विभाजन के बाद भी हम सावधान नहीं हुए। धर्म से अनुप्राणित राजनीति ने राष्ट्रपिता बापू के प्राणों की भेंट ली। हां, उस बापू को जिन्होंने स्वर्गीय राम राज्य का स्वप्न लिया था धर्म से अनुप्राणित राजनीति के एक अन्धे भक्त ने मार डाला। आज मेरे विद्यार्थी मित्र चाहते हैं कि हम इन भयंकर घटनाओं को सपने की तरह भुलादें।

ज़रा याद कीजिये सन् ४७ के अगस्त और सितम्बर के उन भयंकर दिनों और उन भयावनी रातों को जिन में लाखों निरीह और निरपराध व्यक्ति धर्म के नाम पर बलि चढ़ा दिये गये, हज़ारों कुल ललनाओं का सतीत्व लूट लिया गया, लाखों मासूम बच्चों को मौत के घाट उतार दिया, मानव अपनी युग युग से सञ्चित संस्कृति और सभ्यता को तिलाञ्जलि दे कर पशु बन गया, नही नहीं पशु नहीं। उसे पशु कहना पशुओं का अपमान करना है। मानव पिशाच बन गया था। पञ्जाब की भूमि नर-मुण्डों से पाट दी गई और बगाल के बरसाती नालों का पानी मानव-शोणित से लाल हो गया। यह था मुस्लिम लीग और हिन्दूमहासभा की धर्म से अनुप्राणित राजनीति का शुभ परिणाम। आज फिर भारत की राजनीति को धर्म से अनुप्राणित करने का मतलब है, पञ्जाब, बंगाल और बिहार की इन सब घटनाओं का पुनरावर्तन। अर्थात् लाखों ललनाओं का सुहाग पुंछ जाना, हज़ारों अबोध बच्चों का अनाथ हो जाना, अशक्त और बूढ़ों का दाने दाने का मुहताज हो जाना, धन और जन का अपरिमित नाश, बबरता का नगा नाच और भारत के राष्ट्रिय गौरव का ह्रास।

पञ्जाब और बंगाल के नरमेधों और महामानव की नृशंस हत्या के बाद भी अगर हम धर्म को राजनीति से अलग नहीं कर सकते तो इसका एक यही अर्थ होगा कि हम में राजनीतिक चेतना का एक दम अभाव है। और हम अपनी राजनीति का सञ्चालन करने के सवथा अयोग्य हैं।

इन आक्षेपों से अपना रक्षा करने के लिए मेरे चतुर प्रतिपक्षी धर्म की निराली व्याख्याएं कर रहे हैं, हजारों वर्ष पुराना उन किताबों में से प्रमाण दे रहे हैं, जिन के पन्ने भुरभुरा गये हैं और जिन पर दो-दो इञ्च धूल चढ़ी हुई है, लेकिन यह सब वाक छल है, अगर यहां धर्म शब्द से सत्य, अहिंसा और न्याय प्रियता आदि ऊंचे दैवीय गुणों से मतलब है तब तो हमें कोई आपत्ति नहीं, लेकिन इन के लिए आज नैतिकता शब्द प्रयोग में आता है उस का प्रयोग क्यो नहीं करते, धर्म शब्द के लिए इतना आग्रह क्यों ? इस अनेकार्थक धर्म शब्द का जानबूझ कर प्रयोग करना ही सिद्ध करता है कि इस में कुछ छल है, महाभारत में अश्वत्थामा नाम के हाथी को मार कर 'अश्वत्थामा मारा गया' यह कह कर द्रोणाचार्य को धोखा दिया गया था। इस लिए आप भी धर्म शब्द के प्रयोग से लोगों में भ्रम पैदा करना चाहते हैं।

धर्म से अनुप्राणित राजनीति का मतलब है अल्प संख्यकों के अधिकारों का कुचला जाना अथवा देश का अनेक स्थानों में बढ़ कर छिन्न-भिन्न हो जाना। जब हम यह मान लेते हैं कि देश कि राजनीति धर्म से अनुप्राणित होनी चाहिये तब सवाल उठता है कि किस धर्म से अनुप्राणित होनी चाहिये, क्या हिन्दू, सिक्ख, पारसी, ईसाई, मुसलमान सभी अपने अपने धर्म से राजनीति को अनुप्राणित करने के लिए लड़ें और देश की एकता और आपस की बन्धुता का नाश करें। आप कहेंगे कि नहीं यह तो प्रजातन्त्र का युग है इस लिए बहुसंख्यकों के धर्म का ही बोलबाला होना चाहिये। इस का मतलब होगा भारत के मुसलमान, सिक्ख, ईसाई

मानवता के प्रतीक : बापू

श्री निर्मला माथुर

भारतवर्ष से ही सर्वप्रथम सभ्यता जन्मी और भारत ने विश्व को जितने सांस्कृतिक पुरुष उत्पन्न कर के दिये, कोई अन्य प्रदेश 'मानव-वाद' के समर्थक उतने पुरुष न जन्मा सका। वैदिक-युग पुण्य-श्लोक विभूतियों के, भगवान् राम और कृष्ण के, महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी के, श्री रामकृष्ण परमहंस विवेकानन्द जी व दयानन्द सरस्वती के कार्य तो मानव-वाद के इतिहास के विगत परिच्छेदों का रूप धारण कर चुके हैं; पर हमारे युग की परम उज्ज्वल आत्माओं—स्व० कवीन्द्र रवीन्द्र, राष्ट्रपिता गांधी और महर्षि रमण व योगिराज श्री अरविन्द के मानववादी प्रयोगों और महत्तम-कार्यों के रंग भी कभी फीके नहीं पड़ेंगे।

गांधी जी; यानी बापू ने अपनी ज्ञान-ज्योति का प्रदीप ऐसे तिमिराच्छन्न समय में आलोकित किया; जब कि संसार अपनी सुन्दर मानवता से विरक्त हो कर अपना जीवन बर्बर-युग के रूप

और पारसी नागरिकों के अधिकारों का अपहरण। अगर यह सिद्धान्त ठीक है कि देश की राजनीति को बहुसंख्यकों के धर्म से अनुप्राणित होना चाहिए तो यह समझ में नहीं आता कि हिन्दू सभा के नेता सिक्खिस्तान की मांग का विरोध क्यों करते हैं। सिक्खों को भी एक राज्य मिलना चाहिये जहां वे सिक्ख धर्म से अनुप्राणित राजनीति चला सकें।

धर्म से अनुप्राणित राजनीति का मतलब है मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा की राजनीति, मास्टर तारासिंह और करपात्री जी महाराज की राजनीति, जिस का मूल मन्त्र ही है कि जिस से अपने मज़हब का स्वार्थ सिद्ध हो वह सब जायज़ है, उचित है।

धर्म से अनुप्राणित राजनीति का जीता जागता उदाहरण पाकिस्तान है। पाकिस्तानी इस्लामी राज्य है। वहां हिन्दुओं को आराम से जीवन व्यतीत करने का अधिकार नहीं है, क्योंकि वे काफ़िर हैं। हमारे देश में भी अगर धर्म से अनुप्राणित राजनीति क़ायम हो गई तो यहां हिन्दू राज्य क़ायम हो जायेगा, जिस में मुसलमान, सिक्ख, ईसाई और पारसियों को जीने और नागरिकता का उपभोग करने का अधिकार न रहेगा क्योंकि वे म्लेच्छ हैं।

राम राज्य का स्थापन धर्म से अनुप्राणित राजनीति से नहीं अपितु धर्म निरपेक्ष राजनीति से होगा। हमारे माननीय नेताओं ने देश में न्याय, वैयक्तिक स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता की प्रतिष्ठा करने के लिए एक संविधान बनाया है, आइये हम भारत में राम राज्य की स्थापना के लिए इस संविधान पर अमल करें, देश के नैतिक मापदण्ड को ऊंचा करें और देश में धर्म निरपेक्ष लौकिक राजनीति की नींव डालें।

[आर्य कुमार सभा देहरादून के वार्षिकोत्सव पर आयोजित वाद-विवाद-प्रतियोगिता में गुरुकुल के १२ वीं श्रेणी के छात्र श्री सत्यव्रत को इस भाषण पर द्वितीय पुरस्कार मिला था।

—सम्पादक]



में ढाल रहा था। मानवीय तन-मन स्वार्थमय-लिप्सा में अपनी जीवन-शक्ति को व्यर्थ विनाश का राह पर कई पग आगे बढ़ा चुका था। विश्व का वातावरण विक्षुब्ध और रक्तिम था; तब बापू ने बहिनों-भाइयों को संबोधित किया:—'पराया कोई नहीं है। हम सभी उस एक महान्-शक्ति की नाचीज़ कृतियां हैं—फिर, परस्पर में विरोध और वैर-भाव कैसा ?

बापू ने संसार से एकता की बात कही। निश्चय ही उन के आन्तरिक और बाह्य—जीवन में एक ही सी धड़कन होती थी। अपनी सतत-सत्य जिज्ञासा की अनुभूति की चरम-सीमा पर पहुँच कर, उन्होंने विभिन्न आचार-सम्प्रदाय की ऋजु-धर्म-धारा के बहाव से—'अथातो ब्रह्म [सत्य] जिज्ञासा' के सहारे, अपनी और स्वदेश की मानवता को ऊंचा उठाया।

मानव-धर्म की विशुद्ध धारणा को अपने आंतरिक और बाह्य जीवन में अपना कर उन्होंने मानवता को सार्वजनिक रूप प्रदान किया। यही मानव-धर्म वा एकता का आधार-भूत-तथ्य, बापू के भौतिक-जीवन की सार्वजनिक क्रिया-प्रक्रियाओं में, योजना-प्रतियोजनाओं में, लोक-संग्रह और राजनीति वा धर्म-पालन स्वरूप में प्रतिफलित होता रहा।

उन के सम्मुख जब भी देश की स्थूल समस्याओं ने विकट रूप धारण किया, तब-तब बापू ने प्रदेशों के विभिन्न भू-भागों, विपरीत सम्प्रदायों, विभिन्न रुचियों और प्रकृति की क्रियाओं से उपजी समस्याओं में दुर्धर्ष प्राणी के जीवन को अपनी आध्यात्मिक प्रकृति (एकता) के आधारभूत तत्त्व की दृष्टि से नापा।

१५ अगस्त से पूर्व सम्पन्न हुई 'एशियन-कानफ्रेंस' में विश्व के नाम बापू के सन्देश से स्पष्ट है कि—'संघे शक्तिः कलौ-युगे' सूत्र का दर्शन उन्होंने किया था। बापू की संघ कल्पना संकीर्ण नहीं थी, उन की कल्पना की सीमा केवल भारतवर्ष तक ही सीमित नहीं थी; अपितु उन की मानवीय भावना ने उन के विशालतम हृदय की भावनाओं को 'विश्व संघ' के रूप में अभिव्यक्त करने को उन्हें विवश कर दिया था।

अपनी विशालतम भव्य भावनाओं के आधार पर वे केवल एक जाति के ही समर्थक थे; जिस का शीर्षक कुछ ही रखा जा सकता है और एकता के आश्रय में वे भारत में केवल एक ही जाति को स्वीकार करते थे, जिसे 'भारतीय-जाति' कह सकते हैं। भारत की जाति-भेद समस्या, विश्व-इतिहास में अपना एक अनोखा स्थान रखती है और जिस का नवीनतम अध्याय बापू द्वारा सम्पादित माना जा सकता है।

भारत को बापू ने एक भारतीय-जाति की कल्पना दी और जिस की विशेषतायें वा गुण—उन्होंने स्वयं अपने उत्तराधिकार पत्र, यानी वसीयतनामा [कांग्रेस के नव-विधान की रूप-रेखा] में अत्यन्त सावधानी से अंकित किये हैं। जिसमें न तो सम्प्रदाय की संकुचित भावना है और न किसी प्राणी के प्रति घृणा की रत्ती-मात्र कोई झलक। बापू की जाति-विषयक कल्पना में भी मानववाद सन्निहित है।

वे एकान्त आध्यात्मिक सत्य को प्राप्त कर चुके थे, जहां द्वेष और अशान्ति के लिए कतई कोई स्थान है ही नहीं।



कलागुरु श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की पुण्य स्मृति में—

श्री शंकरदेव विद्यालङ्कार

उन्होंने देश को आत्मदैन्य के पाप से बचाया है। उन्होंने भारत को अपमान के गर्त से उठा कर उस का पुनः उस स्थान पर प्रतिष्ठित किया है, जिस का वह अधिकारी था। मानव-जाति की समस्त उपलब्धि में भारतवर्ष ने अपनी देन का जो हिस्सा अदा किया है, उस भाग को अवनीन्द्रनाथ ने स्वीकृत कराया है, मान्यता दिलाई है। भारत की कला-चेतना के प्रबोधन से देश में नवीन युग का अरुणोदय हुआ है और अवनीन्द्रनाथ के द्वारा ही समस्त भारत ने नए सिरे से अपने पाठ पढ़े हैं। अवनीन्द्रनाथ की उपलब्धियों द्वारा बंगाल को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

❀ ❀ *

वह तूलिका और वे रंगप्यालियाँ, जिन हाथों के जादू भरे स्पर्श से जाग उठती थी, नाच उठती थी, वे आज अपने स्वामी के शून्य कुटीर में मौन पड़ी हैं। भारत की कला-लक्ष्मी के मन्दिर का वह सिद्ध पुजारी जो अपनी बारह वर्ष की उगती तरुणाई के दिनों से ले कर ८१ वर्ष की परिपक्व उमर तक, अपनी अपूर्व प्रतिभा द्वारा गुँथे हुए सौन्दर्य के पूजा प्रसून कलादेवी के चरणों में चढ़ाता रहा, पिछले दिनों (५ दिसम्बर १९५१) चिरनिद्रा की गोद में सदा को सो गया।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ जी के पश्चात् विश्व-भारती (शान्ति-निकेतन) के मन और प्राण तथा स्वदेशी, स्वभाषा, स्वभूषा और भारतीय कला-शिल्प के सब से बड़े उन्नायक शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर अब हमारे बीच में नहीं रहे। भारत के सांस्कृतिक नव जागरण के कलाक्षेत्र में उन के अनवरत तप और कर्तृत्व का गुण-कीर्तन उन के कवि-काका (रवीन्द्रनाथ जी) ने इस प्रकार किया है—'जब मैं सोचता हूँ कि बंगाल में सम्मान का सब से बड़ा अधिकारी कौन है, तो सब से पहले मेरे मन में अवनीन्द्रनाथ का नाम आता है।'

प्रारम्भिक जीवन

ठाकुर-परिवार सारे बंगाल में अपने आभिजात्य, शील और शुभ संस्कारों के लिए प्रख्यात है। श्री और सरस्वती की भी इस कुटुम्ब पर बड़ी कृपा रही है। इसी ठाकुर कुटुम्ब में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पौत्र के रूप में ७ अगस्त सन् १८७१ को, जन्माष्टमी के दिवस, अवनी बाबू का जन्म हुआ। इन के पितृदेव श्री गुणेन्द्रनाथ ठाकुर भी बड़े रसदर्शी और गुणज्ञ महानुभाव थे। कवीन्द्र रवीन्द्र अपनी जीवन-स्मृति में उन का शब्दचित्र उठाते हुए लिखते हैं—'सौन्दर्यबोध और गुण-ग्राहिता से उन का भरा हुआ सुन्दर शरीर और मन मानो छलकता रहता था! नाट्य-कौतुक और आमोद-उत्सव के नाना संकल्प उन में पनप कर नये-नये-विकास पाने की चेष्टा किया करते थे।' इन के दादा गिरीन्द्रनाथ जी अच्छे चित्रकार थे और यूरोपीय शैली में निसर्ग-चित्र (लैण्डस्केप) बनाने में उन की विशेष ख्याति थी। साथ ही वे प्रवीण संगीतज्ञ और नाट्यकार थे। ऐसे कला और साहित्यश्री से भरे हुए वातावरण में अवनीन्द्रनाथ की शिक्षा प्रारम्भ हुई। छः वर्ष की नन्ही उमर में ही इन को नार्मल स्कूल में भेजा गया। वहाँ पर अध्यापक महाशय एक अंग्रेजी शब्द का अशुद्ध

उच्चारण करते थे। उसे आग्रह पूर्वक सुधारने का प्रयत्न करने पर आप को चपेट खाना पड़ा। लिहाजा आपने स्कूल छोड़ दिया और घर पर ही शिक्षण प्राप्त करना प्रारम्भ किया।

नव वर्ष की उमर में इन के अभिभावक चन्द्र-नगर के रमणीय स्थान पर, गंगा तीर पर रहने गए। ये सुन्दर फूलों और गलीचों से सुसज्जित हवेली में रहते थे और उस के सामने ही मोर, बतख, बगुले आदि रम्य पखियों से भरा हुआ नदी तीर निहारा करते थे। एक ओर बगीचे की शोभा लहराया करती थी। वहीं पर ये महाशय, पिताजी की पेन्सिलें और कूचियाँ (ब्रश) उठा कर चित्र बनाने लगे। इतने में अपार हित रखने वाले इन के पितृदेव का एकाएक अवसान हो गया और सारे परिवार को पुनः कलकत्ता आ जाना पड़ा।

कलकत्ता आते ही संस्कृत विद्यालय में जा कर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। छुटपन से ही संस्कृत के प्रति अच्छा झुकाव और प्रेम होने से, उस में ये अच्छी प्रगति पाने लगे। एक बार सरस्वती-स्तवन पर लिखी हुई संस्कृत कविता पर पारितोषक भी प्राप्त किया। अंग्रेजी का ज्ञान अभी कच्चा था, उसे आगे जा कर सेन्ट झेवियर कालेज में जा कर पक्का कर लिया। इसी अरसे में बीस वर्ष की उमर में श्री भुजंगभूषण चटर्जी की सुपुत्री सुहागिनी देवी से आप का विवाह हो गया। इन दिनों की इन की प्रारम्भिक चित्रण की चाजें 'साधना' पत्रिका में प्रकाशित हुई। रविबाबू की 'चित्रांगदा' अपनी 'शकुन्तला' तथा 'खीरेर पुतुल' (पनीर की गुडिया) की सजावट के लिए भी कुछ चित्र बनाए।

विदेशी चित्र-शिक्षकों के सम्पर्क में

यह था वह समय जब भारत में आंग्ल-शासन पूरी तरह स्थापित हो चुका था। राजनीतिक दृष्टि से पराजित भारतीय बड़ी आत्मग्लानि और आत्मावसाद अनुभव कर रहे थे। यूरोपियन रीतिनीति, रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा और साजसज्जा को नए पढ़े लिखे लोग बुरी तरह अपना रहे थे। अनुकरण का बोल-बाला था। कलकत्ते में अमीर-उमरा, ज़मीदार, धनी-मानी पुरुषों की हवेलियाँ और कोठियां विदेशी ढंग के उपस्कर (फर्निचर) और साज-सामान से भरी जा रही थी। तथा-कथित सम्भ्रांत-जन बिना समझे बूझे ही अपने प्रासादों और उपवन प्रांगणों में ग्रीक और रोमन शिल्प-कृतियों का ठठ्ठ जमा कर रहे थे।

इस समय तरुण अवनीन्द्रनाथ सिन्योर गिलहार्डी नामक एक इटालियन चित्रकार से यूरोपीय शैली के तैलरंगी चित्रों की तालीम प्राप्त कर रहे थे। ये महाशय इन दिनों कलकत्ते की सरकारी कलाशाला के उपाध्यक्ष थे। अवनीबाबू ने पूरी मेहनत के साथ तैलरंगी चित्रों का विधान सीख लिया। कलकत्ते के बाहर जा कर इस शैली के बहुत से चित्र उन दिनों अवनीबाबू ने तैयार किए थे। कोई दो वर्ष बाद चार्ल्स पामर नामक एक अच्छे अंगरेज चित्रकार ने कलकत्ते में आ कर इन के मकान के समीप ही अपना चित्रालय (स्टुडियो) खोला। अवनीबाबू पामर से भी चित्र शिक्षा पाने लगे। इस प्रकार के निजू शिक्षण के लिए इन कलाकारों को खासी अच्छी दक्षिणा देनी पड़ती थी। यूरोपियन शैली का चित्र-विधान भली प्रकार सीख लेने पर भी इन के मन को परितोष और समाधान नहीं प्राप्त होता था। वे स्वयं लिखते हैं—'मैं अशान्त हो उठता था। मेरे हृदय में उमंग उठती थी। मैं उसे अनुभव करता था, पर उस को प्रकट नहीं कर पाता था। आगे क्या हो? मैं प्रायः आश्चर्य में डूब जाता था।'

दृष्टि में परिवर्तन

सन् १९०० की बात है अवनीबाबू मुंगेर में गए। वहां जा कर एकाएक उन के मानस में एकदम परिवर्तन आ गया। उन्होंने तैलरंगी शैली से चित्र बनाना छोड़ दिया। उन की दृष्टि में एक मौलिक परिवर्तन आ गया। उन्होंने जलीय रंगों से चित्र बनाना प्रारम्भ किया। चित्रों के विषय भी बदल गए। जीवित पदार्थों तथा निसर्ग की वस्तुओं को उन्होंने अपना विषय बनाया। तथापि कलाकार के रूप में उन की दृष्टि में एक आमूल-चूल परिवर्तन और परिपूर्ण चेतना का जागरण तो अभी आने वाला था। यह परिवर्तन एक आकस्मिक घटना से हुआ। एक दिन जोडासांको में अपने पैत्रिक घर की पुस्तकशाला में उन को एक छोटी सी हस्तलिखित पुस्तक मिली। जो इण्डो-परशियन शैली के चित्रों से सज्जित थी। उस की लिखावट भी अनुपम थी। यह कलात्मक हस्तपोथी अवनीबाबू के लिए मानों दैवी प्रेरणा का स्रोत बन गई, उन के कल्पनाशील मानस के लिए सौन्दर्य के ऐसे रूप और नमूने दर्शित करने वाली सिद्ध हुई, जिन का उन्होंने कभी न भी नहीं लिया था।

बस इस के बाद अवनीन्द्र बाबू के जीवन का ध्येय भारत की परम्परागत कला-लक्ष्मी का उद्धार करना ही हो गया। उन्होंने घूम-घूम कर पुरानी कलाओं के विविध नमूने देखने प्रारम्भ किए। अजन्ता, एलोरा और राजपूतशैली के अतिरिक्त ग्राम-कुटीरों की भित्तियों पर अंकित लोक-कलाओं तथा कन्थाओं (गुदड़ियों) पर बनाए चित्रांकनों तक का इन्होंने सूक्ष्म निरीक्षण किया। स्वदेशी कला-चातुरी के प्रति अद्भुत प्रीति उपजती गई और प्राच्यपद्धति पर चित्रकर्म निर्बाध रूप से चलने लगा।

इसी समय सौभाग्य से ई० बी० हैवल महोदय से मिलन हुआ। ये आंग्ल-कलाविद् उस समय कलकत्ते की कलाशाला के आचार्य थे। यह मिलन एक धन्य क्षण था जिसने भारत के कलात्मक जागरण में नई दृष्टि और नई स्फूर्ति पैदा कर दी। हैवल महोदय ने अवनीबाबू को कलाशाला की गैलरी में स्थित राजपूत-शैली, मुगल-शैली और कांगड़ा शैली के कुछ चुने हुए चित्र दिखाये। अवनीन्द्र बाबू उन्हें देख कर उन का कला-विधान हृदयंगम कर गये और उन्हीं शैलियों पर चित्र प्रयोग करने लगे। इसी नवीन स्फूर्ति और उमंग के दिनों में अवनीबाबू ने बुद्ध-जन्म, बुद्ध और सुजाता, ताजमहल का निर्माण तथा वैताल पञ्चविंशति के कतिपय चित्र अंकित किए। उन्हें देख कर श्री हैवल को विश्वास हुआ कि यह सच्चा कलाकार है और यह देश का मार्ग दर्शन कर सकेगा।

❀ ❀ ❀

एक उत्कृष्ट चित्र का जन्म

इसी समय कलकत्ते में प्लेग फूट निकला। घर के घर साफ हो गए। अवनीन्द्रबाबू के घर में भी उस की छाया प्रविष्ट हुई। सारे परिवार की वात्सल्य-भाजन, नौ वर्ष की अवनी बाबू की लाड़ली बच्ची टप से सदा के लिए घर से विदा हो गई। अवनी बाबू स्वयं लिखते हैं—'मेरा हृदय टूट गया, किसी भी प्रकार से मन मानता ही न था। हम लोग चौरंगी की ओर नया मकान ले कर रहने लगे। एक सुग्गा मोल ले कर दिल बहलाने का प्रयत्न किया गया। उस का नाम रखा था हम ने 'चंचु'। अपनी मां की गोद तज कर हमारे यहां यह खाली गोद में आया था।'

उन्हीं दिनों एक दिन हैवल महोदय इन के चाचा श्री सत्येन्द्रनाथ ठाकुर के घर पर आए। वे

इन्हें कला-शाला का उपाचार्य बनाना चाहते थे। परन्तु अवनी बाबू का मन अभी तक बच्ची के विषाद में डूबा हुआ था। उन्होंने सब काम छोड़ रखे थे। हैवल ने उन की मनःस्थिति निहार कर कहा—'तुम अपना कार्य किए जाओ, तुम्हारा काम ही तुम्हारी एकमात्र दवाई है।'

यह कह कर वे चले गए। अवनीबाबू ने चित्र बनाना शुरू किया। उस विषण्ण मनोभावना के समय उन्होंने चित्र बनाया—'शाहजहाँ का अवसान'। चित्र क्या है, अपनी लाड़ली कन्या के लिए विलपती हुई आत्मा का सम्पूर्ण विषाद कलाकार ने इस चित्र में मानों उलीच दिया है। क्या खूबी से यह चित्र अंकित हुआ था। वृद्ध, प्रेमातुर और म्रियमाण सम्राट् के प्रति कैसी गहरी सहानुभूति उस में निहित है! जीवन के अन्तिम क्षणों में आगरे के लाल किले के झरोखे से बादशाह ताजमहल को निर्निमेष नयनों से निहार रहा है। फर्श पर उस के चरणों के समीप उस की बेटी जहांनारा बैठी है। अद्भुत वर्णयोजना और मुगल-शैली की भवननिर्माण कला की खूबी इस उत्कृष्ट कृति को परिपूर्णता प्रदान कर रही है। यह चित्र कलकत्ते की वार्षिक प्रदर्शनी में हठात् सब का चित्त अपनी ओर आकृष्ट कर रहा था। लार्ड कर्जन उस पर मुग्ध हुए जा रहे थे।

नवीन कला का अरुणोदय

इस प्रकार मानो भारतीय कला के नव-प्रबोधन का श्रीगणेश हुआ। अवनीबाबू कलाशाला के उपाचार्य पद के लिए मना लिए गए। कला-शिक्षार्थी एक के बाद एक उन के पास आने लगे। उन दिनों के उन सुशिष्यों ने आज तो भारत का नया इतिहास रच दिया है—शिल्प-संस्कृति के क्षेत्र में। और अवस्था यह है कि आज मुम्बई की कलाशाला को छोड़ कर देश की एक भी ऐसी कलाशाला नहीं है जहां के आचार्य या उपाचार्य पद पर अवनीबाबू के शिष्य या प्रशिष्य आसीन न हों। चित्रकला की क्यों रूप-विधान, गृह-शृंगार, स्थापत्य-कला, नाट्य-सज्जा, उपस्कर और वेशभूषा आदि सब ही क्षेत्रों में अवनीबाबू की स्वदेशीय कला-दृष्टि ने अपनी विजय वैजयन्ती फहरा रखी है।

प्रेरक और सहयोगी

परन्तु यह सब कुछ आसानी से नहीं हुआ। उन दिनों इस चित्र-गुरु को न जाने कितनी विरोध-बाधाएँ, उग्र समालोचनाएँ, परिहास और व्यंग सुनने पड़े थे। परदेशी शासन से उद्भूत दासत्व मनोवृत्ति से सारा देश आत्मदीनता अनुभव कर रहा था। अवनीबाबू की इस आराधना के पीछे उन के कवि-चाचा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रेरणा और प्रोत्साहन का बड़ा भारी हिस्सा है। साथ ही अवनीबाबू के अग्रज गगेन्द्रनाथ ठाकुर (जो स्वयं एक उच्चकोटि के प्रतिभाशाली चित्रकार और भारत में 'क्यूबिज्म' पद्धति के एकमात्र शिल्पी थे) ने इन की समस्त प्रवृत्तियों में बड़ा सहयोग और साहाय्य प्रदान किया था। पत्रकारप्रवर रामानन्द चट्टोपाध्याय ने भी अपने पत्रों द्वारा इस कला सम्प्रदाय की महत्ता और विशेषता सामान्य जनता को समझाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। प्राच्य-कला के विश्रुत मीमांसक डाक्टर आनन्द कुमारस्वामी, तथा भगिनी निवेदिता ने भी अवनीबाबू की कला साधना का मर्म समझाने में अभिनंदनीय पुरुषार्थ किया है।

आपके 'भारतमाता' नामक चित्र पर मुग्ध होकर भगिनी निवेदिता ने लिखा था—'नई शैली की यह प्रथम सर्वोत्तम कृति है। मैं जितनी बार इस चित्र को निहारती हूँ इस की पावनता, मृदुता और मधुरता के

प्रति मुग्ध हुई जाती हूँ। मैं चाहूँगी कि इस उदात्त चित्र को प्रतियां लाखों में छपाऊँ और इस देश में बखेर दूं।

सर्जन की उमंग भरी घड़ियाँ

उन्हीं दिनों इस शिल्प-स्वामी ने एक और बढ़िया कृति बनाई । नाम उस का कुछ ही रख लीजिए—'यात्रा का अवसान, अन्तिम यात्रा या 'ऊँट की मृत्यु !' इन पंक्तियों के लेखक ने ऊँट को मरते हुए कभी नहीं देखा। काश, सब ऊँट उसी प्रकार की श्रद्धा से मृत्यु पाएँ। इस चित्र में कारुण्य और आराम (विश्रांति) का वातावरण इस खूबी और पूर्णता के साथ अंकित किया गया है कि अनुभव होता है कि किसी का लम्बी यातनाओं से जीर्ण मित्र अन्ततो गत्वा चिरशांति के प्रदेश में पहुँच गया है। ऊँचा कलास्वामी ही एक मूक प्राणी के भावों को ऐसी मानवोचित रीति से अभिव्यक्त कर सकता है। चित्र निहारते ही हृदय में कारुण्य का सञ्चार होने लगता है।

यह था हमारे कलास्वामी के जीवन में सब से अधिक उपलब्धि का समय। वे स्वयं लिखते हैं—'मैं कैसे बताऊँ कि उस सारे समय में मैं क्या अनुभव करता था। मैं चित्रों से भरपूर रहता था, ऐसा ही कुछ कह सकता हूँ। चित्रों ने मेरी सम्पूर्ण सत्ता को अधिकृत कर लिया था। मैं केवल अपनी आंखें बन्द कर लेता था और चित्र मेरे मन के सामने उतराने लगते—आकृति, रेखा, रंग, छाया आदि द्वारा मंडित, सम्पूर्ण रूप में। मैं कूँची हाथ में उठाता था और चित्र जैसे स्वयं उठते चलते थे। उत्कट सृजन-सामर्थ्य के उन दिनों में भी छिद्रान्वेषी समालोचकों की कमी नहीं थी। एक प्रसिद्ध वैष्णव प्रकाशक मेरी बनाई राधा-कृष्ण चित्रावली देखने आए। चित्रों को देख कर उन्होंने स्पष्ट रूप में निराशा प्रकट की। कहने लगे—'क्या यह राधा है? क्या शिल्पी इसे जरा अधिक मांसल और कोमल नहीं बना सकता था।' यह सुन कर मैं आश्चर्य कम्पित रह गया, पर क्षण-भर के लिए! वे वचन मुझ पर कुछ प्रभाव नहीं छोड़ गए। मैं कुछ समय बाद समस्त यूरोपीय प्रभावों से मुक्त हो कर सावधानी के साथ अपने ढंग से चित्र बनाने लगा। आह, वे भी दिन थे !!'

हैवल महोदय अवनीबाबू की रचना चातुरी के लिए कहा करते थे—'स्वभावतः संस्कृत और फारसी साहित्य में प्रबुद्ध होने के कारण वह रामायण, महाभारत कालिदास और उमर खैयाम से अपनी प्रेरणा प्राप्त करता है, और मनोरम कल्पना-शक्ति से अन्वित होने के कारण वह भारतीय आध्यात्मिक भावों को पूरी सत्य-हृदयता से अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार वह उस उन्नत भावप्रदेश को (प्राच्य कविता और रोमान्स उस ऊर्ध्वलोक को, जिसे प्राच्य विचारों ने सृजा है) निहारने की अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है।'

कोई सन् १९०१ या १९०२ की बात होगी जब अवनीबाबू प्रथमवार योकाहाया तैकवान और हिशीदा नाम के दो जापानी चित्र-शिल्पियों से मिले। इन दो कलावन्तों का अवनीबाबू की शैली पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इस काल में बनाए गए सन्ध्या दीप, भारतमाता, यक्षगण आदि आप के कई चित्रों पर पर्याप्त जापानी-शैली का प्रभाव विद्यमान है।

(अपूर्ण)



युरोपियन प्रकार की शाक-सब्ज़ियों के बीजों की उपज

श्री एस० आर० वर्मा[1] एम० एस-सी० (औरेगन, अमेरिका)।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् बन्दगोभी, लेढफूल-गोभी, गांठगोभी, सैलरी, चुकन्दर, युरोपियन गाजर, युरोपियन शलजम और युरोपियन मूली आदि के बीज जो हमेशा अधिकांश में यूरोप, बिलोचिस्तान तथा काश्मीर से आया करते थे, बिल्कुल आने बन्द हो गये। यदि काश्मीर और बिलोचिस्तान तथा से कुछ आते भी थे तो उन की उपादेयता युरोपियन बीजों से बहुत घटिया थी। मार्च २२–२३–१९४८ को दिल्ली में एक बीज-उत्पत्ति कान्फ्रेंस हुई थी और जिस में भारत के सब प्रांतीय तथा केन्द्रिय वनस्पति विशेषज्ञ तथा उच्चकोटि के बीज उत्पादक (seedsman) बुलाये गये थे। श्री एम० एस० रन्धावा (जो कि तात्कालिक इम्पीरियल कौन्सिल औफ एग्रीकल्चर रिसर्च इन्स्टीट्यूट के मन्त्री पद पर थे) ने रिपोर्ट पढ़ कर सुनाई जिस में सब प्रांतों ने उपरोक्त बीज पैदा करने में असमर्थता दिखाई, परन्तु केवल पैप्सू की सरकार आशावादी रही।

पैप्सू के हौर्टिकल्चर विभाग ने निम्न सब्जियाँ जब कि वे पूर्णतया परिपक्व हो गईं, ट्रकों में भर कर एप्रिल १९४८ में पहाड़ों में ४ हजार फीट से ले कर ९ हजार फीट तक की विभिन्न उँचाइयों पर लगा कर परीक्षण प्रारम्भ किया।

कोल क्रौप — जातियाँ

पत्ता गोभी—आलसीजन्स तथा फ्लैट डच।

फूल गोभी—पटना लेट।

गाँठ गोभी—व्हाइट विएना तथा परपल लेट विन्टर।

जड़ वाली फ़सलें

चुकन्दर—रेड बौल, फ्लैट डच, तथा अर्ली विन्टर।

गाजर—नान्टेर, स्कारलेट और टेन्डर स्वीट।

शलजम—स्नो बौल, इंगलिश परपल टौप।

मूली—कन्ट्री लार्ज, श्वेत और क्रिमजन गोल्डन।

परीक्षणों से सिद्ध हुआ कि ५ हजार फीट की ऊंचाई तक इन सब्जियों को बीज के लिए पैदा करना व्यर्थ है क्योंकि इतनी ऊंचाई पर एक तो कीड़े आदि इतने अधिक थे कि उन का रोकना प्रकृति विरुद्ध था, दूसरे उन में बीज-डण्ठल गर्मी के कारण सूख गये थे, लेकिन ५५ सौ से ९ हजार फीट की ऊंचाई तक बीज का उत्पादन सफल प्रतीत होता देखा गया। क्योंकि ये सब्जियां एप्रिल के महीने में पहाड़ों पर ले जाई गई थीं इस कारण से इन को न तो उतनी सर्दी और नाहीं उतना विश्राम (जैसा कि युरोपियन जलवायु में मिलता है) मिल सका। फलतः वर्षाकाल में फलियों के तैयार होने के कारण पक न सकीं। इस लिये १९४९ में उपरोक्त सब्जियां पुनः उपरोक्त ढंग से केवल ५५ सौ फ़ीट से अधिक ऊंचाई पर मार्च के प्रथम सप्ताह में लगाई गईं, जिन में से फूल गोभी के सिवाय सब में बीज अत्युत्तम मिला, एक बात जो देखने में आई वह यह थी कि बीज का गुण ऊंचाई के अनुसार बढ़ता गया। यहां पर एक बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि हम ने उपरोक्त प्रथम चार सब्जियों को पिंडी समेत लगाया था और दूसरी चार सब्जियों के मूलों को एक चौथाई नीचे से तथा ऊपर की पत्तियों को केवल एक इञ्च रोपा था। ये सब सब्जियां भलीभांति अपना फल दे गईं, जिस से हमें प्रतीत हुआ कि युरोपियन ढंग की सब्जियों के बीज हिमालय पर्वत की श्रेणियों में जहां कि उन को यूरोप जैसी जलवायु मिल सकती है, पैदा हो सकती हैं।

---

१ रिटायर्ड, डायरेक्टर आॅफ़ हॉर्टिकल्चर, पेप्सू, पटियाला। भूतपूर्व प्रोफेसर गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी।

इस उपरोक्त ढंग में यह त्रुटि है कि सब्जियां तो मैदान में पैदा हुई थीं लेकिन उन के बीज पहाड़ पैदा किये गये, जिस से कि ट्रक में इतनी दूर ले जाने के कारण हमारा खर्च बढ़ गया, तब से हम ने इन सब्जियों का बीज से पैदा करने का यत्न केवल पहाड़ों में ही सीमित कर दिया।

आवश्यक निर्देश

इन सब्जियों के बीज मैदान में इस लिए नहीं हो सकते क्योंकि इन के बीज-डण्ठल मैदान की गर्मी में सूख जाते हैं। जब ये सब्जियां पक जाती हैं तो इन को ठण्डक और आराम कई साप्ताह तक देना आवश्यक है यदि ऐसा न किया जाय तो जो बीज हम पैदा करेंगे उन के पेड़ सरसों की तरह फूल जावेंगे। और उन की सब्जियां खाने लायक नहीं बनेगी।

इन बीजों का पैदा करना भारतवासियों के लिए एक महत्वपूर्ण सफलता है क्योंकि ये बीज हम सर्वदा यूरोप से ही मँगाते चले आये हैं, इस से भारतवर्ष को लाखों रुपये की प्रतिवर्ष हानि होती है। ये बीज कुछ मात्रा में काश्मीर में बनता है परन्तु वह युरोपियन बीजों की तुलना नहीं कर सकता। हमारा बीज यद्यपि अभी तक अच्छा है परन्तु कुछ समय के बाद इस के बिगड़ जाने की सम्भावना है, इसीलिए यह आवश्यक है कि हम इन बीजों की छान-बीन वैज्ञानिक ढंग से प्रतिवर्ष करते जावें और जो भी अशुद्ध सेचन होने की सम्भावना हो उस को रोकते जावें। क्योंकि हमारा बीज दो या दो से अधिक रक्तों का सम्मिश्रण है, इसीलिये प्रतिवर्ष जो पौधे पैदा होंगे वे उन में से कई एक अपनी जाति विरुद्ध लक्षण दिखायेंगे उन सब का भावी बीज की सन्तति को शुद्ध रखने के लिए निकाल कर फेंकना आवश्यक होगा।

पूर्व कही गई कान्फ्रेंस में कई प्रस्ताव पास किये गये थे उन पर भारत सरकार पूर्ण ध्यान नहीं गया। एक प्रस्ताव में सब्जियों के बीज पैदा करने की भारतवर्ष में संगठन की आवश्यकता दिखाई है। एक में हिमालय पर्वत की भिन्न २ श्रेणियों में इन सब्जियों पर निरीक्षण करना कहा गया है और अन्त में सब तरह के बीजों की जांच भिन्न २ पर्वत के स्टेशनों पर योग्य वैज्ञानिकों के आधीन रखी गई है। परन्तु जब हम युरोपियन देशों की ओर देखते हैं तो यह साफ सिद्ध होता है कि संसार के हर एक प्रान्त में किसी विशेष तरह की सब्जी पैदा करने की शक्ति है। उदाहरणार्थ—यूरोप में नैदरलैंड अपने बीज के कन्द के लिये प्रसिद्ध है, डैन्मार्क अपने कोल—बीज के लिये, हालैण्ड पालक और बन्दगोभी के लिये, कैलिफोर्निया लटस और सैलरी बीज के लिये, फ्रान्स और जर्मनी गांठ गोभी के लिये। इस प्रकार आप संसार के प्रत्येक कोने में किसी न किसी विशेष बीज के पैदा करने की अद्भुत शक्ति देखेंगे परन्तु भारतवर्ष में अब तक केवल दो ही ऐसे स्टेशन हैं जहां कि उपरोक्त बीजों पर वैज्ञानिक ढंग से परीक्षण होने लगा है। एक तो नगर कुल्लू की घाटी में केन्द्रीय सरकार के आधीन और दूसरे महोग गाडन (चायल घाटी में) पैप्सू सरकार के तत्त्वावधान में। अभी १८ ऐसे और सब्जी के बीज पैदा करने के केन्द्रों की आवश्यकता है जिस से हम यह कह सकें कि कुल्लू घाटी अमुक बीज के लिये, काश्मीर दूसरी तरह के बीजों के लिये, शिमला तीसरी तरह के बीज के लिये। इसी प्रकार १५ स्थान और चुनने पड़ेंगे, जिस से हमारे बीज भी भविष्य काल में यूरोपीयन बीजों की तुलना कर सकें।



साहित्य-परिचय

[समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आना आवश्यक है। —सम्पादक]

रसामृतम्—लेखक वैद्य यादव जी त्रीकम जी आचार्य। प्रकाशक, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस। आकार १८×२०/८, पृष्ठ संख्या १६०, सम्वत् २००८ वि०, सजिल्द, मूल्य ५)।

आयुर्वेद के विद्यार्थियों को रस-तन्त्र के पाठ्य-ग्रन्थ के रूप में तथा चिकित्सकों को रस योगों आदि के निर्माण में सहायता देने के उद्देश्य से श्री आचार्य जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। चरक, सुश्रुत के समय यद्यपि खनिज पदार्थों का प्रयोग प्रारम्भ ही हुआ था परन्तु धीरे-धीरे विकसित होते हुए इन का ज्ञान बहुत ऊंची श्रेणी तक पहुँच गया था। आयुर्वेदिक पद्धति से चिकित्सा करने वाले वैद्य लोग आज मुख्यतया रस तन्त्र पर निर्भर रहने लगे हैं। इस शास्त्र की ओषधियों का निर्माण जटिल है और इस में बहुत अधिक सावधानी रखने की आवश्यकता होती है। इस शास्त्र की औषध ठीक तरह न बनी हो तो बड़े कष्टदायक परिणाम पैदा कर देती है। श्री आचार्य ने इस पुस्तक में पारा, लोहा, सोना, अभ्रक, चांदी आदि धातुओं, रसों, उपरसों, लवणों तथा अन्य खनिजों के शोधन, मारण के लिए क्रियात्मक उपाय बताये हैं। द्रव्य के मुख्य भाषाओं में नाम, द्रव्य का परिचय, गुण और उस के प्रधान योग भी दिये हैं। रस-शास्त्रों में एक-एक भस्म को बनाने की शोधन, मारण की बीसियों विधियां लिखी मिलती हैं। उन सब की परीक्षा करना प्रत्येक के लिये सम्भव नहीं होता और विद्यार्थी तथा वैद्य लोग गड़बड़ा जाते हैं कि किस विधि का आश्रय लेना चाहिये। लेखक ने अपने दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर जिन विधियों को उपयोगी समझा था उन का ही उल्लेख शास्त्रीय प्रमाणों सहित इस में किया है। हमें विश्वास है कि वैद्यगण आचार्य जी के अनुभवों से लाभ उठाने के लिए इस पुस्तक को पढ़ेंगे। इस शास्त्र के पाठ्य-ग्रन्थ में इसे अपना लेने से विद्यार्थियों को बहुत लाभ होगा।

यकृत के रोग और उनकी चिकित्सा—लेखक श्री सभाकान्त झा, आयुर्वेद शास्त्री। प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत पुस्तकमाला, बनारस १, सं० २००८ विक्रमी, पृष्ठ संख्या १२२, आकार २०×३०/१६, सजिल्द, मूल्य २)।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध लेखक व पत्रकार के रूप में श्री सभाकान्त ने आयुर्वेद-जगत् में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। आज का यन्त्रवत् चालित मनुष्य जिन अनेकों रोगों से परिचित हो गया है उन में जिगर के रोग भी आ जाते हैं। मनुष्य शरीर का जिगर (संस्कृत नाम यकृत्) शरीर का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। इस में विकार आ जाने से हमारे शारीरिक यन्त्र के बहुत से व्यापार मन्द पड़ जाते हैं या अव्यवस्थित हो जाते हैं। आयुर्वैदिक साहित्य में यकृत् के रोगों का वर्णन और उन की चिकित्सा अधिक विस्तार से न लिखी रहने के कारण लेखक ने आवश्यक समझा कि आयुर्वेद के विद्यार्थियों की जानकारी के लिए ऐसी एक पुस्तक लिख दी जाय जो उन के लिए उपयोगी हो सके। प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम परिच्छेद में यकृत् की रचना और कार्य को समझाते हुए लेखक ने यकृत् विद्रधि, यकृत् फिरंग, पित्ताश्मरी आदि रोगों का वर्णन किया है। द्वितीय परिच्छेद में यकृत् रोगों के साधारण उपचार दे कर जिगर की विद्रधि, फिरंग आदि रोगों की चिकित्सा

तथा विद्वानों के अनुभूत योग और पथ्यापथ्य दे दिया है। अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के जो हिन्दी रूपांतर लेखक ने दिये हैं उन में से कुछ शब्द जैसे राउण्ड वर्म के लिए मलसर्प, तो बिलकुल अपरिचित जान पड़ते हैं। पारिभाषिक शब्दों की एकरूपता के लिए आयुर्वैदिक विद्यालयों के सञ्चालकों को संगठित प्रयत्न कर के एक प्रामाणिक कोष तैयार कर लेना चाहिए जिसे प्रत्येक लेखक अपना आधार बना सके। एक प्रसिद्ध आयुर्वैदिक मासिक से सम्बद्ध होने के नाते मैं लेखक को सुझाव दूंगा कि वे अपने मासिक द्वारा इस विषय की चर्चा कर के विद्वत् समाज के विचार जानने का प्रयत्न करें। संगठित प्रयत्न से प्रामाणिक कोष के निर्माण का कार्य प्रारम्भ करने की योजना बनाई जाय तो आयुर्वेद का महान् उपकार हो सकता है।

स्वास्थ्य जीवन—लेखक श्री डा० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालंकार। प्रकाशक, आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर। आकर २०×३०/१६, अक्टूबर १६५१, पृष्ठ संख्या १६२। मूल्य १।)।

ब्रह्मचर्य, प्राणायाम, व्यायाम, आहार, विहार आदि विषयों पर लेखक ने पहले पांच अध्यायों में विचार करने के बाद छठे अध्याय में जीवन में विजय पाने के लिए आवश्यक बातों की विवेचना की है। अन्त में लेखक ने १०१ उत्तम उपदेशों का संग्रह कर के और कुछ भजनों को दे कर समाप्ति की है। सर्व साधारण को स्वस्थ रहने के लिए इस पुस्तक में लिखी बातों पर आचरण करने से लाभ होगा।

रामेश बेदी।

स्वतन्त्रता की खोज में—(मेरी आत्मकथा) लेखक—श्री स्वामी सत्यदेव परिव्राजक। मूल्य चार रुपये। सजिल्द का पांच रुपये। प्राप्तिस्थान—सत्य-ज्ञान निकेतन, ज्वालापुर, हरिद्वार।

श्री स्वामी सत्यदेव जी हमारे देश के उन पथान्वेषी साधकों में से हैं जिन्होंने अपनी उगती जवानी में ही अनन्त की खोज को अपना जीवन ध्येय बना लिया और दुनियादारी को त्याग कर पूरे आत्म-विश्वास के साथ विश्व के परिव्राजक बन गए! स्वामी जी के जीवन को हम अद्भुत साहस, अटूट आत्मश्रद्धा और अदम्य जिज्ञासा की गाथा कह सकते हैं। किस प्रकार वे अपनी उगती तरुणाई में जेब में केवल १५) रुपये लेकर विश्व की ज्ञानयात्रा को निकल गये और नई दुनियाँ में पहुँच कर स्वावलम्बी हो कर विद्योपासना करते रहे तथा बुद्धिवाद की प्रशस्त दृष्टि पाकर जीवन और जगत् की गतिविधियों का मूल्यांकन करते रहे, यह इस प्रेरणापूर्ण आत्म-कहानी में प्रोत्साहक और प्रवाहयुक्त भाषा में लिखा गया है। हमारे देश का यह दुर्भाग्य है कि सदियों तक गुलामी में रहने के कारण लोगों में अपने स्वाधीन विचारों को ईमानदारी साथ सार्वजनिक रूप में प्रकट करने का माद्दा जाता रहा है और विचारों की निर्भीकता जाती रही है, फलतः जनता का चिंतन स्वस्थ नहीं रहा है। स्वामी जी अपने जीवन में शुरू से ही बौद्धिक स्वातन्त्र्य और स्वस्थ चित्तता के उपासक रहे हैं। क्या परदेश में क्या स्वदेश में परिभ्रमण करते हुए वे समसामयिक ऐतिहासिक घटनाओं, व्यक्तियों तथा संस्थाओं के चरित्रों व कार्यों की मीमांसा खुले दिल से करते हैं। सिद्धान्त पूजा और बुद्धिवादी दृष्टिकोण उन का जीवन-पाथेय है अतः वे किसी के व्यक्तित्व की रौ में सहजभाव से बहते नहीं। बड़े-बड़े प्रवाहों, आंदोलनों

और पुरुषों की प्रवृत्तियों का वे इसी स्वाधीन दृष्टिकोण से अवलोकन और विवेचन करते हैं। हो सकता है उन की इस भावना को लोग अहंवादी कहें, पर जगत् में विचारों का यह अपनापन ही तो व्यक्ति को पृथक् व्यक्तित्व प्रदान करता है।

इस प्रकार स्वामी जी ने अपनी इस आत्मकहानी में अपनी जीवन यात्रा पर तथा भारत के पिछले ५० वर्षों की अनेक प्रवृत्तियों पर उपरोक्त दृष्टिकोण से प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। घटनाओं के मूल्यांकन में तथा परिणामों के विषय में मतभेद अवश्य हो सकता है पर लेखक की निर्भीकता और ईमानदारी स्पष्टतया प्रकट होती है। स्वामी जी के लेखन और प्रवचन की सब से बड़ी खूबी यह है कि वह अति सुस्पष्ट और प्रोत्साहक होता है। उस की ओजस्विता प्रभाव किए बिना नहीं रहती। आपकी भ्रमण कथाओं और चरित्र-निर्माण के निबन्धों ने भारत के सहस्रों युवकों का मन मोह लिया था। न जाने कितने तरुणों ने आपकी 'संजीवनी बूटी' पढ़ कर अपने चरित्र बनाए हैं। इस आत्म-कथा में भी प्रोत्साहना और चारित्रिक पवित्रता का पुट सर्वत्र भरा हुआ है। विचारों से मतभेद रहते हुए भी लाखों वाचक आपकी विषय प्रतिपादन-शैली और भाषा की सौम्य ओजस्विता के कायल है। फलतः हिन्दी-साहित्य में स्वामी जी के साहित्य ने बड़ी लोक-प्रियता प्राप्त की है। स्वामी जी स्वयं कहा करते हैं कि 'मेरी किताबें मेरी कामधेनु हैं। अपनी पुस्तकों के बल पर ही मैंने दो वार यूरोप की यात्रा की है।' सचमुच ही हिन्दी-साहित्य में स्वामी के यात्रा-साहित्य तथा चरित्र-निर्माण-परक साहित्य का अपना विशेष स्थान रहा है। इस आत्म-कहानी में भी आप की उस स्वतन्त्र विचारधारा और प्रवाहपूर्ण ओजस्वी लेखन-शैली का पूरा-पूरा आस्वादन मिलता है। इस प्रकार हमारे देश के एक निःसंगी पथान्वेषी, निर्भीक और स्वाधीन तबियत के देश-भक्त, समाज संशोधक और हिन्दी के परम पुजारी का लिखा हुआ यह जीवन-वृत्तान्त अवश्य उत्साह और जिज्ञासा-कुतूहल से पढ़ा जायगा। क्योंकि ग्रन्थ के अनेक प्रकरण बड़ी स्वाधीन चेतना से लिखे गए हैं। पृष्ठ संख्या को देखते हुए मूल्य मामूली है। छपाई, सफाई अभिराम है।

शंकरदेव।



भूल सुधार

पत्रिका के गत पौष मास के अंक में श्री पीताम्बर नारायण शर्मा के लेख—'स्वामी श्रद्धानन्द की हिन्दी सेवा'—के पांचवें पैरेग्राफ में तथ्य विषयक महत्वपूर्ण भूलें रह गई हैं। इस पैरेग्राफ को पाठकगण कृपया निम्नलिखित प्रकार से परिशुद्ध कर के पढ़ें—

महात्मा गांधी द्वारा स्वातन्त्र्य आन्दोलन के समय, भारतीय जनता के सामने देशोन्नति के उच्च सिद्धांत तथा रचनात्मक कार्य प्रस्तुत करने से पूर्व ही श्री स्वामी श्रद्धानन्द ने आर्यसमाज द्वारा शिक्षा-सुधार तथा सामाजिक संशोधन के क्षेत्र में असाधारण और विस्मय-जनक कार्य प्रारम्भ कर दिया था और अपने आदर्शों तथा मन्तव्यों को मूर्त-रूप देने के लिए हरिद्वार के समीप हिमालय की छाया में गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का पुनः प्रवर्तन कर दिया था।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु रंग—कुल वासी "आया वसंत जाड़ा उड़न्त" कहावत की सचाई अनुभव कर रहे हैं। दिन गरम होने लगे हैं। अभी तक शिशिर की पश्चिमी हवाएँ पत्तियां उड़ाती फिर रही हैं। वसंत-पंचमी के आसपास के दिनों में आकाश में कुछ कुछ बदलियां धूप छाँह का खेल खेलती रहीं हैं। थोड़ी बूंदा-बांदी भी हुई। अभी तक प्रभात में शीत पड़ रहा है। चहुँ ओर खेतों ने सरसों में वासंतिक शोभा की मानों लहरियां छितरा रक्खी हैं। उद्यान कुंद कुसुमों से महक रहे हैं। कहीं कहीं आडू की टहनियां गुलाबी फूलों से लदी हुई अद्भुत बहार दे रही हैं। ऋतुराज के पदार्पण के साथ ही प्रवासी पंखियों (पपीहा आदि) के इक्के दुक्के बोल सुनाई देने लगे हैं।

विशेष अतिथि

गत मास कलाक्षेत्र, अडयार (मद्रास) की अध्यक्षा श्रीमती रुक्मिणी देवी अरूण्डेल दो अन्य विदेशी महिलाओं के संग गुरुकुल के अवलोकनके लिए पधारीं

अखिल भारतीय हिन्दी परिषद् के कार्यकर्त्ता श्री देवदूत जी विद्यार्थी ने सपत्नीक गुरुकुल का अवलोकन किया। भारत सरकार के कानून मंत्रालय के सचिव श्री सुन्दरम् उस दिन गुरुकुल पधारे। आपने गुरुकुल नगर की परिक्रमा करके बहुत प्रसन्नता व परितोष व्यक्त किया। उस रात उन्होंने गुरुकुल में ही निवास किया

गण-राज्य दिवस

स्वातंत्र्य दिवस कुलवासियों ने प्रेम और गंभीरता के साथ मनाता। प्रातः नौ बजे तोरणों और फूल पत्तियों से बड़ी सुरुचि और चारुता के साथ सजाए हुए झंडा चौक में समस्त कुलवासी भव्य शांति के साथ समवेत हुए। मातृस्तवन के लिए प्रेमपूर्वक "जन गण मन" और "वंदेमातरम्" के गीत गाए गए। फिर वाद्य निर्घोषों के साथ श्री आचार्य प्रियव्रत जीं ने नई पताका आकाश में फहराई और उसके रंगों का सांकेतिक महत्व समझाया। समूहिक ध्वज वंदना हुई और मातृभूमि के शहीदों के जयकार बोले गये। सायंकाल इस दिवस के उपलक्ष्य में कई सान्मुख्य खेले गये और रात को साहित्य-गोष्ठी का अधिवेशन हुआ।

कसौली की ज्ञान-यात्रा

गत मास आयुर्वेद विभाग के छात्रों की एक मंडली अपने पेथोलोजी के उपाध्याय डाक्टर डी० एन० कुमार एम० डी० की अध्यक्षता में कसौली की सरस्वती यात्रा के लिए गई थी। वहां पर छात्रों ने सरकारी अनुसंधान-शाला में विभिन्न रोगों के सीरम और वैक्सीन तैयार करने की प्रक्रिया का क्रमिक अवलोकन किया। टाईफाईड, विसूचिका (हैजा) आदि के निरोध के लिए किस सावधानी और पूर्णता के साथ वैक्सीन और सीरम तैयार होते हैं, उनका सूक्ष्म अवलोकन किया। कीटाणुओं की उत्पत्ति और उनकी वृद्धि की प्रक्रिया का भी अनुशीलन किया। गुरुकुल की निदान प्रयोगशाला में भी डाक्टर डी० एन० कुमार विभिन्न माध्यमों द्वारा अनेक विध कीटाणुओं की वृद्धि किस प्रकार होती है इसकी क्रियात्मक शिक्षा छात्रों को दे रहे हैं।

देहरादून की ज्ञानयात्रा

आयुर्वेद कौलेज के कुछ छात्र अपने वनस्पति-शास्त्र के उपाध्याय श्री चम्पत स्वरूप जी एम० एस-सी० की अधिनायकता में पिछले दिनों देहरादून गये थे। वहां पर उन्होंने वन्य-अनुसंधान-शाला में विविध वनस्पतियों और पेड़-पौधों का शास्त्रीय दृष्टि से अवलोकन किया। उक्त संस्था के विभिन्न संग्रहालयों (वनस्पति वाटिका-जन्तुओं के अस्थिपंजर, कागज निर्माणशाला आदि) का भी पर्यवेक्षण किया। वनस्पति जगत् को विभिन्न कीट पतंगे किस प्रकार हानि पहुँचाते हैं इसका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया। भारत सरकार के नकशा-निर्माण विभाग तथा सर्वे विभाग को भी देखा।

लोहड़ी पर्व

प्रति वर्ष की तरह यह ऋतु-पर्व ब्रह्मचारियों ने बड़ी उमंग के साथ मनाया। उत्साह के साथ बनों ने

घूम घूम कर छात्रों ने खूब काष्ठ जमा किए। विद्यालय के छात्रों का प्रयत्न और उत्साह प्रशंसनीय था। उन्होंने अपनी लोहड़ी का पृथक् आयोजन किया था, जिसकी बड़ी बहार और रौनक रही।

संग्रहालय

गत मास डा० शिवनाथराय जी के सत्प्रयत्न से संग्रहालय को देहरादून से अनेक बहुमूल्य वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। इनमें वनस्पतियों के नमूने और चित्र उल्लेखनीय हैं। वनस्पतियों में कपूर पैदा करने वाली तुलसी विशेष रूप से वर्णनीय है। वनस्पतियों के चित्र श्री गंगासिंह और श्री पी. एन. शर्मा के बनाए हुए हैं। श्री गंगासिंह जी का एक चित्र अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है और सं० रा० अमरीका चित्रप्रदर्शनी में पुरस्कृत हो चुका है। हरिद्वार से बुद्ध की एक पुरानी मूर्ति श्री रामेश वेदी के सौजन्य उपलब्ध हुई है। जनवरी मास में संग्रहालय के दर्शकों की संख्या ११०८ रही। इससे पचपुरी के स्कूल बहुत लाभ उठा रहे हैं। गवर्मेण्ट नार्मल स्कूल ज्वालापुर तथा राष्ट्रीय विद्यालय ज्वालापुर के छात्र एवं छात्राओं ने इस मास संग्रहालय देखकर शिक्षा ग्रहण की।

संरक्षकों को सूचना

(१) गुरुकुल का हिसाब पंजाब नैशनल बैंक की कनखल शाखा में रहता है। हरिद्वार-शाखा से हिसाब बंद कर दिया गया है। अतः सब डाफ्ट चैक आदि पञ्जाब नैशनल बैंक कनखल के नाम आने चाहियें। जो धन हमारे हिसाब में जमा करने के लिए भेजना हो वह भी कनखल शाखा में भेजना चाहिए।

(२) जो संरक्षक चैक द्वारा धन भेजें। वह चार आना प्रतिशत बैंक कमीशन का व्यय भी साथ जोड़ दिया करें। यदि राशि १००)तक हो तो आठ आने जोड़कर भेजें। यदि ड्राफ्ट द्वारा धन भेजें तो व्यय कम पड़ेगा और यदि अपने बैंक से चिट्ठी द्वारा हमारे हिसाब में धन जमा करायें तो व्यय और भी कम आयेगा।

(३)प्रत्येक ब्रह्मचारी के लेखे को एक संख्या (नम्बर) दे दी गई है। यह संख्या मासिक व्यय पत्र पर बांये कोने पर लिखी रहती है संरक्षक महोदय लेखा सम्बन्धी पत्र व्यवहार में इसका उल्लेख अवश्य किया करें।

आवश्यकता

लेखा कार्य में निपुण एक आर्य सज्जन की आवश्यकता है अंगरेजी व हिन्दी टाइप भी जानने वाले हों तो उत्तम होगा। एक योग्य अनुभवी ओवर सीयर की आवश्यकता है जो गुरुकुल के भवनों के निर्माण की देख रेख का कार्य भली भांति कर सकें। सेवा करने के इच्छुक सज्जन श्री आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी से पत्र व्यवहार करें अथवा मिलें।

जयन्ती नोट

सूची जिनको जयन्ती नोटों के सम्बन्ध में साधारण पत्रों के अतिरिक्त रजिस्टर्ड पत्र भेजे गये किन्तु या तो उन्होंने लेने से इन्कार कर दिया या उन का पता नहीं चला।

क्र. सं.	नाम व पता	नोट भेजे	शेष रहे
१	आर्य समाज डूंगरपुर,राजस्थान	५०)	५०)
२	आ० स० गढी सांपला, रोहतक	५०)	५०)
३	आर्य समाज मुरेना ग्वालियर	१००)	१००)
४	आ० स० लक्ष्मीगंज, ग्वालियर	५०)	५०)
५	आ० स० तान्दूर हैदराबाद	१००)	१००)
६	आ० स०कमाठीपुरा, बंबई	५०)	५०)
७	श्री बलदेव जी दिल्ली	५०)	५०)
८	श्री बिघोमल जी सांगानेर जयपुर	५०)	५०)
६	आ० स० माधोगंज हरदोई	५०)	५०)
१०	आ० स० बेलगाम, कर्नाटक	५०)	५०)
११	आ० स० मिर्जापुर	१००)	१००)
१२	श्री नन्दलाल जी माल रोड़ कानपुर	२००)	२००)
१३	आ० स० नडियाड, बंबई	५०)	५०)
१४	आ० स०छनछोलीपुर हैदराबाद	१००).	१००)
	योग	१०५०)	१०५०)

गुम हुए जयन्ती नोटों की सूची

क्र० सं०	नाम व पता	नोट भेजे	धन प्राप्त	जयन्ती नोट	गुम नोट
१	श्री पन्नालाल जी, अम्बाला	१००)	५०)	०	५०)
२	स्त्री आर्य समाज, बिजनौर	५०)	२५)	०	२५)
३	आर्य समाज, अगवानपुर, मुरादाबाद	५०)	५)	०	४५)
४	आर्यसमाज, खतौली, मुजफ्फर नगर	१००)	२१)	०	७६)
५	आर्य समाज, कुसमारा, मैनपुरी	५००)	५०)	०	४५०)
६	श्री सौराजसिंह जी समदपुर, मुरादाबाद	५०)	०	०	५०)
७	आर्य समाज, उन्नाव	१००)	२६)	२६)	४२)
८	आर्य समाज, माला, हजारीबाग	५०)	४०)	०	१०)
९	आर्य समाज, अमेठी, सुलतानपुर	५०)	०	०	५०)
१०	आर्य समाज, आजमगढ़	५०)	५)	०	४५)
११	श्री हरिचन्द्र जी भाटिया, देहरादून	५०)	०	०	५०)
१२	आर्य समाज चिटगोपा, हैदराबाद	१५०)	०	०	१५०)
१३	श्री दलेलसिंह जी मुख्तार, मेरठ	२५०)	१५०)	०	१००)
१४	आर्य समाज, टोहाना	२००)	६७)	५२)	८१)
१५	आर्य समाज, वल्लभ गढ़, गुड़गांव	५०)	०	०	५०)
१६	आर्य समाज, देवरिया उ० प्र०	५०)	०	०	५०)
१७	स्त्री आर्य समाज, अजमेर	५०)	१२)	०	३८)
१८	आर्य समाज, भूड़, बरेली	५०)	०	०	५०)
१९	आर्य समाज चुनार, मिर्जापुर	५०)	०	४३)	७)
२०	स्मार्ट ए० कं० लखनऊ श्री लक्ष्मीनारायण	१००)	२५)	५०)	२५)
२१	आर्य समाज कोकीरा, मथुरा	५०)	०	०	५०)
२२	स्त्री आर्य समाज नगीना	५०)	०	०	५०)
२३	आ० स० लोअर बाजार, शिमला	२०००)	८०४)	११०६)	९०)
२४	स्त्री आर्य समाज, गोरखपुर	५०)	०	०	५०)
२५	आर्य समाज, ओरई, बांदा	५०)	२९)	१५)	६)
२६	श्री अर्जुन सीताराम जी लाटूर हैदराबाद	५०)	०	०	५०)
२७	स्त्री आर्य समाज, लखीमपुर खेरी	५०)	४०)	३)	७)
२८	श्री लब्भूराम जी नैयर, लुधियाना	५०)	०	०	५०)
२९	आर्य समाज, सीवान सारन	५०)	५)	०	४५)
३०	श्री अविनाश चन्द्र जी, पैरासिया छिन्दवाड़ा	१००)	७५)	०	२५)
३१	आर्य समाज, खण्डवा	१००)	१०)	४०)	५०)
३२	श्री धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री सकरावा, फर्रुखाबाद	१००)	१३)	३७)	५०)
	योग	४८००)	१४८५)	१३७५)	१९४०)

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी के

शीत ऋतु के उपहार

च्यवनप्राश हाइपो

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डाल कर यह योग तैयार किया गया है। खांसी, क्षय, निर्बलता, दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिए उत्तम रसायन है। मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर कर के शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता है व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३।।।) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवर्धक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है। मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिए परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।–) छटांक, १=) पाव।

वसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निर्बलता को हटा कर समर्थ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी

शिलाजीत, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर कर के शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निर्बलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है। मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है। मूल्य १।) पाव, २।) पौंड।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग ,, २॥), २॥), २॥)
ब्राह्मण की गौ ,, ॥।)
वैदिक अध्यात्मविद्या श्री भगवद्दत्त १।)
वैदिक स्वप्न विज्ञान ,, २)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां श्री रामनाथ १।।)
वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत ६)
सोम-सरोवर,सजिल्द,अजिल्दश्री चमूपति२),१।।)
थर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १।।)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य श्री विश्वनाथ २)
धर्मोपदेश१,२,३भाग स्वा०श्रद्धानन्द,१),१),१।।)
आत्ममीमांसा श्री नन्दलाल २)
प्रार्थनावली ।) कविता मंजरी ।–)
आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति ।)
कविता कुसुमाञ्जली ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] ५)
लहसुन : प्याज श्री रामेश बेदी २॥)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] ,, ३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] ,, २)
सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] ,, १॥)
देहाती इलाज] दूसरा संस्करण] ,, १)
मिर्च [काली, सफेद और लाल] ,, १)
त्रिफला [तीसरा संस्करण] ,, ३।)
सांपों की दुनियां ,, ५)

स्तूप निर्माण कला सचित्र सजिल्द, ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १।)
जल चिकित्सा श्री देवराज १॥)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द ७),६)
अपने देश की कथा सत्यकेतु १।=)
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)
ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार ।।।)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव ।)
महावीर गैरीबाल्डी श्री इन्द्र १।)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] १)
नीतिशतक [संशोधित] =)
साहित्य-दर्पण [संशोधित] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०]।।।=)
,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण] ।।=)
अष्टाध्यायी, पूर्वार्द्ध,उत्तरार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७),७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] ।)
साहित्य-सुधासंग्रह १,२,३ बिन्दु १।), १।), १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली ≠)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १।)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] २॥)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] ॥)
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] २॥)
ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ़ संस्कृत ट्रांसलेशन
एण्डकपोजीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ १)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

गुरुकुल मुद्रणालय।

गुरुकुल पत्रिका

चैत्र
२००८

वर्ष ४
अङ्क ८



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ४
अङ्क ८

गुरुकुल-पत्रिका

चैत्र
२००८

इस अङ्क में

अगले अंकों में

वैदिक संस्कृति का स्वरूप	श्री बुद्धदेव विद्यालंकार
अमरत्व का भोग	श्री मनोहर विद्यालंकार
नागरी लिपि में सुधार	श्री चन्द्रकिशोर शर्मा
अहिच्छत्रा की यक्ष प्रतिमा	श्री किशोरीदास वाजपेयी

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

देव किस के ?

ऋषिः वसिष्ठोमैत्रावरुणिः। इन्द्रः देवता। सतोबृहतीछन्दः।

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे।

तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासःकवत्नवे ॥ ऋक् ७—३२—६

जो व्यक्ति उदार, कर्मठ और शक्ति सम्पन्न है, सब के साथ स्वभावतः मित्रता का व्यवहार करता है, और नियम से रहता है, अपनी इन्द्रियों को वश में रखता है, और दूसरों के वास का प्रबंध करता है: वही विजय लाभ करता है। उसी को समाज में या राष्ट्र में निवास करने का अधिकार है। वही पुष्ट होता है।

जो कुछ उत्पादन नहीं करता, राष्ट्र पर भार स्वरूप है, वह न तो पुष्ट होता है, और न राष्ट्र में रहने का अधिकारी है।

देव अर्थात् ज्ञानी, वीर व व्यापारी, बुरा काम करने वाले तथा बुरी प्रकार काम करने वाले का साथ नहीं देते। देव तो दक्षता से काम करने वालों के हैं।

इस लिए, ज्ञान पूर्वक किसी प्रकार का भी उत्पादन करने वालो, अपने काम की हिंसा मत करो। प्रत्युत अपने कर्मों को पूरी शक्ति और दत्तचित्तता [दक्षता] के साथ करो।

शत्रुओं का सहार करने वाले तथा धन का दान व विभाजन करने वाले इन्द्र के लिए, अथवा किसी महान् व्यक्ति के लिए धनों का ढेर कर दो। अर्थात् राष्ट्र की रक्षा और आन्तरिक सुधार के कार्यों में धन के कारण कभी कोई बाधा न आने पावे।

अर्थ—[तरणिः उदार, कर्मठ, शक्ति सम्पन्न, [मैत्रावरुणिः] स्वभावतः मित्रता करने वाला और नियम से रहने वाला [वसिष्ठः] इन्द्रियों का वशी और अन्यों का वासक [जयति] जय लाभ करता है [क्षेति] निवास करता है, और [पुष्यति] पुष्ट होता है। [देवासः] देव लोग [कवत्नवे] बुरी तरह या बुरा काम करने वाले का साथ [न] नहीं देते।

इस लिए [सोमिनः] उत्पादन करने वालो [मा स्रेधत] अपने काम की हिंसा मत करो। [दक्षता] प्रत्युत दक्षता के साथ सम्पन्न करो तथा [आतुजे] शत्रुओं के संहारक तथा धन के विभाजक [महे] महान् व्यक्ति के लिए [रायः कृणुध्वम्] धनों का ढेर कर दो।

—श्री मनोहर विद्यालंकार।



पांच हज़ार वर्ष पुरानी भारतीय कला और व्यापार

श्री हरिदत्त वेदालंकार

कला कौशल—सिन्धुसभ्यता की प्रधान कलायें मिट्टी के बर्तन, प्रस्तर मूर्तियां, मुहरें व आभूषण निर्माण थीं। मिट्टी के बर्तन चाक पर बनाये जाते थे और उन्हें आवे की बजाय धरती पर बर्तनों के ऊपर ईंधन डाल कर पकाया जाता था। पकाने से पहले होरमुज़ [ईरान की खाड़ी] से आने वाले गेरू से इन पर एक लालधज्जी देकर उस पर काले पेण्ट से नाना प्रकार की आकृतियां बनायी जाती। परस्पर काटने वाले वृत्तों का डिजाइन (तरह) इस सभ्यता की विशेषता है जो अन्य कहीं नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त त्रिभुज आदि अनेक ज्यामितीय सरल आकृतियों, पेड़ों व पशु पक्षियों की आकृतियों को भी चित्रित किया जाता था। मोहेन्जोदड़ो के अधिकांश बर्तन बिल्कुल सादे हैं, जो चित्रित हैं वे प्राय: एक ही रंग के हैं, अनेक रंगों से चित्रण के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। बहुवर्णीय मृत्पात्र मोहेञ्जोदड़ो से ८० मील द० अमरी तथा ११० मील उत्तरपश्चिम नाल में पाये गये हैं और वे हड़प्पा सभ्यता से पुराने समझे जाते हैं। मिट्टी के बर्तनों पर चमकीला लेप चढ़ाने का भी रिवाज़ था, बिल्लौर को पीस कर तथा उसमें श्लेषक द्रव्य जोड़ कर मिट्टी के बहुत सुन्दर चिकने बर्तन भी बनाये जाते थे।

कला की दृष्टि से हड़प्पा की दो प्रस्तर मूर्तियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्होंने प्रारम्भिक भारतीय कला सम्बन्धी विचारों में क्रान्ति उत्पन्न की है। मार्शल को इनके निकलने पर कुछ समय तक यह संदेह बना रहा कि ये प्रागैतिहासिक नहीं हो सकतीं। इनमें एक तो लाल पत्थर का धड़ है और दूसरा बांयी टांग उठाये एक नर्तक की मूर्ति है जो संभवतः नटराज शिव है। दोनो मूर्तियों की सरलता, सजीवता और यथार्थता यूनानी कला के आविर्भाव से पहले अन्यत्र कहीं नहीं मिलती।

मुहरों पर सिन्धुकला अपने उत्कृष्ट रूप में प्रकट हुई है। ये प्राय: सेलखड़ी के पत्थर की बनी हैं। इन पर अंकित बैल, बाघ आदि चिन्ह भी बने हुए हैं किन्तु ये अभी तक नहीं पढ़े जा सके। क्रीट, सूसा ट्राय में पाया जाने वाला स्वस्तिक चिन्ह भी इन पर बना हुआ है, इससे यह अनुमान होता है कि ये मुहरें धार्मिक महत्व रखती हैं। यह कल्पना भी की गई है कि इन्हें मोहेन्जोदड़ो निवासी अपने शरीर पर तावीज़ों की भांति धारण करते थे। नाना प्रकार की मणियों तथा सोने चांदी से बनाये जाने वाले आभूषणों की चर्चा पहले हो चुकी है। कर्पर और हाथी दांत की कारीगरी भी उस समय काफी उन्नत थी।

उद्योग धन्धे तथा व्यापार—सिन्धु सभ्यता का सबसे बड़ा उद्योग कृषि था। हड़प्पा के विशाल अन्नागार से यह स्पष्ट है कि पांच हजार वर्ष पूर्व भी पंजाब गेहूं का बहुत बड़ा उत्पादक था। इस अन्नागार के साथ ही आटा पीसने वाले मजदूरों की ऊखलों चक्कियां और निवासगृह मिले हैं। दुनियां में संघटित उद्योग का यह प्राचीनतम उदाहरण है। कताई बुनाई भी वहां का एक लोकप्रिय उद्योग था किन्तु वहां का सबसे बड़ा धन्धा व्यापार था और वही उसकी समृद्धि का प्रधान कारण था। मोहेञ्जोदड़ों में पाई गई वस्तुओं से यह ज्ञात होता कि यहां के व्यापारी भारत के विभिन्न प्रान्तों तथा विदेशों से अनेक प्रकार की वस्तुयें मंगाते थे। मकानों की छतों में हिमालय के ढालों पर उगने वाले देवदार के पेड़ों की कड़ियां पड़ती थीं दवाइयों लिए काशमीर से कुरंगशृङ्ग तथा हिमालय के प्रदेशों से शिलाजीत मंगाया जाता था यहां का ताम्बा, गेरू तथा जामनी स्फटिक बिहार से

वैदिक सिद्धान्तों की श्रेष्ठता

श्री बुद्धदेव विद्यालंकार।

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य,
रायस्पोषस्य ददितारः स्याम ।
सा प्रथमा संस्कृति र्विश्ववारा,
स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ।

माननीय विद्वद्वृन्द तथा सभाभूषण धर्म्मजिज्ञासु जनो!!

हमारा यह परम सौभाग्य है कि आज इस सभा में देश के कोने कोने से धर्म का तत्त्व जानने के लिए श्रद्धालु जन इकट्ठे हुए हैं, और उनकी पिपासा मिटाने में समर्थ अनेक विद्यावारिद करुणार्द्र होकर इस सभामण्डप में विराजमान हैं। इस सम्मेलन में पिपासु माला तथा ज्ञान पर्जन्य विद्वन्मण्डल इन दोनों को परस्पर मिलाकर ज्ञानयज्ञ की वृद्धि के लिए जो स्थान आपने मुझे प्रदान किया है उसे कविकुलगुरु कालिदास के शब्दों में इस प्रकार कह सकता हूँ कि "मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः"। यह पदवी कितनी गौरवान्वित है इसे अनुभव करके मैं बोझ के नीचे दबा जा रहा हूँ। आप सब सहारा देंगे तो कदाचित् वहन करने में समर्थ हो सकूंगा। सबसे अधिक सहारा तो उस निरालम्बों के आलम्ब अशरणों के शरण करुणा वरुणालय प्रभु का है जिसके बिना यज्ञमात्र निरालम्ब है। उसी की शरण में उपस्थित होकर नम्रभाव से कहते हैं।

ओम् भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यम् भर्गो
देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

इस सम्मेलन का नाम सिद्धान्त-संस्कृति-सम्मेलन है। जहां तक मैं इसका अभिप्राय समझ रहा हूँ वह यही है कि आर्य सिद्धान्तों तथा आर्य संस्कृति की रक्षा के साधनों पर विचार किया जाय।
निस्सन्देह यह परमावश्यक कार्य है।
आर्य समाज त्रैतवादी है।

द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैतादि सिद्धान्तों के मुकाबिले में त्रैतवाद ही ठीक सिद्धान्त है यह सिद्ध करने के लिए कोई प्रामाणिक ग्रन्थ आज तक इस प्रकार का नहीं लिखा गया जिसे पढ़कर विद्वन्मण्डली कहती कि हां आर्य समाज का भी एक पथ है। निस्सन्देह आर्य समाज का एक पथ है और सच मुच वह इतना तर्कानुकूल है कि उसके बलपर साधारण योग्यता का आर्य समाजी भी बड़े बड़े प्रतिपक्षियों से टक्कर लेने के लिए उछल पड़ता है। परन्तु यह तो इस सिद्धान्त की प्रशंसा हुई। इससे हमारी अकर्म्मण्यता पर तो पर्दा

आता था, जेडाइट का स्रोत बर्मा और चीन कहे जाते हैं। अलवर जयपुर का ताम्बा, अजमेर का सीसा, राजपूताने का सेलखड़ी और दरसोंठ मोहेञ्जोदड़ों में काफी बरता जाता था। सोना और फक्साइट मैसूर तथा दक्षिण भारत के साथ व्यापारिक संबंध का सूचक है। मोहेन्जोदड़ों में शंख खम्भात, और पाक मनार की खाड़ियों से लाये जाते थे। अतः उत्तर में मोहेञ्जोदड़ो के व्यापारी हिमालय और दक्षिण में रामेश्वरम् तक स्वयं पहुँचते थे अथवा अन्य मध्यवर्त्ती व्यापारियों से इन प्रान्तों से सामान मंगाते थे। बैलगाड़ियां और गधे उस समय व्यापारिक माल की ढुलाई का प्रधान साधन थे। नौकाओं का भी प्रयोग होता था। मोहेन्जोदड़ो का विदेशी व्यापार प्रधान रूप से अफगानिस्तान, ईरान और मध्य एशिया के साथ होता था। व्यापार की उन्नति बहुत अधिक संख्या में पाये गये बाटों तथा बटखरों से सूचित होती है। इतनी अधिक संख्या में बाट अब तक नहीं मिले। इन बाटों में एक निश्चित अनुपात है ये चर्ट अन्यत्र नामक सख्त पत्थर से बड़ी सावधानी से बनाये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये राज्याधिकारियों के कड़े निरीक्षण में बनते थे।

नहीं पड़ सकता।

यह नहीं कि आर्य समाज में ऐसे विद्वान् उपस्थित नहीं है। मैं एक ऐसे आर्य विद्वान् को जानता हूँ जो इस प्रकार का ग्रन्थ लिख सकते थे। लिख सकते थे क्यों कहूँ, प्रभु-कृपा से वे आज भी जीवित हैं और आज भी लिख सकते हैं। उनके हृदय में इस प्रकार का ग्रन्थ लिखने की उमङ्ग भी थी, परन्तु हमने जीवन भर उनसे "रामःरामौ रामाः" पढ़ाने का ही काम लिया और आज वे भारत के एक बड़े नगर में जैनलोगों को अपनी अद्भुत विद्या का चमत्कार दिखा रहे हैं। किन्तु साथ ही इससे हमारी अगुणज्ञता का भी चमत्कार दीख रहा है। वायु मंडल में मानो कोने कोने से गूञ्ज उठ रही है—

कनक भूषण संग्रहणोचितो यदि मणिस्त्रपुणि प्रतिबध्यते।
नसविरौति न चापिनशोभते भवति योजयितुर्वचनीयता॥

इसी प्रकार आज लगभग ३० वर्ष से कम्यूनिज्म आदि सब वादों से वर्णाश्रम व्यवस्था का सिद्धान्त सर्वोपरि है यह सिद्ध करने को मैं भी दर दर भटक रहा हूँ। कायाकल्प नामक ग्रन्थ मैंने इसी उद्देश्य से लिखा। वर्णाश्रम सङ्घ बनाया। लोगों ने कहा कि अकेले की बात क्या मानें सब विद्वान् मिल कर कहें तो सोचा जाय। प्रभुकृपा से सङ्घ में सम्पूर्ण विद्वन्मण्डली ने इसे भविष्य की राजनीति का आधार स्वीकार किया। किन्तु आर्य समाज की नौका के कर्णधार इस प्रकार के सिद्धान्त-वादियों को पागल, अव्यवहारिक, युरोपियन, कोरे आदर्शवादी आदि नामों से पुकारते हैं। पहिले तो मैं अकेला ही पागल था। अब भारतीय लोक सङ्घ में सम्पूर्ण आर्य्य विद्वानों की सम्मिलित आवाज़ को भी जब ठुकराया गया तो मैंने समझा रोग गहरा है। आज जब यह अवसर मुझे मिला है तो भला मैं कब चूकने वाला हूँ। इन व्यवहार वादियों से जब कहते हैं कि देखो कम्युनिस्ट लोगों का प्रचार कितना बढ़ रहा है, तो कहते हैं कि भला उनके पीछे तो रूस का सारा राज्य लगा हुआ है। इन महापुरुषों से कोई पूछे कि रूस में क्या सदा कम्यूनिस्टों का ही राज्य था। कम्यूनिस्टों को अपने सिद्धान्तों में विश्वास था। उन्होंने राज्य बना लिया। विश्वास ने राज्य बनाया राज्य ने विश्वास नहीं।

इधर अपने लोगों की बात देखिये। आर्य्य समाज के यह कर्णधार गम्भीर मुद्रा धारण करके लम्बायमान तोबरा सा मुंह लटकाकर जब कहते हैं कि हां यह वर्णाश्रम का सिद्धान्त है तो बिल्कुल ठीक, इससे बढ़कर दूसरा सिद्धान्त नहीं, किन्तु इसे व्यवहार में कैसे लाया जाय, यह काम तो राज्य द्वारा ही हो सकता है, तो जी चाहता है कि इन महापुरुषों की नाक पकड़ कर झिझोड़ दी जाय।

यदि मार्क्स के चेले अपने विश्वास के बल पर एक राज्य स्थापन कर सकते हैं तो आस्तिक-शिरोमणि बाल ब्रह्मचारी दयानन्द के शिष्य अपने तपोबल तथा प्रचार-बल द्वारा इस सिद्धान्त को सर्वप्रिय क्यों नहीं कर सकते और इस प्रकार का राज्य स्थापित क्यों नहीं कर सकते? आर्य लोग इस सिद्धान्त का केवल स्तोत्र गान करेंगे और राज्य की स्थापना करने के लिए किसी लोकान्तर से सेना मंगाई जायगी? आर्य जनता में उत्साह है। जिसका प्रमाण यह सम्मेलन है। आर्य्य विद्वानों में उत्साह है, जिसका प्रमाण है कि विपरीत से विपरीत परिस्थितियों में भी वे इन सिद्धान्तों की घोषणा करने से नहीं चूकते। हां आर्य्य समाज के कर्णधार अवश्य सोए पड़े हैं। आवश्यकता है क्रांति की, क्या ही अच्छा हो कि आर्य्य समाज के कर्णधार स्वयम् जाग जावें। यदि वे नहीं जागेंगे तो क्रान्ति आ रही है और बड़े वेग से आरही है। यह डांवांडोल नेता कहां फेंके जावेंगे यह कल्पना करना भी कठिन है।

क्रांति आ रही है। मैं तो केवल उसका दूत हूँ।

क्रान्ति आर्य्य नवयुवकों द्वारा आवेगी। नवयुवको, प्रण करो, जब तुम वृद्धावस्था में पहुँचोगे तो वानप्रस्थ धर्म्म का अवश्य पालन करोगे।

इस समय यदि तुम ब्रह्मचारी हो तो अपने वर्ण का निश्चय स्वयम् वरण करो और फिर उसका पूर्ण शक्ति से पालन करो। इस बात की प्रतीक्षा मत करो कि जब आर्य्यराज्य होगा तब वर्णाश्रम व्यवस्था भी आवेगी। जो राज्य की प्रतीक्षा किये बिना वर्णाश्रम व्यवस्था का पालन करेंगे वही आर्य्य राज्य लावेंगे। आर्य्य समाज ने आज तक जन्म की वर्णव्यवस्था का खण्डन मात्र किया सो देखिये रूढ़िवादियों ने जन्म सिद्ध अधिकार का शोर मचाकर पोपलीला फैलाई। आर्य्य समाजियों ने उसका खण्डन करके लोपलीला दिखाई। काम न पोपलीला से चलेगा न लोपलीला से। काम होगा निर्माण से।

निर्माण होगा अनथक परिश्रम और पूर्णत्याग से। अकेले विकासवाद को ही ले लीजिये। वर्तमान युग के जितने वाद हैं सब का आधार विकासवाद है। मानव प्रकृति का परिणाम है। प्रकृति के उत्तरोत्तर विकास से ही पशु पक्षी कीट पतङ्ग स्थावर जङ्गम सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुई, इसका न कोई कर्ता है न नियन्ता। यह मानकर ही कम्यूनिस्ट चलता है। विकासवाद का सिद्धान्त नितावा थोथा है। परन्तु आज धरती भर के वैज्ञानिक इस्लामी कट्टरपन के साथ उसका समर्थन कर रहे हैं। इस एक सिद्धान्त के खण्डन के लिये ही सैकड़ों नहीं सहस्रों युवकों को जाव न बलिदान करने पड़ेंगे। एक उदाहरण लीजिये। भारत वासियों का कहना है कि नाट्यकला वेद से प्राप्त हुई। योरोपियन् लोगों का कहना है कि भारत में नाट्यकला यूनान से आई। इस विषय में प्रमाण रूप से उपस्थित किया जाता है "यवनिका" शब्द। यवनिका नाट्य शाला के उस पर्दे को कहते हैं जिसके हटने पर नाट्य पर विषय दर्शकों के सामने आ खड़ा होता है। यह विद्वान कहते हैं कि यवनिका का अर्थ है यवन देश के नाटकों में व्यवहार में आने वाला कपड़ा। सो पता लगा कि भारत में नाट्यकला यूनान से आई। यह विचित्र लीला देखिये। यवनिका शब्द "यु मिश्रणा मिश्रणयो:" इस धातु से बना है। धातु का अर्थ है जोड़ करना। यवनिका दर्शकों तथा अभिनेताओं के बीच जोड़ तोड़ का काम करती है।

इसी से यह यवनिका कहलाती है। सच पूछो तो यूनान का नाम यवनदेश इस लिए था कि वह भारत और योरोप के बीच जोड़ तोड़ का साधन था। यदि नाट्यकला यूनान से आई होती तो पर्दे के लिए कोई यूनानी भाषा का शब्द प्रयोग होना चाहिए था जिसका भावार्थ भारतवासी न जानते। किन्तु यहां तो यवन और यवनिका दोनों ही संस्कृत के शब्द हैं। फिर यवनिका यूनान से आई इस प्रमत्त प्रलाप का क्या आधार?

यही नहीं। हम यहां एक ऐसा शब्द उपस्थित करते हैं जिसके आधार पर भारतीय नाट्यकला का उद्गम सीधा वेद से होना अप्रत्याख्येय रूप से सिद्ध हो जाता है वह शब्द है 'पात्र'।

भारतीय नाट्यकला में अभिनेताओ को 'पात्र' कहते हैं।

यजुर्वेद में गम्भीर वैदिक तत्वों को यज्ञनाटक का रूप देने के लिये कल्प सूत्रकारों ने जिन अनुष्ठानों की कल्पना की उनमें अभिनेता का काम पात्र करते हैं। मान लीजये कहीं विवेक की महिमा गानी है तो "देवो वः सविता विविनक्तु" मन्त्र पढ़ कर छाज में धान फटके जाते हैं। छाज का काम है विवेक करना। इस लिए विवेक का अभिनय करने के लिए इस पात्र ने प्रवेश किया। पात्र का अर्थ बर्तन नहीं। यदि ऐसा होता तो स्फ्यकपाल और मूसल कभी पात्र न कहलाते। सो इन अग्निहोत्रादि नाटकों में अभिनेता का कार्य्य करने वाले

शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

नवभारत के सांस्कृतिक जागरण में उनका स्थान

श्री शंकरदेव विद्यालंकार

(उत्तरार्ध)

योग्यतम शिष्यों के गुरु

राष्ट्रप्रेम की नवीन भावना उन दिनों कविवर रवीन्द्रनाथ जी की कविताओं, गीतियों और साहित्यिक-कृतियों से देश में प्रबुद्ध हो रही थी। अपने ज्येष्ठ बन्धु गगनेन्द्रनाथ ठाकुर के साथ इन तेजोदीप्त प्रवृत्ति-यों के मध्य में स्थित होकर अवनी बाबू चहुँओर से कला-शिक्षार्थियों को आकृष्ट कर रहे थे। पहले पहले जिन शिष्यों को आप से प्राच्यकला की शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ उनमें थे--श्री नन्दलाल वसु, के० वेंकटप्पा, हकीम मुहम्मद खाँ, सत्येन्द्र दत्त, शैलेन्द्रनाथ दे, सुरेन्द्र गांगुली, समरेन्द्रनाथ गुप्त, असित कुमार हाल्दार सुरेन्द्रनाथ कार और क्षितीन्द्रनाथ मजूम-दार। आज तो ये सब शिल्पी सार्वभौम यश के भागी बन चुके हैं। सुशिष्यों की यह परम्परा आज भारत की सौंदर्यानुभूति और कला चेतना को प्रगतिशील बनाए हुए हैं। बंगाल में तो इस सांस्कृतिक-प्रबोध ने अद्भुत

इन पात्रों से ही नाटक में भी पात्र का शब्द लिया गया।

इसी लिए भरत नाट्यशास्त्र में लिखा है"यजुर्वेदा-दभिनयम्" अर्थात् नाट्यकला में अभिनय यजुर्वेद से लिया गया। इस प्रकार जब तक पात्र शब्द विद्यमान है करोड़ राहुल सांकृत्यायन भी चिङ्घाड़ते रहें भारतीय नाट्यकला का उद्गम वेद है। और वेद की यह लात विकासवाद के मस्तक पर पड़ती ही रहेगी। परन्तु क्या इससे हमारे सिद्धान्त की रक्षा होगई? कदापि नहीं। कम से कम एक पूरा जीवन विश्व की नाट्यकला में वेद का स्थान दिखाकर विकास वाद का खण्डन करने में लगेगा। इसी प्रकार विज्ञान की हर शाखा के पीछे वि-कासवाद का अन्ध विश्वास खड़ा है। जब तक सहस्रों सच्चे ब्राह्मणों के भविष्य एकाग्रावस्था के साथ व्यूह-बद्ध होकर इस विकास वाद की आसुरी माया से लड़ने को रणक्षेत्र में नहीं उतरते, देवासुर संग्राम में हमारी विजय नहीं हो सकती।

इसी प्रकार वेद के देवताओं का तत्व निरूपण करने के लिए कम से कम एक सौ नवयुवकों का जीवन किसी नदी तट की एकान्त कुटी में लगना अपेक्षित है।

भाषाविज्ञान अलग विकास वाद का साथी बन कर खड़ा है। सिद्धान्तों की रक्षा के लिए यह सब सैन्य सन्नाह करना हमारा धर्म्म है। नहीं तो हम गुरुवर दयानन्द का ऋण क्या चुका पायेंगे? प्रभाताश्रम में मैं यथाशक्ति इसकी साधना करने के लिए बैठा था और अब फिर बैठने लगा हूँ। किन्तु मैं अकेला क्या कर सकता हूँ। मैं तो प्रभु के विश्वास के बल पर चिल्ला सकता हूँ। यथाशक्ति स्वयम् कार्य्य कर सकता हूँ। परन्तु जब तक यह मानव समाज, विशेष कर आर्य्य समाज शंख, चक्र, गदा, पद्म चारों भुजाओं से खड़ा होकर असुर संहार के लिये जाग नहीं उठता, कार्य्य कैसे होगा? सो शंख का काम मैं कर रहा हूँ। आर्य्य समाज के सम्पूर्ण कार्य्यकर्त्ताओं से पुकार कर कहता हूँ, "पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम्।" जिस दिन यह पाञ्चजन्य का घोष गूंजा, उसी दिन असुर सेना कांप उठेगी। अभी तो एकजन अर्थात् ब्राह्मण वर्ण भी पूरी तरह नहीं जागा। आओ आज ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र तथा इतरजन सब मिल एक बार पाञ्च जन्य का घोष तो करें। वैदिक सिद्धान्त अमर हैं, हम उनकी रक्षा के लिए मर मिटेंगे !!

(मेरठ सार्वदेशिक आर्यमहासम्मेलन के प्रधान पद से दिया गया भाषण)।

स्फूर्ति का संचार कर दिया। अनेक शिक्षार्थी अवनी-बाबू की वत्सल शिष्यता में भारतीय कला की उपासना करने लगे। प्रथम मंडली के पश्चात् जो शिक्षार्थी आये उनमें से कुछ एक प्रतिभा सम्पन्न शिल्पी ये हैं--- श्री देवीप्रसाद रायचौधुरी, श्री मुकुलचन्द्र दे, श्री रमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, श्री अब्दुर रहमान चुगताई, श्री शारदा चरण उकील, श्री वीरेश्वर सेन, श्री ललित मोहन सेन, श्री श्रीधर महापात्र, श्री पुलिन बिहारी दत्त, श्रीमती रानी चन्द आदि आदि। इनमें से प्रायः सभी आज तो भारत के विभिन्न कला-विद्यालयों के आचार्य उपाचार्य या शिक्षक के पद पर प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार शिल्पीगुरु की इस सुशिष्य परम्परा द्वारा विविध दिशाओं में यह सांस्कृतिक नव-स्फुरण अपना व्यापक प्रभाव दिखा रही है।

उन्हीं दिनों सन् १६०८ में अपने श्रद्धेय सहकर्मी प्रिन्सिपल ई०बी० हैवल तथा ज्येष्ठ भ्राता गगनेन्द्रनाथ ठाकुर आदि से मिलकर अवनीन्द्र बाबू ने इस नये कला-संस्कार के आंदोलन को वेग प्रदान करने के लिए कलकत्ता नगरी में 'प्राच्य कला-परिषद् (इन्डियन सोसायटी आफ ओरियेन्टल आर्ट) की प्रतिष्ठा की। लार्ड किचनर इसके सभापति बनाए गये। पहले पहल इसके ३५ सदस्य बने, जिनमें २७ यूरोपियन थे और आठ भारतीय। कलकत्ते में रहने वाले तत्कालिक अनेक गण्यमान्य कला-प्रेमी इस परिषद् के संरक्षक और सदस्य बने जिनमें सर जौन वुडरफ, सर होम वुड, श्री नौर्मल ब्लंट आदि मुख्य थे। विस्मय की बात है कि उस समय तक भी हमारे देश का शिक्षित समुदाय इस आंदोलन से अलग था और अपने हीं देश की कला-संस्कृति को समझने में असमर्थ था। अपने पट्ट शिष्य नन्दलाल वसु को इस परिषद् में अध्यापक नियुक्त करके अभिनव चित्रकला का प्रचार बढ़ने लगा। कवि गुरु रवीन्द्रनाथ जी ने इस संस्था के कार्यों का खूब गुणकीर्तन किया। सच पूछा जाय तो कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ को पाश्चात्य जगत् में परिचित कराने वाले अवनीन्द्रनाथ जी के ही मित्रगण थे। लन्दन के रायल कौलेज आफ आर्ट के अध्यक्ष सर विलियम राथनस्टाईन, कलकत्ता के प्रधान न्यायपति सर जान वुडरफ, टामस मूर आदि मनीषियों ने कवीन्द्र को अपनी गीतांजलि अंग्रेजी में प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी।

प्रति वर्ष इस परिषद् की वार्षिक प्रदर्शिनियों में अवनीबाबू तथा उनके शिष्यों की एक से एक बढ़िया कृतियां कलाप्रेमी समाज सामने आने लगी और विश्रुत कला-मीमांसकों द्वारा प्रशसित होने लगीं। सन् १६१४ में पेरिस की विशाल प्रदर्शनी में आपके तथा आपके शिष्यों के चित्रों की ऐसी धूम मच गई कि वह एक ही कृतिकार की प्रदर्शनी कही जाने लगी। उसके बाद आपके चित्र ब्रुसेल्स और लन्दन में भी प्रदर्शित हुए और उन्हें अन्तर्राष्ट्रिय गुणकीर्तन प्राप्त हुआ। रूटर संवाद कंपनी ने उस समय तार द्वारा विश्व को यह वार्ता सुनाकर चमत्कृत कर दिया कि "द्वितीय टागोर की ज्वलत विजय। और वह केवल भारत का ही नहीं अपितु विश्व का एक महान् चित्र-कार है।"

परदेशी प्रकाशक आपकी कृतियों को प्रकट करने के लिए लालायित हो उठे। फलत: लन्दन के प्रसिद्ध कला-प्रतिष्ठान "स्टूडियो" ने सन् १६१६ में आपकी "उमर खैयाम चित्रावली" और "हिन्दू तथा बौद्ध दन्तकथा चित्रमाला" प्रकाशित की।

कलाशाला के आचार्य

कला मर्मज्ञ श्री पर्सी ब्राऊन के निवृत्तिनिवास (रिटायर्ड) ग्रहण करने पर अवनी बाबू कलाशाला के आचार्य और कलकत्ता-चित्रालय (आर्ट गैलरी) के अध्यक्ष बनाए गए।

चित्रकार के सिवाय कलाशिक्षक और कला-संशोधक के रूप में भी आप में अद्भुत सामर्थ्य और प्रतिभा थी। आप कहते थे शिष्य पर कुछ भी थोपने का प्रयत्न मत करो। उसे अपनी ही गति से चलने दो। जब वह राह भूलने लगे, धीमे से इशारा कर दो। आपकी शोधकवृत्ति का सुन्दर परिचय आपकी कला विषयक खोज की किताबों से मिलता है। सन् १९२१ में आपकी "शिल्प-शास्त्र" और "भारतीय कला के षडङ्ग" नामक पुस्तकें प्रकट हुईं।

उन्हीं दिनों गुणियों के परम पारखी और कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्कालीन उपकुलपति सर आशुतोष मुकर्जी ने आपको विश्वविद्यालय के ललितकला विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया। भारतशिल्प के वागीश्वरी-उपाध्याय के पद से अवनीबाबू ने कुछ विद्वतापूर्ण व्याख्यान दिए जो "शिल्प प्रबंधावली" नाम से प्रकाशित हुए। इन्हीं व्याख्यानों पर आपको उक्त विश्व विद्यालय ने डी० लिट्० (साहित्याचार्य) की पदवी से विभूषित किया। सरकार ने भी उसी समय आपको सी० आई० ई० का विरुद प्रदान किया।

शिक्षक के रूप में अवनीबाबू का चरित्र चित्रण करते हुए विश्रुत कला-चिन्तक श्री० अर्धेन्द्र कुमार गांगुली लिखते हैं—"शिक्षक के रूप में अवनीबाबू अद्वितीय हैं। ठीक ही कहा गया है, शिक्षक जन्मजात होते हैं, बनाए नहीं जाते। कलाकार की अपेक्षा शिक्षक के रूप उनका अवदान अधिक बड़ा है। अपने छोटे से छोटे छात्र के प्रति वे माता जैसा अद्भुत धीरज और पिता जैसी स्नेहपूर्ण महानुभूति रखते हैं। वे एक अति सामान्य से छात्र के अंदर से भी उसके हृदय का श्रेष्ठतम तत्व आविष्कृत करने का का सरल और सीधा प्रकार जानते हैं। अपनी शैली को वे छात्रों पर थोपते नहीं। किसी नौसिखिये छात्र के रेखांकन चित्रण या आकृति को सुधारते हुए या परिवर्धित करते हुए वे शिष्य के अपने प्रकार को ही जानने का प्रयत्न करते है कि उसने कहां पर किस दृष्टि से क्या क्या क्रिया प्रारम्भ की हुई है। उसकी दृष्टि और शैली को हृदयंगम करके उसी की शैली में कृति को वे विकसित और परिमार्जित करते हैं। चाहे प्रतिपादनीय विषय की उनकी अपनी निर्वाह-शैली और प्रक्रिया उससे सर्वथा विरुद्ध हो।

शिष्य-वात्सल्य

अपनी शिल्प-वत्सलता से आपने अपने अन्तेवासियों को मुग्ध किया हुआ था। शिल्पी असित कुमार हालदार कहते हैं—"अपना व्यक्तित्व वे हम पर थोपते नहीं थे। उनकी कार्य सिखाने की रीति अपनी ही थी। वे छात्रों में बैठकर ही कार्य करते थे, जिससे वे प्रेरणा ग्रहण कर सकें और अपनी कल्पना और रुचि में परिष्कार ला सकें।"

प्रयाग विश्वविद्यालय में कला-विभाग के अधिनायक श्री क्षितीन्द्र नाथ मजूमदार कहते हैं—"उन्होंने केवल गुरु, निर्देशक, तत्त्वज्ञ और मित्र के रूप में ही मुझ पर अमिट छाप नहीं डाली, अपितु एक पिता और उपकारक के समान मुझे अपना स्नेह भी प्रदान किया है।"

कलकत्ते की कलाशाला के भूतपूर्व आचार्य श्री मुकुल चन्द्र दे लिखते हैं—"मानव के रूप में वे मेरे लिए भगवान् थे। उनकी प्रतिभा और अद्भुत उदारता के कारण मैं उनका पूजक हूँ। मेरे हृदय में उन्होंने प्रकाश को प्रबुद्ध कर दिया और मैं उनकी कला के सौन्दर्य से परिपूरित हो गया।"

चित्रण के विषयों के लिए वे अपने छात्रों को भारत के पुरातन साहित्य के विशद अध्ययन के लिए प्रेरित किया करते थे। पाठ देने से पूर्व वे अपने प्रत्येक छात्र से पूछ लिया करते थे कि भारत समस्त में में बिखरी हुई कला-संपदा—चित्र, मूर्तियां, स्थापत्य

आदि— से वह भली भांति परिचित हैं या नहीं। वे स्वयं कठोर श्रम किया करते थे जिससे उनके शिष्य भी अपने कार्य में ठीक ठीक पुरुषार्थ करें।

यह बड़े खेद का विषय है कि ऐसे महाप्राण कला स्वामी की नमूनेदार कृतियों से हमारे देश के जातीय चित्रालय अभी तक शून्य पड़े हैं। यहां तक कि किसी संस्था ने उनके चुने हुए चित्रों के संग्रह भी नहीं छपाए हैं। यह सब कुछ राष्ट्र के रुचि-दारिद्रय और अगुणज्ञता के चिन्ह हैं। ऐसा तेजोदीप्त कलाकार यदि जर्मनी, फ्रांस, इङ्गलैंड या जापान में पैदा होता तो उसका सुकृतियों की छापें देश के प्रत्येक विद्यालय की दीवारों पर टँगी होती। उदात्त कला की प्रत्येक वस्तु सदा के लिए आनन्द का स्रोत होती है। इस सत्य को हम कब हृदयंगम कर पायेंगे।

गद्य शैली के स्वामी

बंग-भाषा-भाषी जनता के सिवाय अन्य बहुत कम लोग यह जानते होंगे कि रङ्ग रेखाओं के यह अद्भुत जादूगर बहुत सुन्दर बंगाली गद्य के स्वामी, चतुर अभिनेता और संगीत–मर्मज्ञ भी थे। चित्रकार बनने से पूर्व इनकी प्रतिमा का स्रोत एक साहित्यकार के रूप में प्रकट हुआ था। गुलाबी जवानी के दिनों में "शकुन्तला" की कहानी लिखकर अपने कवि काका को भी इन्होंने अपनी कलम का करिश्मा दिखाया था। उसके बाद तो इन्होंने बंग देश के कुमार कुमारिकाओं के लिए कथा-वार्ता, भ्रमण-कहानी आदि का मनोहर साहित्य अच्छे प्रमाण में लिखा है। जिनमें बांगलार व्रतकथा, राज कहानी, खीरेर पुतुल, भूतपत्रीर देशे, पथे-विपथे आदि पोथियाँ बहुत जनप्रिय हुई हैं। उत्तरावस्था में अपनी जीवन-स्मृतियाँ ठाकुर कुटुम्ब की कार्यावलियाँ और संस्मरण आपने बहुत मनोमोहक रूप में "जोडासाँकोर धारे", "घरोया" और "आपन कथा" नामक पुस्तकों में आलिखित किये हैं। जोडासाँकोर धारे, की रचना चातुरी की आलोचना करते हुए बंगाली पत्रिका 'कविता' ने लिखा है— 'अवनीबाबू केवल रंगरेखा के ही शिल्पी नहीं हैं, भाषा-शिल्पी भी हैं। बंगला गद्य में उनका एक विशेष और अनुपेक्षणीय स्थान 'जोडासाँकोर धारे' ने बना दिया है।......उनके गद्य का प्रधान गुण है, उसका कावित्व, उसका बाँका हास्य, उसकी प्रच्छन्न तरंग भंगियाँ और प्रत्येक पंक्ति में उसकी अपार्थिव आर्द्रता।'

अनुसंधान और आलोचना-परक पुस्तकों में भी आपकी विषय प्रतिपादन शैली का पांडित्य प्रकट होता है। भारतीय शिल्पेर षडङ्ग' का तो इङ्गलिश और फ्रैंच भाषा में अनुवाद भी होगया है। शिल्प प्रबंधावली का अंग्रेजी संस्करण भी छप रहा हैं।

आपकी चित्रमयी कलाकृतियों का एकबारगी मूल्यांकन करना बहुत कठिन कार्य है। आपने कोई दो सौ से उपर चित्र बनाए हैं। जिन कृतियों ने सार्वभौम प्रशस्ति पाई है उनमें से कुछ एक के शीर्षक इस प्रकार है—

बुद्ध और सुजाता, शापग्रस्त यक्ष, दाराशिकोह का मस्तक, कजरी नृत्य, अंतिम यात्रा, अशोक की रानी तिष्यरक्षिता, शिवसीमन्तिनी, भारतमाता, शाहजहां का अवसान राधिका, संध्याप्रदीप, उमा, गणेश-जननी, ताज का निर्माण, साधना मग्न बुद्ध, कमलपत्र में अश्रुबिन्दु, ताजमहल का स्वप्न, आदि।

सार्वभौम ख्याति के दिवंगत रूसी कलाकर निकोलस रोरिक महोदय ने एक बार आपकी कृतियों के विषय में लिखा था—

'कल्पनापूर्ण अद्भुत ताल और लय से समन्वित उनके चित्रों में निहित भाव, काव्यमय संकेत से भरेहुए होते हैं। एक प्रतापी आकाश-दीप (प्रकाश-स्तम्भ) की तरह, कला के एक सम्पूर्ण संप्रदाय के गुरु के

रूप में अवनीन्द्रनाथ खड़े हैं। भारत के विद्यमान कला-शिल्पियों को उन्होंने अपने आशीर्वादों से अभिषिक्त किया है। उन्होंने अपने ही अक्लान्त दृष्टान्त द्वारा, देदीप्यमान भविष्य के सिंहद्वार को खोल दिया है।'

एक भव्य समूह-चित्र

शिल्पीगुरु अवनी बाबू के एक भावपूर्ण समूहचित्र की बात सुनिये। चित्र है गाँधी बापू, गुरुदेव रवीन्द्र और दीनबन्धु एण्डयूज़ का। तीनों उदात्त पुरुषों का का यह सुभग सम्मिलन दीनबन्धु एण्ड्रयूज द्वारा आयोजित किया गया था। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ उन दिनों ताजे ही अमेरिका से लौटे थे और उन्होंने गाँधी जी से किसी विषय में अपनी असहमति प्रकट की थी। सम्मिलन के स्थान पर किसी को जाने की आज्ञा नहीं थी। परन्तु शिल्पी अवनीन्द्रनाथ के अन्दर विद्यमान "चिर बालक" ने एक छिद्र से उनकी एक झाँकी ले ही ली! बस, उसके लिए एक झाँकी पर्याप्त थी। चित्र खूबी से बन उठा है और अन्य देशों के सुन्दरतम समूहचित्रों से वहीं अच्छा बन पड़ा है। चित्र में आप तीन विशिष्ट चरित्रों को निहार सकते हैं गुरुदेव की चिन्तन-शीलता, गांधी जी की श्रद्धा और दीनबन्धु की समन्वय की भावना बड़ी खूबी और स्पष्टता से अंकित हुई है।

यह चित्र अवनी बाबू की विनोद-शीलता की स्मृति कराता है। यह चित्र एक बार प्रदर्शिनी में रखा गया था। कीमत अंकित की गई पन्द्रह हजार रुपये। एक व्यक्ति द्वारा इसकी कीमत पर विस्मय प्रकट किया गया तो अवनीबाबू ने बड़ी प्रफुल्लित सरलता के साथ कहा-" क्यों? क्या इनमें से प्रत्येक व्यक्ति पाँच हजार की कीमत का नहीं है?"

संगीतज्ञ और अभिनेता

अभिनय कला और संगीत में भी अवनी बाबू अच्छी गति रखते थे। ठाकुर परिवार के आत्मीयजन अनेक वार कवीन्द्र रवीन्द्र के नाटकों का अभिनय प्रस्तुत किया करते थे। उनमें अवनीन्द्र बाबू का कर्तृत्व विशेष रूप से चमक उठता था "डाकघर" के अभिनय में अवनी बाबू वैद्यराज का पार्ट लेते थे "फाल्गुनी" खेल में आपने "श्रुतिभूषण" का अभिनय किया था। आपके दोनों ज्येष्ठ भाई गगनेन्द्रनाथ और समरेन्द्रनाथ क्रमशः राजा और मंत्री बने थे।

अपनी तरुणाई में आपने संगीत पर भी हाथ अजमाया था। बाँसुरी, सितार और इसराज बजाने में तो ये अच्छे उस्ताद थे। उन दिनों रवीन्द्रनाथ जी गीत बनाते थे और उन्हें गाते समय साथ साज बजाने के लिए प्रायः अवनी बाबू को बुला लिया करते थे। बस फिर क्या था संगीत और वादित्र का अपूर्व आनन्द बहने लगता था।

साज-शृंगार में भारतीयता

जैसे कि ऊपर कहा गया है अवनीबाबू का कर्तृत्व केवल चित्रण तक ही सीमित नहीं था। अपने बड़े भ्राता गगनेन्द्र नाथ जी के साथ मिलकर उन्होंने अपनी कोठी में बंगाल के कुटीर-शिल्पों (कॉटेज इन्डस्ट्री) का अच्छा सा संग्रहालय बनाया था अपने निवास स्थान को भी विशुद्ध प्राच्यपद्धति से शोभित और सुसज्जित किया था। उनकी सुन्दर बैठक [ड्राइङ्ग रूम] ने विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र वसु जैसे मनीषियों को भी प्रेरित और प्रभावान्वित किया था। आगे जाकर आचार्य वसु ने भी अपना मकान और विज्ञान-मन्दिर उसी पद्धति से बनवाया और सुसज्जित कराया था।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि कवीन्द्र के कलाप्रिय सुपुत्र रथीन्द्र बाबू ने भी अपने भव्य निवास-गृह में एक 'विचित्रा-क्लब' स्थापित करके उसे ग्राम-निर्मित कलात्मक सामग्री से सजाया। सौन्दर्य-बोध की इस दृष्टि ने घर के सामान्य वस्त्रों, बर्तन-वासनों और खिलौनों की पसंदगी तक में भी परिवर्तन ला दिया था। अपने संस्मरणों में वे स्वयं लिखते हैं—

'मद्रासी मिस्त्री धनकोटि आचारी को बुलवा कर काम में लगा दिया। मैं स्वयं नमूने देता था, नकशा

बीती पर क्या पछताता है ?

'श्री सत्यव्रत सुगम'

जो बीत गई सो बीत गई
बीती पर क्या पछताता है ?

पछताना अब कायरता है,
अम्बर के साहस को देखो,
कितने ही तारे टूट गये,
जीवन के साथी छूट गये।
जो बिछुड़ गये वे नहीं मिले
पर कभी किसी ने देखा है,
क्या अम्बर रुदन मचाता है ?
जो बीत०—

जीवन मृत्यु का नियम अटल,
देखो तो उपवन का साहस,
कितनी कोमल कलियां सूखीं,
कितनी ही वल्लरियां सूखीं।
जो सूख गईं वे नहीं खिलीं
पर बता मुझे सकता कोई,
दुःखित मधुवन चिल्लात है ?
जो बीत०—

अस्थिरता ही जीवन लक्षण,
दीपक की छाती को देखो,
जो निज सर्वस्व लुटा जाता,
भटकों को पथ दिखला जाता।
मुझको विश्वास नहीं होता,
खोकर निज स्नेह वर्तिका भी,
क्या दीपक शोक मनाता है ?

क्या शोक किया नश्वरता पर,
हिमगिरि के साहस को देखो
कितनी सरितायें छूट चलीं,
निज मादक यौवन लूट चलीं।
सागर से नाता जोड़ लिया,
पर बोलो विरहाकुल होकर,
क्या हिमगिरि शोर मचाता है ?

जो बीत गई सो बीत गई, बीती पर क्या पछताता है ?



बनाता था और इस प्रकार नया उपस्कर [फर्नीचर] तैयार होता था। सब कुछ सीधी और सादी सामग्री। उसके द्वारा सारे घर में बिछाई जाने वाली जापानी गद्दी तैयार कराई। इस समय तुम इस खाट के जो पाए देखते हो, जानते हो वे कहां से आए ? दीया रखने की दीवट से। मजदूरी का कुछ कम दी है? सबसे पहले भारतीय उपस्कर का प्रारम्भ यहीं पर तो हुआ था। अब तो सब को राह मिल गई है। इस में थोड़ा सा नया परिवर्तन कर देना सहज है। परन्तु हमें तो उस समय जड़मूल से झाड़ उखाड़ कर सर्वथा नये सिरे से नया वृक्ष अपने हाथों से रोपना पड़ा था। इस वृक्ष को इसी विचार से सुरक्षित रखा हैं कि एक दिन इसमें फूल फूट निकलेंगे॥"

इसप्रकार अपनी नानामुखी प्रतिभाओं के अवदान द्वारा आधुनिक भारत के सांस्कृतिक प्रबोधन के लिए अवनी बाबू ने जो अद्भुत साधना और सेवा की हैं वह राष्ट्र के समसामयिक इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित होगी। मांचेस्टर गार्जियन के शब्दों में—"भारत में इस युग में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का कर्तृत्व कलास्वामी और बौद्धिक नेता के रूप में अपने कवि-काका रवीन्द्रनाथ के अनन्तर दूसरे नम्बर पर हैं।"

भारत-पुत्रों को "आत्मानं विद्धि" का प्रबोध-मंत्र सुनाकर आत्मविश्वास और नव-निर्माण की महागाथा रचने वाले उस महाप्राण कलावंत और संस्कृति-पूजक व्यक्ति की पुण्य-स्मृति को हम श्रद्धा-सुमनों की माला चढ़ाते हैं।

वेदोक्त पारिवारिक कर्तव्य

श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति।

गृहस्थाश्रम के बारे में वेद में कैसा भाव रखा गया है और वेद के अनुसार स्त्रियों की स्थिति क्या है इन दो विषयों पर थोड़ा प्रकाश डालना आवश्यक है। निम्न लिखित कुछ वेद मन्त्रों पर यहां अच्छी प्रकार विचार करना चाहिए।

१. ऋ. १० । ८५ का २७ वां मन्त्र इस प्रकार है—

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं—
मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धि—
र्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥

विवाह के समय वर वधू को कहता है (सौभगत्वाय) सौभाग्य की वृद्धि के लिए (ते हस्तं) तेरे हाथ को (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूँ (मया पत्या) मुझ पति के साथ (यथा) जिससे तू (जरदष्टिः) वृद्धावस्था पर्यन्त जीने वाली (असः) हो। (भगः) ऐश्वर्य शाली (अर्यमा) न्यायकारी (सविता) जगदुत्पादक (पुरन्धि) अत्यन्त बुद्धिवाला परमेश्वर तथा (देवाः) सब ज्ञानी लोग (त्वा) तुझे (मह्यम् अदुः) मेरे प्रति सौंप चुके हैं। तात्पर्य यह है कि वेद के अनुसार गृस्थाश्रम मनुष्य के सौभाग्य की वृद्धि का एक प्रधान कारण है और पति पत्नी के सम्बन्ध को पाशविक वासनाओं के तृप्त करने का साधन नहीं अपितु उन दोनों के एक दूसरे की सहायता से उन्नात करने का परमेश्वर प्रेरित साधन समझते हुए व्यवहार करना चाहिए।

२. यजु. ३ ।४१। में इस विषयक निम्न मन्त्र अत्युत्तम भाव पूर्ण है—

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि। ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमी मनसा मोदमानः॥

अर्थात् (गृहाः) हे गृहस्थी लोगो! अथवा मेरे घर के सम्बन्धियो (मा बिभीत) मत डरो (मा वेपध्वम्) मत कम्पायमान होवो, हमारे भविष्य जीवन के विषय में किसी तरह की चिन्ता न करो क्यों कि हम (ऊर्जं बिभ्रतः) बल अन्नादि धारण करते हुए (एमसि) आते हैं—गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं। आगे वही ब्रह्मचर्य से द्वितीयाश्रम में प्रवेश करने वाला व्यक्ति कहता है कि मैं (मनसा) मन से (मोदमानः) प्रसन्न होता हुआ (सुमनाः) उत्तम मन वाला (सुमेधा) उत्तम बुद्धि वाला और (ऊर्जं) बल को (बिभ्रद्) धारण करता हुआ (वः) तुम्हारे (गृहान्) घरों को (एमि) आता हूँ। तात्पर्य यह है, कि जो ब्रह्मचर्य आश्रम में अपने मन बुद्धि शरीर आदि की शक्तियों को बढ़ाते हुए और उन्हें पवित्र बनाते हुए गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है वही सुखमय जीवन गृहस्थाश्रम में व्यतीत कर सकता है नहीं तो आदमी चिन्ताओं के कारण प्रतिदिन क्षीण होता जाता है। अतः गृहस्थाश्रम को स्वर्गधाम और नरकधाम बनाना मनुष्य के अपने ही हाथों में है।

३. अथर्व वेद ७ । ६० । १ में इस विषय का बहुत ही उत्तम शब्दों में प्रतिपादन किया गया है—

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा—
अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो—
रमध्वं मा बिभीत मत्॥

अर्थात्, मैं (उर्जं बिभ्रद्) बल धारण करता हुआ (वसुवनिः) ऐश्वर्य का सेवन करने वाला—(वन षण—संभक्तौ) (सुमेधाः) अच्छी बुदि वाला (अघोरेण) सौम्य (मित्रियेण चक्षुषा) मित्र दृष्टि से सम्पन्न होता हुआ (सुमनाः) उत्तम मन से युक्त

(वन्दमानः) वृद्ध पूज्य लोगों को नमस्कार करता हुआ (गृहान् एमि) घरों में आता हूं, गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता हूं (रमध्वम्) तुम सब खुशी मनाओ (मत्) मेरे से (मा बिभीत) न डरो। यह ब्रह्मचर्य से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले के मुंह से वेद में कहा गया है। जो लोग गृहस्थाश्रम को नरक धाम अथवा दुखः का मूल समझते हैं उन्हें इस प्रकार के वैदिक आशयों पर अवश्य ध्यान देना चाहिये। इसी सूक्त के दूसरे मन्त्र में भी स्पष्ट ही—

इमे गृहा मयो भुवः

ये शब्द आये हैं जिनका अर्थ यह है कि ये घर सुख देने वाले हैं, दूसरे शब्दों में गृहस्थाश्रम स्वर्ग का धाम है, किन्तु इस स्थापना के साथ एक शर्त लगी हुई है कि जब मनुष्य बल, धन, मेधा, मित्र-दृष्टि, उत्तम मन, नम्रता इन सब को धारण करते हुए ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में प्रवेश करे तभी गृहस्थाश्रम स्वर्ग का धाम है, अन्यथा उसके नरक धाम होने में अणुमात्र भी सन्देह नहीं। अब स्त्रियों की स्थिति विषयक प्रश्न पर वैदिक दृष्टि से थोड़ा सा विचार करना है इस विषय में निम्न लिखित वेद मन्त्र विशेष मनन के योग्य हैं—

(१) चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती॥ ऋ १। ३। ११

अर्थात् (सूनृतानाम्) मधुर और सत्य वचनों की (चोदयित्री) प्रेरणा करने वाली (सुमतीनां चेतन्ती) उत्तम मति या सलाह को देने वाली (सरस्वती) [1]विदुषी स्त्री (यज्ञं) शुभ कर्म को (दधे) धारण करती है अथवा अग्निहोत्रादि का अनुष्ठान करती है। इस मन्त्र में निम्न लिखित बातें कहीं हैं।

(१) मधुर और सत्य वचन स्वयं बोलना और दूसरों को भी वैसा ही करने की प्रेरणा करना।

(२) अपने पति तथा दूसरे लोगों को उत्तम सलाह देना और—

(३) यज्ञादिका अनुष्ठान करना यह देवियों का धर्म है।

इस धर्म का पालन करने वाली जो सरस्वती अर्थात् विदुषी स्त्री होती है उसकी सब पूजा करते हैं, इस भाव को ऋ १०। १७। ७ में इस प्रकार प्रकट किता गया है—

(२) सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते, सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त, सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्॥

(अर्थात् देवयन्तः) दिव्य शुभ गुणों की इच्छा करने वाले पुरुष (सरस्वतीं) विद्यावती देवी की (हवन्ते) पूजा करते हैं, (अध्वरे) अहिंसात्मक शुभ कर्म के (तायमाने) विस्तृत होने पर पुरुष (सरस्वतीं हवन्ते) विदुषी स्त्री को निमन्त्रण देते हैं। (सुकृतः) उत्तत कार्य करने वाले सब सज्जन (सरस्वतीं) विदुषी देवी को सहायता के लिये (अह्वयन्त) बुलाते हैं और इस प्रकार (दाशुषे) सत्कार पूर्वक निमन्त्रण देने वाले पुरुष के लिये (सरस्वतीं) विदुषी स्त्री (वीर्यं) उत्तम ज्ञान अथवा सलाह (दात्) देती है। इस मन्त्र के अन्दर प्रत्येक शुभ कर्म करते हुए विदुषी देवियों की सलाह ले लेना और उन की पूजा करना आवश्यक है यह भाव सूचित किया गया है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः॥
यत्रैतास्तु न पूज्यन्तै सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥
मनु ३। ५६

मनु महाराज के इस वचन को यहां स्मरण करना

१. सृ—गतौ धातु से सरस्वती शब्द बनता है। गति के ज्ञान-गमन और प्राप्ति ये तीन अर्थ होते हैं अतः सरस्वती का ज्ञानवती वा विदुषी यह अर्थ स्पष्ट है।

(३) यजु० अ० ८ में जिस का पत्नी देवता है स्त्रियों के विषय में निम्न मन्त्र आया है, जो बहुत ही उत्तम है—

"इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति मपि विश्रुति ।

एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो ना सुकृतं ब्रूतात् ॥"

यजु० ८ । ४३

अर्थात् (इडे) हे प्रशंसित गुण युक्त (रन्ते) रमणीय (हव्ये) पूज्य (काम्ये) कामना करने योग्य (चन्द्रे) आल्हादित करने वाली (ज्योते) घर में ज्योति के समान प्रकाशमान (अदिते) दीनता और दुर्बलता के भावों से रहित (सरस्वति) सर अथवा प्रवाह परम्परा से जो श्रेष्ठ ज्ञान चला आता है उस को प्राप्त करने वाली विदुषी (महि) महान उदार भावों से युक्त (विश्रुति) बहुत कुछ जिसने श्रवण किया हुआ है ऐसी, हे बहुश्रुत देवि ! (अघ्न्ये) हे कभी न मारने वा तिरस्कार करने योग्य देवि ! (ते) तेरे (एता) ये सब इडा रन्ता आदि (नामानि) नाम हैं अर्थात् इन सब ऊपर कहे हुए गुणों से तू सम्पन्न होने के कारण इडादि नामों से पुकारी जाती है । वह तू (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये और (मा) मेरे लिये (सुकृतम्) जो शुभ कर्म है, उसका (ब्रूतात्) उपदेश कर । इस मन्त्र की विशेष व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं । एक सच्ची देवी घर में ज्योति का कांम देती है, हृदय में जिस समय अन्धकार छा जाता है वही चन्द्र का काम करती है, जिस समय पुरुष के अन्दर हीनता दुर्बलता के भावों का राज्य हो जाता है, तो वही सची देवी अदिति के रूप में उसको उत्साह दिलाती है जब पुरुष के अन्दर संकुचित स्वार्थ भावों की प्रधानता होने लगती है, तो सच्ची देवी उदार भावों का वहां प्रवेश कराती है, अपने ज्ञान के प्रकाश से वह संपूर्ण अन्धकार को दूर भगा कर पुरुष को सदा धर्म के मार्ग में प्रेरित करती है, इसी लिये ऐसी विदुषी देवी की सदा पूजा करनीं चाहिये, उस के उत्तम गुणों की सदा प्रशंसा करनी चाहिये, ताकि उत्तम सुख की प्राप्ति हो सके । यह भाव है जो यजुर्वेद के उपर्युक्त मन्त्र में स्पष्ट रूप से प्रकट किया गया है । मैं पूछता हूँ कि क्या देवियों के विषय में इतना उत्तम और पवित्र भाव किसी दूसरे धर्मग्रन्थ में पाया जाता है ? क्या सभ्य से सभ्य आधुनिक पुरुषों के ग्रन्थों में भी कहीं देवियों के विषय में इतने ऊंचे भाव का प्रकाश किया गया है ? यदि नहीं तो सामाजिक विकासवाद के सिद्धांत को मानते हुए वेदों को जङ्गलियों के गीत बतलाना कितनी पक्षपातपूर्ण और सारहीन बात है, यह स्वयं बुद्धिमान् विचार कर सकते हैं ।

(४) अथर्ववेद का १४ वां काण्ड सारा ही गृहस्थाश्रम विषयक है, जिस में पति पत्नी के सम्बन्ध और कतव्य के विषय में बहुत उत्तम उपदेश पाये जाते हैं, उन में से दो तीन ऐसे मन्त्रों का यहां उल्लेख किया जाएगा जिन से यह स्पष्ट है कि देवियों को अपने पतियों के प्रत्येक धार्मिक कार्य में सहयोग देना चाहिये और इस के लिये उत्तम ज्ञान का सम्पादन करना चाहिये ।

अथर्व १४ । १ । ४२ इस प्रकार है——

"आशासाना सौमनसं प्रजां सोभाग्यं रयिम् ।
पत्युरनुव्रता भूत्वा संनह्यस्वामृताय कम् ।"

अर्थ— हे देवि (सौमनसम्) उत्तम मन (प्रजाम्) उत्तम सन्तान (सौभाग्यं रयिम्) उत्तम भाग्य ऐश्वर्य इन सब की (आशासाना) इच्छा करती हुई तू (पत्युः) पति के (अनुव्रता भूत्वा) अनुकूल शुभ कर्म करने वाली हो कर (अमृताय) अमृतत्व की प्राप्ति के लिए (कम्) सुख को (सनंह्यस्व) बांध

अथवा सम्पादन कर। अनुव्रता होने का तात्पर्य यह है कि पति का जो अध्यापन प्रचारादि परोपकारार्थ उत्तम कर्म है उस में सहयोग देना अर्थात् कन्याओं को पढ़ाने और स्त्रियों के अन्दर प्रचार करने कार्य अपनी इच्छा से लेकर पति शुभ भावनाओं को पूर्ण करने में सहायता देना यह प्रत्येक पतिव्रता देवी का मुख्य धर्म है। इस धर्म का पालन करने से न केवल इहलोक और परलोक में ही सुख मिलता है, बल्कि पूर्णानन्द रूप मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकती है, यह भाव यहां सूचित किया गया है।

५. अपने पति सास ससुर आदि को सुख देना तथा घर के सब के कार्यों को अच्छी प्रकार करना यह तो देवियों का धर्म है ही, किन्तु इतने में ही उनके कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती, सारी प्रजा का कल्याण करना यह भी उनके कर्त्तव्य के अन्तर्गत है इस बात को समझने के लिए अथर्ववेद का निम्न लिखित मन्त्र विशेष विचारणीय है—

'स्योना भव श्वशुरेभ्यः
स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे
स्योना पुष्टायैषां भव॥'

अ० १४। २। २७

अर्थात् हे देवि (श्वशुरेभ्यः) श्वशुर आदि वृद्ध पुरुषों के लिए (स्योना) सुख देने वाली (भव) हो (पत्ये) पति के लिए और (गृहेभ्यः) घरवालों के लिए (स्योना) सुख देने वाली हो (अस्यै) इस (सर्वस्यै) सारी (विशे) प्रजा के लिए (स्योना) तू सुख देने वाली हो (एषाम्) इन सब पुरुषों की (पुष्टाय) पुष्टि अथवा उन्नति के लिए (स्योना भव) तू सुख देने वाली हो। इस मन्त्र के पूर्वार्ध में अपने घर के सब सम्बन्धियों को सुख देना स्त्री का कर्त्तव्य बताते हुए उत्तरार्ध में सारी प्रजा का कल्याण करना और पुरुषों की उन्नति में सहायता देना यह भी देवियों का कर्त्तव्य बतलाया गया है, वह अत्यन्त महत्व पूर्ण है और उससे उन लोगों के मत का समर्थन नहीं होता, जो केवल घर का कार्य भली प्रकार करना ही देवियों का धर्म है, घर से बाहर कार्य क्षेत्र में उन्हें उतरने की आवश्यकता नहीं ऐसा कहते हैं। क्यों कि बिना सामाजिक अथवा राष्ट्रीय काम किये देवियां कभी सारी प्रजा कल्याण नहीं कर सकतीं, जैसी कि इस मन्त्र में उन्हें आज्ञा दी गई है—

६. प्रत्येक शुभ कर्म को करते हुए पत्नी की अनुमति लेना वेद में आवश्यक माना गया है। महाभारत आदि पर्व, अ. ७४ में कहा है—

"अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा"।

अर्थात् पत्नी पुरुष के आधे शरीर के समान और वही सब से श्रेष्ठ मित्र है। उसी भाव को वेद में अनेक स्थानों पर सूचित किया गया है। उदाहरणार्थ अथर्ववेद ७। २०। ५ में कहा है—

"एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सु क्षेत्र-
तायै सुवीरतायै सुजातम्।
भद्रा ह्यस्य प्रमतिर्बभूव
सेमं यज्ञमवतु देव गोपा॥"

यहां इसी भाव को प्रकट करने के लिए कि विवाह सम्बन्ध निश्चत करने तथा अन्य कोई भी कार्य प्रारम्भ करने के लिये पत्नी की अनुमति लेना आवश्यक है, उसे अनुमति नाम से पुकारा गया है। मन्त्र का अर्थ यह है कि (अनुमतिः) जिसकी अनुमति आवश्यक है ऐसी यह देवी (इमं यज्ञम्) इस विवाह यज्ञ को करने के लिए (आजगाम) आई है। यह यज्ञ कैसा है, किस उद्देश्य से विवाह यज्ञ रचा गया है? (सुक्षेत्रतायै) उत्तम सन्तान के लिए एक क्षेत्र तैयार करने और (सुवीरतायै) उत्तम वीर पुत्रों की उत्पत्ति के लिए (सुजातम्) सुप्रसिद्ध बनाया

गया (अस्याः) इस देवी की (प्रमतिः) उत्तम बुद्धि (हि) निश्चय से (भद्रा प्रबभूव) कल्याण कारक है (सा) वह (देव-गोपा) परमात्म देव जिस के रक्षक हैं अथवा देवशुभ गुणों की रक्षा करने वाली यह देवी (इमं यज्ञम्) इस यज्ञ की (अवतु) रक्षा करे। यहां क्षेत्रादि की उपमा दे कर विवाह-यज्ञ का एक मुख्य प्रयोजन उत्तम वीर सन्तान का उत्पन्न करना है, यह भाव सूचित किया गया है। साथ ही जहां इस प्रकार एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह नहीं होता वहां उत्तम सन्तान भी उत्पन्न नहीं हो सकती, इस बात का निर्देश कर दिया गया है। वर वधू दोनों की पूर्ण प्रसन्नता से ही विवाह होना चाहिए इस बात पर जोर देते हुए वेदों में सैकड़ों स्थानों पर—

"सूर्या यत्पत्ये शंसन्तीम्" (ऋ. १० । ८५ । ६ तथा अथर्व १४ । १ । ६.)

'मोदमानौ स्वे गृहे' (ऋ. १ । ५ ।)

'आ रोह तल्पं सुमनस्यमाना (अ. १४ । २ । ३१ ।)

'परिष्वजस्व जायां सुमनस्यामानः' (अ. १४। २। ३६)

'हसामुदौ महसा मोदमानौ' (अ. १४ । २ । ४३)

इत्यादि शब्द आये हैं जिस में परस्पर प्रसन्नता पूर्वक विवाह करने तथा गृहस्थ के व्यवहार करने का स्पष्ट उपदेश है। जहां इस वेद की आज्ञा का पालन नहीं होता और वर वधू को एक दूसरे की अनुमति लिए बिना नाइयों या पुरोहितों द्वारा ऐसे ही कहीं से पकड़कर बांध दिया जाता है, वहां क्या परिणाम होता है इस विषय में मनु महाराज ने ठीक कहा है—

"यदि हि स्त्री न रोचेत, पुमांसं न प्ररोचयेत् ।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते ॥"

३ । ६१

अर्थात् यदि स्त्री प्रसन्न न रहे और पति को प्रसन्न न करे तो प्रसन्नता न होने से पुरुष में काम की उत्पत्ति व सन्तानों उत्पादन सामर्थ्य नहीं होता इस लिए वेदों में सर्वत्र विवाह सम्बन्ध का निश्चय माता पिता आदि पर न छोड़कर विवाहार्थी युवक पुरुष और युवति कन्या पर छोड़ा गया है, इस स्थापना की पुष्टि के लिए निम्नलिखित कुछ प्रमाण पेश करना पर्याप्त है।—

१. ऋ० १० । १८३ में युवति कन्या युवा अविवाहित पुरुष को इस प्रकार कहती है—

'अवश्यं त्वा मनसा चेकितानं—
तपसो जातं तपसो विभूतम्।
इह प्रजामिह रयिं रराणः—
प्रजायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥"

अर्थात् (पुत्र-काम) गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर के पुत्र की कामना करने वाले युवक, मैंने (मनसा) मन से (चेकितान) जानने वाले अथवा मुझे चाहने वाले (तपसः जातम्) सादगी में पले हुए और (तपसः विभूतम्) तप की विभूति से युक्त (त्वा) तुझ ब्रह्मचारी को (अपश्यम्) देखा है (इह) यहां (प्रजां) सन्तान और (इह) यहां गृहस्थाश्रम में (रयिं) ऐश्वर्य को लेकर (रराणः) रमण करता हुआ तू (प्रजया) प्रजा के साथ (प्रजायस्व) फिर उत्पन्न हो अथवा वृद्धि को प्राप्त हो।

"आत्मा वै पुत्र नामासि"।

शत १४ । ६ । ४ । २६

के अन्दर जो भाव हैं कि मानो पिता ही पुत्र के अन्दर प्रवेश करता है, वही यहां 'प्रजया प्रजायस्व' का भाव है। 'तपसो जातं तपसो विभूतम्' ये शब्द स्पष्ट उस युवक के ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त करने की सूचना देते हैं। इस प्रकार अपने गुणकर्मानुसार किसी युवक ब्रह्मचारी को कन्या पसन्द कर लेती है, तो वह भी उस के गुण कर्म स्वभाव को सर्वथा अनुकूल पाकर कन्या से कहता है,

"अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वा—

भाषा-तत्व

श्री स्वामी शंकरानन्द

भाषा अति आवश्यक साधन माना गया है। भाषा द्वारा व्यवहार, चेष्टा और व्यापार होता है। पशुओं की भाषा स्नायुओं की हरकत में पायी जाती है। यह भाषा वैखरी का विषय नहीं है। परम कृपालु सनातन पुरुष ने व्यवहारार्थ प्राणी, पशु और जीव-मात्र को स्नायु, रसना और नाना प्रकार की युक्तियां साधन स्वरूप में दी हैं। प्रेम, करुणा, क्रोध, कठोरता, कर्कशता, मृदुता, इत्यादि भाव, मूक चेष्टा और व्यापार द्वारा अथवा संकेत द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। डार्विन, हक्सले, विजविड और कोनिनकार आदि ने बताया है कि "भाषा ईश्वर का दिया हुआ उपहार नहीं है। शनैः शनैः ध्वन्यात्मक शब्दों और पशुओं की बोली से उन्नति करके इस दशा को पहुँची है।" किन्तु प्रो० नायर और प्रो० मोक्षमूलर आदि विद्वानों का अमूल्य अभिप्राय है कि 'मनुष्य की भाषा ध्वनि अथवा पशुओं की बोली से नहीं बनी'। अन्य विद्वानों का अभिप्राय है, कि भाषा के 'वास्तविक स्वरूप में परिवर्तन नहीं होता है' किन्तु केवल बाह्य स्वरूप में कुछ परिवर्तन होता रहा है। प्रो० मोक्षमूलर कहते हैं कि शब्द अनादि काल से बने बनाये हैं और वे ईश्वर की ओर से हैं। मनु आदि स्मृतिकार और वैदिक मन्त्र

यां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम्।
उपमामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्रजाय—
स्व प्रजाया पुत्रकामे ॥"

ऋ० १० । १८३ । २

अर्थात् (पुत्र कामे) हे पुत्र की कामना करने वाली कुमारि! (मनसा) मन से (दीध्यानां) मेरा ध्यान करती हुई (स्वायां तनू) अपने शरीर को (ऋत्व्ये) ऋतु-गामी होकर गर्भाधान के लिए (नाधमानाम्) प्रार्थना करती हुई—वा गर्भाधान की इच्छा करती हुई (त्वा) तुझको (अपश्यम्) मैं देखा है (उच्चा) उच्च भाव युक्त (युवतिः) युवावस्था वाली तू (माम उप बभूयाः) मेरे समीप आ अथवा मेरे साथ विवाह सम्बन्ध कर और फिर प्रजया) प्रजा के साथ (प्रजायस्व) वृद्धि को प्राप्त हो। यहां भी "मनसा दीध्यानाम्। अपश्यम् युवतिः" इत्यादि शब्दों से यह बात विल्कुल साफ स्पष्ट होती है, कि विवाह युवावस्था में और वर वधू की अपनी ही प्रसन्नता से होना चाहिए। माता पिता आदि से केवल अनुमति ले लेना पर्याप्त है। जहां इस प्रकार वर वधू एक दूसरे का चुनाव करते हैं, वहीं सच्चा स्थायी प्रेम रह सकता है, अन्यत्र नहीं। इस बात को देखिये ऋग्वेद के निम्न लिखित मन्त्र में कितनी स्पष्ट रीति से बताया है--

"कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सामित्रं वनुते जने चित् ॥

ऋ. १० । २७ । १२

अर्थात् (पन्यसा वार्येण) प्रशंसनीय श्रेष्ठ गुणों से युक्त (वधूयोः) स्त्री की कामना करने वाले (मर्यतः) मनुष्य के लिए (कियती योषाः) कैसी स्त्री (परिप्रीता भवति) अनुकूल होती है—कैसी स्त्री को एक गुणी पुरुष पसन्द करता (यत्) जो (सुपेशाः) सुन्दर रूप वाली (भद्रा) कल्याण और सुख देने वाली (वधूः) स्त्री (जने चित्) मनुष्यों के अन्दर से (स्वयं) अपने आप (मित्रं) अनुकूल मित्र अथवा साथी को (वनुते) चुनती है और चुन कर उसकी सेवा करती है।

इस विषय में अधिक प्रमाण देने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि विवाह के मन्त्रों में सुमनस्यमानौ मोदमानौ आदि शब्द इसी बात की सूचना देने वाले हैं।



द्रष्टा उपरोक्त 'ईश्वरीयकृति' का समर्थन करते हैं। 'सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्। वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संज्ञाश्च निर्ममे। मनु अ. १. २। आगे जाकर स्पष्ट किया 'तपो वाचं रतिञ्चैव कामं क्रोधमेव च। सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाःप्रजाः मनु अ.१.२५.। यथा इमां कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। वेद। अर्थात् भाषा का मूल सम्बन्ध समाज से घनिष्ट प्रतीत होता है। मनुष्य मात्र सामाजिक प्राणी की कक्षा में आगया है। अतः संभव है कि सामाजिक भाषा कोई एक समय ईश्वर-कृति के स्वरूप में, समाज मात्र की एक ही अथवा एक जैसी हो, ऐसे अनुमान को योग्य स्थान साहित्य में कुछ विद्वान् देते हैं। वेद में एक पद आता है 'संवदध्वं' जिससे विद्वान् ऐसा कहने पर उतर आते हैं कि 'पृथ्वी पर ६०० भाषायें हैं प्राचीन और अर्वाचीन मिलकर। और कहते हैं कि 'निस्सन्देह मनुष्य की मूल भाषा एक ही थी।' आध्यात्मिक दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो स्पष्ट होता है कि प्राणी मात्र के व्यवहार व्यापार और चेष्टा का मूल 'अहं' में और इसकी जाग्रत स्वप्न इत्यादि अवस्थाओं, जो कि इच्छा और आवश्यकता की निर्मात्रियां हैं, उन में पाया जाता है। अहं के आकार में वृत्ति एक ही है परन्तु अवस्था भेद से विविध इच्छा रूपी शरीर धारण करके, नानात्व के प्रवाह में 'पश्यन्ति' 'मध्यमा' और 'वैखरी'--'कारण', 'सूक्ष्म' और 'स्थूल' स्वरूप में बहती जाती है। इच्छा विचार रूप से, शब्द में परिणत होकर, बाहिर प्रकाशित होती है। अतः कुछ विद्वान तो यहां तक कहते हैं कि 'भाषा मनुष्य का एक आत्मिक साधन है'। क्यों कि महर्षि पतञ्जलि ने स्पष्ट बताया है कि प्रत्येक प्राणी और पदार्थ मात्र का और प्रत्येक पदार्थ की त्रिपुटी का 'गुरु' वह ही एक है-'स एव पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'। योगसूत्र। और यह 'गुरुः' काल से अविच्छिन्न है।

उपरोक्त विचारश्रेणी से स्पष्ट होता है कि भाषा और वर्ण जिससे स्वर-विज्ञान का घनिष्ट संबन्ध है, यह केवल ऐतिहासिक विषय नहीं है। धार्मिक इतिहास का अवलोकन पर्याप्त नहीं है। सत्य संस्कृति, सत्य सभ्यता, और सत्य साहित्य की रचना, विकास और उन्नति सार्वजनिक स्थान और सार्वभौमिक पद तब प्राप्त कर सकते हैं, जब शिर, हृदय और हस्त (त्रिपुट्यात्मक) के शुभ और अखण्डित सहयोग का सौभाग्य जिस काल में हो। एक का भी असहयोग हो तो उक्त प्रकार के साहित्य में, सस्कृति में और तत्कालीन सभ्यता में त्रुटि और ग्लानि आ जाती है ऐसी त्रुटि वाला 'सिविलीजेशन' राजसिक और तामसिक कोटि का होगा। सात्विक 'सिविलीजेशन' की संस्कृति, साहित्य और सभ्यता में हस्त, हृदय और सात्विक बुद्धि का सहयोग अनिवार्य है। यह 'सिविलीजेशन' एक-देशीय नहीं होगा, किन्तु सर्वदेशीय होगा, और नाना प्रकार के दोषों से मुक्त होगा। अखिल विश्व की जाति, धर्म और रंग की अपेक्षा से वह अदूषित और ज्ञान का प्रकाशक होगा। अतः सर्वदेशीय और सार्वभौमिक सिविलीजेशन का अध्ययन भिन्न २ दृष्टिकोण से, करने से, विषय का ज्ञान और अनुभव सुदृढ़ होता है। इस विचार की पुष्टि के के लिए स्वर-विज्ञान का धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजकीय, व्यावहारिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक, और भौगोलिक आदि की दृष्टि से अध्ययन होना चाहिए। उपरोक्त वैज्ञानिक शाखाएँ,नाना प्रकार की विविध इच्छाएँ आवश्यकतायें और तद्भव प्रधान व्यवहारों की पूर्ति के प्रकारों की नीतिरीति का प्रतिपादक होती है। अतः संस्कृति, साहित्य और सभ्यता जो सीविलिजेशन के अंग हैं, उनका अवलोकन, 'सिंहावलोकन' न्याय न भूलते हुए, करना अनिवार्य है इस प्रकार के

सामान्य अवलोकन से, हस्तगत विषय का सांगोपाङ्ग अध्ययन, कतिपय अंश में होने का संभव है। अर्थात् एक ही 'शब्द' के पद के संयोगानुसार एक से ही अधिक भी अर्थ होते हैं। वैदिक स्वर विज्ञानानुसार पदार्थ का बोध उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों की विशेष घटना से संबन्धित है। उदात्त और अनुदात्त स्वर के उच्चारण पर समास की 'अस्ति' निर्भर है' और समास के अनुसार पदों का बोध होता है। उदाहरण के लिए 'इन्द्रशत्रु':-यह समास दो पदों से बना है 'इन्द्र और शत्रुः। यदि आद्य पद पर उदात्त रखा जाय, और तदनुसार स्वर का उच्चारण किया जाय तो बहुव्रीहि समास हो जाता है। इस समास द्वारा इन्द्रशत्रुः का अर्थ इन्द्र ही शत्रु है जिसका ऐसा होता है। किन्तु उदात्त अन्त्य पद पर हो तो तत्पुरुष समास होता है और 'इन्द्र का शत्रु' ऐसा अर्थ होता है। यह तो वैदिक सामान्य और साधारण स्वर-विज्ञान है, जिसका आभ्यन्तर और बाह्य प्रयत्नों से संबन्ध है, ऐसा आगे जाकर भान होता है, उसका संकेत से उल्लेख किया है। ऐसा क्यों होता है ?

अथवा उक्त प्रकार से स्वर-स्थानान्तर से, पदों में, अर्थभेद क्यों होता है; अथवा यह स्वाभाविक हो जाता है ? यह निर्णय करना, सामान्य बुद्धि से परे प्रतीत होता है। किन्तु अल्प मत्यानुसार, अनुमान की सहायता से स्पष्टीकरण होता है कि, एक धातु का एक से अधिक अर्थ होना व्यावहारिक दृष्टि से और व्यावहारिक अवस्था में स्वर-विज्ञान की नीति-रीति का प्राणाधार है ! यह तो महर्षि पाणिनि आदि व्याकरणाचार्यों की अमूल्य कृतियों से स्पष्ट होता है। यह भी सोचना अस्थानीय नहीं होगा कि एक धातु का एक से अधिक अर्थ क्यों होता है ? 'इटोमोलोजिस्टस'--निरुक्तकार बताते हैं कि एक वर्ण का, अक्षर का एक से अधिक अर्थ होता है। यास्कमुनि ने इसका अभयता से प्रतिपादन करके स्पष्ट किया है कि 'कः कमनीयो भवति, सुखो भवति, क्रमणीया च, तद्यथा कः कमनो वा क्रमणा वा सुखो वा इति'। निरुक्त दैव कांड ४.२२. । मकार मनक्तेर्वा दहतेर्वा। निरुक्त, दैव-कांड- १—१४ । शिवभक्त नन्दिकेश्वर ने १४ शिवसूत्रों के प्रत्येक वर्ण 'अक्षर' का अर्थ बताया है। तन्त्रशास्त्रों के निर्माताओं ने प्रत्येक वर्णमाला के अक्षरों का पाञ्चभौतिक स्वरूप बताया है इससे अतिरिक्त एक छठे तत्व 'मानसिक' तत्त्व की भी आलोचना की है। अर्थात् विश्व का 'व्यक्त' स्वरूप, पञ्चीकृत पञ्चतत्त्वों का संकोच और विकास है, और यह 'व्यक्त' विश्व 'समनस्' है। प्रत्येक 'अक्षर' स्व स्वरूप से 'नित्य' है, ऐसा भाष्यकार आदि का अभिप्राय है। अक्षरं न क्षरं विद्यात्। पुनः अक्षर वर्णान्तरगत सुप्त अवस्था से मुक्त होकर सक्रिय अवस्था के प्रति आलिङ्गनोन्मुख सदैव रहता है। अतः वर्ण मात्र व्यक्त-विश्व के नाना प्रकार के ज्ञान-विज्ञान के परिचय और विनिमय में सदैव व्यवहार और व्यापार रूप से सहायता प्रदान कर के स्व-स्वरूप में वर्ण की अक्षरता में लीन हो जाता है।

ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, व्यावहारिक, भौगोलिक और नैतिक दृष्टि से वर्णोत्पत्ति इन्द्र, प्रजापति, यम, महादेव आ० द्वारा हुई है, ऐसा स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। 'सर्वे स्वरा इन्द्रस्यात्मनः'। 'सर्वे उष्माणः प्रजापतेरात्मनः'। सर्वे स्पर्शा मृत्योरात्मनः', सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद् २-२२-३.। 'अ' कार आ० २४ स्वरों का कर्ता इन्द्र है। स्वर बल-प्रदायक है, क्यों कि 'प्राणस्यात्मनः' देहावस्थानीयः'। उष्माक्षर-'शषसहाः' का प्रजापति-कश्यप जनेता है। स्पर्शाः 'क' से 'म' पर्यन्त मृत्यु से

उत्पन्न हुये हैं, अथवा महादेव से वर्णित है, और 'य र ल व' भी स्पर्श में अन्तर्गत है, ऐसा भाष्यकार का अभिप्राय है।

आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाये तो, चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुः ब्राह्मणा ये मनीषिणः .... गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ऋग्वेद -११३४-४५ अथर्ववेद -६-२५-२७-२६-१। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि वर्णोच्चार-वर्णज्ञान, जो वाणी का विषय है वह तो आन्तरिक चैतन्य का भौतिक स्फार है। ब्रह्म साक्षात्कार का एक साधन है। वर्ण केवल स्वर विज्ञान (फोनेटिक्ट) का विषय नहीं है किन्तु चैतन्य के स्फुलिंग है जो अखिल विश्व को प्रकाशित करते हैं।

पौराणिक कथाओं के अनुसार अखिल विश्व अदिति और दिति बड़े वंशों से चला आया है। सूर्यवंश और चद्रवंश की राज्य वंशावलिओं में आसुरी और दैवी प्रकृति वाले राजाओं महाराजाओं और चक्रवर्तिओं का वर्णन करते हैं। 'यथा राजा तथा प्रजा' उक्तयनुसार, नीति और रीति में फरक पड़ जाता है, और तदनुसार सिवीलिजेशन में भी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि, एक प्रकृतिवाले समाज का आचार-विचार, नीति-रीति, अन्य प्रकृतिवाले समाज के अनुकूल होना प्रायशः सम्भावना से बाहिर है। अतः एक वस्तुमें और विषय में, नानात्व का दोषारोपण हो जाता है। अन्य अन्न पान और भौगोलिक प्रभाव की अनिवार्यता को भूलना नहीं चाहिये। मनुस्मृति आ० में, विद्वानों के कथनानुसार प्रतिपादित है कि कुछ कार्य वैदिक संस्कृति को छोड़ कर विदेश में गये, और विदेशीय संस्कृति के रूप में रँगाकर, अपनी संस्कृति को भूल गये और एक मिश्र रुप को उत्पन्न किया।

इस मिश्र संस्कृति द्वारा, भारत की प्राचीन संस्कृति में, समीप के भविष्य में आदान-प्रदान की नीति द्वारा, भारत के बहुत विधानों में नवीनता की झलक और झाँकी होने लगी हैं। धार्मिक विषय साम्प्रदायिक बनने गगे। सनातन धर्म नाना प्रकार की भावनाओं से पुष्ट होने लगा। विदेशी राज्यों और राजाओं का प्रभाव और विविध प्रकार के विनियम का आरम्भ हो लगा। और एक ही पदार्थ को अन्य प्रकार से देखना और समझना शुरु हुआ। इस दृष्टि से आचार विचार में भेद पड़ने और आने से शारीरिक और मानसिक और अध्यात्मिक विचारों में समयानुकूल संकोच और विकास को अवकाश मिला अतः बहुशः जीवन में परिवर्तन होना नैसर्गिक रचना हो गयी। इस परिवर्तन की संम्भावना कितनी प्रबल और अनिवार्य है, इसका उदाहरण ढूँढ़ने को दूर नहीं जाना है। व्यावहारिक और भौगोलिक शब्दों में बहुत परिवर्तन अंग्रेजों की छत्रछाया में हो गया है- जैसे गंगा- ' गेन्झीस ' यमुना-जमना- ' जमुना; मथुरा- 'मुतरा', मुम्बा- 'बोम्बे-बम्बई; खंभात- 'केम्बे' बड़ादेश- 'बरोडा' भरुच- 'ब्रोच,गद्दरी - गदषी' ढुम 'टुम ' आ०। प्राचीन काल में भी ऐसा ही शब्दों में परिवर्तन हुआ है और भविष्य में भी राज्य संस्कृति के अनुसार परिवर्तन होता रहेगा, क्यों कि महाजनो येत गतः स पन्थाः। कांचन राजा की छत्र-छाया में भर्तृहरि को कथनानुसार -' स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते।,

ब्रह्मावर्त और आर्यावर्त का भारत देश और 'सिन्धु' स्थान के स्थान पर ' हिंदुस्तान ' हुआ और 'सिन्धु' के स्थान पर 'हिन्दोस' ' इन्डोस ' और आगे जाकर ' इन्डिया ' हुआ। इसी प्रकार से भौगोलिक प्रदेशों के नामों में भी परिबर्तन इतना हो गया कि,

आजकल प्राचीन देशों के नामों, — जो राजाओं, प्रजाओं, महान् पुरुषों और दिव्यात्माओं अथवा सरिता, पहाड़ आ० से संबन्धित थे उनको सुनते ही आश्चर्य पैदा होता है। ऐसे प्राचीन देशों और नदियों का भौगोलिक-पार्थिव-स्थान तो विद्वान् द्वारा पता लगता है। भारत वर्ष में प्राचीन समय से, दैवी और आसुरी राज्य-सत्ता का द्वेष भाव चला आया है। दोनों संस्कृति की छाया का प्रभाव सामाजिक और नैतिक नीति और जीवन पर, सभ्यता और साहित्य पर आचार और विचार की शिक्षा प्रणाली पर, मुद्रित है। हिन्दुस्तान पर विदेशियों का आक्रमण हुआ, लूटमार हुई, राज्य और साम्राज्य हुए। उनकी शीक-शक शिथियन, हून, दरद, तर्क, मोगल, पठान, मुसलमान और अंग्रेज आ० राज्यों की सभ्यता, साहित्त, संस्कृति का प्रभाव भारतवासियों पर पड़ा और तत्तद् भावों का मिश्रण अनिवार्य हो गया। अतः हमारे बोलचाल में उठने बैठने में भी बहुत परिवर्तन हो गया। वैदिक काल की सभ्यता, में असभ्यता की झलक को योग्य स्थान मिला और वैदिक शब्दों में अशिक्षित वर्ग द्वारा, प्राकृत और तन्तद्देशी यग्राम्य शब्दों के प्रयोग आने लगे। आर्ष प्रयोग अन्य प्रयोगों से अलग और स्वतन्त्र स्थान प्राप्त करने लगे। सामाजिक शब्दों के प्रयोगों का आरम्भ हुआ जो सामाजिक व्यवस्था के ऋणी हैं। 'सहनाववतु' संवदध्वं आ०। तत्पश्चात् बौद्धों के ज़माने में प्राकृत शब्दों का प्रयोग हुआ और सामान्य संस्कृत शब्दोचार में परिवर्तन होने लगा। बौद्धों की पाली पट्टिका नाम के ग्रन्थ में दशक्लेशों का वर्णन आता है। उन क्लेशों के नामों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि, प्राकृतभाषा के शब्दों में और मूल संस्कृत शब्दों में, और शब्दोचार में कितना फरक पड़ जाता है, इसका ख्याल आता है। सं० लोभः, मोह., मानः,
प्रा० लोभो, मोहो, मानो

सं०– क्लेशः दोष विचिकित्सा
प्रा०–किलेशो दोषो विचिकिच्छा

आदि प्राकृत में परिवर्तन हुआ। यदि इसी प्रकार से, भिन्न भिन्न साम्राज्यों की संस्कृति के प्रभाव से, शब्दों में परिवर्तन और शब्दोच्चार में परिवर्तन होता रहा है तो, वर्णोच्चार में भी ऐसे अनिवार्य परिवर्तन की सम्भावना है। अतः एक ही वर्ण, एक से अधिक प्रकार से उच्चार किया जा सकता है और किया जाता है, जिसका स्पष्टीकरण व्याकरणाचार्यों ने अपने दृष्टिकोण से किया है। उपरोक्त शब्द परिवर्तन और तत्-सम्बन्धी वर्णोच्चार-भेद राजकीय, सामाजिक, नैतिक और व्यावहारिक दृष्टि से बताने का प्रयत्न किया है।

संस्कृत भाषा के वर्ण 'स' का 'जन्द' भाषा में 'ह' 'ह' वर्ण का 'ज', 'श्व' का 'स्प' 'भ' का 'थ' और 'भ' का 'फ' उच्चारण होता है। उदाहरण–
सं०—असुर, सोम, सेना, हस्त, होता, अश्व, विश्व, मित्र, मन्त्र, गृभः।
जन्द—अहुर, होम, हेना, जस्त. जोता. अश्त. विस्प मिथ्र. मन्थ्र. ग्रिफत।
सं०—.सहस्त्र. सप्त, मास. हस्त. बाहु. अश्व. चन्दन. उष्ट्र. पुष्ट. गौ।
पारसी—हजार. हप्त. माह. दस्त. बाजु. अस्प. सन्दल. उस्तर. पुख्त. गाय।

सं० —सुर. सिंह. मन्यु. महत्. श्रम. द्यौः।
अरबी—हुर. हैसिंम. मन्कअ. माजिद. वहम. यौः।
सं०—श्वान अश्मन् दश
यूनानी—क्यान अकमन् डेक
सं०—द्यौः उषस् नक्त
ग्रीक–ज्योस योस् नाक्त
सं०–आप आत्म नर अक्ष
मिश्रभाषा–आप आत्मु ना अख

तुलसी-कर्पूर

उत्पादन विधि एवं औद्योगिक सम्भावायें

शीला बड़ोला

भारतीयों के जीवन में प्राचीन काल से ही कर्पूर का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। उनके सांस्कृतिक, सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों द्वारा कर्पूर की उपयोगिता सर्वदा सिद्ध होती रही है तथा रहेगी। धार्मिक कार्यों में (विशेषत: पूजा में) कर्पूर के साथ अगरु और चन्दन का समावेश रहता है। अगरू और चन्दन तो हमारे देश की मुख्य वनस्पतियों में से हैं, परन्तु कर्पूर के लिए हमें सदा से विदेशों पर निर्भर रहना पड़ा है।

कर्पूर तीन प्रकार के हैं— (१) भीमसेनी कर्पूर। यह मलाया के ड्रायोवलानेप्स एरोमेटिका से प्राप्त होता है। (२) नागाई कर्पूर। ब्रह्मा तथा चीन के ब्लूमिया बाल्समिफेरा से प्राप्त होता है तथा (३) जापानी कर्पूर। यह चीन जापान तथा फार्मोसा के सिनेमोमम केमफोरा से प्राप्य है। यद्यपि ये तीनों प्रकार के कर्पूर उपयोग में आते हैं परन्तु आजकल जापानी कर्पूर ही विशेष प्रचलित है और यही ब्रिटिश फार्मेकोपिया के अनुसार प्रयोग किया जाता है, अन्य नहीं।

इस कर्पूर के व्यापार में जापानियों का एकाधिकार रहने के कारण इसका नाम जापानी कर्पूर हो गया। यह कर्पूर १६ वीं या १७ वीं शताब्दी में जापान ने सिनेमोमम केमफोरा से उत्पन्न किया। १६ वीं शताब्दी में चीन जापान युद्ध में फार्मोसा जापान के अधिकार में आ जाने के कारण, इस व्यापार में उसका आधिपत्य स्थापित हो गया। उस समय से इस कर्पूर का मूल्य जापान की इच्छा पर घटता तथा बढ़ता रहा और क्रमशः उसकी उपयोगिता में वृद्धि होती रही। यह सेलुलोइड, फोटोफिल्म, विस्फोटक पदार्थ (धुवां रहित बारूद) आदि के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रखने लगा। इन उद्योग धन्धों में भीमसेनी तथा नागाई कर्पूरों से सफलता प्राप्त करना असम्भव था। जापान के एकाधिकार से प्रेरित होकर पाश्चात्य देशों ने अपना ध्यान अन्य कृत्रिम कर्पूर बनाने में लगाया। परिणामतः वे तारपीन के तेल से कृत्रिम कर्पूर बनाने में सफल हुए। जर्मनी, अमेरिका, फ्रांस तथा रूस आदि देशों ने आरम्भ में निजी उपयोग के लिये कर्पूर बनाया। और वे अल्पकाल में ही अन्य देशों को निर्यात कर अपनी आर्थिक अवस्था में भी सुधार कर सके।

मानव-समाज की प्रगति के साथ साथ कर्पूर के

सं०—स्थान जन होम द्यौ
चीनी—स्तान जिन द्योम तौ
सं०—उद्र केश ध्यान
जापानी—ओउशी के जेन
सं०—इह नीर राजा गौ मंजु मेष अटवि
द्राविडी—इ नीलु राजु आय मंचि मेक अडवि
सं०—पितर उद्र नक्त हृत् भ्रू क्रूर तरु पथ स्वेद ऋत मिश्र
अंग्रेजी---फादर ओट्र नाइट हार्ट ब्राऊ क्रुअल ट्री पाथ स्वेट राइट मिक्स

उपरोक्त भाषाओं के शब्दों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि 'अक्षर' 'वर्ण' नित्य होते हुए भी, भिन्न भिन्न देशों के शब्द प्रयोगों में और शाब्दिक-विधानों में भेद पाया जाता है।



उपयोगों में वृद्धि होती गई। यह केवल औषधियों तथा धार्मिक कार्यों तक ही सीमित न रह कर अब अन्य औद्योगिक धन्धों में भी महत्वपूर्ण स्थान लेने लगा। सेलुलोइड, फोटोफिल्म, विस्फोटक, कृमिहर, आतिशबाजी, शृङ्गार आदि के साथ साथ कपूर के तैल के प्रयोग की रंग-रोगन आदि बनाने में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है।

दुर्भाग्य की बात यह है कि इतने उपयोग की वस्तु होने पर भी भारत कर्पूर का आयात ही करता रहा है। भारतीयों ने उसके उत्पादन की चेष्टा प्रथम विश्व-महायुद्ध के पूर्व कभी नहीं की। भारतीयों को इस युद्ध में विस्फोट पदार्थों तथा फोटोफिल्म की विशेष आवश्यकता अनुभव हुई। युद्ध से पूर्व प्रति वर्ष २,०००,०० पौंड कर्पूर केवल औषधि और हवन पूजन आदि के लिए आयात करते रहे। युद्ध छिड़ने पर इसका आयात एक-दम बन्द होगया जिसके कारण न केवल हमारे प्रतिदिन के कार्यों में असुविधा हुई वरन विस्फोटक व फोटो-फिल्म जैसी युद्ध-आवश्यकीय वस्तुओं के बनाने में भी बाधाएँ उपस्थित हुईं और तभी आवश्यकता आविष्कार की जननी वाली कहावत के अनुसार भारतीयों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ।

जापानी कर्पूर का वृक्ष (सिनेमोमम केमफोरा) १६ वीं शताब्दी में भारत में लगाया गया था परन्तु उसकी ओर किसी ने औद्योगिक दृष्टिकोण से ध्यान नहीं दिया। उस समय से अब तक यह केवल सजावट के लिए एक सुन्दर वृक्ष के विचार से अथवा उद्यानों की शोभा बढ़ाने के लिए ही उपजाया जाता रहा। इस वृक्ष से कर्पूर प्राप्त करने में साधारणतया भारतीय आयुमान की दो पीढ़ियां लग जाती हैं। इसी दीर्घ प्रतीक्षा के कारण ही इसके प्रति वैज्ञानिक उदासीन रहे। वे कर्पूर के लिये उस संकट काल में पचास वर्ष की प्रतीक्षा न कर अपना मस्तिष्क उस गवेषणा पर दौड़ा रहे थे जिससे शीघ्रातिशीघ्र कर्पूर की समस्या सुलझ जाए।

इस ओर अविरल परिश्रम के पश्चात् देहरादून की वन्य अनुसंधान-शाला के वैज्ञानिक किञ्चित् सफल हो पाए। पहले तो उन्होंने अनेक उद्भिजों का विश्लेषण किया जिसमें वे असफल रहे। वन अनुसन्धान-शाला, देहरादून तथा भारतीय विज्ञान-शाला, बंगलौर के वैज्ञानिकों ने तत्पश्चात् जर्मनी, अमेरिका, फ्रांस, रूस आदि देशों में विविध प्रकार के कृत्रिम कर्पूर बनाए जाने के ढंग का अनुसरण किया। इस ओर हमारे वैज्ञानिक कुछ सफल रहे। वैज्ञानिकों द्वारा तारपीन के तेलों का विश्लेषण करने से पता चला कि चीड़ के तारपीन में कर्पूर विद्यमान है परन्तु इस सफलता की प्रसन्नता के साथ साथ निराशा भी हुई कि उसमें कर्पूर की मात्रा अत्यल्प है और उपयोग में वह अल्पव्ययबहुत भी है। अन्य विश्लेषणों से पता चला कि यद्यपि कैल (पाइन) के तारपीन में कर्पूर पर्याप्त है परन्तु शीत स्थान की उपज होने के कारण कैल के बिरोजे की प्राप्ति बहुत कम है जिस से कर्पूर निष्कासन औद्योगिक दृष्टि से उपयोगी नहीं है।

इसी बीच वैज्ञानिक संसार ने एक अन्य महत्वपूर्ण पौधे की खोज की जिसके पत्तों द्वारा कर्पूर-युक्त तैल की प्राप्ति होती है। इसका नाम कर्पूर तुलसी है। यह क्षुप तुलसी जातीय है और पूर्वी अफ्रीका के केनिया प्रदेश की एक वन सम्पत्ति है। अतएव इस वन सम्पति का शुद्ध कर्पूर व्यापारिक क्षेत्र में आया और इसके बीजों की मांग संसार के प्रत्येक कोने से होने लगी। भारत में यह बीज सर्वप्रथम वन-अनुसंधान शाला, देहरादून की रसायन शाला एवं गौणव्य सम्पद् शाखा" के अध्यक्ष डा० श्रीकृष्ण द्वारा लाया गया

और उसकी खेती आरम्भ की गई। बड़े हर्ष का विषय है कि वन अनुसंधान शाला, देहरादून, की इस खोज महत्व पूर्ण स्थान है। इस संस्था द्वारा खोज करने पर तथा भारत के भिन्न भिन्न स्थानों में इसकी खेती करने पर यह सिद्ध हो गया है कि यह क्षुप भारत के किसी भी स्थान में उग सकता है। यह एक तेजवन्त क्षुप है। इसको कीटाणुओं द्वारा हानि पहुँचने की कोई सम्भावना नहीं है। गाय, बैल, भैंस; भेड़, बकरी आदि जानवर भूल कर भी इसकी ओर नहीं देखते। इस कारण यह क्षुप वनों के समीप लगाने में उपयुक्त है।

कपूरतुलसी की खेती — इस क्षुप के पत्तों से कपूर-युक्त तैल प्राप्त होता है। कपूर युक्त तैल की अधिकाधिक मात्रा प्राप्त होना उपयुक्त ऋतु स्थान जलवायु आदि पर निर्भर है। निम्नलिखित पंक्तियां इसी को स्पष्ट प्ररती है।

कपूर तुलसी किसी भी धरती में उग सकता है। इस को अधिक पत्तियां प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इसके काश्त में पानी की कमीं न हो। इस कारण सिचाई वाली भूमि अधिक उपयुक्त रहती है। इसके अतिरिक्त यदि धरती नमी लिए हुए हो तो सोने में सुगन्ध की कहावत चरितार्थ हो सकती है। इस उपयुक्तता के विचार से तराई तथा भावर का क्षेत्र अति उत्तम है।

इस क्षुप का बर्फीले स्थानों में जीवित रहना असम्भव है। गहन अध्ययन के पश्चात् ज्ञात हो गया है कि क्षुप लगभग तीन चार हजार फीट की ऊंचाई तक उग सकता है।

कपूर तुलसी के क्षुप कड़ी धूप या अधिक वर्षा से नष्ट नहीं होते। पाले से उनको अवश्य हानि पहुँचती है।

कपूर तुलसी का क्षुप बहुत मजबूत होता है। उसकी उत्पति दो प्रकार से होती है :—

(१) साधारण रीति से बीज बो देना :- एक औंस बीज एक एकड़ भूमि के लिये पर्याप्त है। यदि पानी की कमी न हो तो बीज मार्च मास के दूसरे तीसरे सप्ताह में बो देना चाहिये। बीज बो देने से पहले खेत में डौल बनाना ठीक रहेगा। कपूर तुलसी के बीज बहुत बारीक होते हैं इस लिए बीजों में दस गुना रेत मिलाकर बोना चाहिये। बीज़ डौलों में ही छिड़कना चाहिए और नालियों द्वारा सींचना चाहिए। मोटे फुव्वारे से पानी देना हानिकारक है क्योंकि मोटे फुव्वारे से पीनी सीधा बीजों पर पड़ने से उनके घुल जाने का डर रहता है। इसलिए यही आवश्यक है कि नमी नीचे से पहुँचती रहे और बीजों के घुलने तथा बहने का डर ना रहे। फिर सूखे पत्ते या बारीक खाद से ढक देना चाहिए ताकि पाले से इन्हें हानि न पहुँचे।

बीज उगने में पांच से दस दिन तक लगते हैं। जैसे २ सिंचाई की आवश्यकता हो पानी देते रहना चाहिए। पौधे यदि अधिक उग गये हों तो उनमें से कुछ पौधे निकाल कर अन्य स्थान पर लगा देना चाहिए। पौधे साधारणतया १ फुट की दूरी पर और डौले २ फीट के अन्तर पर होनी चाहिए।

(२) पौधे लगाना :- यदि पानी की कमी हो तो पहले पौद उगानी चाहिए। यह पौद तत्पश्चात् वर्षाऋतु के आरम्भ में खेतो में लग नी चाहिए।

पत्तियां अधिक मात्रा में प्राप्त करने के लिए खाद देना आवश्यक है।

फसल :- मार्च में बोई गई कपूर तुलसी की फसल सितम्बर मास में काटी जा सकती है फसल पौधों में फूल निकलने से पहले ही काट लेनी चाहिए। इस क्षुप की हम साल में तीन फसल प्राप्त करते हैं। पहली फसल सितम्बर में दूसरी

दिसम्बर में तथा तीसरी अप्रैल मास में। पौधे धरती से चार-पांच इंच की ऊँचाई छोड़कर काटे जाने चाहियें। जिससे इनकी मौल फिर काटी जा सके। शीत स्थानों में वर्ष में प्रायः दो ही फ़सलें काटी जा सकती हैं।

कपूर उत्पादन – फसल काटने के बाद पत्तों सहित टहनियों को किसी स्थान पर एकत्रित कर देना चाहिए। सूखने पर पत्तों को टहनियों से पृथक कर लेना चाहिए। क्योंकि पत्तों ही से कपूर युक्त तेल प्राप्त होता है। पत्ते कहीं भी एकत्रित किये जा सकते हैं। सड़ने या गलने से इसमें कपूर की माला में कमी नहीं होती। स्रावण (डिस्टिलेशन) क्रिया द्वारा इन पत्तियों से कपूर उत्पादित होता है, कपूर की मात्रा अधिक प्राप्त करने के लिए स्रावण-क्रिया शरद् ऋतु में की जाती है।

अमेरिका के वैज्ञानिकों के अनुसार अच्छे स्थानों में साल में तीन फसल काटने से प्रति एकड़ १२०० मन से १५०० मन तक पत्तियां और टहनियां प्राप्त होती हैं। पत्तियों को टहनियों से अलग करने में लगभग आधा भार रह जाता है, और इस प्रकार प्रति एकड़ ६०० मन से ७५० मन तक पत्तियां उपलब्ध होती हैं। सूखने पर इन पत्तियों का भार काफी कम हो जाता है जो कि प्रति एकड़ १२० मन से १५० मन तक रह जाता है। इन सूखी पत्तियों में पांच प्रतिशत तैल मिला हुआ कपूर प्राप्त होता है। इस तैल से लगभग ७७ प्रतिशत कपूर निकल सकता है।

इन पत्तियों का भाप द्वारा स्रावण किया जाता है। इस क्रिया में ठंडे होने पर कपूर शीतक (कण्डेन्सर) में जम जाता है और तेल अलग बर्तन में एकत्र हो जाता है। शीतल चौड़े मुंह वाली एक नली होती है जिसमें दो स्तर होते हैं। बाहरी और भीतरी स्तर के बीच कपूर जमता है। भीतरी स्तर खोखला बेलनाकार होता है जिसमें से ठंडे पानी की धारा प्रवाहित होती है जो कि कपूर के जमने में सहायता करती है। इस तरह कपूर शीतक में जम जाता है और तेल नीचे बोतल में एकत्र हो जाता है। यह स्रावण क्रिया दो घंटे में समाप्त होती है। इसके पश्चात् शीतक खोलकर उसमें से जमा हुआ कपूर निकाल लिया जाता है और तैल को छान कर अलग रख दिया जाता है। तेल के ठंडा हो जाने पर उसमें कपूर की कुछ और मात्रा निकाली जाती है। कुछ कपूर तैल के विश्लेषण द्वारा भी प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार लगभग ७७ प्रतिशत कपूर प्राप्त हो जाता है।

कपूर को साफ़ करने के लिए उसे कोयले और चूने के साथ एक कढ़ाई में मिलाते हैं। यह कढ़ाई बालुका ऊष्मक (सैण्डबाथ) के ऊपर रखी जाती है। इसे १६० सेंटीग्रेड तक १५–२० घंटे गर्म किया जाता है। साफ कढ़ाई में ऊपर गुम्बद सा कांच का ढकना रख देते हैं। साफ कपूर इस कांच की दीवारों पर जम जाता है। यह कपूर बाजार में अच्छे भाव पर बेचा जाता है। यद्यपि चेष्टा यही है कि तुलसी कपूर की सभी ज्ञातव्य बातों का समावेश हो जाए फिर भी यदि इस विषय पर अधिक जानकारी अपेक्षित हो तो यह वन, अनुसंधान, शाला देहरादून के वार्षिक-विवरणों का अध्ययन करके प्राप्त करनी चाहिए।



दूसरों के कामों में हस्तक्षेप

प्रो० रामचरण महेन्द्र एम. ए.

अपनी महत्ता में अखण्ड विश्वास—कोई व्यक्ति अपने रहन सहन, चीज़ों के इधर उधर रखने, सोने जागने या भोजन करने के तरीकों, बोल चाल, वस्तुओं के चुनाव में जिस प्रकार से कार्य करता है, वे उसकी भावना से प्रायः परिचालित होते हैं। यदि आप अपने तर्क द्वारा उन बातों की असत्यता, या उत्तम मार्ग, अच्छी आदतों, या दिनचर्य्या के विषय में हस्तक्षेप करें, तो आपकी सर्वथा उचित तर्कपूर्ण और पूर्णतः न्याय संगत बात भी दूसरे को बुरी मालूम होगी। कारण, कोई व्यक्ति यह पसन्द नहीं करता कि आप उसकी योजनाओं, रहन सहन के तरीकों, या आदतों में हस्तक्षेप करें।

मान लीजिए, आप दूसरे के परिवार में मेहमान की हैसियत से जाते हैं। उसका कमरा, चीज़ों का इधर उधर रखना, कमरों में होने वाला कार्य, सामान, या उपयोग आपको पसन्द नहीं है। आप उसमें कुछ सुधार कराने के इच्छुक हैं। आप कहते हैं, अमुक कमरे को स्टोर बनाइये, अमुक में बैठक रखिये, अमुक स्थान पर भैंस गाय इत्यादि पशु बांधा कीजिये, अमुक स्थान पर रसोई रखिये, या कुट्टी सन्नी किया कीजिये — इन तर्क पूर्ण सलाहों के सम्बन्ध में स्मरण रखिये कि ये दूसरे व्यक्ति को मान्य नहीं हैं। आपको चाहे कितनी ही भली ये बातें प्रतीत होती हों, किन्तु दूसरा व्यक्ति आपकी कोई भी सलाह या योजना न मानेगा।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुद्धि सर्व श्रेष्ठ मानता है

मनोविज्ञान का यह विषय है कि बिना चाही हुई राय; आचरण योग्य बातें, शिक्षा, सम्मति, योजनायें या आलोचनायें दूसरा कोई भी पसन्द नहीं करता चाहे वह कितनी ही श्रेष्ठ क्यों न हों। दूसरे की योजना या राय स्वीकार करने में हमारे "अहं" को चोट लगती है और हम अपनी हेठी समझते हैं। अपने पराजय का भाव किसी को पसन्द नहीं आता।

अनेक बार इसी बात को लेकर छोटे मोटे झगड़े उठ खड़े होते हैं। पिता पुत्र को कुछ बात, आचरण योग्य सिद्धान्त, अनुभव से निकली हुई बात समझाता है, नया खून उसे आचरण में नहीं लाता, पिता बुरा मानता है, पुत्र घर छोड़ कर पृथक् हो जाता है।

अफ़सर क्लर्क को कुछ सम्मति देता है, लेकिन क्लर्क अपनी पुरानी आदतों को छोड़ नहीं पाता। संघर्ष होता है, और क्लर्क चौकड़ी छोड़ कर पृथक् हो जाता है।

अध्यापक या प्रोफ़ेसर विद्यार्थी को कुछ सम्मति देता है, अध्यापक शब्दों को याद करके, कुछ लिखने, लिखाने के विषय में कहता है, किन्तु विद्यार्थी उसकी नहीं सुनता! फल, अशिष्टता या स्कूल कालेज छोड़ देना होता है।

सास या पति पत्नी के आचरण में ख़राबियां निकालते हैं। बहू काम नहीं करती है; ठीक समय पर उठती नहीं है, आज्ञा पालन नहीं करती है, उसे भोजन पकाना नहीं आता है, यह अपने पीहर की बाबत ही सोचा करती है, आदि आलोचनायें पत्नी को अप्रिय लगती हैं। ये निषेधात्मक संकेत हैं। इन्हें देने वाला पति और सास कभी कोई बहू को नहीं सुधार सकते।

अपना अनुभव ही स्थायी रहता है

जो जैसे रहता है, वैसे ही रहने में उसे अधिक से अधिक आत्मसन्तोष होता है। मनुष्य दूसरों के अनुभवों से लाभ नहीं उठाता। उसे दूसरे के विचार धारा अपनाने में आन्तरिक सन्तोष नहीं होता।

अपने अनुभव का ज्ञान ही स्थायी लाभ करता है।

इसी प्रकार जो चीजें किसी को स्वयं बिना श्रम के मुफ्त में प्राप्त हो जाती हैं, उनके प्रति पाने वाला कभी सतर्क नहीं होता, न मूल्य ही समझता है। दूसरे की दी हुई चीजों में मनुष्य का "अहं" नहीं प्रतिष्ठ होता। 'अहं' का लगाव न होने के कारण वे वस्तुएँ उनके व्यक्तित्व का एक अंश नहीं बन पातीं।

पिता या श्वसुराल से पाई हुई बिना श्रम की वस्तुएं कभी पुत्र या दामाद के पास नहीं रुकतीं, न उनका आदर प्राप्त करती हैं। धीरे धीरे वे उनके बिना काम में आये हुये निकल जाती हैं, या विनष्ट हो जाती हैं। इसके विपरीत उसी पुत्र या दामाद की स्वयं की बनाई या खरीदी हुई साधारण से साधारण वस्तु भी उसी का आदर प्राप्त करती है; अधिक दिन टिकती है : वह उस पर गर्व करता है। एक पुस्तक या मासिक पत्र के प्रति एक व्यक्ति जितना सतर्क और जागरूक है; दूसरे के लिए वह कागज का एक ढेर मात्र है।

एक विद्वान एक ग्राम में गये तो अनेक व्यक्ति उनके चारों ओर एकत्रित हो गये। विद्वान को अपनी विद्वत्ता का गर्व था लेकिन वहाँ उससे जो प्रश्न पूछा गया, वह यह था—

'आपकी क्या आमदनी है? आपने कितना रुपया जमा कर रक्खा है? आपकी पत्नी के पास तो बहुत से गहने होंगे? आपके पास कितने मकान हैं?'

किसी ने उसकी विद्वत्ता की परवाह न की, दूसरी ओर विद्वान ने पूछा—

"आप सज्जनों से कौन २ राजनीति, अर्थशास्त्र या आध्यात्म को समझता है? आपकी समाज की रूढ़ियों के विषय में क्या क्या धारणाएँ हैं? राजनैतिक पुनःनिर्माण की बाबत आपकी क्या क्या योजनाएँ हैं।

ये प्रश्न ग्रामीणों तथा अशिक्षितों के लिए कुछ अर्थ नहीं रखते। दोनों की दृष्टियों में एक दूसरा मूर्ख था।

केवल सुझाव दीजिये

यही बात संसार की अन्य रुचियों तथा मान्यताओं के विषय में है। अच्छा से अच्छा ज्ञान लोगों को अप्रियकर प्रतीत होगा। उत्तमोत्तम धारणाएँ फेंक दी जायेंगी। यदि दूसरों के कमरे की वस्तुओं को आप अपनी रुचि के अनुसार जमावेंगे, तो वे नापसन्द की जायेंगी। यदि उग्रतापूर्वक आप अपने विचार थोपेंगे, सख्ती करेंगे, तो दूसरा आपके हस्तक्षेप को अनुचित समझेगा, बुरा मानेगा और आप सदा के लिये उसकी मित्रता या स्नेह को खो बैठेंगे।

दूसरों के रहने सहने में हस्तक्षेप न करें। उनके विचारों को यकायक नहीं परिवर्तित किया जा सकता। दूसरे का सुधार करने का प्रयत्न अनेक बार कटुता और कलह का कारण बनता है।

घरों तथा परिवारों में जो जैसे रहता, उठता, बैठता, सोता जागता है, उसको वैसे ही रहने देने में वह सबसे अधिक सुख शान्ति का अनुभव करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुद्धि तथा योग्यता को सर्वोपरि समझता है। अपनी अक्ल के सामने वह किसी दूसरे की बात या सुझाव नहीं मानना चाहता।

गुप्त मन में संस्कारों का निर्माण एक प्रकार के मानसिक मार्ग उत्पन्न करता है। जैसे गाड़ी के चलने से लकीरें बनती हैं, वैसे ही ये मानसिक लकीरें बना करती हैं। जिस धीमी गति से इनका निर्माण होता है, उसी धीमी रफ्तार से इन्हें हटा कर नये संस्कारों को जमाया जा सकता है।



प्राचीन साहित्य में वर्णन किये गये जन्तु

श्री के० सी० जयराम

जन्तुओं के साधारण नाम	साहित्य में वर्णित उनके भेद	आनुमानिक वैज्ञानिक नाम	विशेष विवरण तथा वर्तमान उपस्थिति
		१. स्तनधारी जन्तु	
बन्दर	(i) लाल मुंह का	मेकाका—	द० पू० एशियां, मोटे तौर पर काफिरिस्तान से पेकिन तक, तिब्बत के प्लेटो को छोड़ कर और, फिर बोर-नियो तथा फिलिपाइन्स तक मेकाका की जातियां पञ्जाब के शिवालक फासिलों में पाई गई हैं।
	(ii) काले मुंह का	सेमनोपिथेकस—	सारा भारत, पश्चिमी रेगिस्तान को छोड़ कर हिमालय से दक्षिण की ओर, और लंका।
सिंह	(i) घास पर आश्रित सिंह	फेलिस (पेन्थीरा) लिओ—	कुत्तों की तरह घास के पत्ते खाने वाला मेसोपोटोमिया और फारस के अधिक जंगली भाग। सारा उत्तरी तथा मध्य भारत (१०० वर्ष पूर्व) अब काठियावाड़ तक। लुप्त होने वाला है।
	(ii) काला सिंह	फेलिस (पेन्थीरा) लिओ	
	(iii) काला पीला सिंह		
	(i) बड़े केसर वाला सिंह		
चीता	चित्तीदार चीता	फेलिस(पेन्थीरा) पारडस	भारतवर्ष, बर्मा और लंका
बिल्ली	लम्बे कान वाली बिल्ली, खर-गोश के सदृश, सम्भवतः स्याहगोश (लिंक्स)	केरेवल	मध्य एशिया, उत्तरी भारत अफ्रीका, तिब्बत और उत्तरी यूरोप
हाथी	दो विभिन्न रंगों वाले:— (i) काला चट्टानी, (ii) सफेद, सम्भवतः एलबिनो; हाथियों की दस जातियां थी; कुछ के छः उद्दन्त (टस्क) होते थे।	एलीफास मेक्सिमस	प्लाइस्टोसीन समय में भारत में हाथियों की बहुत अधिक संख्या थी और शिवालिक में इन के फासिल मिलते हैं।

घोड़े	(i) सिन्धी घोड़े शुद्ध नसल और दूध जैसे सफेद रंग के होते हैं । (ii) चैसनट अर्थात् गहरे लाल कपिल रंग वाले घोड़े; उड़नशील घोड़े (सम्भवत: घुड़दौड़ में भाग लेने वाले घोड़ों से अर्थ है) ।	ये सब ईकुअस के भेद हैं ।	ये उन जन्तुओं के बची हुई सन्तान हैं जिन के कई भेद पूर्व टरशियरी काल में उपस्थित थे ।
हरिण (एन्टीलोप)	(i) एण (ii) वायु हरिण, बहुत डरपोक और शहद का शौकीन	एन्टीलोप सम्भवत: यह गेजल है	तिब्बत, भारतवर्ष (उष्णकटिबन्धी मैदान), बहुत बड़े बड़े झुण्ड किसी समय भारतवर्ष में घूमते थे ।
मृग (डीयर)	(i) एण, (ii) पृषत (iii) रोहित (iv) चित्तीदार मृग, स्वर्ण रंग, याक की पूंछ जैसी शानदार पूंछ ।	सम्भवतः ये सब भेद सरवस के हैं चीतल, एक्सिस एक्सिस	हिमालय का मूल, काशमीर, लंका ।

२. पक्षी

बत्तख	स्वर्ण बत्तख	एनास की जातियां	लंका, किन्तु उत्तरी बिलूचिस्तान, उत्तरी पश्चिमी पञ्जाब और सिन्ध के उत्तरी पश्चिमी भाग में अनुपस्थित ।
हंस	(i) घसिया हंस (ग्रास गीज), (ii) पीले हंस, (iii) सिंदूरी हंस, (iv) पक हंस (v) स्वर्ण हंस	अनसार की जातियां	मध्य ऐशिया, पश्चिमी चीन, लद्दाख से दक्षिण और तिब्बत । शीत ऋतु में उत्तरी भारत तथा आसाम में अधिक तथा मध्य भारत में कम और मैसूर में भी उपस्थित हैं ।
	(vi) लाल हंस	कासकारा ग्यूटिलेटा	
राजहंस	(i) स्वर्ण राज हंस (ii) सूर्य राजहंस	सिगनस की जातियां	स्वर्ण राजहंस वर्तमान समय में उपस्थित नहीं है ।
उकाब (ईगल)	समुद्री उक़ाब	एकुइला जाति	भारत (ट्रावनकोर और मलाबार को छोड़ कर) और उत्तरी बर्मा ।
मुर्ग़	पंखों वाला मुर्ग़	गेलस जाति	सारा भारतवर्ष
तीतर	(i) काली	फ्रेनकोलिनस फ्रेनकोलिनस	उत्तरी भारत, एशिया, लंका तक, दक्षिण में चिलका झील और पश्चिम

	(ii) भूरी	फ्रेनकोलिनस पेन्टिसीरियेनस	में एशिया माइनर।
बटेर	(i) भूरी बटेर (ii) वर्तीर (बुश क्वेल)	कोटरनिक्स कोढरनिक्स परडिकुला एशियेढिका	उत्तरी अफरीका, पश्चिमी और मध्य एशिया, मनीपुर तक, उत्तरी और मध्य भारत का अधिकांश भाग, लंका, उत्तरी बर्मा।
कोयल	(i) कुमल (ii) शाही कोयल	कुकुलस तथा अन्य गण	उत्तरी और मध्य भारत, गुजरात और पश्चिमी आसाम, दक्षिण में कम।
सारस	शिखी सारस	ग्रस	"
कठफोड़	(i) सिम्बल के पेड़ों पर इसे भोजन मिलता है, (ii) बबूल के पेड़ों पर रहता है, लाल पंजे होते हैं और दांत अनुपस्थित हैं।	पिसाईड वंश	सारा भारतवर्ष (सम्भवतः चोंच को दांत समझ लिया गया था।)
		३. उरंगम	
मगर	(i) सुंसुमार (ii) कुम्भिल	घड़ियाल—गेवियलिस गेंजेटिकस एलीगेटर जाति	भारतवर्ष गंगा तथा अन्य नदियां
साप	(i) कठमुखी, (ii) पूतिमुखी, (iii) अग्निमुखी, (iv) शस्त्रमुखी, अजगर।	बोआ कन्सट्रिक्टर	प्राच्य प्रदेश
	सर्पों का विभेदीकरण इस प्रकार है—(i) शरीर चांदी के कुण्डल के सदृश मोटा। (ii) शरीर हल के सिर के सदृश मोटा। (iii) शरीर जांघ के सदृश मोटा। (iv) सिर रुई के गोले के समान लाल। (v) डोंगी के सदृश बड़ा।	पाइथन जाति	प्राच्य प्रदेश

[मूल लेख अंग्रेज़ी में प्राप्त। हिन्दी अनुवाद के लिए श्री चम्पत स्वरूप एम० एस सी के आभारी हैं।
—सम्पादक]



गुरुकुल-समाचार

ऋतु रंग

मार्च के प्रारम्भ से ऋतु में बड़ी विषमता है। कभी बादल घिर आते हैं और कभी धूप निकलती है। बीच-बीच में वर्षण भी होता रहा है। जिस के कारण शीतकाल पुनः लौट आया ऐसा मालूम होता रहा है। प्रातः सायं अच्छी ठण्ड हो जाती है और दिन को धूप निकलने पर खासी गरमी हो जाती है। इस ऋतु वैषम्य के कारण खांसी, जुकाम, ज्वर आदि की शिकायत यत्र तत्र देखी गई है। पूर्वी हवा के झोंकों से वातावरण ठण्डा होता रहा है। आम्रकुञ्जों में थोड़ा-थोड़ा मौर फूटा है। शहतूतों की शुरूआत हो रही है। वनों में पलाश पुष्प (टेसू) खुल कर खेल रहे हैं। लुकाठ भी रंग ला रहे हैं। मौसम विचित्र होने पर भी कुलवासियों का स्वास्थ्य अच्छा है।

परीक्षाएँ

१६ मार्च को महाविद्यालय विभाग तथा विद्याधिकारी श्रेणी की वार्षिक परीक्षाएँ समाप्त हो गई। विद्यालय विभाग की परीक्षाएँ भी मार्च के अन्त तक समाप्त हो जायेंगी। परीक्षा के पश्चात् छात्रगण उत्सव की तैयारी में लग जायेंगे।

निर्वाचित स्नातकों का अभिनन्दन

गत निर्वाचनों में विभिन्न धारा-सभाओं के लिए कई स्नातक-बन्धु विभिन्न प्रदेशों से निर्वाचन में में सफल हुए हैं। इस अवसर पर गुरुकुल विश्वविद्यालय उन सब स्नातक बन्धुओं का सप्रेम अभिनन्दन करता है। बधाई देता है।

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति उत्तर-प्रदेश की ओर से राज्य-परिषद् के सदस्य चुने गए हैं। श्री दीन दयालु जी शास्त्री उत्तर प्रदेश की विधान-सभा के सदस्य बने हैं। श्री अमरनाथ जी विद्यालंकार पञ्जाब की ओर से लोक-सभा के सदस्य चुने गए हैं। श्री विनायकराव जी विद्यालंकार, बैरिस्टर, हैदराबाद राज्य (दक्षिण) के वाणिज्य और उद्योग विभाग के मन्त्री बनाए गए हैं। श्री शंकरदेव जी वेदालंकार हैदराबाद राज्य के लोक-कल्याण विभाग के मन्त्री बनाए गए हैं। श्री सुरेशचन्द्र जी विद्यालंकार हैदराबाद राज्य की विधान-सभा के सदस्य चुने गए हैं। श्री जगदीश जी वेदालंकार और श्री समरसिंह जी वेदालंकार पञ्जाब प्रांत की विधान-सभा के सदस्य चुने गए हैं। इन के सिवाय कन्या गुरुकुल देहरादून की आचार्या श्रीमती चन्द्रावती जी लखनपाल उत्तर-प्रदेश की ओर से राज्य परिषद् की सदस्या चुनी गई हैं।

श्री पं० सातवलेकर जी का अभिनन्दन

तपःपूत साधक और शास्त्रानुसन्धान में अपना आयुष्य खपा देने वाले वेदाचार्य श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी को वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने उन की अमूल्य हिन्दी सेवाओं के लिए १५०१) रुपये का सन् १९५२ का महात्मा गांधी पुरस्कार देकर समादृत किया है। इस अवसर पर गुरुकुल विश्वविद्यालय प्रणाम-पूर्वक आपका अभिनन्दन करता है। प्रशंसित पं० जी स्थापना काल से ही गुरुकुल के एक अविभाज्य अंग और उपकारक गुरु रहे हैं। अपने गुरुकुलवास के दिनों में ही आप ने अथर्ववेद के मातृभूमि-सूक्त का भाष्य लिखा था। जिसे भारत के तत्कालीन ब्रिटिश शासकों ने आपत्तिजनक समझ कर आप को बन्दी कर लिया था। गुरुकुल में रहते हुए ही आपने अपने वैदिक अनुसन्धान का श्रीगणेश किया था। भगवान् से हमारी प्रार्थना

है कि वह श्रद्धेय पंडित जी को वेदकीर्तित आयुष्य और आरोग्य प्रदान करे जिस से वे आर्य-साहित्य की सेवा अबाध रूप से करते रहें।

गुरुकुल महोत्सव

गुरुकुल का महोत्सव इस वर्ष ११ से १४ एप्रिल तक उत्साह से मनाया जायगा। उत्सव पर प्रति वर्ष की तरह अनेक सम्मेलनों का आयोजन किया गया है। वेद-सम्मेलन श्री पं० नरदेव शास्त्री वेद-तीर्थ की अध्यक्षता में होगा। सरस्वती सम्मेलन का संस्कृत-विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रो० बाबूराम जी सक्सेना के सभापतित्व में होगा। सरस्वती सम्मेलन का हिन्दी-विभाग दयानन्द कालेज कानपुर के आचार्य श्री के० पी० भटनागर के सभापतित्व में होगा। इसी प्रकार कई अन्य सम्मेलनों की योजना बन रही है।

संरक्षकों को सूचना

संरक्षक-सभा के प्रधान श्रीयुत बिहारीलाल जी सूचित करते हैं कि गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर संरक्षकों की एक सभा होगी। जिस में अनेक उपयोगी और महत्वपूर्ण विषयों पर विचार होगा। अतः सब संरक्षक महानुभाव अवश्य सम्मिलित होने की कृपा करें।

संग्रहालय

प्रकृति-विज्ञान संग्रहालय के लिए कुछ नये जन्तु जुओलोजिकल सर्वे ऑफ. इण्डिया, कलकत्ता से प्राप्त हुए हैं। वन्य अनुसन्धान-शाला, देहरादून ने संग्रहालय के कुछ कीड़ों को पहिचान कर और नामकरण कर के भेजा है। विद्यार्थियों के तथा जन-साधारण के अध्ययन की दृष्टि से ये चीजें महत्वपूर्ण हैं। उक्त दोनों संस्थाओं का हम आभार प्रकट करते हैं।

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग ,, २॥), २॥), २॥)
ब्राह्मण की गौ ,, ॥)
वैदिक अध्यात्मविद्या श्री भगवद्दत्त १)
वैदिक स्वप्न विज्ञान ,, २)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां श्री रामनाथ १॥)
वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत ६)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द श्री चमूपति २), १॥)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १॥)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य श्री विश्वनाथ २)
धर्मोपदेश १, २, ३ भाग स्वा० श्रद्धानन्द, १), १), १॥)
आत्ममीमांसा श्री नन्दलाल २)
प्रार्थनावली ।) कविता मंजरी ।–)
आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति ।)
कविता कुसुमाञ्जली ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] ५)
लहसुन : प्याज़ श्री रामेश बेदी २॥)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] ,, ३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] ,, २)
सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] ,, १॥)
देहाती इलाज [दूसरा संस्करण] ,, १)
मिर्च [काली, सफेद और लाल] ,, १)
त्रिफला [तीसरा संस्करण] ,, ३।)
सांपों की दुनियां ,, ५)
स्तूप निर्माण कला सचित्र सजिल्द, ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १)
जल चिकित्सा श्री देवराज १॥)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द ७), ६)
अपने देश की कथा सत्यकेतु १।=)
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)
ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार ॥।)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव ॥)
महावीर गेरीबाल्डी श्री इन्द्र १)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] १)
नीतिशतक [संशोधित] =)
साहित्य-दर्पण [संशोधित] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०] ॥।=)
,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण] ॥=)
अष्टाध्यायी, पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७), ७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] ।)
साहित्य-सुधासंग्रह १, २, ३ बिन्दु १), १), १)
संस्कृत साहित्य पाठावली ≠)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] २॥)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] ॥)
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] २॥)
ए गाइड टु दी स्टडी औफ़ संस्कृत ट्रांसलेशन एण्डकम्पोज़ीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ १)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल मुद्रणालय।

गुरुकुल पत्रिका

वैशाख | वर्ष ४
२००९ | अङ्क ९



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ४
अङ्क ९

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव
दर्शनवाचस्पति

इस अङ्क में

वैशाख
२००९

मेश बेदी
दालंकार।

पृष्ठ

में दिये जा रहे हैं।

एक प्रति
आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

मन्त्र का बन्धन

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

वीणा का कोई तार पीतल का होता है तो कोई तार फौलाद का। कोई तार मोटा होता है तो कोई बारीक। कोई तार मध्यम स्वर में आबद्ध होता है तो कोई पञ्चम स्वर में। तार को बांधे बिना काम नही चल सकता। क्योंकि उस में से कोई एक विशुद्ध स्वर उपजाना होता है।

इस जगत् में ईश्वर के साथ हमें कोई विशेष सम्बन्ध स्थापित करना होता है। कोई एक विशेष स्वर जाग्रत करना होता है।

चराचर विश्व के इस विराट् विश्वसङ्गीत में सूर्य, चन्द्र, तारे, औषधि, वनस्पति आदि सब अपने विशेष स्वर बजा रहे हैं। तो क्या मानव-जीवन को भी इस चिर-उद्गीय संगीत में, अपना स्वर नहीं बजाना चाहिये ?

परन्तु अभी तक हमने इस जीवन को तार की तरह बांधा नहीं। अभी तक उस में से किसी गान का आविर्भाव नहीं हुआ है ! हमारे जीवन मूल स्वर से विच्छिन्न होकर अनेक प्रकार की तुच्छताएं अकृतार्थ हो रही हैं। येन केन प्रकारेण उस में से एक नित्य स्वर को ध्रुव बनाना ही पड़ेगा।

तो फिर तार को किस प्रकार बांधा जाय ? ईश्वर की वीणा में बांधने के स्थान तो अनेक हैं। उन में से किसी एक को निश्चित तो करना ही होगा।

मंत्र इस प्रकार का एक बंधन है ! मंत्र के आधार पर हम मनन के विषय को मन के साथ जोड़ कर रख सकते हैं। यही बात वीणा की खूंटी में होती है। इस प्रकार करने से आवश्यकता के प्रमाण में ही तार बांधा जाता है। वह छटक नहीं सकता।

विवाह के समय स्त्री-पुरुष के कपड़े में गांठ बांधी जाती है और उसके साथ मंत्र भी पढ़ा जाता है। वह मंत्र मन में भी गांठ बांध देता है।

ईश्वर के साथ ग्रन्थि बांधने का जो प्रयोजन है उस में मंत्र सहायक होता है। उस मंत्र के आधार पर हम उसके साथ अपना एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध निश्चित् कर सकते हैं। ऐसा ही एक मंत्र है—पिता नोऽसि, पिता नो बोधि ! नमस्ते अस्तु। मा मा हिं सीः।

यजुर्वेद।

गुरुकुल पत्रिका वैशाख २००८

वैदिक (भारतीय) संस्कृति का स्वरूप

श्री बुद्धदेव विद्यालंकार

सब से प्रथम विचारना है कि संस्कृति कहते किस को हैं। तीन शब्दों को इकट्ठा पास पास रखने से इस शब्द का अर्थ समझ में आ जायगा। वह तीन शब्द हैं प्रकृति, विकृति और संस्कृति। नाना प्रकार के अन्न प्रकृति हैं। उन्हें भोक्ता के लिए उपयोगी रूप दे कर हलवा बना दिया यह संस्कृति हुई। और रात भर मनुष्य के पेट में रह कर जो हलवे की दशा हुई वह उस की विकृति हुई। यह प्रयोग मनुष्य की अपेक्षा से किया गया है। जो मनुष्य की विकृति है हो सकता है कि शूकर उसे ही संस्कृति कहता हो। सो बात स्पष्ट है। जिस के जीवन के लिए जो पदार्थ अपेक्षित हैं उस के उपादान प्रकृति हैं। उसका सहयोगी रूप संस्कृति है तथा बिगड़ा रूप विकृति है।

अब मानव समाज के कल्याण के लिए मनुष्य प्रकृति है। इसी लिए संस्कृत भाषा में प्रजा को 'प्रकृतयः' कहा गया है। प्रजा को मानव

जीवन को इस स्वर के साथ बांध लेने से अपने सभी विचारों में, सभी कर्मों में, एक विशेष रागिणी बज उठती है। मैं उसका पुत्र हूं यह मन्त्र मूर्तिमान होकर हमारे समस्त अस्तित्व में यही बात प्रकट करेगा कि मैं उसका पुत्र हूं।

आजकल तो हम कुछ भी प्रकट नहीं करते, खाने-पीने में, काम में, और आराम में समय चला जाता है। परन्तु अनंत काल में, अनंत जगत अपने पिता हैं ऐसा कोई लक्षण ज्ञात नहीं है। अभी तक अनंत के साथ हमारा कोई गांठ बंधी नहीं।

चलो, आज इस मंत्र से हम अपने जीवन का तार बांधें! खाते पीते, उठते बैठते, जागते सोते, बारंबार यही एक मंत्र हमारे मन में बजता रहे—'पिता नो ऽसि।' जगत् के समस्त मानव इस तथ्य को जान जायें कि हमारे पिता हैं।

ईसा मसीह इस स्वर को पृथ्वी पर झनझना चुके हैं। उनके जीवन के साथ यह तार ऐसी पक्की रीति से बंधा हुआ था कि मरण पर्यन्त की समस्त यंत्रणाओं ने या दुःसह आघातों ने उसे लेशमात्र भी बेसुध नहीं बनाया। वे बोलते थे—'पिता नोऽसि।'

'हे पिता, मैं तुम्हारा पुत्र हूं'—इस स्वर को ठीक प्रकार से जगाना कोई छोटी मोटी बात नहीं। क्यों कि पुत्र में पिता का ही प्रकाश होता है। 'आत्मा वै जायते पुत्रः।' संतान में पिता स्वयं ही संतत होता है। यदि तुम्हारी अपापविद्ध, आनन्दमय, परिपूर्णता को व्यक्त नहीं किया जा सके तो फिर 'पिता नोऽसि' इस स्वर की झंकार कैसे होगी?

अतः मेरी प्रत्येक दिवस की यही प्रार्थना है—'पिता नो बोधि, नमस्ते अस्तु।

अनुवादक—
शंकरदेव विद्यालंकार।

★

के लिए उपयोगी बनाने वाली मर्यादाओं ...ह संस्कृति है। उन मर्यादाओं को जीवन ...त प्रोत करने के लिए जो अनुष्ठान किये ...वे संस्कार कहलाते हैं और उन संस्कारों ...णाम संस्कृति है।

...स प्रकार मानव राष्ट्र एक है इसी प्रकार ...संस्कृति भी एक है। परन्तु जिस प्रकार ...मि माता के अंग काट कर सैंकड़ों मातृ-...ना दी गई हैं इसी प्रकार एक मानव ...को काट कर यारोपियन संस्कृति, भारतीय संस्कृति, इस्लामी संस्कृति, ईसाई संस्कृति आदि अनेक संस्कृति बना दी गई हैं।

सृष्टि के आदि में एक भूमि माता थी और उस की एक वैदिक संस्कृति थी। आज वह टुकड़े, टुकड़े हो कर बिखर गई है। भारतवासियों ने उस के बहुत से अंशों की विशेष रूप से रक्षा की है इस लिए भारतीय संस्कृति के चाहे कितने गीत गा लीजिये, परन्तु संस्कृति एक है। वैदिक संस्कृति के दो मूल तत्व हैं—

(१) त्याग।

(२) एकाग्रता।

त्याग का अर्थ है स्वेच्छा पूर्वक समर्पण। भक्त प्रभु की आराधना के लिए स्वेच्छा पूर्वक अपना सब कुछ समर्पण कर देता है। वह प्रभु से मांगता कुछ नहीं। उस के निष्काम सेवा आदि गुणों पर मोहित है। उन गुणों का नित्य कीर्तन करता है। उस से इन गुणों को सीखता है और सीख कर गुरु दक्षिणा रूप में अपना सर्वस्व प्राणिमात्र की सेवा में अर्पण कर देता है। वह जनता से अथवा पशु पक्षियों से बदले में कुछ नहीं मांगता। उस का प्रभु भी तो कुछ नहीं मांगता। बस उस के इसी गुण पर तो वह सब से अधिक मोहित है। इसी लिए सेवा के बदले जब उसे पीड़ा मिलती है तो वह और अधिक आनन्दित हो कर नाचता है, आज प्रभु और प्रसन्न होंगे। यह स्वेच्छा-पूर्वक त्याग ही संस्कृति की पराकाष्ठा है। पति पत्नीव्रत धर्म में कमाल दिखाए, अथवा पत्नी पतिव्रत धर्म में कमाल दिखाए, दोनों में मूलतत्व एक ही है। स्वेच्छा पूर्वक त्याग। यह त्याग एकाग्रता के बिना नहीं हो सकता। आराध्य देव प्रतिदिन बदले तो कैसे हो? पत्नी के लिए पति और पति के लिए पत्नी रोज़ बदलने लगे तो त्याग का अभ्यास नहीं हो सकता। इसी लिये अभ्यास के लिये इन सम्बन्धों को सङ्कुचित कर दिया गया है। माता बच्चे के लिये और बच्चा माता के लिये जब तक त्याग करता है तब तक वह संस्कृत है। जहां त्याग नहीं वहां जंगलीपन है।

फिर समय समय पर त्यागों में परस्पर संघर्ष खड़ा होता है। देश का भला करूं कि कुटुम्ब का? उस समय मनुष्य को तारतम्य निरूपण सिखाना पड़ता है। कौन सा कर्तव्य तर है कौन सा कर्तव्य तम? इस लिये मनुष्य की विचार शक्ति को भी सुसंस्कृत करना पड़ता है। इसलिये शिक्षा भी संस्कृत का एक अंग है। सुशिक्षित हुए बिना मनुष्य सुसंस्कृत नहीं हो सकता। किन्तु संस्कृति बिना अक्षर ज्ञान के सत्संग मात्र से भी प्राप्त की जा सकती है।

जब हम किसी देश की संस्कृति का वर्णन करते हैं तो हमारा अभिप्राय होता है कि मानव से संस्कृति पर पहुंचने के लिये उस देश विशेष ने कौन सी मर्यादाएं नियत की हैं।

राम ने भरत के लिये तथा भरत ने राम के लिये जो राज्य को ठोकर मारी वह सारे मानव

गुरुकुल पत्रिका वैशाख २००९

वैदिक (भारतीय) संस्कृति का स्वरूप

श्री बुद्धदेव विद्यालंकार

सब से प्रथम विचारना है कि संस्कृति कहते किस को हैं। तीन शब्दों को इकट्ठा पास पास रखने से इस शब्द का अर्थ समझ में आ जायगा। वह तीन शब्द हैं प्रकृति, विकृति और संस्कृति। नाना प्रकार के अन्न प्रकृति हैं। उन्हें भोक्ता के लिए उपयोगी रूप दे कर हलवा बना दिया यह संस्कृति हुई। और रात भर मनुष्य के पेट में रह कर जो हलवे की दशा हुई वह उस की विकृति हुई। यह प्रयोग मनुष्य की अपेक्षा से किया गया है। जो मनुष्य की विकृति है हो सकता है कि शूकर उसे ही संस्कृति कहता हो। सो बात स्पष्ट है। जिस के जीवन के लिए जो पदार्थ अपेक्षित हैं उस के उपादान प्रकृति हैं। इसका सहयोगी रूप संस्कृति है तथा बिगड़ा रूप विकृति है।

अब मानव समाज के कल्याण के लिए मनुष्य प्रकृति है। इसी लिए संस्कृत भाषा में [illegible] कृतयः' कहा गया है। प्रजा को मानव

जीव[illegible]

अपने सर्भ[illegible]

विशेष रागि[illegible]का पुत्र हूं यह मन्त्र मू[illegible]होकर हमारे समस्त अस्तित्व में यही बात प्रकट करेगा कि मैं उसका पुत्र हूं।

आजकल तो हम कुछ भी प्रकट नहीं करते, खाने-पीने में, काम में, और आराम में समय चला जाता है। परन्तु अनंत काल में, अनंत जगत अपने पिता हैं ऐसा कोई लक्षण ज्ञात नहीं है। अभी तक अनंत के साथ हमारा कोई गांठ बंधी नहीं।

चलो, आज इस मंत्र से हम अपने जीवन का तार बांधें! खाते पीते, उठते बैठते, जागते सोते, बारंबार यही एक मंत्र हमारे मन में बजता रहे—'पिता नो ऽसि।' जगत् के समस्त मानव इस तथ्य को जान जायें कि हमारे पिता हैं।

[illegible]ीह इस स्वर को पृथ्वी पर भक्त[illegible] चुके हैं। उनके जीवन के साथ यह तार ऐसी पक्की रीति से बंधा हुआ था कि मरण पर्यन्त की समस्त यंत्रणाओं ने या दुःसह आघातों ने उसे लेशमात्र भी बेसुध नहीं बनाया। वे बोलते थे—'पिता नोऽसि।'

'हे पिता, मैं तुम्हारा पुत्र हूं'—इस स्वर को ठीक प्रकार से जगाना कोई छोटी मोटी बात नहीं। क्यों कि पुत्र में पिता का ही प्रकाश होता है। 'आत्मा वै जायते पुत्रः।' संतान में पिता स्वयं ही संतत होता है। यदि तुम्हारी अपापविद्ध, आनन्दमय, परिपूर्णता को व्यक्त नहीं किया जा सके तो फिर 'पिता नोऽसि' इस स्वर की झंकार कैसे होगी?

अतः मेरी प्रत्येक दिवस की यही प्रार्थना है—'पिता नो बोधि, नमस्ते अस्तु।

अनुवादक—
शंकरदेव विद्यालंकार।

★

राष्ट्र के लिए उपयोगी बनाने वाली मर्यादाओं का समूह संस्कृति है। उन मर्यादाओं को जीवन में ओत प्रोत करने के लिए जो अनुष्ठान किये जाते हैं वे संस्कार कहलाते हैं और उन संस्कारों का परिणाम संस्कृति है।

जिस प्रकार मानव राष्ट्र एक है इसी प्रकार मानव संस्कृति भी एक है। परन्तु जिस प्रकार एक भूमि माता के अंग काट कर सैंकड़ों मातृ-भूमि बना दी गई हैं इसी प्रकार एक मानव संस्कृति को काट कर योरोपियन संस्कृति, भारतीय संस्कृति, इस्लामी संस्कृति, ईसाई संस्कृति आदि अनेक संस्कृति बना दी गई हैं।

सृष्टि के आदि में एक भूमि माता थी और उस की एक वैदिक संस्कृति थी। आज वह टुकड़े, टुकड़े हो कर बिखर गई है। भारतवासियों ने उस के बहुत से अंशों की विशेष रूप से रक्षा की है इस लिए भारतीय संस्कृति के चाहे कितने गीत गा लीजिये, परन्तु संस्कृति एक है। वैदिक संस्कृति के दो मूल तत्व हैं—

(१) त्याग।

(२) एकाग्रता।

त्याग का अर्थ है स्वेच्छा पूर्वक समर्पण। भक्त प्रभु की आराधना के लिए स्वेच्छा पूर्वक अपना सब कुछ समर्पण कर देता है। वह प्रभु से मांगता कुछ नहीं। उस के निष्काम सेवा आदि गुणों पर मोहित है। उन गुणों का नित्य कीर्तन करता है। उस से इन गुणों को सीखता है और सीख कर गुरु दक्षिणा रूप में अपना सर्वस्व प्राणिमात्र की सेवा में अर्पण कर देता है। वह जनता से अथवा पशु पक्षियों से बदले में कुछ नहीं मांगता। उस का प्रभु भी तो कुछ नहीं मांगता। बस उस के इसी गुण पर तो वह सब से अधिक मोहित है। इसी लिए सेवा के बदले जब उसे पीड़ा मिलती है तो वह और अधिक आनन्दित हो कर नाचता है, आज प्रभु और प्रसन्न होंगे। यह स्वेच्छा-पूर्वक त्याग ही संस्कृति की पराकाष्ठा है। पति पत्नीव्रत धर्म में कमाल दिखाए, अथवा पत्नी पतिव्रत धर्म में कमाल दिखाए, दोनों में मूलतत्व एक ही है। स्वेच्छा पूर्वक त्याग। यह त्याग एकाग्रता के बिना नहीं हो सकता। आराध्य देव प्रतिदिन बदले तो कैसे हो ? पत्नी के लिए पति और पति के लिए पत्नी रोज़ बदलने लगे तो त्याग का अभ्यास नहीं हो सकता। इसी लिये अभ्यास के लिये इन सम्बन्धों को सङ्कुचित कर दिया गया है। माता बच्चे के लिये और बच्चा माता के लिये जब तक त्याग करता है तब तक वह संस्कृत है। जहां त्याग नहीं वहां जंगलीपन है।

फिर समय समय पर त्यागों में परस्पर संघर्ष खड़ा होता है। देश का भला करूं कि कुटुम्ब का ? उस समय मनुष्य को तारतम्य निरूपण सिखाना पड़ता है। कौन सा कर्तव्य तर है कौन सा कर्तव्य तम ? इस लिये मनुष्य की विचार शक्ति को भी सुसंस्कृत करना पड़ता है। इसलिये शिक्षा भी संस्कृत का एक अंग है। सुशिक्षित हुए बिना मनुष्य सुसंस्कृत नहीं हो सकता। किन्तु संस्कृति बिना अक्षर ज्ञान के सत्संग मात्र से भी प्राप्त की जा सकती है।

जब हम किसी देश की संस्कृति का वर्णन करते हैं तो हमारा अभिप्राय होता है कि मानव से संस्कृति पर पहुंचने के लिये उस देश विशेष ने कौन सी मर्यादाएं नियत की हैं।

राम ने भरत के लिये तथा भरत ने राम के लिये जो राज्य को ठोकर मारी वह सारे मानव

गुरुकुल पत्रिका वैशाख २००६

वैदिक (भारतीय) संस्कृति का स्वरूप

श्री बुद्धदेव विद्यालंकार

सब से प्रथम विचारना है कि संस्कृति कहते किस को हैं। तीन शब्दों को इकट्ठा पास पास रखने से इस शब्द का अर्थ समझ में आ जायगा। वह तीन शब्द हैं प्रकृति, विकृति और संस्कृति। नाना प्रकार के अन्न प्रकृति हैं। उन्हें भोक्ता के लिए उपयोगी रूप दे कर हलवा बना दिया यह संस्कृति हुई। और रात भर मनुष्य के पेट में रह कर जो हलवे की दशा हुई वह उस की विकृति हुई। यह प्रयोग मनुष्य की अपेक्षा से किया गया है। जो मनुष्य की विकृति है हो सकता है कि शूकर उसे ही संस्कृति कहता हो। सो बात स्पष्ट है। जिस के जीवन के लिए जो पदार्थ अपेक्षित हैं उस के उपादान प्रकृति हैं। उसका सहयोगी रूप संस्कृति है तथा बिगड़ा रूप विकृति है।

अब मानव समाज के कल्याण के लिए मनुष्य प्रकृति है। इसी लिए संस्कृत भाषा में प्रजा को 'प्रकृतयः' कहा गया है। प्रजा को मानव

जीवन को इस स्वर के साथ बांध लेने से अपने सभी विचारों में, सभी कर्मों में, एक विशेष रागिणी बज उठती है। मैं उसका पुत्र हूं यह मन्त्र मूर्तिमान होकर हमारे समस्त अस्तित्व में यही बात प्रकट करेगा कि मैं उसका पुत्र हूं।

आजकल तो हम कुछ भी प्रकट नहीं करते, खाने-पीने में, काम में, और आराम में समय चला जाता है। परन्तु अनंत काल में, अनंत जगत अपने पिता हैं ऐसा कोई लक्षण ज्ञात नहीं है। अभी तक अनंत के साथ हमारा कोई गांठ बंधी नहीं।

चलो, आज इस मंत्र से हम अपने जीवन का तार बांधें! खाते पीते, उठते बैठते, जागते सोते, बारंबार यही एक मंत्र हमारे मन में बजता रहे—'पिता नो ऽसि।' जगत् के समस्त मानव इस तथ्य को जान जायें कि हमारे पिता हैं।

ईसा मसीह इस स्वर को पृथ्वी पर झनझना चुके हैं। उनके जीवन के साथ यह तार ऐसी पक्की रीति से बंधा हुआ था कि मरण पर्यन्त की समस्त यंत्रणाओं ने या दुःसह आघातों ने उसे लेशमात्र भी बेसुध नहीं बनाया। वे बोलते थे—'पिता नोऽसि।'

'हे पिता, मैं तुम्हारा पुत्र हूं'—इस स्वर को ठीक प्रकार से जगाना कोई छोटी मोटी बात नहीं। क्यों कि पुत्र में पिता का ही प्रकाश होता है। 'आत्मा वै जायते पुत्रः।' संतान में पिता स्वयं ही संतत होता है। यदि तुम्हारी अपापविद्ध, आनन्दमय, परिपूर्णता को व्यक्त नहीं किया जा सके तो फिर 'पिता नोऽसि' इस स्वर की झंकार कैसे होगी?

अतः मेरी प्रत्येक दिवस की यही प्रार्थना है—'पिता नो बोधि, नमस्ते अस्तु।

अनुवादक—
शंकरदेव विद्यालंकार।

★

राष्ट्र के लिए उपयोगी बनाने वाली मर्यादाओं का समूह संस्कृति है। उन मर्यादाओं को जीवन में ओत प्रोत करने के लिए जो अनुष्ठान किये जाते हैं वे संस्कार कहलाते हैं और उन संस्कारों का परिणाम संस्कृति है।

जिस प्रकार मानव राष्ट्र एक है इसी प्रकार मानव संस्कृति भी एक है। परन्तु जिस प्रकार एक भूमि माता के अंग काट कर सैंकड़ों मातृ-भूमि बना दी गई हैं इसी प्रकार एक मानव संस्कृति को काट कर योरोपियन संस्कृति, भारतीय संस्कृति, इस्लामी संस्कृति, ईसाई संस्कृति आदि अनेक संस्कृति बना दी गई हैं।

सृष्टि के आदि में एक [illegible] उस की एक [illegible] टुकड़े, टुकड़े [illegible] वासियों ने उस [illegible] से रक्षा की है इस लिए भारतीय संस्कृति के चाहे कितने गीत गा लीजिये, परन्तु संस्कृति एक है। वैदिक संस्कृति के दो मूल तत्व हैं—

(१) त्याग।

(२) एकाग्रता।

त्याग का अर्थ है स्वेच्छा पूर्वक समर्पण। भक्त प्रभु की आराधना के लिए स्वेच्छा पूर्वक अपना सब कुछ समर्पण कर देता है। वह प्रभु से मांगता कुछ नहीं। उस के निष्काम सेवा आदि गुणों पर मोहित है। उन गुणों का नित्य कीर्तन करता है। उस से इन गुणों को सीखता है और सीख कर गुरु दक्षिणा रूप में अपना सर्वस्व प्राणिमात्र की सेवा में अर्पण कर देता है। वह जनता से अथवा पशु पक्षियों से बदले में कुछ नहीं मांगता। उस का प्रभु भी तो कुछ नहीं मांगता। बस उस के इसी गुण पर तो वह सब से अधिक मोहित है। इसी लिए सेवा के बदले जब उसे पीड़ा मिलती है तो वह और अधिक आनन्दित हो कर नाचता है, आज प्रभु और प्रसन्न होंगे। यह स्वेच्छा-पूर्वक त्याग ही संस्कृति की पराकाष्ठा है। पति पत्नीव्रत धर्म में कमाल दिखाए, अथवा पत्नी पतिव्रत धर्म में कमाल दिखाए, दोनों में मूलतत्व एक ही है। स्वेच्छा पूर्वक त्याग। यह त्याग एकाग्रता के बिना नहीं हो सकता। आराध्य देव प्रतिदिन बदले तो कैसे हो ? पत्नी के लिए पति और पति के लिए पत्नी रोज बदलने लगे तो त्याग का अभ्यास नहीं हो सकता। इसी लिये अभ्यास के [illegible] सम्बन्धों को सङ्कुचित कर दिया गया [illegible] लिये और बच्चा माता के [illegible] करता है तब तक वह संस्कृत [illegible] वहां जंगलीपन है।

फिर समय समय पर त्यागों में परस्पर संघर्ष खड़ा होता है। देश का भला करूं कि कुटुम्ब का ? उस समय मनुष्य को तारतम्य निरूपण सिखाना पड़ता है। कौन सा कर्तव्य तर है कौन सा कर्तव्य तम ? इस लिये मनुष्य की विचार शक्ति को भी सुसंस्कृत करना पड़ता है। इसलिये शिक्षा भी संस्कृत का एक अंग है। सुशिक्षित हुए बिना मनुष्य सुसंस्कृत नहीं हो सकता। किन्तु संस्कृति बिना अक्षर ज्ञान के सत्संग मात्र से भी प्राप्त की जा सकती है।

जब हम किसी देश की संस्कृति का वर्णन करते हैं तो हमारा अभिप्राय होता है कि मानव से संस्कृति पर पहुंचने के लिये उस देश विशेष ने कौन सी मर्यादाएं नियत की हैं।

राम ने भरत के लिये तथा भरत ने राम के लिये जो राज्य को ठोकर मारी वह सारे मानव

जगत् के लिये त्याग का सुन्दर आदर्श है। उसे हम कार्य्य सुगमता के लिय अथवा अपने देशाभिमान की भावना के सन्तोष के लिये भले ही भारतीय संस्कृति कह लें। परन्तु वस्तुतः वह मानवीय संस्कृति है। हां, भारतवासी रात दिन इस कथा को सुनते हैं और वह भारत के जीवन का अंग बन चुकी है। परन्तु हमें यहां भूलना नहीं चाहिये कि वास्तव में इस प्रकार का सुसंस्कृत आचरण किसी देश का भी हो वह मानवीय संस्कृति है। जब वेद का प्रादुर्भाव हुआ उस समय मानव देश, जाति, रंग आदि किसी भेद में बटा हुआ न था। वह मनु अर्थात् मनन शक्ति का पुत्र मानव था। इस लिये हम वैदिक संस्कृति शब्द को मानव संस्कृति के पर्यायवाची रूप में भी व्यवहार कर देते हैं।

भारत में वैदिक परम्पराओं की बहुत कुछ रक्षा की गई है। इस लिए हम कभी कभी देश भक्ति के आवेश में वैदिक संस्कृति और भारतीय संस्कृति को एक बना देते हैं। परन्तु वास्तव में देखा जाय तो वैदिक संस्कृति भारतीय नहीं किन्तु मानवीय संस्कृति है। यदि हम वैदिक संस्कृति के अत्यन्त समीप होने के कारण भारतीय संस्कृति को वैदिक संस्कृति के रूप में कभी कभी उपस्थित भी कर दें तो हमें उस समय यह नहीं भूलना चाहिये कि भारत का इतिहास सदा वैदिक संस्कृति का आदर्श प्रतिबिम्ब तो नहीं रहा।

'अक्षैर्मादीव्यः' का घोष करने वाले वेद के भक्त कहलाने वालों में वह जुआरी राजा भी तो था जिस ने भरी सभा में अपनी पत्नी जुए में हारी थी और उस की चिल्लाहट की कुछ परवाह नहीं की थी। जिस समय वह जुआरी राजा धर्मराज कहलाया उस समय के पापियों का आचार कैसा भ्रष्ट होगा यह तो कल्पना से भी परे है।

हां फिर भी यह कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति में जो कुछ सर्वोच्च चमत्कार है वह वैदिक संस्कृति की देन है। इस लिए हम यदि वैदिक संस्कृत के उदाहरण में भारतीय इतिहास की कुछ घटनाएं दे दें तो हमारा अभिप्राय ठीक समझा जा सकेगा। इसी भाव से हमें यह थोड़े शब्द वैदिक संस्कृति का सूक्ष्म मूलतत्व दिखाने के लिये लिखने पड़े—

'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'

भारतीय संस्कृति अथवा वैदिक संस्कृति का मूलाधार वेद का उपरिलिखित वाक्य है। तुम वह मांगो जो उसने तुम्हारे लिये त्याग दिया है। उस ने किसने ? वह जो परमाणु परमाणु का स्वामी उस में बस रहा है। बस उस का त्यागा हुआ तुम्हारा भोजन है। इसी सूत्र को जीवन के हर मार्ग में प्रयोग करने से वैदिक संस्कृति अथवा भारतीय संस्कृति का रूप खिल उठता है।

शिष्य गुरु की सेवा कर रहा है। लकड़ी काट कर लाता है। पानी भरता है। गौवें चराता है। गुरु ने बुला कर कहा बेटा यह काम जो हम तुम से लेते हैं तो अपने आप को आलसी बनाने के लिए नहीं किन्तु तुम्हें कर्मण्य बनाने के लिये। परन्तु यह तो तुम्हारी शिक्षा का एक अंग है। आज तुम व्याकरण के पाठ में नहीं आये। निस्सन्देह तुम उस समय गो सेवा में लगे हुये थे। परन्तु वह समय गो सेवा करने का न था। आओ बैठ कर व्याकरण पढ़ो। यह बिना मांगे स्वयम् बुला कर दी हुई विद्या शिष्य का वह भोजन है जिसे—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'

अब गुरु के निषेध करने पर भी आग्रह-पूर्वक शिष्य द्वारा की गई गुरु सेवा जो गुरु को मिली है वही वह भोजन है जिसे वेद ने कहा—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' बस—

'न याचितेन भुञ्जीथाः न वञ्चितेन भुञ्जीथाः न लुण्ठितेन भुञ्जीथाः नास्कन्दितेन भुञ्जीथाः न क्रीतेन भुञ्जीथाः किन्तु त्यक्तेन भुञ्जीथाः' इस वृत्ति के अभ्यास के लिये एकाग्रता आवश्यक है। इस लिए एक समय एक शिष्य का एक गुरु होना चाहिये। यदि नित्य गुरु बदलते रहें तो इस भावना का अभ्यास नहीं होता। इसी लिये हमारी संस्कृति का दूसरा अंग एकाग्रता है। नियत परमात्मा, नियत भक्त, नियत राजा, नियत प्रजा, नियत गुरु, नियत शिष्य, नियत पति, नियत पत्नी। नियत समय, नियत रागिणी, हर पहलू में नियति है। यह ठीक है कि जो राजा प्रजा, गुरु शिष्य, पति पत्नी, नियत नियम का पालन न करें उन्हें विवश हो कर सामाजिक नियमानुसार बदलना पड़ेगा। परन्तु वह इसी लिये कि उन्होंने नियम भंग किया है। नहीं तो हमारी संस्कृति में एकाग्रता है। और इसी लिये ध्रुवता है।

आज चारों ओर चञ्चलता है।

गुरु विरजानन्द दयानन्द का लाड न करते थे। लोगों ने कहा दण्डी जी इस इतनी बड़ी आयु के संन्यासी को तो न मारा कीजिये। शिष्य ने कहा मेरे कल्याण के लिये ही तो मारते हैं। तुम बीच में क्यों पड़ते हो ? एक दिन शिष्य ने गुरु का हाथ पकड़ लिया। क्या सचमुच आज सूर्य पश्चिम से उदय हो गया ? क्या हिमालय गरम हो गया ? क्या आग ठण्डी हो गई ? क्या सृष्टि के नियम एक दम बदल गये ?

नहीं, कुछ नहीं।

शिष्य दयानन्द ने गुरु विरजानन्द का हाथ पकड़ लिया। घर के अन्दर से एक लाठी लाए। गुरु के हाथ में दे कर कहा—भगवन् यह वज्र के समान कठोर देह है। आप ताड़ना तो करते हैं परन्तु ताड़ना तो आप के हाथ की होती है। अब से आप मेरी ताड़ना इस लाठी से किया कीजिये। यह है संस्कृति।

मेरे विचार आप से नहीं मिलते। मेरी समझ में आप भूल पर हैं, आप की समझ में मैं भूल पर हूं। दोनों एक दूसरे को समझाते हैं। युक्ति बल तथा प्रेम बल का प्रयोग करते हैं। आप मूर्ति पूजा करते हैं। मैंने दण्ड बल का प्रयोग कर के आप की मूर्ति तोड़ कर फेंक दी। यह है 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः'।

शंकर मण्डन के घर गये। किस लिये ? मण्डन के सिद्धान्तों का खण्डन करने के लिये। मण्डन हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया—भगवन् कैसे पधारना हुआ ?

शङ्कर—मण्डन का घर ढूंढते हैं।

मण्डन—भगवन् यह तो मेरा ही नाम है।

शङ्कर—आहा आनन्द हुआ। आप के सिद्धांतों का खण्डन करने आया हूँ।

मण्डन--भगवन् अहो भाग्य। आज कोई मण्डन से लोहा लेने वाला पैदा तो हुआ। परन्तु भगवन्! पहिले मेरी एक शर्त स्वीकार करनी होगी।

शङ्कर--वह भी कह दीजिये।

मण्डन-भोजन इस सेवक का स्वीकार करना होगा।

शङ्कर—ठीक। परन्तु हमारे बीच में मध्यस्थ कौन होगा।

मण्डन—जिसे आप कहें।

शङ्कर—जिसे मैं कहूँ?

मण्डन—भगवन्, जिसे आप कहें।

शङ्कर—अच्छा तो हमारे इस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ होगी आपकी विदुषी धर्मपत्नी। इसका नाम है संस्कृति।

मूलतत्व एक है-'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।'

अतिथि गृहपति के घर आए। गृहपति ने भोजन कराया। परन्तु आश्चर्य कि धन्यवाद देने खड़ा हुआ गृहपति, भगवन्! मैं धन्य हूं। आपने मेरा भोजन पवित्र किया। यह है संस्कृति।

अर्जुन ने गन्धर्व को युद्ध में जीता। राजा युधिष्ठिर की आज्ञा से शरणागत होने पर उसे अभय दान दिया। कृतज्ञ हो कर चित्र रथ नामक वह गन्धर्व अर्जुन को गुप्त तथा दूरस्थ दृश्यों को देखने की विद्या प्रदान करने लगा। अर्जुन ने कहा शरणागत को अभयदान क्षात्र धर्म की मर्यादा पालन करने के लिये दिया है। बदले में विद्या खरीदने के लिये नहीं। यह है—'त्यक्तेन भुञ्जीथाः।'

अर्जुन कहता है—

यदि प्रीतेन मे दत्तं संशये जीवाश्रया विद्या
धनं भुक्त्वाऽपि न तम् गन्धर्व रोचये।

महाभारत आदि० अ० १७०, श्लोक ५५

अन्त को अर्जुन ने अपनी विद्या गन्धर्व को दी। गन्धर्व ने अपनी अर्जुन को। इस प्रकार विनिमय द्वारा कार्य सम्पन्न हुआ। शरणागत को अभय दान देने में कहीं विद्या लोभ का दाग न लग जाय। इसका नाम है संस्कृति।

सीता-स्वयम्वर में लक्ष्मण राम से कहते हैं-

लक्ष्मण—आर्य निशाचर-पति रावण भी देवी सीता की कामना करता है।

राम—वत्स! साधारण राजा भी सीता की कामना कर रहे हैं, फिर भला जगज्जयी, परमेष्ठी प्रपौत्र रावण उस की कामना क्यों न करे?

लक्ष्मण—आर्य में बहुत ही सौजन्य है। उस सहज बैरी रावण का भी इतना मान आप कर रहे हैं।

राम—रावण शत्रु है इस लिये उसका वध किया जा सकता है। परन्तु पराक्रमी. अप्रमेय तपस्वी असाधारण शक्तिशाली रावण का साधारण व्यक्ति की भांति नाम नहीं लिया जा सकता। उस का आदर से नाम लेना चाहिये।

इस का नाम है संस्कृति।

लक्ष्मणः—आर्य! निशाचरपतिर्देवीमिमां प्रार्थयते।

रामः—वत्स!

साधारण्यान्निरातङ्कः कन्यामन्योऽपि याचते।
किम्पुनर्जगतां जेता प्रपौत्रः परमेष्ठिनः॥
लक्ष्मणः—अति हि सौजन्यमार्यस्य, तस्मिन्नपि
निसर्ग वैरिणि निशाचरे बहुमानः।
यो नस्त्रयीपरिध्वंसात् क्षात्रं तेजोऽपकर्षति।
अस्माकं यश्च राजानमनरण्यञ्जिलावधीत्॥

रामः—कामं शत्रुरिति वध्यः स्यात्। न पुनरतिवीर्य्यमप्रमेयतपसमप्राकृतं प्राकृतवदर्हसि व्यपदेष्टुम्।

(महावीर-चरित, प्रथम अंक)

सत्य

जो कुछ हमने ऊपर लिखा है उस से स्पष्ट है कि एकाग्रता के लिये जिस गुण की सब से अधिक आवश्यकता है वह है सत्य परायणता। यद्यपि यह संस्कृति का साधन है। तथापि कोई कोई साधन साध्य के इतना निकट होता है कि

उसे साध्य ही मानना पड़ता है। इसी लिए वेद में लिखा है—'सत्येनोत्तभिता भूमिः' यह भूमि सत्य के सहारे खड़ी है।

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—'सत्यं वै देवा अनृतम् मनुष्याः' असत्य देव को मनुष्य और सत्य मनुष्य को देव बना देता है।

मनु ने भी लिखा है—'नास्ति सत्यात् परो-धर्म्मो नानृतात् पातकम् परम।'

कहां तक कहें। भारत का सारा साहित्य सत्य की महिमा से भरा पड़ा है। दूर क्या जाना है भारत के निकृष्टतम युग में धर्मराज युधिष्ठिर ने जो आदर्श दिखाया वह इस का प्रमाण है। जूए का खेलना तथा जूए में पत्नी को हारना जहां मूर्खता की पराकाष्ठा है, वहां वचन पालन के लिए शक्ति रखते हुए भी द्रौपदी का अपमान सहन करना सत्य परायणता की पराकाष्ठा है।

भारतीय संस्कृति के मूलतत्वों में से एकाग्रता नामक जिस तत्व का हम ऊपर वर्णन कर आए हैं वह सत्य परायणता के बिना कुछ नहीं। शिष्य ने गुरु सेवा का व्रत लिया, पति ने पत्नी परायणता का तथा पत्नी ने पति परायणता का, राजा ने प्रजा पालन का, प्रजा ने राजभक्ति का व्रत धारण किया। यह सब कुछ भी अर्थ नहीं रखते यदि उन में सत्य परायणता नहीं। हर्ष का विषय है कि भारत सरकार ने 'सत्यमेव जयते' को अपना महामन्त्र स्वीकार किया है। इससे भी स्पष्ट है कि जिन लोगों पर भारतीय संस्कृति का अनुचित रूप से पक्षपात करने का लांछन कोई नहीं लगा सकता उन को भी यह मन्त्र सूझा तो कहना चाहिये कि यह भारतीय संस्कृति का प्राण है।

एक और तथ्य है जिस के जाने बिना भारतीय संस्कृति की रूप रेखा भी सामने नहीं आ सकती। वह है भारतीय संस्कृति में अन्तः स्थिति का स्थान। वर्तमान युग परिस्थिति-वाद का युग है। हर बुराई का कारण परिस्थितियों का बिगड़ना तथा हर सुधार का साधन परिस्थिति का सुधार है। यदि मनुष्यों में बेईमानी है तो उस का कारण बताया जाता है पेट खाली होना। पेट भर दो ईमान स्वयम् फूट पड़ेगा। किन्तु देखने में जो यह आता है कि प्रायः खाली पेट वाले ईमानदार तथा भरे पेट वाले बेईमान होते हैं। और जिस का पेट जितना अधिक भरा है वह उतना ही बड़ा बेईमान है। यह इस परिस्थितिवाद के प्रचार का परिणाम है। जो काम किसी समय लोग कलियुग से लेते थे वह वर्तमान युग के लोग परिस्थिति से लेते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि जिस की अन्तः स्थिति विकृत होगी वह निर्धनता में चोरी करेगा, धन प्राप्ति में डाका डालेगा। इस के विपरीत जिसकी अन्तः स्थिति ठीक होगी वह निर्धनता में मेहनत से कमाएगा, धनी होकर दान करेगा।

मनुष्य की परिस्थिति के सुधार की अपेक्षा उस की अन्तःस्थिति के संस्कार की सहस्रगुण अधिक आवश्यकता है। इसी लिए भारतीय संस्कृति अन्दर की ओर से बाहिर की ओर प्रवाहित होती है। संसार की अन्य संस्कृतियां बाहिर से अन्दर की ओर। इसी लिए भारतीय संस्कृति में शिक्षक को आचार्य कहते हैं जो बालक के आचार ठीक रखता है।

ब्रह्मचर्य

पति की सेवा पत्नी की ओर तथा पत्नी की पति की ओर एकाग्र है। ब्राह्मण सत्य में एकाग्र है। क्षत्रिय न्याय रक्षा में। वैश्य उत्पादन में।

शूद्र सेवा में। प्रजा राजा की भक्ति में, राजा प्रजा पालन में। पर यह सब मिल कर किस एक ध्येय की आराधना कर रहे हैं वह ध्येय है पर-ब्रह्म परमात्मा घट घट का व्यापक। जिस के लिये कहा—'ईशा वास्यमिदं सर्वम्।'

बस उस ब्रह्म का ही दिया तो सब को खाना है। इसी लिये कहा—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा।' जो वह तेरे लिये छोड़ दे उस के त्यागे हुए से तू गुज़ारा कर। बस उस ब्रह्म की दी हुई हर वस्तु को उस की सेवा में लगाना ब्रह्मचर्य है। वीर्य्य उस की दी हुई भौतिक सम्पत्तियों में से सब श्रेष्ठ है। इस लिए उस की रक्षा का विशेष रूप से ब्रह्मचर्य नाम हो गया। परन्तु वस्तुतः ब्रह्म-चर्य का अर्थ तो यही है कि हर वस्तु को ब्रह्म की सेवा में लगाना। यदि मैं उचित से अधिक खाता हूँ और शरीर को प्रभु अर्पण न करके रोगा-र्पण करता हूँ तो मेरा जरूर ब्रह्मचर्य भंग हुआ स्वामी का माल मैंने उदर शूल नामक चोर को दे दिया। मैं ब्रह्मचारी न हो कर शूलचारी होगया। यही ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ है। इस प्रकार का आचरण सिखा कर आचार्य हमें ब्रह्मचारी बनाता है। इस लिए व्यभिचार को दूर करने के लिये परिस्थिति की अपेक्षा अन्तःस्थिति के सुधार की अधिक आवश्यकता है। इस का परिणाम यह होता है कि विपरीत से विपरीत परिस्थिति में भी अर्जुन उर्वशी के और दयानन्द कूर्मों द्वारा सिखा कर भेजी हुई वेश्या के पाश में न फंसता। फसे कैसे ? रोम रोम तो ब्रह्म-चर्य हो चुका। वहीं विचर रहा है। कुछ बचा हो तो वेश्या को मिले। यह अन्तःस्थिति का सुधार ही हमारा ध्येय है। आखिर परिस्थिति किस का नाम है। यदि हम सब अपनी अपनी अन्तःस्थिति सुधार लें तो सब की परिस्थिति आप सुधर गई। अन्तःस्थिति के सुधार में मुझे केवल एक व्यक्ति पर श्रम करना है। परिस्थिति में अरबों मनुष्यों का सुधार करना है। कहिये कौन सा सुगम है ?

हमारा यह तात्पर्य कदापि नहीं कि परिस्थि-तियों का सुधार हेय, अनादरणीय अथवा उपे-क्षणीय है। हम तो केवल यह कह रहे हैं कि इन में से प्रधानता किस की है। मुर्दा कफन में लिपटा पड़ा है। आपने उस का कपड़ा उतार दिया, रस्सियें काट दीं। अब उस से कहिये कि परिस्थिति सुधर गई, अब उठ खड़ा हो। भला क्या वह उठ सकता है ? हां कोई जीवित मनुष्य जो रस्सियों से बधा हो, छूटने के लिए छटपटा रहा हो छूट कर रहेगा। परन्तु रस्सियां काट देने से जल्दी छूट जायगा। परिस्थितियों का सुधार सहायक है। मूल प्रेरक नहीं। यही तथ्य है जिसे भारत को संसार के सामने उपस्थित करना है।

आर्य्य पुरुषो यह संसार अविद्या, अन्याय, अप्रभाव से पीड़ित है। आओ सच्चे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बन कर एकाग्र चित्त से सब शक्तियों को एकाग्र कर के इन से लड़ने निकल पड़ो।

परिस्थितियों की परवाह मत करो। जमाने की दुहाई मत दो। इस युग का राजा दयानन्द है।

दयानन्द ज़माने के पीछे चलने नहीं आया था। वह ज़माने को अपने पीछे चलने आया था।

देखो वह शरशय्या पर पड़ा हुआ एक ब्रह्म-चारी चिल्ला कर कह रहा है—

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्।
इति ते संशयो माभूद्राजा कालस्य कारणम्॥

अमरत्व का भोग

यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ॥
जातवेदो यशोऽस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥

ऋक् ५—४—१०

ऋषिः—वसुश्रुत आत्रेयः। देवता अग्निः। छन्दः त्रिष्टुप् ॥

मैं मरणधर्मा हूं, लेकिन निरन्तर उन्नति के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करता रहता हूँ। मैंने मानसिक, वाचिक तथा कायिक पापों को छोड़ दिया है, परिणामतः इन के क्लेशों से मुक्त हो चुका हूं। मैंने अपने स्वत्व को विशाल और व्यापक बनाया है, दूसरों के दुःख को अपना दुःख समझता हूँ। इसलिए निराश्रितों को आश्रय और वस्त्रहीनों को वस्त्र का प्रबन्ध करने वालों में मेरी गिनती है—ख्याति है।

हे प्रभु! आप सर्वज्ञ हैं, इस जगत् में होने वाली कोई घटना आप से छिपी नहीं है। आप सब के मार्ग प्रदर्शक हैं। अपने पथ से भ्रष्ट हुए मनुष्यों को आप ही सन्मार्ग पर लाते हैं, मुझे अपना पथ अस्पष्ट है: मैं इस द्विधा की अवस्था में आप का सच्चे और स्तुतिमय हृदय में बारम्बार आह्वान करता हूँ। आप हम पर अपनी कृपा बनाये रखिये। अर्थात् हमें कभी अन्न और जल का कष्ट न हो, आवश्यक कार्यों के लिए कभी धन की कमी अनुभव न हो, हमारा यश दिगन्त तक प्रसारित हो, हम सौन्दर्य के उपासक हों और स्वयं सुन्दर बनें।

हे अमर, सर्वज्ञ, अग्नि स्वरूप भगवन्, मुझे स्पष्ट और सत्य मार्ग पर प्रेरित कीजिये। मेरे सन्तति प्रवाह को निरवच्छिन्न कीजिये, जिस से मैं भी सन्तान की नित्यता के द्वारा अमरत्व को भोग सकूं—व्याप्त कर सकूं। मर्त्य होते हुए भी आप के सादृश्य को प्राप्त कर सकूं!

अर्थः—(आत्रेयः) तीनों पापों को छोड़ने वाला (वसुश्रुतः) दूसरों के दुःखों में सहायता करने वाला (अमर्त्यः) मरण धर्मा मैं (जातवेदः अग्ने) सर्वज्ञ तथा मार्गदर्शक प्रभु (अमर्त्यं मन्यमानः) आपको अमर जानता हुआ (त्वा) आपका (कीरिणा हृदा) सच्चे और स्तुतिमयहृदय से (जो हवीमि) बार बार आह्वान करता हूं। आप (अस्मासु यशः धेहि) हम पर कृपा कीजिए। हमें अन्न जल, धन, यश और सौन्दर्य दीजिये। मैं (प्रजाभिः) सन्तति प्रवाह के अविच्छेद द्वारा (अमृतत्वमश्याम) अमरत्व को व्याप्त करूं या भोगूं।

—श्री मनोहर विद्यालङ्कार।



बस आगामी युग को राजा दयानन्द का युग बना कर छोड़ना है।

आर्यों, तुम काल के भी काल। तुम्हारा गुरु दयानन्द महाकाल है। और उस की सेना महाकाली है।

उठो, अन्धकार के राज्य में प्रलय मचा दो। परन्तु हां एक बात मत भूलना।

यह काली भद्र काली है।

(भद्राय कल्याणाय कालयति प्रेरयति)

बोलो युगराज योगिराज दयानन्द की जय !!



सिन्धु घाटी का धर्म तथा रहन सहन

श्री हरीदत्त वेदालङ्कार

अभी तक सिन्धु घाटी की खुदाई में कोई मन्दिर या पूजास्थान नहीं मिला। अतः इस सभ्यता के धार्मिक जीवन का एक मात्र स्रोत यहां पायी गयी मिट्टी और पत्थर की मूर्तियां तथा मुहरें हैं। इस से यह ज्ञात होता है कि यहां मातृ देवी की, पशुपति शिव तथा उस के लिंग की पूजा तथा पीपल नीम आदि पेड़ों तथा नाग आदि जीव जन्तुओं की उपासना प्रचलित थी।

मातृदेवी

मोहेञ्जोदड़ों तथा हड़प्पा में खड़ी हुई अर्ध-नग्न नारी की बहुत मृण्मूर्तिया मिली है। इस के शरीर पर छोटा सा लहंगा है जिसे कटि प्रदेश पर मेखला से बांधा गया है, गले में हार पड़ा हुआ है तथा मस्तक पर पंखे के आकार की विचित्र शिरो भूषा है, इस के दोनों ओर प्याले जैसा पदार्थ है जिस में लगे धुऐं के निशान से यह ज्ञात होता है कि इसमें भक्तों द्वारा देवी की प्रसन्नता के लिए तेल या धूप आदि जलाया जाता था। इस प्रकार की मूर्तियां पश्चिमी एशिया में भी मिली हैं और यह उस समय में मातृ देवी की उपासना की व्यापकता सूचित करती हैं, आज भी भारत की साधारण जनता में देवी की उपासना बहुत प्रचलित है। इन मूर्तियों के बहुत अधिक संख्या में पाये जाने से यह कल्पना की गयी है कि सम्भवत: प्रत्येक घर में इन की प्रतिष्ठा और पूजा की जाती थी।

पशुपति

पुरुष देवताओं में पशुपति प्रधान प्रतीत होता है। एक मुहर में तीन मुह वाला एक नग्न व्यक्ति हाथी, बाघ, भैंस और गेंडे से घिरा हुआ एक चौकी पर पद्मासन लगा कर बठा हुआ है, चौकी के नीचे हिरन है, इसके सिर पर सींग और विचित्र शिरोभूषा है, इस ने हाथों में चूड़ियां तथा गले में हार पहन रखा है। यह मूर्ति शिव के पशुपति रूप की समझी जाती है, पद्मासन में ध्यानावस्थित शिव के योगीश्वर या महा योगी रूप को सूचित करती हैं। अनेक विद्वानों ने मोहेञ्जोदड़ों की अति प्रसिद्ध शालधारिणी मूर्ति का भी योग से सम्बन्ध जोड़ा है। शंकु तथा बेलन के आकार के अनेक पत्थरों से यह ज्ञात होता है कि उस समय शिव की मूर्ति-पूजा के अतिरिक्त लिंगपूजा भी प्रचलित थी।

मुहरों पर अङ्कित विभिन्न प्रकार के पेड़ों तथा पशुओं की आकृतियों से यह ज्ञात होता है कि उस समय पीपल और नीम को पूजा जाता था। पशुओं में हाथी, बैल, बाघ, भैंस, गेंडे और घड़ियाल के चित्र अधिक मिले हैं। आजकल इन में से अनेक पशु देवताओं के वाहन के रूप में पूजित हैं; यह कहना कठिन है कि उस समय इनकी वाहन रूप में प्रतिष्ठा थी या स्वतन्त्र रूप में। सांपों को दूध पिलाने तथा पूजा करने का विचार भी इस सभ्यता में था। वीर पुरुषों की उपासना का भी सम्भवत: प्रचलन था। दो बाघों के साथ लड़ते हुए पुरुष की सुमेर के प्रसिद्ध वीर गिलगमेश के साथ तुलना की गयी है। सूर्य पूजा तथा स्वस्तिक के कुछ संकेत भी इस में पाये गये हैं।

उपर्युक्त उपास्य देवताओं के अतिरिक्त इनकी पूजाविधि के सम्बन्ध में भी कुछ मनोरंजक कल्पनायें की गयी हैं। मिट्टी के एक तावीज़ पर एक व्यक्ति को ढोल पीटता हुआ तथा अन्य व्यक्तियों को नाचते हुए दिखाया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान काल की भांति उस समय संगीत और नृत्य पूजा के अंग थे। मोहेञ्जोदड़ों की नर्तकी की प्रसिद्ध कांस्य मूर्ति सम्भवत: उस समय देवता के सम्मुख नाचने वाली किसी देवदासी की प्रतिमा है।

खानपान

मोहेंजोदड़ो से गेहूं और जौ के कुछ नमूने मिले हैं, हड़प्पा में मटर और तिल भी पाये गये हैं। इनके साथ ही खजूर भी उस समय का प्रिय खाद्य था। अन्न के अतिरिक्त बैल, भेड़, सूअर, मुर्गी, घड़ियाल तथा कछुए का मास और मछलियां भी उनके भोजन का अंग प्रतीत होती हैं क्योंकि इन जानवरों की हड्डियां घरों और गलियों में प्रचुरता से मिली हैं।

खाना खाने के लिये सम्भवतः नीचे आसन पर बैठा जाता था किन्तु विशेष अवसरों पर धनी लोग कुर्सी मेज का उपयोग करते थे। खाने पीने के बर्तन मिट्टी व लकड़ी के होने के कारण नष्ट हो चुके हैं, शंख (shell) का बना एक चम्मच अवश्य मिला है। उन्हें नाना प्रकार के स्वादु व्यञ्जन और भोजन खाने का शौक था क्योंकि मसाले पीसने की बहुत सिल बट्टे यहां पाये गये हैं, छोटे २ बेलन और रोटी बनाने के अनेक सांचे नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों की सत्ता सूचित करते हैं। अति मात्रा में इन के सेवन से जो पाचन विकार और दुष्परिणाम होते होंगे, उन की सामान्य चिकित्सा अनुभवी वृद्ध और गृहणियां स्वयमेव कर लेती होंगी किन्तु विशेष रोगों में कुरंगशृङ्ग और शिलाजीत का प्रयोग होता था। ये दोनों क्रमशः काश्मीर और हिमालय से मंगाये जाते थे। आज तक भी आयुर्वेद में शिलाजीत अपचन, जिगर तथा तिल्ली की बीमारियों में दिया जाता है।

आमोद-प्रमोद

सिन्धु घाटी के बालक खिलौनों के बहुत शौकीन थे, खुदाई में ये बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं और मिट्टी, कर्पर तथा हाथी दांत के बने हुए हैं। बच्चों का सब से प्रिय खिलौना मिट्टी की बैलगाड़ी थी। मिट्टी के झुनझुने और पक्षी (सम्भवतः बुलबुल) भी मिले हैं। अन्य खिलौनों में बांस पर चढ़ने वाला जानवर, रस्सी से सिर हिलाने वाला बैल, रस्सी पर ऊपर नीचे चढ़ने वाली आकृतियां तथा पक्षी के आकार की सीटियां उल्लेखनीय हैं।

पुरुषों के प्रधान आमोद पासे से खेले जाने वाले खेल, संगीत, शिकार और पक्षी लड़ाना था। पासे घनाकार तथा चपटे दोनों प्रकार के मिले हैं। चपटे पासे हाथी दांत के बने हुए हैं। इनके सब पार्श्वों पर विभिन्न संख्यायें अङ्कित हैं। यह निश्चित रूप से पता नहीं लग सका कि पासे फेंकना अपने आप में भी कोई खेल था। यह सम्भव है कि इस से चौपड़ जैसे अन्य खेल खेले जाते थे। क्योंकि एक ईंट पर बिसात के निशान पाये गये है इस में १२ घर बने हुए हैं, ऐसा समझा जाता है कि किसी बड़े घर के नौकरों ने समय काटने के लिये घर के फर्श पर ही बिसात के निशान बना दिये थे और यह ईंट उसी का एक अंश है। एक अन्य ईंट पर कङ्कड़ियों या दानों से खेले जाने वाले के निशान बने हुए हैं। नृत्य के साथ ढोल का पहले उल्लेख हो चुका है, डफ और खड़ताल भी उस समय संगीत के प्रधान वाद्य प्रतीत होते हैं। मांसाहारी होने से इन लोगों में मृगया का व्यसन होना स्वाभाविक था। कुछ मुहरों पर तीर कमान से जंगली हिरण आदि के शिकार का दृश्य दिखाया गया है, बड़ी संख्या में पाये गये मछली के कांटे माहीगीरी का व्यसन सूचित करते हैं। सम्भवतः तीतर उड़ाने का भी उन्हें शौक था।

वस्त्र और वेशभूषा

विश्व में कपास की खेती सब से पहले भारत में हुई; सूती वस्त्रों का व्यापक प्रयोग मोहेंजोदड़ों की विशेषता हैं, मिश्र और मेसोपोटामिया में इनका व्यवहार नहीं था। आज से पांच हजार वर्ष पहले हड़प्पा के आसपास आजकल पञ्जाब में बोई जाने वाली कपास की कृषि होती थी। यद्यपि इसकी धुनाई के उपकरण

लकड़ी के बने होने से नहीं मिले किन्तु कताई के लिये व्यवहार में आने वाली चकतियां (spindle whorls) प्रचुर मात्रा में मिले हैं। इनके छेदों में लकड़ी या धातु की सींक डाल कर उन पर सूत काता और लपेटा जाता था। ये चकतियां पकाई मिट्टी, शंख और फयान्स की बनी हुई हैं, ऐसा जान पड़ता है कि पहली तकलियां निर्धनों की होंगी और पिछली धनियों की। अमीर गरीब सभी घरों में स्त्रियां सूत की कताई में व्यस्त रहती होंगी। मोहेञ्जोदड़ों की अधिकांश मूर्तियां कौपीन या छोटा लहंगा धारण किये हुए हैं। पुरुषों की वेशभूषा पर ध्यान मग्न योगी की शाल-धारिणी मूर्ति से सुन्दर प्रकाश पड़ता है। उस समय कढ़ाई किये हुए शाल को ओढ़ने का रिवाज था और इसे दांयी भुजा के नीचे से बायें कन्धे के ऊपर तक डाला जाता था। एक अन्य मूर्ति में यह शाल घुटने तक दिखाया गया है। हड़प्पा के एक ठीकरे पर बिरजिस पहने अथवा खूब कस कर धोती बांधे एक व्यक्ति अंकित है। स्त्रियों की अधिकांश मूर्तियों में कमर तक कोई वस्त्र नहीं दिखाया गया, कटि प्रदेश में करधनी से बंधा घुटनों तक का एक छोटा लहंगा होता था। कुछ मूर्तियों में पूरी आस्तीन का अंगरखा है परन्तु इस में वक्षःस्थल अनावृत है। सोने की कुछ सुइयों से यह स्पष्ट है कि कुछ वस्त्र सिले होते थे पर बिना सिले वस्त्रों का रिवाज अधिक था।

केशविन्यास, आभूषण

पुरुष लम्बे बाल रखते थे मांग बीच में से निकाली जाती थी। बालों को एक फीते से बाँध कर रखा जाता—अथवा बालों का जूड़ा बनाया जाता था। पुरुष छोटी या छंटवायी हुई दाढ़ी रखते थे। स्त्रियां प्रायः वेणी (गुत) बाधती थी और जूड़े का भी रिवाज़ था जैसा नर्तकी की मूर्ति से स्पष्ट होता है।

वस्त्रों का प्रयोग कम होने पर भी मोहेञ्जोदड़ों के धनी निर्धन स्त्री-पुरुष सभी को आभूषणों का बड़ा शौक था और शृङ्गार में बड़ी अभिरुचि थी। स्त्रियों की शिरोभूषा पंखे की आकार की होती थी और वे सिर पर सोने, चांदी, तांबे के शंकु के आकार के जेवर पहनती थी, माथे पर एक चोटीबन्द या फीता होता था। कानों की बालियां और नथों का काफी रिवाज था। खुदाई में कंठहारों के कई सुन्दर नमूने मिले हैं, ये लाजवर्द, अकीक, गोमेद, संगसुलेमानी, फिरोज़ा आदि मणियों की गुरियों की लड़ियों के बने होते थे। मोहेञ्जोदड़ों में चूड़ियां और कंगन बहुत अधिक पसन्द किये जाने वाले आभूषण थे। न केवल नर्तकियों की किन्तु देवताओं की बांहें भी चूड़ियों से ढकी होती थीं। स्त्रियों की दो मणि जटित करधनियां भी मिली हैं। पुरुष कंठहार, अंगद और अंगूठियां पहनते थे और बाल बांधने के लिये सोने चांदी के पतले तारों का व्यवहार करते थे।

स्त्रियों की शृङ्गारप्रियता खुदाई में पाये गये सिंगारदानों से मिलती है। ये हाथी दांत धातु और मिट्टी के बने हुए हैं। चमकीली मिट्टी के अनेक छोटे सिंगारदानों में इत्र तथा पाउडर रखने के चारखाने बने होते थे। विविध प्रकार की छोटी डिब्बियों में लगे सिन्दूर, महावर, काजल आदि के अंशों से यह ज्ञात होता है कि ५०० वर्ष पूर्व उत्तर-पश्चिमी भारत की तरुणियां भी अपनी रूपसज्जा आधुनिक स्त्रियों की भांति किया करती थीं। उस समय वर्तमान काल के शीशे के दर्पण नहीं थे और उन्हें खूब घिस कर चमकाये हुए कांसे के आइनों से सन्तोष करना पड़ता था। स्त्री-पुरुष दोनों बालों की सफाई के लिये कांसे के उस्तरों का प्रयोग करते थे क्योंकि ये खुदाई में बहुत अधिक संख्या में पाये गये हैं।



गुरुकुल-शिक्षण-प्रणाली की स्थिरता कैसे हो ?

श्री देवराज विद्यावाचस्पति

संसार में अनेक संस्कृतियाँ हैं। कई संस्कृतियाँ मौलिक हैं और कई दूसरी किसी संस्कृति का रूपान्तर हैं। वर्तमान भारतीय संस्कृति का मूल प्राचीन काल की वैदिक संस्कृति है। यह हो सकता है कि इस में बाहर से आई हुई अनेक जातियों की संस्कृतियों का किसी अंश में मिश्रण हो चुका हो। परन्तु इतना होते हुए भी अभी तक यहां की भारतीय प्रजा ने अपनी वैदिक संस्कृति की मौलिकता को छोड़ा नहीं है। भारत की अधिकांश जनता ने अपने धर्म, आचार-व्यवहार, समाज निर्माण, राजनैतिक प्रबन्ध और विज्ञान. जैसा कि आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अर्थ वेद, शिल्प, कृषि, गोपालन, खगोल विद्या, पशु-पक्षियों की विद्या, वनस्पतियों की विद्या, अश्व विद्या इत्यादि सब विद्याओं का आधार वेदों से माना है। उन्हीं वेदों का पठन-पाठन और अनुशीलन सुदीर्घ काल से बन्द हो चुका था। बाहर के देशों के प्रबन्धकों की दृष्टि इस भारत वर्ष के ऊपर ऐसी पड़ी जैसी गृध्र-दृष्टि मुर्दों पर पड़ती है। बाहर के लोग भारतीयों से अपना मतलब सिद्ध करके यहां की संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहते थे। ईसाई और मुसलमान इस बात पर तुले हुए थे कि भारत के अन्दर कोई हिन्दु हिन्दु रूप में न रहे। उनके प्रयत्न इस प्रकार के जारी थे कि कुछ ही वर्षों के अन्दर यहां के हिन्दुओं को समाप्त कर दिया जाय अर्थात् या तो वे ईसाई हो जायं या मुसलमान। हिंदु अपनी संस्कृति का गौरव भूल जायं। यहां की कृषि, और गाय आदि पशुओं के उद्योगों के द्वारा बाह्य देशों का पोषण हो और यहां के लोग बाहर से आई हुई बनी बनाई चीजों पर अपनी जीविका चलायें।

ऋषि दयानन्द ने ने अपनी आर्ष दृष्टि के कारण भारत के भविष्य को बहुत दूर तक देख लिया था। इस लिए भारतीयों को चेतावनी दी और पाश्चात्यों की तरफ से इनको अपना मुख मोड़ने के लिये प्रबल आदेश दिया। स्वामी दयानन्द की लिखी हुई 'गो करुणानिधि' से स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति का आधार गाय है। वेद के 'मातृभूमि' सूक्त को पढ़ने से प्रारम्भ में ही यह पता लग जाता है कि गौ और अश्व के अन्दर हम रहें न कि गौ और अश्वों को अपने अन्दर रखें।

आजकल स्वार्थी लोग गाय, घोड़ें आदि पशुओं को अपने स्वार्थ के लिये उन पर थोड़ा सा ध्यान करते हैं। परन्तु इन पशुओं के लिए अपने आप को अर्पण नहीं कर देते।

उसी वैदिक संस्कृति के पुनः प्रचार करने के लिये स्वामी दयानन्द के शिष्य महात्मा मुन्शीराम जी जिज्ञासु (श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल की स्थापना की) गुरुकुल में संस्कृत, आर्य भाषा, विज्ञान तत्वज्ञान और वेद, वेदाङ्ग, उमाङ्ग आदि सत्य शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ हुआ।

गुरुकुल शिक्षण प्रणाली को देखते हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सांस्कृतिक क्रान्ति के लिये जो प्रयत्न स्वागी श्रद्धानन्द ने प्रारम्भ किया उसका आधार भिक्षा वृत्ति पर रखा। उसी प्रणाली पर चलते हुए गुरुकुल आज तक अपने कदम बढ़ा रहे हैं। इस पद्धति में स्वामी श्रद्धानन्द जी को निःसन्देह गौरव प्राप्त हुआ परन्तु यह शिक्षा प्रणाली गुरुकुलों के अन्य संचालकों के लिये बहुत भारी हो गई।

आज गुरुकुलों के संचालक स्वामी श्रद्धानन्द जी का गौरव दिखलाने वाले गुणों का गान करते हैं। परन्तु साथ ही साथ इस शिक्षण प्रणाली में यह दोष भी बतलाते हैं कि यह शिक्षण प्रणाली केवल भिक्षा वृति के ऊपर चलने से वैसी उत्कृष्ट नहीं कही जा सकती जैसा उत्कर्ष इस में होना चाहिए।

प्राचीन काल के बड़े बड़े विद्यालय और विश्व-विद्यालय थे, साथ सैंकड़ों ग्रामों का सम्बन्ध रहता था और उनकी स्थिर आमदनी विद्यालयों को प्राप्त होती थी जिसके द्वारा सहस्रों विद्यार्थी उच्च शिक्षण विद्यालयों में प्राप्त करते थे। वसिष्ठ ऋषि के आश्रम का वर्णन जब हम पढ़ते हैं तो पता लगता है कि सम्पूर्ण सेना सहित राजर्षि विश्वामित्र का स्वागत वसिष्ठ के आश्रम में हुआ। इस से अनुमान कर लेना चाहिए कि वसिष्ठ ऋषि का आश्रम कितना विशाल होगा। इस आश्रम के साथ कितनी विस्तृत भूमि कृषि के लिये होगी और कितनी विशाल गौशाला वहां पर होगी। उसके आश्रम के वर्णन से पता लगता है कि इस प्रकार के बड़े २ आश्रम गायों की संस्कृति पर चलते थे। वह वस्तुतः भारतीय वैदिक संस्कृति का क्रियात्मक रूप था।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल की आर्थिक स्थिरता के लिए पञ्जाब की आर्य-समाजों का सम्बन्ध गुरुकुल के साथ इस प्रकार जोड़ा था कि आर्य-समाजों के द्वारा गुरुकुल को स्थिर आमदनी होती जाय। परन्तु कालचक्र के अनुसार यह सब योजना अस्थिर थी। वसिष्ठ ऋषि के आश्रम की योजना कृषि और गाय थे। इस लिये गुरुकुल शिक्षण प्रणाली की उत्तमता को ध्यान में रख कर यदि हम उसे स्थिर करना चाहते हैं तो उसका आधार वही भारतीय वैदिक संस्कृति बनाना होगा जिसका कुछ आभास हमें प्राचीन काल में वसिष्ठ ऋषि के आश्रम में मिलता है।

यदि हम कृषि, गोपालन, गोसंवर्धन आदि विषयों को शिक्षण का आधार बनाने के लिये पूर्ण प्रयत्न करें और उनमें वेद, वेदांग, उपांग, उपवेद आदि की पूर्ण शिक्षा स्वामी दयानन्द की प्रदर्शित प्रणाली के द्वारा दें तो निःसन्देह स्वामी श्रद्धानन्द जी का गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का आदर्श पूर्ण हो और जो निराशा गुरुकुलों के संचालकों को आर्थिक कठिनाई के कारण हो रही है वह दूर हो। इस समय योग्य शिक्षकों का अत्यधिक समय धन संग्रह मे व्यतीत हो जाता है और मदोन्मत्त धनिकों के सामने विद्वानों का हाथ फैलाना पड़ता है जिस से उनकी आत्मा को भारी धक्का पहुँचता है और उनका गौरव कम हो जाता है। आजकल के ज़माने में जिसके पास धन है उसी की सर्वत्र पूजा होती है और विद्वान् पुरुष उन से नीचे समझे जाते हैं। इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वर्तमान-शिक्षण-प्रणाली जो संसार को वैदिक संस्कृति का आदेश देने के लिये उपस्थित हुई थी वह स्वयं परमुखापेक्षी हुई है और उसका गौरव जो होना चाहिए था वह अनुभव करते हुये भी किसी अंश में दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

इस लिये स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रदर्शित गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली को ठीक करने के लिए हमें उसी भारतीय वैदिक संस्कृति का आश्रय लेना होगा जिसमें 'गो सेवा' की प्रधानता है। इस के लिये आवश्यक होगा कि गुरुकुल में प्रविष्ट प्रत्येक शिक्षार्थी अपने श्रम से अपना अन्न और वस्त्र उत्पन्न करे। अन्न और वस्त्र की उत्पत्ति को शिक्षार्थी के शिक्षण का अङ्ग बनाना होगा। सुदीर्घ काल में भारतीय जनता का निवास स्थान आश्रमों में बदल जावेगा। तब वैदिक संस्कृति का असली रूप प्रकट होगा।



अहिच्छत्रा से प्राप्त महत्वपूर्ण यक्ष-प्रतिमा

श्री कृष्णदत्त बाजपेयी एम० ए०

बरेली ज़िले का रामनगर गाँव तथा उसके आस-पास की भूमि एक प्राचीन नगरी की स्मृति संजोए हुए है। इस नगरी का नाम 'अहिच्छत्रा' था और यह पञ्चाल देश की राजधानी थी। प्रसिद्ध है कि द्रोणाचार्य ने राजा द्रुपद को महाभारत की लड़ाई के कुछ पहले परास्त कर 'उत्तर पञ्चाल' को अपने अधीन कर लिया और द्रुपद का स्वामित्व केवल राज्य के दक्षिणी भाग पर रहने दिया, जो 'दक्षिण पञ्चाल' कहलाया। उत्तर पञ्चाल की राजधानी अहिच्छत्रा हुई तथा दक्षिण पञ्चाल की कांपिल्य (वर्तमान कम्पिल, ज़िला फर्रूखाबाद)।

महाभारत में अहिच्छत्रा नगरी के अनेक उल्लेख मिलते हैं। इस के अन्य नाम छत्रवती, अहिछत्र, अधिच्छत्र, अहिक्षेत्र और अहिक्षत्र भी मिलते हैं। इलाहाबाद ज़िले के पभोसा (प्राचीन प्रभास) के एक अभिलेख में इस नगरी का नाम 'अधिछत्रा' दिया है। हरिवंश पुराण, पाणिनि की अष्टाध्ययायी आदि ग्रन्थों में भी इस प्रसिद्ध नगरी का वर्णन मिलता है।

लगभग ई० पू० १५० से अहिच्छत्रा की बड़ी उन्नति हुई। यह स्थान कुषाण-गुप्त काल में बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्म का एक बड़ा केन्द्र बन गया। कालांतर में जैनियों ने भी इसे महत्व प्रदान किया। रामनगर से कुछ दूर एक बड़ा गढ़ है, जिसे 'आदि-कोट' कहते हैं। यहां कई स्थानों पर १६४० से ले कर १६४४ ई० तक भारतीय पुरातत्त्व विभाग के द्वारा खुदाई की गई, जिस में पाषाण एवं मिट्टी की मूर्तियों तथा सिक्कों के रूप में मूल्यवान ऐतिहासिक एवं कलात्मक सामग्री प्राप्त हुई। गुप्तकालीन कुछ मूर्तियां तो अत्यन्त सुन्दर हैं। इन में पार्वती का आकर्षक केशविन्यास युक्त मस्तक, शिव का सिर, किन्नर-मिथुन तथा किरातार्जुनीय-मूर्तियां उल्लेखनीय हैं।

शुंग एवं कुषाण काल की कुछ स्त्री-पुरुषों तथा देवताओं की मूर्तियां भी कला की मूल्यवान् कृतियां हैं। इस खुदाई के द्वारा ई० पू० ३०० से भी पहले से ले कर ई० ११०० तक का इतिहास बहुत-कुछ प्रकाश में आ गया है। 'आदिकोट' तथा अन्य टीलों की खुदाई से अभी बहुत महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

प्राचीन अहिच्छत्रा नगरी के भग्नावशेष कई मीलों के विस्तार में दबे पड़े हैं। उन का जीर्णोद्धार इस विस्मृत नगरी तथा पञ्चाल देश की इतिहास शृंखला को जोड़ने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

हाल में ही मुझे रामनगर में एक अभिलिखित यक्ष-प्रतिमा प्राप्त हुई, जो पास के एक खेत से मिली बताई गई। मूर्ति को देखने पर पता चलता है कि बहुत समय तक इस से मसाला बाटने की सिलवट का काम लिया जाता रहा। मूर्ति बलूए लाल पत्थर की है। इस पर एक बड़े तोंद वाला बौना यक्ष बना है। वह अपने दोनों हाथों से अपना मुंह खोल कर दांत दिखा रहा है। उस के गले पर भारी भरकम माला दर्शनीय है। मूर्ति के अगल-बगल मकर-मुख तथा बेलें सुन्दरता से उत्कीर्ण हैं। मूर्ति की ऊंचाई डेढ़ फीट तथा चौड़ाई नौ इञ्च है।

यक्ष के सिर के ऊपर ई० दूसरी शती के प्रारम्भ का एक लेख खुदा है। यह लेख ब्राह्मी लिपि तथा मिश्रित संस्कृत भाषा में है और इस प्रकार है—

'भिक्षुकस्य धमघोषय दानं
फरगुलविहारा अहिछत्राया।'

ठहरो और प्रतीक्षा करो

प्रो० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०

अधीरता बचपन की निशानी है। छोटा बालक क्षुद्र सी वस्तु के लिए रोता पीटता है। ज़िद कर माता पिता के नाक में दम कर देता है; जो कुछ कार्य करता है, उस का फल तुरन्त चाहता है। उस में परिपक्वता नहीं होती। उस का मन ललचाता रहता है। हर वस्तु के प्रति उस के मन में एक सहज आकर्षण होता है।

इस अधीरता का बड़े व्यक्ति में होना एक कमज़ोरी है। जो व्यक्ति आज पेड़ लगा कर आज ही उस का फल चखना चाहता है, उसे मूर्ख कहा जायगा। संसार में सभी वस्तुओं के विकास तथा परिपक्वता के लिए एक निश्चित समय का क्रम है। उस समय का पालन प्रत्येक वस्तु तथा जीवन में होना अवश्यम्भावी है। समय से पूर्व कुछ नहीं हो सकता।

'ठहरो, और प्रतीक्षा करो'—इस में गहरा तथ्य छिपा हुआ है। ठहरने का यह अभिप्राय नहीं कि आप का जीवन आलस्य या शून्यता में व्यतीत हो। ठहरने से हमारा अभिप्राय है कि उस काल में सतत परिश्रम कर आप उत्तरोत्तर अपनी शक्तियां, योग्यताएँ, अच्छाईयां बढ़ाते रहें। कमज़ोरियों को छोड़ते रहें। एक एक सद्गुण चुन कर चरित्ररूपी उद्यान में लगावें। यह उन्नति का कार्य जितनी तीव्रता से चलेगा उतनी ही संसार में बढ़ने के लिए कम प्रतीक्षा करनी होगी।

जीवन के प्रारम्भ में हो सकता है आप को दूसरों से जली कटी बातें सुननी सहनी पड़ें। मन के घाव, दूसरों द्वारा कही हुई कटी जली बातों के घाव समय के बहाव के अनुसार स्वयं विनष्ट हो जाते हैं। प्रतीक्षा करने से एक समय ऐसा अवश्य आता है, जब पुराना जमा हुआ मैल धुल कर साफ हो जाता है। प्रतीक्षा करने का अभिप्राय है अपने आप को बढ़ते हुए समय, परिस्थिति, तथा नई आवश्यकताओं के अनुसार ढालते चलना। प्रत्येक दिन संसार की प्रगति तेज़ी से होती जा रही है। जीवन में संघर्ष भी तीव्रतर होता जा रहा है। प्रतीक्षा काल आप के लिए अपनी योग्यताएँ बढ़ाने का समय है। संसार के अन्य देशों के उन्नतिशील व्यक्तियों, संस्थाओं, पुस्तकों से ज्ञान संग्रह कर बड़े से संघर्ष के लिए तैयारी का समय है।

प्रतीक्षा-काल कठिन परिश्रम का समय तो है ही, सतर्कता, ध्यान और देखभाल का समय भी है। इस

अर्थात् अहिच्छत्रा के फरगुल विहार में धर्मघोष नामक बौद्ध-भिक्षु का दान।

यह लेख कई दृष्टि से महत्व का है। उपलब्ध शिलालेखों में यह सब से प्राचीन है जिस पर 'अहिछत्रा रूप मिलता है। 'फारगुल विहार' नाम भी उल्लेखनीय है। यह उस मुख्य बौद्ध विहार का नाम रहा होगा जो प्रारम्भिक कुषाण काल में अहिच्छत्रा में विद्यमान था। 'फरगुल' नाम विदेशी-सा लगता है—जैसे मणिगुल, हिरगुल आदि नाम।

इस मूर्ति को पूजा में रख लिया गया था और इस का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन था, यदि बरेली ज़िले के सब-डिवीज़नल मैजिस्ट्रेट श्री श्रीधरप्रसाद निगम तथा आँवला के पुलिस सब-इन्स्पेक्टर श्री हरप्रकाश मेरी मदद न करते। मै इन दोनों सज्जनों का एतदर्थ आभारी हूं। यह मूर्ति इस समय राजकीय संग्रहालय, लखनऊ में प्रदर्शित है।



पौधों में आत्मरक्षा के साधन

श्री ओम्प्रकाश

समस्त जन्तु जगत् किसी न किसी प्रकार से वनस्पति जगत पर आश्रित है । हम देखते है कि हमें भोजन, वस्त्र आदि प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी पूर्णतः वनस्पति जगत् पर ही आश्रित रहना पड़ता है । इस प्रकार पौधों को या तो भिन्न २ जाति के जन्तुओं के लिए बलिदान हो जाना चाहिए । विशेष तौर से उनके लिए जो शाकाहारी हैं और पूर्णतः शाकाहार पर ही अवलम्बित हैं या फिर उनके लिए ऐसे विशेष आत्मरक्षा के साधन होने चाहिएं जिस से वे अपने शत्रुओं से अपनी रक्षा कर सकें और उनके आघात से बच सकें। क्यों कि जमीन में सदैव एक स्थान पर स्थित रहने के कारण वे आत्म-रक्षा के लिए किसी अन्य 'प्रकार का छल प्रयोग करने में पूर्णतः असमर्थ होते हैं । यदि हम वनस्पति जगत् पर एक साधारण दृष्टिपात करें तो हम उनके आत्म-सुरक्षा के साधनों से भली भांति अवगत हो सकते हैं । उन

काल में आप को संसार की गति देखनी है । जन-रुचि का समुचित अध्ययन करना है । आप जिस दिशा में उन्नति कर रहे हैं, उस का महत्व तथा मूल्य कितना घट या बढ़ रहा है, यह भी ध्यान रखना है । जो व्यक्ति समय और परिस्थितियों के प्रति सतर्क है, वह विकास-पथ का पथिक है । कूप मण्डूक की भांति पड़े रहने वाले आदमी संसार में पिछड़ जाते हैं, जब कि सतर्क रहने वाले व्यक्ति चरम शिखर पर आरूढ़ होते हैं । सतर्क व्यक्ति समय की मार के ऊपर है । है। वह समय की आवश्यकताओं से सदा सर्वदा अपने को ऊँचा उठाये रहता है । जो समय चाहता है, उस से कहीं अधिक उसे देने के लिए प्रस्तुत रहता है । संसार में जितने महान् व्यक्ति हुए हैं, वे अपने ज्ञान, अनुभव तथा विद्या बुद्धि से इतने परिपूर्ण रहे कि उन की योग्यता का स्तर कभी नीचा न हुआ । उन्होंने अपने ठहरने और प्रतीक्षा के समय इतनी योग्यताएँ इकट्ठी कर लीं कि वे उच्च से उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो सके ।

अंग्रेज़ी में एक कहावत है कि कुत्ते के भी दिन फिरते हैं । अभिप्राय यह है कि हम में से प्रत्येक के जीवन में एक ऐसा महत्वपूर्ण क्षण आता है, जब हमारी योग्यताएँ इतनी विकसित हो जाती हैं कि हम संसार की प्रतियोगिताओं में हिम्मत से खड़े हो कर सफलता प्राप्त कर सकते हैं । यदि मनुष्य धीरे-धीरे आत्म-विकास करता रहे, तो वास्तव में एक दिन वह उच्चतम पद के योग्य हो सकता है । हमारा अनुभव हमें आगे बढाता है ।

अनुभव का बड़ा मूल्य है । पुस्तकीय ज्ञान अपूर्ण और अधूरा-सा रहता है । संसार के विषय में जो मान्यताएं हम स्वयं अपनी इन्द्रियों के ज्ञान से एकत्रित करते हैं, वह ठोस और पूर्ण होता है । 'ठहरो और प्रतिक्षा करो' का अभिप्राय यही है कि अपना अनुभव बढ़ाइये । संसार की गति, मनुष्यों की आदतों, कूटनीतियां तथा गुप्त रहस्यों को देखिये आप को अनेक प्रकार की नई नई बातों का ज्ञान होगा । यही गुप्त रहस्य मिल कर आपका अनुभव बन जायंगे । आपके अनुभव में अनेक ऐसी कटु अनुभूतियां भी सम्मिलित होंगी । आपको जहां ठोकर लगती है, आपको जो नुकसान होता है. वह दूसरे अर्थों में आपका अनुभव बढ़ाता है । आगे के जीवन में सतर्क रहने का आदेश देता है ।



साधनों में से निम्न उल्लेखनीय हैं।

रक्षात्मक साधन

कांटों की उपस्थिति—ये काफी कड़े, नोकीले और तेज होते हैं और बहुत से वृक्षों में उनके शरीर पर बाहर की ओर निकले होते हैं। इनके कारण कोई भी जन्तु इनके पास आने का साहस नहीं करता। इसका सब से अच्छा उदाहरण गोखरू है, जिसके सारे शरीर पर कांटे ही कांटे होते हैं ये कांटे छोटे बड़े, नोकीले और सूई जैसी आकृति के हर प्रकार के हो सकते हैं स्थिति और बनावट के अनुसार इनको हम निम्न भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१. कक्षज शूल—ये कड़े सीधे और नोकीले होते हैं। ये वास्तव में कक्षज कलिका के ही रूपांतर हैं क्योंकि ये भी पत्ती के कक्ष से ही निकलते हैं। ये जन्तु की त्वचा को बड़ी आसानी से छिद्रित कर सकते हैं, इनका उदाहरण हम नींबू, दुराटां, करञ्ज आदि में भली भांति देख सकते हैं।

२. पत्रज शूल—किन्हीं पौधों में पत्तियां ही नोकीली होकर कटार जैसी शक्ल में परिवर्तित हो जाती और इस प्रकार पौधों की रक्षा करती हैं। पत्तियों का कांटों में परिवर्तन विभिन्न पौधों में विभिन्न प्रकार से होता है। किन्हीं पौधों में ये परिवर्तित कांटे ठीक पत्तियों के स्थान पर ही होते हैं जैसे बरबेरी (Barberry) लेकिन नागफनी में हम देखते हैं कि साधारण पत्तियां तो थोड़ी वृद्धि को प्राप्त होकर गिर जाती हैं परन्तु पत्ती के कक्ष में उत्पन्न छोटी २ पत्तियां ही बढ़ कर कांटों का रूप धारण कर लेती हैं। ये कांटे पौधे की ऊपर की चोटी पर भी हो सकते हैं जैसा कि हम खजूर में देखते हैं और किनारे पर भी जैसे पीले धतूरे में।

२. वक्र शूल—ये पौधे में अति वृद्धि के रूप में होते हैं और पौधों पर अनियमित ढंग से फैले होते हैं ये कड़े और कक्षज शूल की भांति नोकीले होते हैं और अक्सर मुड़े हुए होते है, ये गुलाब में बड़ी अच्छी प्रकार देखे जा सकते हैं जन्तु को इन मुड़े कांटों से छुटकारा पाने के लिए बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

बालों की उपस्थिति

१. डसने वाले बाल (बिच्छू पेड़)—किन्हीं पौधों में उनकी पत्तियों पर, फलों पर या उनके समस्त शरीर पर एक प्रकार के डँसने वाले बाल उत्पन्न हो जाते हैं। प्रत्येक बाल मे एक नोकीला सिरा होता है जोकि जरा सा छू देने पर टूट जाता है। जब कोई जन्तु उसके पास से गुजरता है तो इस बाल का किनारा टूट कर प्राणी के शरीर में घुस जाता है और घाव कर देता है और बाल में स्थित एक अम्लीय रस घाव के द्वारा शरीर में पहुंच कर सूजन और दाह पैदा कर देता है। इन पौधों में सब से ज्यादा विषैला पौधा ज्वर बिच्छू पेड़ (Feverer Devil Nettle) है जो कि आसाम में बहुत पाया जाता है।

२. ग्रन्थिल बालों की उपस्थिति—बहुत से पौधों के पत्तों, शाखाओं या फलों के ऊपर ऐसे बाल उपस्थित होते हैं कि जिनके चारों ओर छोटी २ ग्रन्थियां होती हैं। इन ग्रन्थि वाले बालों से एक प्रकार लेसदार पदार्थ निकलता है। अगर कोई जानवर इनको खाता है तो यह लेसदार पदार्थ उनके मुख में चिपट जाता है और इस से जानवर को बड़ी कठिनाई अनुभव होती है और इस प्रकार ऐसे पौधे चरने वाले जानवरों से अपनी रक्षा करने में समर्थ होते हैं। तम्बाकू, पुनर्नवा और चित्रक आदि इस प्रकार के पौधों के अच्छे उदाहरण हैं।

३. घने बालों की उपस्थिति—किसी पौधे पर घने बालों की उपस्थिति भी पौधों को जन्तुओं से बचाने में समर्थ होती है क्योंकि ये बाल उनके गले में चिपक जाते हैं और इस से उन्हें ऐसा अनुभव होने लगता

है मानों उनका गला घुट रहा हो।

अन्य रक्षात्मक उपाय

१. विष—बहुत से पौधों में विष होता है या कुछ उत्तेजक पदार्थ उपस्थित होते हैं। ऐसे पौधे भी उन जन्तुओं से जो विषैले और निर्विष पौधों की पहिचान कर लेते हैं अपने आप को बचा लेते हैं।

१. दूधिया पौधे—किन्हीं पौधों में दूध के प्रकार का एक रस निकलता है जोकि अक्सर विषैला या क्षोभ उत्पन्न करने वाला होता है। जब यह दूध त्वचा पर लगता है तो उस स्थान पर जलन कर देता है इस दूध से कभी २ फफोले भी पड़ जाते हैं, कनेर, आक आदि इस प्रकार के दूधिया पौधों के उदाहरण हैं।

२. एलकेलॉईड (Alkaloids—ये भी बहुत घातक होते हैं। इनकी थोड़ी सी मात्रा ही किसी जन्तु के जीवन-हरण के लिये पर्याप्त होती है। ये बहुत प्रकार के पौधों में पाये जाते हैं जैसे Strychnine कुचला में. Morphine अफीम में और Daturine धतूरे में।

३. क्षोभक पदार्थ—बहुत से पौधों में कैलशियम ऑक्जेलेट (Calcium Oxalate) के तेज और नौकीले दाने होते हैं। जब इस प्रकार के पौधे खाए जाते हैं तो उन में स्थित Calcium Oxalate के दाने जीभ और गले को छिद्रित कर देते हैं, और गले में क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं, इस प्रकार ऐसे पौधों को चरने वाले जानवरों का शिकार नहीं होना पड़ता, इस प्रकार के पौधों का सब से अच्छा उदाहरण पान है।

तीखे स्वाद और तेज गन्ध वाले पौधे

खराब स्वाद और तेज गन्ध होने के कारण भी बहुत से पौधे जन्तुओं से अपने आपको बचाए रखते हैं। गन्धाली की बुरी गन्ध के ही कारण उसके पास कोई जाना तक पसन्द नहीं करता। तुलसी, पोदीना, ककरौंदा भी अपनी तेजगन्ध के ही कारण काफी हद तक जन्तुओं से बचे रहते हैं इसी प्रकार नीम भी अपने कड़वे स्वाद के कारण अपने आप का बलिदान करने से बचाये रखता है।

पौधों में नकल करने की आदत

बहुत से पौधे दखने में ऐसे पौधों या जन्तुओं के समान दिखाई देते है जो कि रक्षात्मक साधनों से सम्पन्न है और इस प्रकार धोका देकर वे अपने आप का जानवरों से बचाए रखते हैं। उदाहरण के लिए हम कैलेडयम (Caladium) की विभिन्न किस्मों को ले सकते है, जिनके पत्ता के ऊपर सांप की भांति धब्बे होते हैं और धारियां भी होती हैं। चरने वाले जानवर इनको सांप अथवा मरे जन्तु समझ कर छोड़ देते हैं। इसी प्रकार शिलांग में वर्षा में होने वाले सपवृक्ष नाम के पेड़ को भी जानवर नहीं छूते क्योंकि वह देखने में बिलकुल फनियर के फन के सदृश दिखाई देता है।

वृक्षों पर छाल अथवा कार्क का होना भी उनके सुरक्षात्मक साधनों में से एक है क्योंकि इस से वे अपने आप को धूप और अन्य कीड़ों से बचाए रखने में समर्थ होते हैं।



चीन की प्राचीन गुफाएं

सरदार केवलम् माधवन पणिक्कर

तंगुआं गुफायें चीन की गोबी मरुभूमि के बीच में हैं। यह स्थान संसार के अत्यन्त दुर्गम स्थानों में से है। मरुभूमि के बीच में एक पर्वत श्रेणी है, जिस में लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष पहले बौद्ध भिक्षुओं ने वैराग्य तथा तपस्या का जीवन बिताने के लिए गुफायें बनायी थीं। उन गुफाओं में उन्होंने इतने भित्ति चित्र बनाये कि संसार में उनकी तुलना केवल अजन्ता तथा बाघ के चित्रों से ही की जा सकती है।

जिस स्थान पर गुफायें बनी हैं वह चारों ओर से पर्वतों से घिरा हुआ है और बीच में एक सुन्दर सी घाटी है। समीप ही छोटा सा झरना शांत स्वभाव से बहता हुआ दूर मरुभूमि में लुप्त हो जाता है। इस स्थान पर लगभग एक हज़ार वर्ष तक बौद्ध भिक्षु भक्ति तथा तपश्चर्या का जीवन व्यतीत करते रहे किन्तु १४ वीं शती के लगभग मध्य काल में वे लोग यहां से चले गये और धीरे धीरे लोग इस स्थान को भूल गये।

बीसवीं शताब्दी में पुनः इसकी खोज से संसार में एक हलचल सी मच गई। यद्यपि १९ वीं शताब्दी में भी इक्के दुक्के विदेशी वहां पहुँचे किन्तु बीसवीं शताब्दी में सर आरेल स्टीन के वहां पहुंचने पर संसार को यह ज्ञात हुआ कि वहां की एक गुफा में चित्रों तथा हस्तलिपियों का एक महान संग्रहालय छिपा हुआ है। सर स्टीन ने जैसे तैसे करके वहां के एक पुजारी को मना कर और ५००) रुपये की छोटा सी रकम देकर वहा से ६००० से अधिक हस्त-लिपियां प्राप्त कर ली। इस के बाद फ्रांसीसी विद्वान् पीलियट ने वहां की खूब छानबीन की और महत्व की सभी वस्तुएं अपने साथ ले गये। जब यह ज्ञात हुआ कि लोग वहां से पुरानी पुस्तकों का बहुत कोष उठा कर विदेशों के पुस्तकालयों तथा अजायबघरों में ले गये हैं तो चीनी जनता में विक्षोभ की लहर दौड़ गयी और साथ ही वहां के विद्वानों तथा शिक्षाविदों में इन गुफाओं के प्रति रुचि पैदा हुई। बड़े बड़े कलाकारों के संरक्षण में वहां एक संस्था स्थापित की गयी और उन गुफाओं से कुछ भी बहुमूल्य पदार्थ न ले जाने देने के लिये कानून पास किये गये। नये चीन के अधिकारियों ने यह जान लिया कि इन गुफाओं में अतीत की चीनी कला का विशाल कोष छिपा हुआ है अतएव इसकी ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया।

१९५१ में पीकिंग में एक विशाल प्रदर्शनी का आयोजन किया गया जिस में इन गुफाओं में बने चित्रों की प्रतिलिपियों के संकलन प्रदर्शित किये गये। इस प्रकार लगभत सात शताब्दी के बाद तंगुआं गुफाएं कला के महान् पुनरुत्थान का एक केन्द्र बन गयी हैं।

तंगुआं गुफाओं की संख्या ४६० से कम नहीं है। इन में से कुछ बहुत बड़ी तथा कुछ छोटी हैं। ये गुफायें मूर्तियों तथा चित्रों से सुसज्जित हैं। चट्टानें काट कर गुफायें बनाने की प्रणाली, गुफाओं में बने चित्रों के कथानक तथा अन्य बहुत सी बातों से स्पष्ट होता है कि इन सब पर भारतीय प्रभाव बहुत अधिक है। चित्रकला तथा मूर्तिकला तो भारतीय कला से बहुत मिलती जुलती है। ऐतिहासिक अध्ययन तथा खोज से यह ज्ञात होता है कि तंगुआं की ये गुफायें अजन्ता तथा उनकी समसामयिक अन्य गुफाओं से कम से कम दो सौ वर्ष बाद बनीं।

तंग चित्रकारों ने लोगों के जो चित्र बनाये हैं वे भारतीयों तथा चीनीयों के मिले जुले चित्र जान पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त उन चित्रों के कथानक बुद्ध के बलिदानों तक ही सीमित नहीं हैं वरन् उनमें बुद्ध तथा

ब्राह्मणों का मतभेद भी व्यक्त किया गया है। एक कथानक यह है कि एक राजकुमार ने बुद्ध को शाही छतरी भेंट की जिसको ब्राह्मण मतावलम्बी राजा ने वापस लेने का यत्न किया। इस पर वह राजकुमार, उसकी पत्नी, बच्चे तथा नौकर चाकर भिक्षु बन गये। यह कथा बहुत सी गुफाओं में चित्रित की गयी है। ज्ञात होता है कि ह्यूनसांग के भारत से वापस चीन जाने पर चीनी लोगों के मानस से भारत के विषय में यह भावना बन गयी कि भारत एक पवित्र देश है। अतएव, उन्होंने पवित्र देश (भारत) के काल्पनिक दृश्यों के चित्र बनाये। तीन बड़ी बड़ी गुफाओं में परिनिर्वाण के बाद बुद्ध की विशाल मूर्तियां बनीं हुई हैं और भक्त लोग पास में शोकमुद्रा में बैठे हैं इन मूर्तियों के निर्माण में तंग कलाकारों की उत्कृष्ट कला का आभास मिलता है। बैठी हुई मुद्रा में गौतम बुद्ध की दो और विशाल मूर्तियां वहां पर हैं, जिन में से एक तो ६० मीटर ऊंची है। छोटी मूर्ति २० मीटर ऊंची है और बहुत सुन्दर है। इस विशाल गुफा की दीवारों पर असाधारण रूप से सुन्दर चित्र बने हुए हैं। तंग गुफाओं में चित्रकला तथा मूर्ति-निर्माण कला के अत्यन्त उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं।

बाद में बनी तंग गुफाओं के चित्रों आदि की कला अपेक्षाकृत घटिया है। इन में बौद्ध-धर्म की पवित्रता तथा आध्यात्मिकता के भाव उतने स्पष्ट रूप से नहीं झलकते। ज्ञात होता है कि समय के साथ साथ बौद्ध आदर्शों एवं मान्यताओं का प्रभाव धीरे धीरे कम होता गया। यह बाद के चित्रों तथा मूर्तियों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

तंगुओं क्षेत्र जब 'साओ' के तुर्की परिवार के अधीन चला गया तो उनके शासक ने दो विशाल गुफायें खोली और गौतम बुद्ध के जीवन सम्बन्धी अत्यन्त सुन्दर चित्रों से उनको सुसज्जित किया। उस समय के कलाकारों ने नये चित्र तथा मूर्तियां बनाने के अतिरिक्त पुराने चित्रों को फिर से ताज़ा कर दिया।

इसके बाद मंगोल खानदान के समय में तंगुओं के वातावरण में एक बड़ा परिवर्तन हुआ। तंत्र विद्या में विश्वास होने के कारण उस समय कलाकारों ने मैथुन क्रियाओं के चित्र बनाये। कलात्मक दृष्टिकोण से ये भी सुन्दर चित्र हैं।

तंगुओं गुफाओं में बौद्ध विचारों को व्यक्त करने वाले चित्रों का आधिक्य है। किन्तु इनके साथ ही साथ वहां की बहुत सी गुफाओं में साधारण दिनचर्या के दृश्यों को भी चित्रित किया गया है। नृत्य, गायन तथा अन्य आमोद प्रमोद के चित्र भी वहां मिलते हैं। इस प्रकार इन गुफाओं में बने चित्र तथा मूर्तियां विभिन्न मतावलम्बियों की कला का दिग्दर्शन कराती है। इन गुफाओं को निश्चय ही एशिया का एक महान् कला भंडार कहा जा सकता है।

अब, सब से आवश्यक बात यह है कि भारत तथा चीन, दोनों देशों में भित्ति चित्रों के संरक्षण में लगे लोगों को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में पूर्ण सहयोग से काम करना चाहिये। यह भी आवश्यक है कि अजन्ता, बाघ तथा तंगुओं की गुफाओं की कला का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय।



अहिंसा

आचार्य विद्यानन्द 'विदेह'

पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
अथो अरिष्टतातये ॥ (अ० ६. १९. २)

(पवमानः) पवित्रकर्ता परमेश्वर (मा) मुझे (नातु) पवित्र करे। किस लिए ? (१) (क्रत्वे) सुकर्म करने के लिए, (२) (दक्षाय) दाक्षिण्य, दक्षता, बुद्धि, शक्ति, सामर्थ्य, पुरुषार्थ के लिए, (३) (जीवसे) जीवितों के समान जीने के लिए, (४) (अथो) और (अरिष्ट-तातये) अहिंसा-न्याय के विस्तार के लिये।

❀ ❀ ❀

प्रथम 'अरिष्ट-अहिंसा' पर विचार कीजिये। महर्षि पतञ्जलि योगदर्शन के साधनपाद में ३५ वें सूत्र में कहते हैं—'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः' अहिंसा स्थिति में उस के समीप वैरत्याग होता है। अहिंसा की सिद्धि हो जाने पर योगी के समीप वैर का त्याग हो जाता है। यह इस सूत्र का शब्दार्थ तथा भावार्थ है।

इस सूत्र से यह तात्पर्य लेना कि जिस को अहिंसा की सिद्धि हो जाती है उस से कोई वैर नहीं करता, हिंसक प्राणी व पुरुष उस के प्रति हिंसा का त्याग कर देते हैं, सर्वथा भ्रान्त, अव्यावहारिक, अयुक्त और असिद्ध है। क्राइस्ट सर्वथा अहिंसक थे, परन्तु उन की हिंसा की गई। बुद्ध और महावीर अहिंसासिद्ध महात्माओं को भी सताया गया। अहिंसाव्रती शंकर और दयानन्द को विष पिलाया गया और गांधी को पिस्तौल से मारा गया। जन्म से अहिंसक गौ जैसे प्राणी की भी हिंसा की जाती है।

इस सूत्र का त्रिकालसिद्ध, व्यावहारिक तथा स्वाभाविक अर्थ यह है कि 'अहिंसासिद्ध पुरुष वैर का त्याग कर देता है' न्यायाधीश न्याय भाव से अपराधी को मृत्यु दंड देता है तो अहिंसा है, यदि वैर भाव से ऐसा करता है तो हिंसा। गुरु सुधार भाव से शिष्य को ताड़ना करता है तो अहिंसा है, वैर भाव से ऐसा करता है तो हिंसा है। सैनिक राष्ट्र रक्षा की भावना से आक्रमणकारियों का हनन करता है तो अहिंसा है यदि वैर भाव से ऐसा करता है तो हिंसा है।

अहिंसा हिंसा का निर्णय कर्म से नहीं भावना से होता है। न्याय, सुधार और रक्षा की भावना से किया गया कोई भी और कैसा भी कर्म अहिंसा है। वैर भावना से किया गया कार्य हिंसा है। सुधार और रक्षा भी न्याय के अन्तर्गत हैं। सुधार न्याय है, रक्षा न्याय है। अतः अहिंसा का सही अर्थ है न्याय। अब उपर्युक्त सूत्र का अर्थ पूर्णतः स्पष्ट, व्यापक और व्यावहारिक हो जाता है—(अहिंसा-प्रतिष्ठायां) न्याय में प्रतिष्ठित-संसिद्ध होने पर (तत्सन्निधौ) उस [अहिंसक-न्यायशील) के समीप में (वैर-त्यागः) वैर का सर्वथा त्याग हो जाता है। अहिंसक-न्यायशील वह है जो वैर भाव से सर्वथा रहित हो कर सब के प्रति निष्पक्षपात और न्याय के साथ बर्तता है। न्याय = अहिंसा। अन्याय = हिंसा।

अब मन्त्र का अर्थ अतिशय स्पष्ट हो गया और विशेष व्याख्या की अपेक्षा नहीं रही। कुछ संकेतमात्र स्पष्टीकरण ही पर्याप्त होगा। पवित्रता-प्राप्ति के अनेक उपाय हैं परन्तु सब से श्रेष्ठ और अचूक साधन है ईशाराधन। परमेश्वर परम पवित्र है। अतः ईश्वर

लेखन एवं मुद्रण में अशुद्धियां और नागरी लिपि में सुधार

श्री चन्द्रकिशोर शर्मा

लेखन एवं मुद्रण की अशुद्धियां और नागरी-लिपि-सुधार आज की विचारणीय समस्याएं हैं। स्पेलिंग की अशुद्धियां हो जाने में जहां, उच्चारण एवं श्रवण सम्बन्धी भूलें, व्याकरण सम्बन्धी भूलें और भिन्न-भिन्न स्थानों की बोलियों के लहज़े आदि कुछ कारण हैं—वहां, नागरी-लिपि की दुरूहता एवं मुद्रण सम्बन्धी दोष भी विचारणीय हैं। विद्वज्जन इन पर यदा-कदा लिखते रहते हैं और विद्यार्थियों के उत्तर-पत्रों को जांचने वाले परीक्षकगण अशुद्धियों और उन के प्रकारों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाते रहते हैं। उन के द्वारा विषयों पर प्रकाश तो पड़ता है परन्तु वैज्ञानिक रीति से इन पर विचार नहीं के बराबर है। आज लिपि-सुधार की चर्चा है, इसलिए आवश्यक है कि लिपि के सुधार में उस दृष्टि से विचार किया जाय कि लिपि-दोष से होने वाली अशुद्धियां भी दूर हो सकें और लिपि पूर्ण उच्चारणानुयायी भी बन जाय। साथ ही वे अड़चनें भी दूर हो जाय जो हमारी लिपि के लिए, लेखन मुद्रण के आधुनिक यान्त्रिक साधनों से सुविधा पूर्वक लाभ न उठाने देने में बाधक हैं।

स्वर और मात्राएँ

इ ई उ ऊ—नागरी लिपि में ह्रस्व इ की मात्रा दोष-पूर्ण है क्योंकि वह क+इ (ि)=कि की भांति, उच्चारण-क्रम के विरुद्ध अक्षर से पहले लगती है। युक्ताक्षरों में तो इस मात्रा से और भी अधिक भ्रम होता है जबकि किसी के द्वारा 'इन्स्टीट्यूट' और किसी के द्वारा 'इंन्स्टिट्यूट' लिखा मिलता है

की उपासना, प्रार्थना और भक्ति से पवित्रता की प्राप्ति होती है। अन्दर और बाहर से पवित्र होने पर मनुष्य सुकर्मा और शक्तिमान् बनता है। पवित्रता ही सत्कर्म की प्रेरक और शारीरिक तथा आत्मिक शक्तियों का सञ्चार करने वाली है। पवित्रता, सत्कर्म और बल से युक्त जीवन ही जीने योग्य जीवन है, सच्चा और सार्थक जीवन है, जीवित जीवन है और ऐसे जीवन वान् ही संसार में न्याय की स्थापना करते हैं।

न्याय सर्वोपरि है। न्याय यम नियम की आत्मा है, मानवता का दुग्ध है, योग का आधार है और धर्म का स्तम्भ है। सत्य सत्य के लिए प्यारा नहीं है, न्याय के लिए प्यारा है। अस्तेय अस्तेय के लिए नहीं है, न्याय के लिए है। ब्रह्मचर्य किसी काम का नहीं, यदि उस से न्याय का रक्षण नहीं होता। अपरिग्रह की साधना न्याय के ही लिए है। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान सब व्यर्थ हैं, यदि उन से न्याय का प्रतिपादन नहीं होता।

शासन, व्यवस्था, नीति, रक्षा, समाज, राष्ट्र सब न्याय के ही लिए हैं। इन का कोई महत्व नहीं, यदि ये न्याय की रक्षा नहीं कर सकते। माता से, पिता से, गुरु से, राजा से, राष्ट्रपति से, सब से न्याय की अपेक्षा की जाती है। न्याय से बढ़ कर न कोई धर्म है न आचार, न कोई साधना है न शिक्षा, न कोई शासन है न व्यवस्था। जो न्याय-तुला पर पूरा नहीं उतरता, वह न्यून है, हेय है।

पावन प्रभो! मुझे पवित्र कर, मुझे सुकर्म की प्रेरणा कर, मुझे सशक्त बना, मुझे जीवित जीवन से युक्त रख, ताकि मैं सर्वदा सर्वत्र न्याय की रक्षा कर सकूं।



ह्रस्व इकार की मात्रा द्वारा लिखने वाले कोई कोई सज्जन थोड़ा अधिक स्पष्ट करने के लिए 'इन्स्टिटियूट' भी लिख देते हैं। एक साइनबोर्ड में 'गोल्ड स्मिथ' को गोल्ड स्मिथ' लिखा देखा गया है इसे उस लिपिकार की अल्पज्ञता कहिये या अधिक चतुरता कि जिस से बिना प्रयास ही शुद्ध पढ़ा जाने के विचार से ऐसा सरल मार्ग अपनाया है। 'इस्थिति' लिख कर तो किसी ने स्थिति को स्पष्ट ही कर दिया है।

नागरी लिपि में इ की मात्रा (ि) और अर्द्ध र् (ॅ) चिन्ह उच्चारण क्रम के विपरीत एक दूसरे के प्रतिकूल व्यवहृत होते हैं, इस कारण यह पूर्ण उच्चारणानुयायी नहीं कहलाई जा सकती और ना ही यह नियम बन सकता है कि जो चिन्ह बाद में लिखा जाय (चाहे ऊपर या नीचे) वह बाद में ही पढ़ा जाय, क्योंकि वर्तमान अवस्था में पॅ को पं की तरह प्र नहीं पढ़ा जा सकता। इस लिए सुझाव है कि इन दोनों चिन्हों को परस्पर अदल-बदल कर दिया जाय। ऐसा करने पर 'अर्चित' जैसे (ि और ॅ) दोनों चिन्हों वाले शब्द तो ज्यों के त्यों रहेंगे किन्तु 'अर्चन' को 'अचिन' और 'अचिन' को 'अर्चन' पढ़ना लिखना पड़ेगा। प्रचलित क्रम के कारण आगे इस अदल-बदल से असुविधा न हो अतः उन में कुछ रूपान्तर द्वारा संशोधन कर दिया जा सकता है।

यों यह आकार (ॅ) इ का दीर्घीकरण चिन्ह अर्थात् ई=इ+इ (ॅ) होने से ह्रस्व इ की मात्रा है और विद्यार्थी पहले ऐसा ही सीखता है अत: ऐसा मनवाना सरल है। इस पुष्टि में उ से ऊ बनाने में लगने वाला अंकुश और ए से ऐ बनाने में लगने वाला मात्रा चिन्ह उपस्थित किया जा सकता है। इन में से प्रथम, रु लिखने में ह्रस्व उ की मात्रा काम देती है और द्वितीय, सभी व्यञ्जनों में ए की ध्वनि व्यक्त करने में लगता है। प्रकारान्त से आ में लगा हुआ पाई का चिन्ह (ा) भी आ=अ+अ (ा) होने से अ का रूप है जो सभी व्यञ्जनों में इसका सूचक है। इस को हटा देने से वे निःस्वर हो जाते हैं।

दूसरा सुझाव इस (ि) मात्रा को बदल देने विषयक है। यू० पी० की लिपि सुधार समिति ने इसको बदलना स्वीकार कर लिया है। किन्तु उसके द्वारा जो आकार निश्चित किया गया है—अपेक्षाकृत कठिन है और नागरी लिपि के अनुरूप नहीं है अधिक अच्छा हो कि उस पर पुनर्विचार करके कोई अन्य सरल आकार चुना जाय।

लिपि दोष के कारण उ ऊ की मात्राएं र में इस प्रकार (रु रू) विकृत होकर लगती हैं, जब कि अन्य व्यञ्जनों में कु मु आदि की भांति प्रयुक्त होती हैं। किन्तु देखने में आता है कि कोई-कोई उन्हें र में भी इसी प्रकार लगा कर रु रू लिख जाते हैं। भले ही यह अशुद्ध नहीं हैं; अशुद्ध तो वह इसी कारण माना जाता है कि रु रू के आकार पहले से निश्चित हैं। रु रू क्यों नहीं लिखा जाता—इसके सिवाय कोई कारण नहीं जान पड़ता कि द्रुत-हस्त-लेखन (घसीट) में रु का उ ड ट दु हु बन जाता है और रू को इ ह्र हू पढ़ लिया जाने का अन्देशा हो सकता है। यदि देखा जाय तो ट ड द ह में भी तो ये मात्राएं ऐसे ही भ्रम उत्पन्न करती हैं किन्तु उनके विषय में वैसा कुछ नहीं किया गया है। अतः जब घसीट में लिखे हुए टुक को डक दुक हुक; टूट को इट हूट दूत; दूसरा को इसरा हूसरा; दुआ को हुआ टुआ; इक को हक टक; दृढ़ को हढ़ इढ़ और इसी प्रकार स्वामी को रचामी पढ़ लिया जाता है तो कोई कारण नहीं कि रु रू को रु रू न लिखा जाया करे। आज तो इस प्रकार लिखने के सुझाव भी दिये जा रहे हैं ताकि उ ऊ की मात्राओं को विकृत होने से बचाया जा सके, लिपि की दुरूहता दूर करने में सहायता मिले और मुद्रण एवं लेखन यन्त्र

के लिए चिन्हों की संख्या में कमी हो सके। बंगला लिपि में भी इस प्रकार का सुधार उ ऊ की मात्राओं के सम्बन्ध में हो रहा है और पाठशालाओं में दोनों रूप ठीक माने जाते हैं।

लिपि दोष से होने वाली अशुद्धियों और कथित भूल से बचना ही योग्य है तो उ ऊ की मात्राओं के रु रू में लगे जैसे आकार ही कुछ रूपान्तर करके सर्वत्र प्रयोग के लिए ले लिये जावें। यदि यह नहीं तो र का ही आकार बदल दिया जाय क्योंकि इस आकार के कारण ही उ ऊ की मात्राएं विकृत होती हैं और यही आकार आगे युक्ताक्षरों में विभिन्न रूप धारण करता है। फिर उ ऊ की मात्राएं और र का एक अन्य रूप (्र) और अवशिष्ट ध्वनि चिन्ह (.) अक्षर के नीचे लगते हैं अन्तिम दोनों में से किसी के साथ जब उ या ऊ की मात्रा आ जाती है तो वह अक्षर पर ठीक प्रकार नहीं लगतीं—एक-एक चिन्ह अक्षर से अलग जा पड़ता है। ट्रूप ट्रूमैन एण्ड्रूज पढ़ूँगा प्रभृति शब्द तो नित्य ही समाचार पत्रों में देखने में आते हैं—किस किस प्रकार छपे होते हैं। इस लिए यह कल्पक विशेषतः र को ही बदलने के सुझाव पर अधिक बल देता है। इस सम्बन्ध में व्यञ्जन-खण्ड में भी कुछ लिखा जायगा। यदि र बदल कर पाई वाला आकार दे दिया जाता है तो अक्षर पर ऊपर और नीचे लगने वाले प्रचलित विकृत और अर्द्ध रूप (्र र्‍) के चिन्हों से छुट्टी मिल सकती है और अक्षरों के सिर और पांव पर पड़ने वाला, मात्रा आदि चिन्हों का, बोझ हट जाने से खुलापन आ जाता है जिससे नेत्रों को आराम मिल सकता है और मुद्रण एवं यन्त्र लेखन में किञ्चित सुगमता आ सकती है।

ऋ ॠ—में से हिन्दी में ऋ रक्खा गया है। ॠ का प्रयोग न होने से लिपि में उसका स्थान नहीं रहा है। ऋ का उच्चारण रि की तरह होता है इस लिए लिखने और छापने की सरलता और उच्चारण की समानता के कारण कोई-कोई, ऐसी ध्वनि वाले संस्कृतेतर भाषाओं के शब्दों में भी र या रि की जगह ऋ का प्रयोग कर जाते हैं, यथा—'ब्रिटेन' के बदले 'बृटेन'। कभी-कभी ऋ की जगह र या रि का प्रयोग पाया जाता है और ग्रह, गृह एक दूसरे के स्थान पर मिलते हैं, एक पत्र में 'उद्धृत' को 'उद्धरित' कई बार छपा हुआ देखा गया है, मालूम होता है यह अशुद्धि मात्र ए ऊपर नीचे लगने के दोष और उस शब्द को बनाने में टाइप विशेष के उपलब्ध न हो सकने से हुई है। कम्पोज़ीटरों के सन्मुख ऐसी कठिनाइयां अक्सर आती रहती हैं। यदि ऋ का प्रथम 'ऋ' अंश छोड़ कर शेषांश, अर्थात् अन्तिम भाग उसकी मात्रा मान लिया जाय तो मुद्रण में उक्त प्रकार की अशुद्धियां होने का अवसर प्रायः न आये। मात्रा का यह आकार व्यञ्जन के बाद उसी प्रकार बिठाया जा सकता है जिस प्रकार कि ऋ में है।

ए ऐ ओ औ—यह दोनों जोड़े के वर्ण मिश्रित ह्रस्व और मिश्रित दीर्घ के क्रम से हैं। इनके अतिरिक्त बोलने में हमारे मुख से उनके बीच की ध्वनियां भी निकलती हैं जो कैसा (तैयार) कौन (कौना) में स्पष्ट है उन्हें मिश्रित मध्यवर्ती ध्वनियां नाम दिया जा सकता है परन्तु हमारी लिपि में उनके लिए चिन्ह नहीं हैं, उनका काम मिश्रित दीर्घ मात्राओं से ही लिया जाता है। इस लिए कहीं-कहीं, विशेषतः पूर्वी जिलों में, मिश्रित मध्यवर्ती ध्वनियों के उच्चारण भी मिश्रित दीर्घ अर्थात् कइसा कउन से मिलते-जुलते होते हैं। कदाचित इसी कारण कोई-कोई ऐसे ध्वनि-भेद को स्पष्ट करने के लिए तैयार को तय्यार और कौवा को कव्वा की तरह य व के द्वित्व द्वारा लिखते हैं। यदि मिश्रित मध्यवर्ती ध्वनियों के चिन्ह भी नियत कर दिये जांय तो उक्त उच्चारण भेद मिट सकता है।

वर्तमान अवस्था में ए ऐ और ओ औ के जोड़े के वर्णों में उच्चारण भेद काफी स्पष्ट है इस लिए इनके द्वारा अक्षरों की अशुद्धियां प्रायः नहीं होतीं। किन्तु इनकी मात्राओं की बनावट ऐसी है कि मुद्रण में इनके टाइप बहुत ही जल्द टूट जाते हैं और छपा हुआ कुछ का कुछ पढ़ा जाता है, प्रसंग और भाव समझ कर ठीक भी पढ़ लिया जाता है फिर भी विलम्ब तो होता ही है। इस लिए इनकी मात्राओं के आकार बदल देना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। अन्यथा अशुद्ध छपाई का क्रम चलता ही रहेगा और 'बच्चा बिना चबाये ही कौर निगल गया' के बदले 'बच्चा बिना चबाय ही कार निगल गया,' 'गणतन्त्र दिवस पर ट्रमन का नहरू का धन्यवाद,' आदि-आदि पढ़ने को मिलता ही रहेगा।

एक बात यह कि नागरी लिपि में 'अक्षराधिक्य' भी यान्त्रिक साधनों (विशेषतः टाइप राइटर, लाइनो टाइप, आदि यन्त्रों) के लिए एक समस्या है, यदि ए ऐ को ओ औ की भांति अ पर मात्राएं लगा कर गुजराती जैसा अे अै लिखा जाया करे तो एक चिन्ह ए की कमी की जा सकती है क्योंकि ए ऐ भी ओ औ जैसे ही मिश्रित स्वर हैं। इस उपाय से यह शिकायत भी मिट सकती है कि ऐ में एक मात्रा है—फिर व्यञ्जन में उस के लिए दो क्यों लगती हैं ? भले ही यह शिकायत सार पूर्ण नहीं है क्योंकि एक मात्रा तो ए का रूप है और ऐ=ए+ए होता है इस लिए ऐ का यह रूप ए+ए (ॆ) से बना है अतः ऐ की मात्रा े+े=ै हुई। यदि ओ औ के लिए अ से भिन्न कोई आधार होता तो उसके सम्बन्ध में भी वैसी ही बात होती आ ई ऊ ॠ की मात्राओं के विषय में भी यही बात है। इस लिए लिपि वैज्ञानिकता की मांग तो यह है कि ओ औ के लिए भी ए ऐ के ए की भांति कोई पृथक चिन्ह होना चाहिए। परन्तु यह कल्पक एक नियमता लाने और अक्षर संख्या कम करने के विचार से ई ऊ को भी छोड़ कर केवल ४ मुख्य (ह्रस्व) स्वर चिन्ह अ इ उ ऋ रखने और शेष मात्राओं द्वारा बनाने का सुझाव उपस्थित करता है। इस से 'पृथक पृथक मुख्य ध्वनियों के पृथक-पृथक चिन्ह' की बात भी बनी रहती है और लिपि की सुन्दरता भी। केवल एक आधार-स्वर-चिन्ह द्वारा सब स्वरों को बनाने के पक्ष में विशेषतः इस लिए नहीं है कि सब स्वरों के बनाने का भार एक ही अक्षर पर आ पड़ने से मुद्रण में उस के टाइप जल्द घिस कर छपाई को भद्दा करेंगे और फिर शीघ्र ही बेकार हो जाया करेंगे। लेखन यन्त्र में भी उसका आकार अन्यों से जल्द घिस जाया करेगा। आंग्ल लिपि का एक स्वर ई (e) जो सब से अधिक काम आता है इस बात की पुष्टि के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण है भले ही टाइप फाउण्ट में उसके टाइपों की संख्या सब से अधिक रक्खी जाती हो।

स्वरों की भांति ही मात्राओं की संख्या भी कम अथवा न्यूनतम की जा सकती है। ध्वनियों की मात्राएं सम्मिलित कर लेने पर भी मात्राओं की संख्या प्रचलित माला संख्या से अधिक नहीं बढ़ती है।

अनुस्वार और चन्द्रविन्दु—इन दोनों के प्रयोग में अक्सर अशुद्धियां पाई जाती हैं और एक ही जगह दूसरा लिखा छपा मिलता है। ध्वनि-भेद तो इनका न्यूनाधिक स्पष्ट है सो उच्चारण के विचार से अशुद्धि होनी नहीं चाहिए, किन्तु अशुद्धियां हो जाने में मुद्रण भी कुछ कारण है। मुद्रण के लिए टाइप बनाने की कठिनाई से में मैं हें हैं आदि चन्द्रविन्दु युक्त न होकर अनुस्वार युक्त छपते हैं और बार-बार हमारी आँखों के सामने आते रहते हैं इस लिए लिखने में भी लोगों को वैसी ही आदत पड़ गई है और अनुस्वार तथा चन्द्रविन्दु के भेद का विचार नहीं रह गया है। यह दोष अन्यथा ठीक नहीं हो सकता

जब तक कि इनको परस्पर बदल न दिया जाय अथवा इनके आकार और लगाने के स्थान ही परिवर्तित न कर दिये जायं। चन्द्रविन्दु का प्रयोग अनुस्वार की अपेक्षा अधिक है अतः इसका चिन्ह अनुस्वार से सरल होना चाहिये।

अक्षर के ऊपर और नीचे लगने वाली मात्राएं अक्षर की चौड़ाई का अधिकाधिक भाग ढक लेती हैं। मुद्रण में किसी मात्रिक अक्षर पर कोई अन्य चिन्ह दिया जाता है तो वह ठीक प्रकार न लग कर अलग रहता है जिस से शब्द का अगला अक्षर (यदि हो) एक शिरो रेखा से न बँधा रह कर दूर पड़ जाता है मानो वह कोई दूसरा शब्द हो, इस लिए मुद्रण के टाइपों में अक्षर के ऊपर लगने वाले चिन्ह मात्राओं के साथ ही ज्यों त्यों कर ढाले जाते हैं। तब अनुस्वार के विन्दु के अतिरिक्त, चन्द्रविन्दु जैसा बड़ा चिन्ह मात्राओं के साथ टाइप बाडी में नहीं समा सकता। मात्राएं जब अर्द्ध र युक्त भी हों तो चन्द्रविन्दु आ ही नहीं सकता। इस लिए वे मात्राएं चन्द्रविन्दु युक्त नहीं बनती। तब लाचारी ही है और यही भाव रहता है कि विषय और प्रसंग के अनुसार ही ऊपर के विन्दु को अनुस्वार अथवा अनुनासिक पढ़ लिया जाय। किसी-किसी टाइप फाउण्ड्री ने यथा सम्भव कुछ मात्राओं के साथ चन्द्रविन्दु को टेढ़ा तिर्छा रख कर ढालने में प्रयत्न भी किया है किन्तु मात्राओं का शीघ्र टूट जाना कदाचित अन्यों को इस प्रयास के प्रति अनुत्साहित किये हुए है।

अक्षर के नीचे लगने वाली मात्राओं के सम्बन्ध में बात यह है कि उनकी बनावट के कारण उनकी बाडी में अन्य चिन्ह दिया ही नहीं जा सकता, परिणाम यह होता है कि 'पढ़ूँगा' जैसे शब्द ठीक प्रकार नहीं छपते जब कि उनके स्पेशल टाइप ही न बनवा लिये गये हों। फ्रूट, फ्रेम, वर्ड्स, क़ैंची आदि शब्द ठीक तरह नहीं लिखे जा सकते, जिनमें कि मात्रादि चिन्ह ऊपर भी लगते हों और नीचे भी और दो-दो, तीन-तीन चिन्ह एक साथ ही आ जाते हों। इस प्रकार या तो अक्षरों की अशुद्धियां हो जाती हैं या मुद्रण कौशल-हीन रहता है। इस कल्पक की आँखें तो लॉजिक (मुद्रित) में लॉ और जिक के मध्य (ॉ के बाद ि आ जाने से) जो तनिक सा अधिक अन्तर आ जाता है—उसको भी देखना पसन्द नहीं करतीं। यदि यह लेखक गलती पर नहीं है तो लिख सकता है कि यू० पी० की लिपि सुधार समिति तो इस कोशल हीनता का क्षेत्र और भी विस्तृत करना चाहती है जब कि वह कर्न्ड या डिग्रीदार टाइप ढालने से छुटकारा दिलाने के लिए मात्रादि चिन्हों वाले शब्दों के मध्य आने वाले खाली स्थान की पूर्ति का प्रबन्ध किये बिना 'बरगद' 'क . ँ च ी' की तरह लिखने का निर्णय करती है।

आ उ ऊ की मात्राओं के साथ मुद्रण में चन्द्रविन्दु यथावश्यक दिया जा सकता है (किन्तु अर्द्ध र भी साथ हो तब नहीं) अतः वैसे शब्द शुद्ध छपने चाहियें। किन्तु यहाँ कुछ दोष, नागरी टाइप केसों के एक-एक खाने में २-२, ३-३ प्रकार के अक्षर भरना पड़ना और किसी अवस्था में किन्हीं कम्पोज़ीटरों का अल्प शिक्षित होना भी समझा जा सकता है। जब कि वे बिना विचारे ही अनुस्वार या चन्द्र विन्दु जो कुछ हाथ आया, लगा देते हैं, शायद इस कारण कि जब वे देखते हैं कि अन्य मात्राओं के सम्बन्ध में वैसा कुछ सोचा ही नहीं जा सकता। तब तो अकेले अनुस्वार और चन्द्रविन्दु के प्रयोग में भी यही होता है जिस से 'सायं' का 'सायँ' हो जाता है और 'हँस' का 'हंस' बन जाता है। इस प्रकार की अशुद्धियाँ अक्सर होती रहती हैं और चलती रहती हैं तभी वे उपेक्षित रह जाती हैं, कारण कि लोग मुद्रण को शुद्धता की कसौटी

साहित्य-परिचय

[समालोचना के लिए पुस्तक की दो प्रतियां आना आवश्यक है। —सम्पादक]

गीता सार (गोस्पेल ऑफ गीता)—लेखक व प्रकाशक—श्री डॉक्टर सुन्दरलाल भण्डारी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार। आकार २०×३०/३२, पृष्ठ सख्या २१७, मूल्य बारह आने।

बरसों गीता का स्वाध्याय करने से लेखक ने जो रस प्राप्त किया था उस का आस्वादन दूसरों को भी कराने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है। गीता के चुने हुए दो सौ श्लोकों का सरल हिन्दी और अंग्रेज़ी में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। संस्कृत का मूल श्लोक भी दिया गया है। लेखक ने अपने युरोप भ्रमण में अनुभव किया कि विदेशों में भी गीता को तथा हमारे अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थों को पढ़ने की इच्छा है, इस लिए अंग्रेज़ी अनुवाद देना आवश्यक समझा। प्रारम्भ में अठारह पृष्ठों की एक भूमिका है जिस में

मानते हैं। बस ऐसी ही कुछ कठिनाइयां हैं जो सर्व साधारण को ज्ञात नहीं है। १० मात्राओं के भिन्न २ चिन्हित ४०-५० रूप ढालने पर भी मुद्रण कौशलहीन ही रहता है। लेखन यन्त्र में अक्षर के ऊपर नीचे लगने वाले मात्रादि चिन्हों के लिए मृत-कुञ्जियों की व्यवस्था करनी पड़ती है जिनका आघात हाथ से लिखने के क्रम के विपरीत, अक्षर से पहले होता है, फलतः लेखन में असुविधा होती है, अशुद्धियां हो जाती हैं, बैक स्पेसर का प्रयोग बढ़ जाता है और यन्त्र लेखन की गति बहुत मन्द रहती है। इन सब का कारण मात्रादि चिन्हों की बनावट है। इस लिए इनको यन्त्र-सुलभ बनाने पर विचार अपेक्षित है।

स्पेलिंग की अशुद्धियों के सम्बन्ध में 'विशाल भारत' और 'नवभारत टाइम्स' द्वारा श्री आदित्य अवस्थी महोदय ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया है और 'सरस्वती' नवम्बर १९५१ में श्री महाजन महोदय ने एक शब्द 'अँगरेज़ी' के कई रूपों में लिखा जाने को लेकर इस ओर कुछ संकेत किया है कि कोई उसे अनुस्वार से कोई चन्द्रबिन्दु से और कोई ङ से लिखता है। कोई ग र को अलग-अलग लिखता है तो कोई मिला कर। फिर एक ही पाठ में कहीं किसी तरह और कहीं दूसरी अथवा तीसरी तरह लिखा छपा देखने में आता है। अनुरूपता कदाचित ही कहीं देखने में आती है। परन्तु निर्णय नहीं कि शुद्ध क्या है। इसके अतिरिक्त अन्य यह कि भिन्न-भिन्न फाउण्ड्रियों के टाइपों में कुछ अक्षरों के आकारों की भिन्नता होती है इस कारण लेखन और मुद्रण में और भी बहुरूपता आजाती है, सादृश्य नहीं रह पाता। माना कि नागरी में कोई शब्द किसी न किसी तरह लिखा ही जा सकता है और यह लिपि का एक महान् गुण कहा जाता है परन्तु इस बहुरूपता के कारण भी इसके प्रति रुचि बढ़ना विलम्बित हो रहा है। अतएव इन असुविधाओं, दुविधाओं और अशुद्धियों को दूर करने के लिए और लिपि को यन्त्र-सुलभ बनाने के लिए कुछ करना ही होगा। आज अनेक विद्वान् इसकी मांग करते हैं और केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय आदि सभी उच्च क्षेत्रों में तद्विषयक चर्चा है।

[इस लेख में प्रकट किये गये विचारों के सम्बन्ध में अन्य विद्वान् भी अपने विचार भेजेंगे तो हमें प्रकाशित करने में प्रसन्नता होगी। —सम्पादक।]



गीता की महिमा, गीता में प्रक्षेप आदि विषयों पर विचार किया गया है। श्लोकों को चुनने में यह ख्याल रखा गया है कि गीता की शिक्षाएं और विशेषताएं प्रतिपादन करने वाला कोई श्लोक छूट न जाय। जो लोग समय की कमी से सम्पूर्ण गीता को पढ़ना कठिन समझते हैं वे इस गीता के सार को पढ़ कर गीता की बोध प्रद शिक्षाओं को प्राप्त कर सकते हैं। संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेज़ी जानने वाले सभी स्वाध्याय-शील जनों के लिए यह पठनीय है।

विदेह गीताञ्जलि—रचयिता, आचार्य विद्यानन्द विदेह। प्रकाशक वेद संस्थान, अजमेर। १६४ पृष्ठ, आकार १७×२७/१६, माघ २००८ वि०। मूल्य १।)

'रसना ओम् ओम् उच्चर'। 'क्यों सोता है चादर ताने'… इस प्रकार के कोई २६३ छोटे-छोटे गीतों का संग्रह है। श्री विदेह की ये अन्तः प्रेरित पंक्तियां सुन्दर हैं।

कल्याण का भक्त-चरितांक—प्रकाशक-गीता प्रेस, गोरखपुर। मूल्य ७॥)

अपनी परम्परा के अनुसार प्रतिवर्ष की भांति कल्याण के सञ्चालकों ने ६१८ पृष्ठों का यह विशेषांक प्रस्तुत किया है। कोई ५५० भक्तों के चरित्र तथा २२६ चित्र दिये हैं। भक्तों और महात्माओं की हृदय को पवित्र करने वाली वाणियों को भी संगृहीत किया है।

—रामेश बेदी।

ब्रजचन्द्र चकोरी-मीरा—लेखक श्री कृष्णा प्रभाकर तथा बांके बिहारी। श्री राधिका पुस्तकालय, राधाकृष्ण भवन, मथुरा. मूल्य ५)

भक्तशिरोमणि मीराबाई की जीवन-प्रणाली, काव्य-साधना और भक्ति-भावना का सम्पूर्ण रूप से निरूपण करने वाला यह ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य में पहिला ही है। विज्ञ लेखकों ने इस के आकलन में खूब खोज की है और बड़ा परिश्रम उठाया है। पुस्तक की ८५ पृष्ठों की भूमिका में मीराबाई की जीवन कथा के विषय में अच्छी छानबीन की गई है। पुस्तक के पूर्वार्ध में भक्त के रूप में उनकी साधना का निरूपण और विवेचन बड़ा भावपूर्ण और मुहावरेदार भाषा में किया गया है। भाषा का प्रवाह और उस की भक्तिरसानुरूप गठन देखते ही बनती है। पुस्तक के उत्तरार्ध में उनकी कविताओं और वाणियों का संग्रह किया गया है। उन के लिखे गुजराती पदों का भी टिप्पणी सहित सम्पादन किया गया है। आशा है यह ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य में अच्छा गौरव प्राप्त करेगा। छपाई सफाई सुन्दर और शुद्ध है।

हमारी अर्थनीति—ले० सन्तराम अग्रवाल, रामराज्य परिषद्—चौक फुहारा, अमृतसर।

इस पुस्तका में लेखक ने भारत की प्राचीन अर्थ-नीति का गौरव महाभारत, चाणक्य अर्थशास्त्र, जातक ग्रन्थ, शुक्रनीति आदि के आधार पर अङ्कित किया है तथा यह सुझाव दिया है कि वर्तमान शासकों को भारत की पुरानी अर्थनीति से ठीक-ठीक प्रेरणा लेनी चाहिए अर्थात् अपनी अर्थनीति को बनाने में हमें अपनी परम्परागत आर्थिक प्रणालियों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

कल्पना—(साहित्यिक तथा सांस्कृतिक द्वैमासिक पत्रिका) सम्पादक—डाक्टर आर्येन्द्र शर्मा। वार्षिक मूल्य १२) रुपये। बेगम बाजार, हैदराबाद दक्षिण।

हैदराबाद (दक्षिण) सदृश अहिंदी प्रदेश से प्रकाशित 'कल्पना' सी उन्नत कक्षा की तथा सुरुचि से भरी हुई पत्रिका को निहार कर बड़ा हर्ष और परि-तोष हुआ। पत्रिका का पाठ्य-मसाला खूब स्वस्थ और ज्ञानप्रद है। इतनी अच्छी और सुरुचि से चुनी हुई पाठ्य-सामग्री तो हिन्दी की पुरानी और प्रतिष्ठित पत्रिकाओं भी में आजकल देखने को नहीं मिल रही। कौन जाने क्या बात है कि महायुद्ध के पश्चात् हिन्दी

गुरुकुल-समाचार

ऋतु रंग

मधुमास (चैत्र) की शोभा और रौनक चहुँ ओर व्याप्त हो रही है। वन उपवन पुष्प-मञ्जरियों से महक उठे हैं। शहतूतों की वृक्षराजियाँ छोटे छात्रों के क्रीड़ा कल्लोल मे गूञ्ज उठी हैं। इस साल आमों पर बहुत कम मौर आया है। गुरुकुल की गेहूं और चने की खेतियां कट चुकी हैं। दिन तपने लगे हैं। रातें शीतल और सुहावनी हैं। छात्रों का नहर स्नान और तैरियां प्रारम्भ हो चुकी हैं। नए-नए ग्रीष्म कालिक प्रवासी पक्षियों से कुल कानन फिर से चहक उठे हैं। कुलवासियों का स्वास्थ्य अच्छा है।

मान्य अतिथि

उस दिन श्री आँद्रे लेवी नामक एक युवक विद्वान् विशेष रूप से गुरुकुल के अवलोकन के लिए पधारे। आप लखनऊ विश्व वद्यालय में फ्रैंच भाषा के उपाध्याय हैं। ये फ्रांस के प्रसिद्ध पुराविद् श्री लुई रेणु के शिष्य हैं और बौद्ध-साहित्य के अनुशीलन में विशेष दिलचस्पी रखते हैं। अवकाश के दिनों में संस्कृत-भाषा सीखने के लिए गुरुकुल में आने का अभिवचन दे गए हैं।

पञ्जाब सरकार के स्वास्थ-विभाग के सहायक सञ्चालक डाक्टर डी० आर० मेहता ने गुरुकुल में पधार कर आयुर्वेद विभाग का विशेष रूप से निरीक्षण किया और उस के अध्ययन क्रम तथा प्रबन्ध से बहुत प्रभावित हुए। आयुर्वेद-परिषद् की ओर से आपका चिकित्साकर्म और मलेरिया के विषय में बोधप्रद व्याख्यान हुआ।

अरविन्द आश्रम पांडिचेरी के अन्यतम विद्वान् श्री अम्बालाल बालकृष्ण पुराणी उस दिन कुल में पधारे। वाग्वर्धिनी-सभा के तत्वावधान में भारतीय दर्शन की परम्परा पर उनका एक गम्भीर और विचारपूर्ण व्याख्यान हुआ। सभापति श्री उपाचार्य लालचन्द जी थे।

लेखक स्नातकों को बधाई

उत्तर प्रदेशीय सरकार की ओर से प्रांत के अनेक साहित्य-स्रष्टाओं को उनकी अभिनव ग्रन्थ कृतियों पर पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। उन में निम्नलिखित तीन सुयोग्य स्नातक बन्धु पुरस्कार के भागी हुए हैं। गुरुकुल विश्वविद्यालय उनका सहर्ष अभिनन्दन करता है।

(क) डाक्टर सत्यकेतु विद्यालंकार मसूरी, को उन की पाटलीपुत्र की कथा तथा राजनीति-शास्त्र नामक पुस्तकों पर ८००) का पुरस्कार मिला है।

(ख) श्री अत्रिदेव जी विद्यालंकार को उन की 'हमारे भोजन की समस्या, भैषज्य कल्पना, स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग, नामक तीन किताबों पर ६००) रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

(ग) श्री रामेश बेदी को उन की लहसुन प्याज़, तुलसी, सोंठ, शहद और मिर्च नामक किताबों पर ६००) रुपये का पुरस्कार मिला है।

'गुरु जी' का स्वर्गवास

गुरुकुलीय जगत् के नए पुराने सभी छात्र समस्त स्नातक बन्धु, गुरुजन और कार्यकर्ता यह जान कर बहुत शोकित होंगे कि कुल परिवार के वे पुराण पुरुष, पुण्य-

---

की मासिक-पत्रिकाओं का स्तर बहुत नीचा हो गया है। हल्की कहानियों से खाना पूरी का भद्दा अनुकरण बहुत व्यापक हो रहा है। ऐसी अवस्था में 'कल्पना' की दृष्टि और सृष्टि और पाठ्य-सामग्री का मानदंड हमें बहुत पसन्द आया है। आनन्द की बात है कि कल्पना सन् १९५२ से मासिक हो चुकी है। हम 'कल्पना' के कल्पकों का इस सुन्दर अनुष्ठान के लिए अभिनन्दन करते हैं। —शंकरदेव।



चेता, परम प्यारे और परम श्रद्धेय 'श्री गुरु जी' चान्द्रायण वर्ष के प्रथम दिन (२६ मार्च १९५२ बुधवार) को दिव्यधाम वासी हो गए। अवसान के समय उनका आयुष्य ६० वर्ष का था।

दुनियावी अर्थों में अपनी सामान्य सी योग्यता को ले कर आज से कोई पैंतालीस वर्ष पूर्व वे गुरुकुल में आये। पहले पहल वे भंडार में काम करने लगे। अपने सहकर्मियों को वे रात्रि में चटशाला लगा कर हिन्दी में पढ़ना-लिखना सिखाने लगे। पहले पहल वे अपने सहकर्मियों से 'गुरु जी' के नाम से सम्बोधित होने लगे। परन्तु शीघ्र ही अपनी अनुपम ईमानदारी, सत्यहृदयता, पवित्रता, साधुता, सरलता और कार्य-निष्ठा से कुलगुरु श्रद्धानन्द जी से ले कर कुलपरिवार एक छोटे से छोटे बालक तक के हृदय को उन्होंने मुग्ध कर लिया और उनका 'गुरु जी' यह उपनाम ही प्रधान नाम बन गया। कुल के एक-सदस्य के मन में वे 'गुरु जी' नाम से बस गये। कुलगुरु श्रद्धानन्द जी तक उन्हें 'गुरु जी' कह कर ही बुलाते रहे। उनका घर का असली नाम रामजीलाल तो मानों गुरुकुल प्रवेश के साथ ही सदा के लिए तिरोहित हो गया।

अपना तन, मन और प्राण उन्होंने कुल को अर्पित किया हुआ था। जब वे गुरुकुल में प्रविष्ट हुए तब से ले कर अपने अवसान पर्यन्त वे जेब खर्च के लिए केवल तीन रुपये मासिक लेते रहे। उन तीन रुपयों में से भी कुछ कुछ बचा कर उन्होंने कुल की नवीन भूमि में एक कुटिया बनाई जो आज गुरुकुल शिक्षा नगर में 'गुरु जी की कुटिया' के नाम से प्रसिद्ध है।

श्वेत दाढ़ी के बीच में सदा मुस्कराती हुई वह स्नेह और सरलता की भव्यमूर्ति अब भी गुरुकुल के प्रधान पथ पर अपनी चिरसाथिनी लाठी लिए हुए सदा घूमती हुई मानों आंखों के सामने तैर रही है और छात्रों द्वारा 'गुरु जी नमस्ते' कहते कहते ही प्रत्युत्तर में—'नमस्ते महाराज, महाराज नमस्ते'—के मीठे और प्यार दुलार भरे वचनों के पुष्प बरसाती हुई मानों कुल पर पुण्याभिषेक कर रही है। हृदय को बरबस यही अनुभूति हो रही है।

ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं और उधर उत्सव का मंडप बन रहा है। पर वहां हम निर्व्याज प्रेम और कार्यनिष्ठा की उस पावनी मूर्ति को आज नहीं पा रहे जो गत ४५ वर्षों से प्रतिवर्ष लगातार इसी प्रकार उत्सव मंडप बनवाती रही। कुल के नन्हें-नन्हें बटुक उस वृद्ध मूर्ति को घेरे हुए उमंग और उत्साह से पूछ रहे हैं 'गुरु जी जलसे में कितने दिन बाकी रहे ?' पर उन कुतूहलपूर्ण वचनों का प्यार भरा उत्तर देने वाली वात्सल्य मूर्ति नहीं है।

शास्त्रों में पढ़ा हुआ वह वचन गुरु जी के चरित्र द्वारा कृतार्थ हुआ दीख रहा है—स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः। अपने काम को ईमानदारी से पूर्ण करना ही प्रभु की पूजा है।

शब्द के अपने सच्चे अर्थों में वे 'पुण्यपुरुष' थे। उस पावनी मूर्ति के अन्तर्भाव पर आज समस्त कुल-वासियों के अश्रु भरे नयन श्रद्धाभरे हृदय और सम्मान-पूर्ण मस्तक उन के प्रति झुके झुके पड़ते हैं। गुरुकुल के इतिहास में पहली बार वह दृश्य दिखाई दिया जब उन की शवयात्रा में कुलपुत्रों ने बाजे बजा कर श्रद्धांजलि अर्पित की। क्योंकि गुरु जी अपने कर्मों से अमरत्व को पा गए थे। उस दिन दाहभूमि में उन की स्मृति में मान्य आचार्य जी ने जब उनके कर्तव्य को 'तपसा ये स्वर्ययुः' के वेदमन्त्र द्वारा श्रद्धा प्रसून चढ़ाए तो समस्त कुलवासी हृदय से अनुभव कर रहे थे कि दुनियावी अर्थों में अति सामान्य योग्यता वाला पुरुष किस प्रकार अपनी कार्यनिष्ठा और चरित्र की पवित्रता

से जीवन की धन्यता को प्राप्त कर गया है। कविवर रवीन्द्रनाथ जी के शब्दों में हम कह सकते हैं कि वे (गुरु जी) अपने यश से भी महान् थे।

प्रसिद्धि के मोह से सर्वथा दूर रह कर कर्तव्य पर समर्पण की पुण्य-गाथा रचने वाले उन प्यारे 'गुरुजी' के चरणों में गुरुकुल-वासियों की शत-शत वन्दना।

स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणी।

नया प्रकाशन

श्रद्धानन्द स्वाध्याय मञ्जरी के सिलसिले में प्रति वर्ष प्रकाशित होने वाली पुस्तक के रूप में इस साल गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक श्री धर्मदेव जी विद्या-वाचस्पति (सम्पादक सार्वदेशिक दिल्ली) की लिखी हुई वैदिक कर्तव्य-शास्त्र प्रकाशित हुई है। उत्सव के दिनों में गुरुकुल प्रकाशन मन्दिर की दूकान से प्राप्त हो सकेगी।

विज्ञान संग्रहालय

वन भ्रमण करते हुए ब्रह्मचारियों ने एक हाथी की हड्डियां प्राप्त की थीं। अब इन हड्डियों को व्यवस्थित रूप से जोड़ कर एक सुन्दर अस्थिपञ्जर बना लिया गया है। संग्रहालय में इस अस्थिपञ्जर का बन जाना प्रेक्षकों के मनोरञ्जन और कुतूहल का विषय हो गया है।

पुरातत्व संग्रहालय

गुरुकुल संग्रहालय को गत मास देहरादून की वन्य अनुसन्धान-शाला (फारेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट) से बहुमूल्य सामग्री मिली है। इन में भारतीय जंगलों में पाये जाने वाले कतिपय वृक्षों की लकड़ी के नमूने, उन के उपयोग, उन की बीमारियों तथा प्रतिकारों का समावेश है।

प्रयाग म्यूनिसिपल म्यूज़ियम के प्राण तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के एग्ज़ीक्यूटिव आफिसर श्री युत ब्रजमोहन जी व्यास ने संग्रहालय को अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के १२ सिक्के प्रदान किये हैं तथा भविष्य में संग्रहालय को अन्य उपयोगी सामग्री देने का भी वचन किया है। संग्रहालय इसके लिये उन का आभारी है।



मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

ग्रीष्म ऋतु में से

भीमसेनी सुरमा

आंखों के लिए इस से बढ़ कर कोई दूसरा सुरमा नहीं है। यह आंखों के सब रोगों पर विशेष लाभ करता है। बालक वृद्ध सभी को समान उपयोगी है।

मू० नमूना ॥=) शीशी

ब्राह्मी बूटी

बुद्धि को बढ़ाने व मस्तिष्क की दुर्बलता को दूर करने में इससे अच्छी दूसरी बूटी नहीं है। हमारे यहां हर समय ताज़ी मिलती है।

मू० ३) सेर

भीमसेनी दन्तमञ्जन

मञ्जन के बढ़ते हुए रिवाज को देख कर यह देशी मञ्जन तैयार किया गया है। यह मूल्य में भी सस्ता है और दांतों को मज़बूत व चमकदार भी बनाता है। मू० ॥=) शीशी

पामाहर

है
ला
तेल

मौ
प्रात
ताज

अ
होते

...न कीजिये

ब्राह्मी तेल

...ह तेल शुद्ध ब्राह्मी के द्वारा बनाया गया ...माग को ठण्डक व तरावट देकर ताज़गी ...है । दिमाग की कमज़ोरी वालों को यह ...शेष हितकर है ।

मू० ।=) शी० छोटी

ब्राह्मी शर्बत

...ह्मी तेल की तरह यह शर्बत भी इस ...म में सेवन करने योग्य उत्तम चीज़ है। ...काल एक गिलास शर्बत सारे दिन ...ी रखेगा ।

मू० ३) बोतल

भीमसेनी नेत्र बिन्दु

...ह औषधि दुखती आंखों के लिये ...र है । कुकरे व दर्द भी इस से दूर ...हैं ।

मू० १) शीशी

आमला तेल

...ह तेल बालों को रेशम की तरह ...कर काला करता है ।

मू० १।) शीशी

...ी (हरद्वार)

गुरुकुल पत्रिका

ज्येष्ठ

२००९



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय-हरिद्वा...

वर्ष ४
पूर्णाङ्क ४६

गुरुकुल-पत्रिका

ज्येष्ठ
२००९

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

भारतीय शिक्षा क्रान्ति में गुरुकुल का स्थान

न्यायमूर्ति श्री विजन कुमार मुखोपाध्याय

गुरुकुलवासी प्रिय बन्धुओ तथा उपस्थित सज्जन !

इस दीक्षान्त संस्कार में सम्मिलित होने तथा आज यहां उपस्थित स्नातकों को अभिभाषण देने के लिए निमन्त्रित कर के जो सम्मान आपने मुझे प्रदान किया है. उस के लिए मै आपका कृतज्ञ हूँ। निःसन्देह यहां आने से मुझे तीर्थयात्रा का आनन्द अनुभव हो रहा है। वस्तुतः यह एक पवित्र भूमि है। सामने ये गम्भीर मौनमुद्रा में स्थित हिमालय की उच्च शिखाएं एक ध्रुवनिष्ठ सन्तरी के समान हमारी मातृभूमि की रक्षा कर रही हैं और इस के अन्तस्तल से निर्गत गंगा नदी की पवित्र धारा कलकल निनाद करती हुई गिरिशिखर से अगाध सागर तक अविश्रान्त भाव से अपने मार्ग का अनुसरण कर रही है। ऐसी भव्य परिस्थितियों में अवस्थित तथा व्यस्त संसार के कोलाहल से सुरक्षित यह शिक्षणालय साक्षात् शान्ति एवं पवित्रता के वातावरण में श्वास ले रहा है। यह विद्यामन्दिर वस्तुतः प्राचीन भारत के उन शान्त ज्ञानसम्पन्न तपोवनों का अवशेष है, जिनकी पावन स्मृति अब भी हमारे साहित्य तथा धार्मिक ग्रन्थों में विद्यमान है। आज बीसवीं सदी में भी यह सम्पूर्ण प्रदेश वस्तुतः वैदिक भावनाओं से पूर्णतः ओतप्रोत है।

यहां आप के सम्मुख भाषण देते हुए मेरे मन में दो विचार प्रमुख रूप से उदय हो रहे हैं। सब से पूर्व मेरा विचार भारतीय सभ्यता के अनुपम स्वरूप, विलक्षण शक्ति तथा भारतीय इतिहास के परिवर्तनशील दृश्यों में अवस्थित सतत प्रवाह की ओर जाता है। काल चक्र के प्रभाव से अनेक विकारों के उत्पन्न होने के बावजूद लाखों वर्षों के बीत जाने के बाद भी भारतीय सभ्यता अपने मुख्य तत्वों को यथापूर्व धारण किये हुए है, जबकि विश्व की अन्य सम्पन्न प्राचीन ऐतिहासिक सभ्यताएं सर्वथा लुप्त हो चुकी हैं। प्राचीन मिश्र, असीरिया तथा बेबिलोन चिरकाल से विस्मृति के आवरण में विलीन हो चुके हैं। इस में सन्देह नहीं कि प्राचीन युनान की सभ्यता अपने साहित्य, दर्शन तथा कलारूप में अभी तक जीवित है। पर यह एक ऐसा पूर्णतः मृतप्राय प्रवाह है जिस का मानव समाज की जीवनधारा के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं। परन्तु भारत आज भी जीवित है और वह केवल भौगोलिक सत्ता रूप से ही नहीं, प्रत्युत वह उस की आत्मा है जो कालकृत अनेक ऊंचनीच परिवर्तनों के होते हुए भी अवस्थित है। आज भी विचार तथा भावनाओं की ऐसी सुदृढ़ शृङ्खलाएं हैं जो हमें प्रागैतिहासिक काल से सम्बन्धित कर रही हैं। मैक्समूलर का कथन है 'प्राचीन काल से ले कर आधुनिक युग तक के तीन हजार से भी अधिक विस्तृत

काल में भारतीय विचार धारा के विविध रूपों में हमें एक सतत प्रवाह दृष्टिगोचर होता है।' सम्भव है सामान्य दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत हो कि तथा-कथित भारतीय सभ्यता एक अपरिष्कृत पुञ्जमात्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं। वह केवल जातिगत बाह्य लिंगों, भाषाओं तथा रहन-सहन के विविध शिष्टाचारों या रूढ़ियों का पिण्ड मात्र है। परन्तु सूक्ष्म निरीक्षण से यह स्पष्ट हो जायगा कि इन बाह्य रूपों की परि-दृश्यमान विविधता में भी एकता उपलब्ध करना ही भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता है। वैदिक ऋषियों का लक्ष्य जीवन का अपने सम्पूर्ण रूपों में संगतिकरण करते हुए इस विश्व की परस्पर विरोधी विभिन्नताओं में एक व्यापक सत्यता का अनुसन्धान करना था। मैं यह दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि यह समन्वयपूर्ण आदर्श आधुनिक जगत् की सम्पूर्ण समस्याओं का सुन्दर समाधान कर सकता है, बशर्ते कि वर्तमान मानव समाज की परिवर्तित अवस्थाओं के अनुसार इस का उचित प्रयोग किया जाय।

इस के अतिरिक्त जिस दूसरी वस्तु ने मुझ पर प्रभाव डाला है, वह है प्रकृति का वह कार्य जो उस ने हमारे देश की सभ्यता तथा विचारधारा के निर्माण में किया है। मानव जीवन की प्रभात वेला के प्रारम्भ से हमारे पूर्वजों ने प्रकृति के प्रति तीव्र आकर्षण अनुभव किया है। प्रकृति के इन्हीं ध्याना-वस्थित पर्वतश्रेणियों से परिवेष्टित एकांत प्रदेशों में सुकोमल रवि किरणों से सुशोभित वनस्थलियों के चारों ओर इठलाती हुई कलकल निनादिनी चन्द्रिका-समुज्ज्वल सरिताओं के तट पर ही मानव मस्तिष्क की महान् विभूतियों का उदय हुआ था।

जीवन निर्माण की वैदिक योजनानुसार बालक का एकान्त तपोवन में विद्वान् गुरुजनों के संरक्षण में रहते हुए अपने शारीरिक तथा बौद्धिक शिक्षण के लिए दृढ़तापूर्वक अनुष्ठान करना परम आवश्यक था, जो उसे अपने जीवन के भावी कार्यक्षेत्र में अपना उचित भाग लेने के योग्य बना सके। न केवल शैशव काल में ही, प्रत्युत अपने संघर्षमय सांसारिक जीवन के अवसान काल में भी, वे लोग शक्ति सञ्चय तथा विश्राम उपलब्ध करने के लिए इन्हीं एकांत तपो-वनों की कामना करते थे।

भवनेषु रसाधिकेषु पूर्वं क्षितिरक्षार्थ-
मुशन्ति ये निवासम्।
नियतैकपतिव्रतानि पश्चात् तरु-
मूलानि गृही भवन्ति तेषाम्॥

यही वे पवित्र एवं शान्त तपोवन थे, जहां ऋषियों के मस्तिष्क ने लौकिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान विज्ञानों के लिए साधना की तथा मानव समाज के शाश्वत कल्याण के लिए चिन्तनाप्रसूत महान् ग्रन्थों की रचना हुई। संसार को त्याज्य एवं हेय समझ कर उस से पलायन करने की भिक्षुवृत्ति वैदिक भावनाओं के सर्वथा प्रतिकूल है। हमारे देश में संघरूपात्मक भिक्षु वृत्ति सम्भवतः किसी धार्मिक आंदोलन का परिणाम थी और बाद में उत्पन्न हुई। अतः इसे हमें प्राचीन मौलिक आदर्शों का अंग न समझ कर उन का अतिक्रम ही समझना चाहिये।

सभ्यगण!

मेरे हृदय में महात्मा मुन्शीराम तथा उन के सह-योगियों के प्रति अत्यन्त आदर तथा सम्मान की भावना है। उन्होंने न केवल वर्तमान शिक्षा सम्बन्धी आदर्शों को पूर्णरूप से प्राचीनता का रूप देने की साहसपूर्ण कल्पना की, प्रत्युत एक ऐसे कठिन समय में, जब कि हम विदेशी शासन में लोहमय शृङ्ख-लाओं से आबद्ध थे और शिक्षा नीति के निर्माण अथवा चुनाव में हमारी कोई सुनवाई न थी, उन्होंने अपनी योजना को सफलतापूर्वक क्रिया में परिणत

कर के दिखा दिया। यह केवल एक सामान्य स्कूल खोलने का प्रश्न न था; प्रत्युत चिरकाल समादृत वैदिक परम्पराओं के आधार पर एक ऐसे सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण करना था जो प्रतिभावान् मनुष्यों के अनुकूल हो तथा विदेशी संस्कृति से सर्वथा मुक्त हो। सन् १६०२ ईसवी में एक छोटे से विद्यालय से प्रारम्भ हुई-हुई यह संस्था आज आश्रम प्रणाली पर आश्रित एक विशाल विश्वविद्यालय के रूप में विकसित दिखाई देती है। इस समय इस में वेद महाविद्यालय, साधारण महाविद्यालय, आयुर्वेद महाविद्यालय तथा कन्याओं का महाविद्यालय—ये चार महाविद्यालय सम्मिलित हैं। इस के अतिरिक्त फण्ड की कमी दूर होने पर एक शिल्प महाविद्यालय खोलने का भी विचार है। यह सब कुछ ब्रिटिश सरकार की रत्ती भर भी सहायता न मिलने पर हुआ। केवल यही नहीं कि इसे सरकारी सहायता प्राप्त नहीं हुई, प्रत्युत इस के विपरीत इस संस्था के अधिकारियों को समय-समय पर ब्रिटिश सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा।

परमात्मा की कृपा से अब हमारे देश में विदेशी शासन का अन्त हो गया है और हम अपने आप को अपने घर का स्वामी समझ सकते हैं। परन्तु यह स्वाधीनता अपने साथ परेशान करने वाली अनेक जटिल समस्यायें लाई है और उन में शिक्षा तथा संस्कृति सम्बन्धी समस्यायें भी कम विषम नहीं। इस समय हम पर चारों ओर से विविध सिद्धांतों तथा आदर्शों का आक्रमण हो रहा है। उन में से कुछ विशुद्ध विजातीय हैं और हमारे राष्ट्रिय चरित्र एवं परम्पराओं के सर्वथा प्रतिकूल हैं। इन विषयों में हमारे शासकों के कन्धों पर एक महान् उत्तरदायित्व है। इस बात की कहने की आवश्यकता नहीं कि अपनी सद्यः प्राप्त प्रजातन्त्र प्रणाली में सुख तथा शांति को उपलब्ध करने के लिए उचित प्रकार की शिक्षा का चुनाव करना तथा उस का उचित विधि से वितरण करना नितान्त आवश्यक है। मैं अपने आप को एक शिक्षाविज्ञ होने का दावा नहीं करता और नाहीं इस विषय में कोई मत या विचार प्रकट करने का साहस करता हूं। परन्तु इस समय एक नवीन युग में प्रवेश करने के कारण मैं भारत के प्रत्येक नर-नारी से अनुरोध अवश्य करूंगा कि वे भूतकाल का सिंहावलोकन करें तथा भारत में ब्रिटिश काल के उदय से ले कर अब तक के अपने देश में प्रचलित शिक्षा विषयक आंदोलन तथा इतिहास पर दृष्टिपात करें। इस से हम विविध सफलताओं व असफलताओं से परिवेष्टित अपने विचारों तथा आदर्शों का पर्यालोचन कर सकेंगे। हमारे वर्तमान अनुभव तथा भूतकाल की असफलताएं निःसन्देह इस बात का निर्णय करने में अत्यधिक सहायक होंगी कि स्वतन्त्र भारत में अपनी संस्कृति के भावी विकास का सर्वोत्तम मार्ग क्या है। मेरे विचार में, हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने ढंग से शिक्षा विषयक एक स्वस्थ सार्वजनिक विचार उत्पन्न करने में सहयोग दे सकता है और गुरुकुल, जिसने अतीत में हमारे शिक्षा सम्बन्धी आदर्शों को नवीन रूप देने में इतना अधिक कार्य किया है, इस नई व्यवस्था में भी निःसन्देह विशेष महान् कार्य कर सकता है।

सामान्यतः प्रत्येक शिक्षा प्रणाली के दो पहलू या दो प्रयोजन बताये जा सकते हैं उन में से एक तो सांस्कृतिक आदर्शरूप या सामाजिक पहलू है तथा दूसरा आर्थिक या उपयोगिता का पहलू है। दोनों परस्पर सम्बद्ध हैं। इस लिए विद्यार्थियों की शिक्षा के लिये विषयों के चुनाव करते समय उक्त दोनों प्रयोजनों को दृष्टि में रखना उचित होगा। जहां तक शिक्षा के सांस्कृतिक पक्ष का प्रश्न है, किसी देश में उचित

शिक्षा-प्रणाली उस देश के राष्ट्रिय चरित्र के सर्वोत्कृष्ट आदर्शों से अनुप्राणित होनी चाहिए। उस में इतनी योग्यता तथा शक्ति होनी चाहिए कि वह अपने राष्ट्रिय चरित्र के अनुरूप देश के छात्रों के हृदयों में आध्यात्मिक शक्तियों को अंकित कर सके तथा उन्हें ऐसा परिष्कृत कर दे कि वे अपने राष्ट्रिय जीवन को स्थिर व विकसित करने में सहायक सिद्ध हों। ब्रिटिश शासन की स्थापना से ले कर गत शतक की समाप्ति तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक शिक्षा विषयक नीति में उक्त राष्ट्रिय तत्व की सर्वथा उपेक्षा की जाती रही है। जिस असम्भावित रूप से हमारे देश में ब्रिटिश राज्य की स्थापना हुई, उसे दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति इसे भली भांति अनुभव कर सकता है कि शिक्षा का कार्य ब्रिटिश व्यापारियों की—जिन्हें हमारे पारस्परिक विरोध के कारण अकस्मात् इस देश का आधिपत्य प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो गया था—सुविचारित योजना का कोई विशेष अंग न था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन व्यापार की एक ऐसी संकुचित भावना से प्रारम्भ हुआ था, जिसे वह छोड़ने के लिए सर्वथा अनिच्छुक थी। यह सत्य है कि १८७१ ईसवी में वारन हेस्टिंग द्वारा कलकत्ता मदरसा की स्थापना हुई तथा दस वर्ष पश्चात् जोनथन डन्कन ने बनारस में संस्कृत कॉलिज की स्थापना की। परन्तु इन संस्थाओं की स्थापना का वास्तविक उद्देश्य अपने अभिनव अधिकृत प्रदेशों में न्याय-व्यवस्था को चलाने के लिए हिन्दू तथा मुस्लिम कानून के कुछ पण्डितों को उत्पन्न करना था। भारत के अन्य प्रांतों की अपेक्षा अंग्रेज़ी शिक्षा का सूत्रपात बङ्गाल में पहले प्रारम्भ हुआ। परन्तु इस विषय में पहला कदम सरकार की ओर से न हो कर कुछ स्वतन्त्र व्यक्तियों तथा ईसाई मिशनरियों की ओर से उठाया गया। १८१७ में कलकत्ता नगर में वहां के कुछ प्रमुख नागरिकों की ओर से पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के आधार पर प्रथम शिक्षणालय के रूप में हिन्दू कालिज की स्थापना हुई। इस कॉलिज ने पाश्चात्य प्रभाव को ग्रहण करने में कोई कसर नहीं छोड़ी और अपने नाम के प्रतिकूल उस का दृष्टिकोण सर्वथा हिन्दुत्व शून्य था। इस शिक्षा में संस्कृत तथा अन्य प्राचीन विषयों को कोई स्थान नहीं दिया गया। कुछ ही वर्षों में हिन्दू कॉलिज ने ऐसे प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थी उत्पन्न किये जिन्होंने शीघ्र ही आंग्ल भाषा के गद्य पद्य में लिखने की प्रवीणता प्राप्त कर ली। इन घटनाओं से मकाले के लिए शिक्षा-क्षेत्र में आंग्लभाषा के पक्ष में निर्णय करने का मार्ग प्रशस्त हो गया और शीघ्र ही भविष्य में आंग्ल भाषा को ही देश की राजकीय भाषा का स्थान देने की राज्य की नीति निर्धारित कर दी गई। तब से पाश्चात्य शिक्षा की नई शराब हिंदुत्व की पुरानी बोतलों में डाली जाने लगी, जिसके दुष्परिणाम आज हमारे सामने हैं। उस समय विशेषतः बङ्गाल में, पाश्चात्य रंग ढंग फैशन तथा स्वाभिमान की वस्तु और अपने देश की प्राचीन शिक्षा, धर्म, संस्कृति तथा परम्पराएं सर्वथा गर्हित मानी जाने लगीं। परिणामतः प्रारम्भ से ही हमारी शिक्षा नीति एकांगी तथा राष्ट्रिय भावनाओं से सर्वथा शून्य थी और उस का स्वरूप तथा दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से ही विदेशी था। चिरकाल तक यही रहा, जब कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में इस की प्रतिक्रिया हुई। बङ्गाल में ब्रह्म-समाज ने इस उठती हुई राष्ट्र विरोधी भावना की लहर को रोकने का प्रयत्न किया। परन्तु वह इस में विशेष सफल न हुई। क्योंकि उस के पास राष्ट्रिय आदर्शों का कोई आधार न था। उस ने उपनिषदों के एकेश्वरवाद के आधार पर एक बुद्धिसंगत धर्म की स्थापना का कुछ प्रयास किया, यद्यपि उस ने उपनिषदों को अपौरुषेय वचन नहीं माना। श्री केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में ब्रह्म समाज ने ईसाई धर्म के

अनेक विचारों तथा कर्मकाण्ड को ग्रहण कर लिया था। जिस समय श्री केशवचन्द्र सेन बङ्गाल में ब्रह्म-समाज का नेतृत्व कर रहे थे उस समय उत्तर भारत में स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने आर्यसमाज आंदोलन प्रारम्भ किया। वह एक विशुद्ध राष्ट्रिय भावनाओं को लिए हुये दृढ़, साहसपूर्ण तथा महान् आदोलन था, जिसने उस समय बढ़ती हुई पाश्चात्य मनोवृत्ति की भावना को रोकने में दृढ़ता के साथ विरोध किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती हमारी राष्ट्रियता के मूल तक पहुँचे। श्री अरविन्द के शब्दों में—'ऋषि दयानन्द ने वेदों को सदियों पुरानी दृढ़ चट्टान के रूप में पढ़ा और उस पर राष्ट्रिय पुनरुत्थान की योजना के निर्माण करने के लिए साहसपूर्ण संकल्प किया।' इस आंदोलन का सब से बड़ा लाभ यह हुआ कि राष्ट्र ने अपने खोये हुए गौरव, एवं आत्मविश्वास को पुनः प्राप्त किया तथा सांस्कृतिक आध्यात्मिक पुनरुत्थान को जन्म दिया। जिस से हमारी राष्ट्रिय चेतना जागृत हुई। इसके बाद हमें अपने देशवासियों में तात्कालिक पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के लिए असन्तोष तथा अपने प्राचीन आदर्शों के प्रति निरन्तर बढ़ती हुई प्रवृत्ति दिखाई देती है। उस समय भारत के उच्च विद्वान् भारतीय शिक्षा पद्धति में प्राचीन भारतीयता की पुट देख कर प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्याओं का उचित सम्मिश्रण करना चाहते थे। सन् १८८३ ईसवी में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती का देहावसान हो गया। १८८६ ईसवी में लाहौर में दयानन्द ऐंग्लो वैदिक हाईस्कूल स्थापित हुआ जो दो वर्ष बाद एक कालिज के रूप में परिणत होगया। कॉलिज की प्रथम वार्षिक रिपोर्ट से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस के संस्थापकों का वास्तविक उद्देश्य अपने देश की शिक्षा नीति का भारतीयकरण कर के उसे अपने सांस्कृतिक आदर्शों तथा परम्पराओं पर प्रतिष्ठित करना था। तदनन्तर इस बात को स्वीकारकरते हुए कि पाश्चात्य शिक्षा ने हमारी बौद्धिक गतिविधियों में प्रेरणा दी है तथा कुछ ऐसे विद्वान् पुरुषों को जन्म दिया है जिन पर हमारा देश गर्व कर सकता है। रिपोर्ट में बताया गया है कि यह सब कुछ होते हुए इस के अनेक दुष्परिणाम हुए हैं। इसलिए राष्ट्रिय शिक्षा की मांग है कि अन्य विषयों के साथ-साथ अपने देश की भाषा तथा साहित्य का उचित अध्ययन किया जाय और उस में भी विशेषतः प्राचीन संस्कृत साहित्य को क्योंकि उसमें आत्मा, चरित्र तथा जगत् रचना आदि विविध विषयों के स्वरूप का यथावत् चिन्तन करने वाले ऋषि मुनियों के परिश्रम का सारवान् फल अन्तर्निहित है। अपने राष्ट्र की भाषा तथा साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ रिपोर्ट में अंग्रेज़ी भाषा के भी गम्भीर अध्ययन पर बल दिया गया है और इस बात पर भी आग्रह किया है कि प्राकृतिक विज्ञान तथा उस से सम्बद्ध अन्य विषयों के ज्ञान का प्रसार कर के देश की भौतिक उत्पत्ति को भी प्रोत्साहित किया जाय।

यह सर्व विदित सत्य है कि आर्यसमाज की अधिकांश जनता दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कौलिज से निर्धारित शिक्षा प्रणाली से सन्तुष्ट न थी। यह असन्तुष्ट दल, जिस के एक प्रमुख सदस्य इस संस्था के आदरणीय संस्थापक भी थे, प्राचीन वैदिक सभ्यता से निकट सम्बन्ध रखना चाहता थे। इस लिए पाश्चात्य परम्पराओं से सम्बन्ध विच्छेद कर के भारतीय नवयुवकों की शिक्षा देने की प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन करने का पक्षपाती था। यह है १६०२ ईसवी में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना का मूल हेतु। निःसन्देह इस संस्था का उद्देश्य अपनी प्राचीन ब्रह्मचर्य प्रणाली को पुनरुज्जीवित करना तथा शिक्षा

को जीवन का वास्तविक पथ-प्रदर्शक एवं चरित्र-निर्माण में सहायक बनाना था। इस के संचालकों की अभिलाषा थी कि बालक को शैशवकाल में ही संसार के दूषित वातावरण से हटा कर प्रकृति के शान्त तथा सुन्दर वातावरण में ऐसे निष्ठावान् तथा सच्चरित्र विद्वान् गुरुजनों की संरक्षता में रखा जाय जो उन बालकों के अन्दर गुप्त उच्चतम मानसिक व आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को विकसित करने में सहायक हो सकें। उन के मानसचक्षु के सम्मुख प्राचीन भारत के नालन्दा, तक्षशिला आदि अनेक विश्वविद्यालयों का चित्र था।

इस में सन्देह नहीं कि दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज की शिक्षा प्रणाली गुरुकुल से बहुत विभिन्न है, परन्तु वस्तुतः वे दोनों एक ही स्रोत से निकली हुई विभिन्न जल धाराएं हैं। दोनों का आधारभूत आदर्श एक है। अर्थात् वे दोनों भारतीय तथा पाश्चात्य सभ्यताओं के उत्कृष्ट तत्वों का सुन्दर समन्वय करना चाहते हैं। उन के साधन भिन्न २ हैं और वे पृथक् २ होने भी चाहियें। क्योंकि वे भिन्न २ मस्तिष्कों की विभिन्न कार्य प्रणालियों पर आश्रित हैं।

इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि यह भावना आर्य समाज में ही न थी प्रत्युत उस से बाहर देश के अन्य भागों विशेषतः बंगाल में भी थी। वहां भी बीसवीं सदी के आरम्भ में राष्ट्रिय भावना की लहर उठी, जिसने अपने आप को शिक्षा सम्बन्धी विविध आन्दोलनों के रूप में प्रकट किया और जिस का लक्ष्य प्राचीन सभ्यता को पुनरुज्जीवित करना था। जिन दिनों गुरुकुल की स्थापना हुई, लगभग उसी समय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शान्ति निकेतन में ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना की, जो बाद में विश्व भारती के रूप में एक विशाल संस्था बन गई। इसका भी उद्देश्य लगभग वही था। इन्हीं योजनाओं के नमूने पर बंगाल के खुलना मण्डलान्तर्गत दौलतपुर नगर में 'हिन्दू एकेडमी' नाम से संस्था स्थापित हुई। बंग भंग के आन्दोलन के परिणाम स्वरूप १९०५ ईसवी में श्री अरविन्द घोष के आचार्यत्व में कलकत्ता में नेशनल कालिज की स्थापना हुई। १९११ में पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा में पले हुए श्री रास बिहारी घोष सदृश एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति ने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का समर्थन करते हुए अपने देशवासियों की भावनाओं को बड़े प्रभावपूर्ण शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा था—'हमारी शिक्षा का मूल आधार राष्ट्रिय भावनाओं तथा परंपराओं की गहराई तक पहुंचा हुआ होना चाहिये।...... हम एक प्राचीन सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं। इस लिये हमारी शिक्षा का मुख्य कार्य उन आदर्शों के क्रमिक तथा अनवरत विकास को प्रोत्साहित करना है, जिन्होंने हमारी संस्कृति और तज्जन्य विविध प्रणालियों को एक निश्चित रूप दिया है।' यही विचार मद्रास में वार्षिक शिक्षा सम्मेलन के अध्यक्षपद से दिये गए भाषण में श्रीयुत एस. श्री निवास आयंगर द्वारा व्यक्त किये गए थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि शिक्षित वर्ग की यह निश्चित धारणा है कि पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली निष्फल सिद्ध हुई है और इसका कारण हमारी शिक्षानीति का उत्तरदायित्व वहन करने वाले संचालकों की भारतीय मनोवृत्ति, इतिहास, साहित्य तथा धर्म के प्रति उपेक्षावृत्ति की है। इस लिये यदि उन्हीं दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर सर आशुतोष मुखर्जी ने द्वितीय ओरियन्टल कांफ्रेंस में भाषण करते हुए अपने श्रोताओं के सन्मुख गर्व के साथ निम्न शब्द कहे थे तो वह उचित ही था। उन्होंने कहा था कि हमारा विश्वविद्यालय ही भारत में ऐसी सर्व प्रथम संस्था है जिसने प्राच्य विषयों के अध्ययन के गौरव को स्वीकार किया है और विद्यार्थियों को भारतीय लिपि विद्या, ललित कला, मूर्ति विद्या, वास्तु कला, भारतीय आर्थिक व सामाजिक जीवन, अंकगणित

शास्त्र, भारतीय जाति उद्‌गम प्रभृति विषयों का अध्ययन करने का अवसर प्रदान किया है।

इन सब दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि किस प्रकार शिक्षा सम्बन्धी विचारों में परिवर्तन हो रहे थे और किस प्रकार पाश्चात्य शिक्षा दीक्षित विद्वान् भी उस प्राचीन भारतीय ज्ञाननिधि की गहराई में जाने के लिए स्वयं लालायित हो रहे थे, जिसका कुछ वर्ष पूर्व मैकाले ने तिरस्कार पूर्वक निराकरण कर दिया था। वस्तुत: वे सभी महापुरुष जिन्होंने गत अर्ध शताब्दी में हमारे विचारों तथा आदर्शों पर प्रभाव डाला है हमारे प्राचीन दर्शन तथा साहित्य से प्रेरणा पाते रहे हैं। ऋषि दयानन्द ने अपने देशवासियों को वेदों की ओर लौटने को कहा। महात्मा मुन्शीराम जी ने अपने गुरुकुल तथा श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने शांति निकेतन द्वारा हमें प्राचीन आश्रमों की संस्कृति की ओर उन्मुख किया। श्री तिलक, श्री अरविन्द घोष तथा महात्मा गान्धी ने अपने २ राजनैतिक क्षेत्र में भगवद्‌गीता से प्रेरणायें प्राप्त की हैं। स्वामी विवेकानन्द ने बिना किसी वर्ण या जाति का भेदभाव किये, अपने देशवासियों के मन को वेदान्त के महान् सत्य की ओर आकर्षित किया है। इसी प्रकार रामकृष्ण परमहंस ने सब धर्मों के समन्वय का उपदेश दिया, जो हमारे श्रुति प्रतिपादित धर्म का सार है।

भद्र पुरुषो !

अब हमने स्वाधीनता प्राप्त कर ली है और भावी योजनाएं निर्धारित करने में स्वतन्त्र हैं। शिक्षाविज्ञ अपना कार्य करते रहें, परन्तु हम सर्वसाधारण जनों को भी अपने शिक्षा के आदर्श के विषय में विचार करना चाहिए। हम अतीत काल की सफलताओं तथा असफलताओं से पूर्णतया परिचित हैं। इसे कहने की आवश्यकता नहीं कि हमें अपनी भूलों को दुहराना नहीं चाहिये और जो कुछ हमने उपलब्ध कर लिया है उसी तक सीमित रहना भी उचित नहीं। आज से कुछ वर्ष पूर्व श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने जो चेतावनी दी थी, उसे आज स्वाधीनता के युग में भी हमें भूलना नहीं चाहिये। उन्होंने कहा था कि किसी राष्ट्र को अन्य देश के आदर्श के अनुरूप—चाहे वह कितना ही सम्पन्न व उन्नत क्यों न हो—अपने इतिहास के निर्माण का निरर्थक प्रयत्न नहीं करना चाहिए।' यह ठीक है कि हमें समय के साथ २ चलते हुए वर्तमान जगत् की प्रगतिशील आवश्यकताओं के अनुकूल अपने आप को ढालना चाहिये। अवस्थानुसार अपने आप को ढालने तथा आत्मसात् करने की शक्ति के कारण ही हमारी संस्कृति ने अतीत काल में विलक्षण शक्ति तथा गौरव प्राप्त किया और जब कुछ ऐतिहासिक एवं राजनैतिक कारणों से वह आत्मसात् करने की शक्ति क्षीण हो गई तो हमारी वास्तविक उन्नति भी रुक गई। वर्तमान वैज्ञानिक युग के आविष्कारों ने देश तथा काल की दूरी को समाप्त कर दिया है और हम विश्व की समस्त सांस्कृतिक प्रगतियों के निकट सम्पर्क में आ गये हैं। हमें उनकी विशेषताओं को ग्रहण करना चाहिये। परन्तु जिस संस्कृति का हम निर्माण करें वह हमारा आंतरिक भाग हो तथा हमारी सभ्यता के आधारभूत तत्वों में गहराई तक प्रविष्ट और देश की प्रतिभा और आत्मा के अनुरूप हो। इस लिए शिक्षा में इस प्रकार के समन्वय की आवश्यकता है जो वर्तमान जगत् के हितकर तथा उपयोगी तत्वों का आत्मसात् कर सके, जिस में नवीन और प्राचीन तथा सांस्कृतिक एवं आर्थिक दोनों पहलुओं का सुन्दर संमिश्रण हो सके। इस गुरुकुल के संस्थापक महात्मा मुन्शीराम का भी यही उद्देश्य था। आज भी वर्तमान समाज की परिवर्तित अवस्थाओं के अनुसार उचित संगतिकरण करते हुए उन आदर्शों पर दृढ़ रहना अत्यन्त हितकर है।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति की मुख्य विशेषता जाति

के बालकों के चरित्र निर्माण करने की है। निःसन्देह शिक्षा का प्रधान उद्देश्य चरित्र गठन है और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए केवल बौद्धिक शिक्षा अपर्याप्त है। हर्बर्ट स्पेन्सर का यह कथन उचित है कि हम मनुष्य को जो लाभ पहुंचाना चाहते हैं, वह उसे शिक्षा के माध्यम से पहुंचाना चाहिये। क्योंकि शिक्षा बौद्धिक होने की अपेक्षा भावना प्रधान अधिक है।

जीवन का वास्तविक लाभ तो तब मिलता है जब शिक्षा के प्रताप से हम में ऐसी मानसिक अवस्था उत्पन्न हो जाती है जिस से हमारा आचार व्यवहार स्वाभाविक स्वयंस्फूर्त और सहज हो जाता है। इस दृष्टि से गुरुकुल की शिक्षाविधि निःसन्देह अत्युत्तम है। नागरिक जीवन के दूषित प्रभावों से दूर रहना, उदात्त विचार, पवित्र चरित्र वाले व्यक्तियों का सम्पर्क, श्रद्धा, समादर, स्नेह और भ्रातृप्रेम द्वारा मानव की नैतिक शक्तियों को सुदृढ़ करना, मन और चरित्र का ऊर्ध्वीकरण आदि शुभंकरी प्रवृत्तियों से ही सुसाध्य होता है।

आजकल आश्रमिक जीवन पद्धति के द्वारा शिक्षण की व्यवस्था को सर्वोत्तम माना जा रहा है। परन्तु आधुनिक रंग ढंग पर जो आश्रमिक पद्धति (छात्रावास पद्धति) चल रही है वह बहुत व्ययसाध्य बन गई है। भारत जैसे गरीब देश में उस पद्धति का लाभ बहुत कम लोग ही उठा सकते हैं। ऐसी दशा में गुरुकुल की सरल और सादी जीवन प्रणाली को स्वीकार करके उसे विशाल पैमाने पर बढ़ाया जा सकता है। हमारी सरकार इस दिशा में क्या किया चाहती है यह मैं नहीं जानता। मुझे यही समुचित प्रतीत होता है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार गुरुकुल को भरपूर सहायता प्रदान करे। यह आवश्यक है कि इसे अपने राष्ट्रीय जीवन की एक अति मूल्यवान् संपदा समझा जाय। बिना किसी बाह्य शासन और आदेश के इस को अपने ही ढंग पर अपना स्वतन्त्र विकास साधने की छूट दी जाय। यह भी उचित है कि संस्था के संचालक अपने पाठ्यक्रम पर पुनर्विचार करके यदि उचित समझें तो आधुनिक युग के क्रियात्मक विषयों का समावेश करें जो आर्थिक दृष्टि से उपयोगी हों। मैं नहीं कह सकता कि इस प्रकार की शिक्षण-विधि को माध्यमिक विभाग की कक्षाओं तक, बड़े पैमाने पर चालू करना व्यावहारिक होगा या नहीं। परन्तु मेरा विचार है कि राज्य की सहायता से इस प्रकार की आदर्श शिक्षा संस्थाएं, सर्वांश में नहीं तो कुछ अंशों में, गुरुकुल शिक्षणविधि के मुख्य तत्वों को स्वीकार कर के अवश्य स्थापित होनी चाहिएं।

मेरा विश्वास है कि आधारभूत बातों पर सहमत हो जाने पर इस प्रकार की शिक्षा विधि को परिचालित करना कुछ कठिन नहीं होगा। गुरुकुल में शिक्षा पाए हुए ऐसे युवक अच्छी मात्रा में मिल सकते हैं जिनकी सेवाओं के द्वारा देश में इस प्रकार के विद्यालय आयोजित किए जा सकें।

आज इस विद्या निकेतन से दीक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के प्रति दो-चार शब्द कहना चाहता हूं। मित्रो! मैं आप को स्मरण कराना चाहता हूँ कि आप उदात्त और महान् परम्पराओं के उत्तराधिकारी हैं। आपके समक्ष उन निस्वार्थ, कर्तव्य परायण, पवित्र चेता, चरित्रों की परम्परा विद्यमान है जिनके द्वारा आपको समस्त जीवन में प्राण, प्रेरणा और पथ-प्रदर्शकता प्राप्त होती रहेगी।

आर्य संस्कृति के उदात्ततम आदर्शों की छाया में आप ने इस शिक्षा निकेतन में जो शिक्षा प्राप्त की है उस से सुसज्जित हो कर आप को संसार में आगे बढ़ना और उस शिक्षा के प्रताप से आपने उन सब वस्तुओं को दूर भगाना है जिनके द्वारा मानव की आत्मा दूषित और अपवित्र बनती है। आपने अपनी शिक्षायें पुरातन ऋषियों की उस पवित्र होमाग्नि को प्राप्त किया

कस्मै देवाय हविषा विधेम

श्री पूर्णचन्द्र विद्यालंकार

प्रधान जी, मुख्याधिष्ठाता जी, आचार्य जी,

मैं आपकी आज्ञा से पुराने स्नातक भाइयों की ओर से नवीन स्नातकों का अपने हृदय के अन्तरतम से स्वागत करना चाहता हूं।

मेरे भाइयो,

आज वैशाखी का पुण्य पर्व है. सौर पद्धति से आज वर्ष का प्रारम्भिक दिवस है। जलियानवाला बाग के शहीद आज अपनी याद ताजा करा रहे हैं।

आपका यह भाग्य है कि आप ऐसे पुण्य दिन कुलमाता से विदाई लेकर, कर्मक्षेत्र के प्रांगण में जा रहे है। मैं इस नए क्षेत्र में आपका स्वागत करता हूं।

आज अर्थयुग है। पैसे के नीचे मानव कुचला जा रहा है। मैं अपने रोम-रोम से इसका विरोध करना चाहता हूं।

पर समय सदा ऐसा नहीं रहेगा। शीघ्र ही असत्य पर सत्य की विजय होगी, हिंसा पर अहिंसा की विजय होगी, मृत्यु पर अमरत्व की विजय होगी, अन्धकार पर प्रकाश की विजय होगी, अर्थ पर मानवता की विजय होगी। मैं इन विजयों में सम्मिलित होने के लिए आपका स्वागत करता हूँ।

आपने अपनी दैनिक प्रार्थनाओं में अपने से बारम्बार यह प्रश्न किया है और संभवतः इसका जवाब भी पा लिया होगा—'कस्मै देवाय हविषा विधेम,' हम किसे अपने को समर्पित करें। यदि आप ने इसका जवाब न पाया हो तो आइए मैं आपको निमन्त्रित करता हूँ कि आप परमात्मा के लिए अपने को समर्पित कीजिए, आप सत्य के लिए अपने को समर्पित कीजिए, अपने देश के लिए अपने को समर्पित कीजिए, ज्ञान के लिए अपने को समर्पित कीजिए, कुल माता के लिए अपने को समर्पित कीजिए और इस देव-समाज के लिए अपने को समर्पित कीजिए जिसने अपने पसीने से इस संस्था को इतना बड़ा किया है। स्मरण रखिए बूँद समुद्र के लिए अपने को समर्पित कर अपने को समुद्र जैसा महान् बना लेती है। आप भी जितने महान् लक्ष्य के लिए अपने को समर्पित कर देंगे उतने ही महान् बन जावेंगे।

एक समय था जब जड़ जगत् पर चैतन्य की विजय का प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में अन्नमय कोष ने जड़ जगत् पर विजय प्राप्त की। फिर समय आया जब प्राणमयकोष ने अन्नमय कोष पर विजय प्राप्त की, अब मनोमय कोष ने प्राणमय कोष पर विजय प्राप्त कर ली है। भाइयो, शीघ्र ही अन्नमय कोष पर विज्ञानमय कोष विजय प्राप्त करेगा। सम्भवतः वह इस प्रक्रिया की यह अन्तिम सीढ़ी होगी। इस विजय में भगवान् भारत माता को अपना निमित्त बनाएगा। यदि आप अपने को सही तौर पर समर्पित करेंगे तो विश्वास रखिए, आप इस महान् विजय में साहसी बन सकेंगे, परमात्मा करे कि हम अपने देश तथा मानवता के लिए स्वय अपने लिए कल्याणकारी बन सकें।

अन्त में मैं एक बार फिर अपने हृदय की अत्यधिक गहरई के साथ आपका स्वागत करता हूं।



है जो समस्त मलिनता को भस्म कर के इस विश्व में आप को समृद्धि प्रदान कर के परलोक में मुक्ति का आनन्द दे सकेगी।

श्रद्धा और भक्ति के साथ इस पवित्र ज्ञानाग्नि को प्रबुद्ध और सुरक्षित रखिए, जिस प्रकार पुराने याज्ञिक लोगों ने इसे सुरक्षित रखा था। आप देखेंगे कि कल्याण और मांगल्य आपके साथ है।

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के ५२ वें वार्षिक महोत्सव के अवसर पर १ वैशाख २००६ को पढ़ा गया दीक्षान्त भाषण।]



वेदों का महत्व और हमारा कर्तव्य

श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

"सर्वं धर्मे प्रतिष्ठितम्"

"धर्मो वेदे प्रतिष्ठितः"

यो जागार तमृचः कामयन्ते ।
यो जागार तमु सामानि यन्ति ।।
यो जागार तमयं सोम आह ।
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।।
(ऋ० १—४४—१४)

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्ते ।
अग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह ।
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।।
(ऋ० १—४४— १५)

जो जागता रहेगा ऋग्वेद उसी की कामना करते रहेंगे । जो जागता रहेगा उसी के पास साम आयेंगे । जो जागता रहेगा उसी के पास सोम आकर कहेगा कि मै तेरा हूँ. मैं तेरे साथ ही नाता-मित्रता रक्खूँगा. मैं तेरे ही पास रहूँगा ।

अग्नि जागता रहा, ऋग्वेद उसकी कामना करते रहते हैं। अग्नि जागता रहा सोम ने आकर उससे कहा अथवा सोम उसके पास आकर कहता रहा कि मैं तेरा हूं, मैं तेरे साथ ही नाता-मित्रता रक्खूँगा, मैं तेरा हूं और तेरे ही पास रहूंगा ।

इन दोनों मन्त्रों से स्पष्ट है कि वेदों से मित्रता गांठनी हो तो जागते रहना पड़ेगा । यहां जागने का क्या अभिप्राय है ? साधारण मनुष्य के जागने सोने की व्याख्या और ही है । योगी के जागने सोने की व्याख्या भी भिन्न है । यहां तो ध्यान योग में प्रवृत्त होकर त्याग-तपस्या द्वारा प्रातिभज्ञान की प्राप्ति के प्रयत्नों का अर्थ ही जागरण है । वह प्रातिभज्ञान ही सोम है जो आकर कहता है कि मैं तेरा ही मित्र हूँ मैं तेरे साथ ही रहूंगा इत्यादि साधारण मनुष्य की दृष्टि से जो वेदों का ज्ञान होता है अथवा प्रातिभ-ज्ञान प्राप्त व्यक्ति को जो वेदों का ज्ञान होता है इन दोनों में बड़ा अन्तर है—

हृदा तुष्टेषु मनसा जवेषु ।
यद्ब्राह्मणा संयजन्ते सखायः ॥
अत्राह त्वं विजहुर्वेद्याभिः ।
ओह ब्रह्माणो विचरन्त्युत्वे ॥
(ऋ० १०-११-८)

इस की व्याख्या करते हुए निरुक्तकार लिखते हैं-

"सेयं विद्या श्रुतिमतिबुद्धिलक्षणा ।
तस्यास्तपसा पारमीप्सितव्यम् ॥"

अर्थात् इस वेद विद्या का पार पाना हो तो तप से ही सम्भव है ।

इसके साथ ही गम्भीर वेदतत्व को अवगत करना हो तो गुरु कृपा भी आवश्यक है ।

यस्य देवे पराभक्तिः ।
यथा देवे तथा गुरुः ।।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः ।
प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

गुरु कृपा के बिना वेदार्थ तत्व-ज्ञान असम्भव ही है—

इस के अतिरिक्त भावशुद्धि की भी अपेक्षा है । भावशुद्धि, गुरुभक्ति, गुरु शुश्रूषा, त्याग-तपस्या पूर्वक ही वेदाध्ययन सफल हो सकता है । मनु ने स्पष्ट कहा है कि—

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च ।
नियमाश्च तपांसि च ॥
न विप्रदुष्टभावस्य ।
सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

दूषितभावयुक्त गुरुशिष्य हों तो न तो वेद, न त्याग, न यज्ञ, न नियम, न तप, कोई भी तो सिद्ध नहीं हो

सकता—

इस दृष्टि से विचार किया जाय तो मन में प्रश्न उठते हैं कि आर्य समाज में कहीं गुरुशिष्यभावपूर्वक, त्यागतपस्यापूर्वक वेदों का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है कि नहीं ? यह भी प्रश्न उठता है कि आर्यसमाज में जितने वेदज्ञ हैं अथवा वेदज्ञ-ब्रुव हैं, इन में से कितनों ने यथार्थ रूप में गुरु मुख से वेदाध्ययन किया है ? अथवा केवल न्यूनाधिक रूप में संस्कृत ज्ञान के बल पर वेदों के पीछे पड़े हैं और वेदों को अपने स्वरूप को खोल कर दिखाने का अनुरोध अथवा हठ कर रहे हैं। क्या वे यह समझ रहे हैं कि त्याग-तपस्या के बिना, भाव शुद्धि के बिना, गुरु कृपा एवं गुरुसेवा के बिना, श्रद्धा के बिना वेद अपना यथार्थरूप प्रकट कर देंगे ? क्या हम लोग यह समझ बैठे हैं कि हम जो अल्प-स्वल्प प्रयत्न कर रहे हैं इतने ही से हम संसार के उपकार करने में समर्थ हो सकेंगे ?— ये बातें गंभीरता-पूर्वक विचार करने योग्य हैं।

आर्यसमाज के प्राण हैं वेद। वेद हैं, रहेंगे तो आर्यसमाज भी रहेगा। यदि वेदों से सम्पर्क छूटा, उन म अनास्था हुई, नास्तिक बुद्धि आयी कि आर्यसमाज गया ही समझिए। इस लिए वेद-शास्त्रों के विषय में गत ६० वर्षों में हमको ज अनुभव मिले हैं उन से हम कह सकते हैं कि वेदों की वाचिक रूप में महत्ता बढ़ाने में, वेदों के विषय में महानाद करने में, वेदों की ओर संसार का ध्यान खेंचने में तो हम अग्रसर ही रहे हैं परन्तु कार्यरूप में हमारी इतनी प्रगति नहीं हुई है कि जिस पर हम गौरव कर सकें। वेदों को वेदों की दृष्टि से देखने और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने की कला को हम सर्वथा भूल गये हैं। इस कटु सत्य को हम को मानना चाहिए कि अभी हमारा वेदों में यथारीति प्रवेश भी नहीं हुआ है, और हम वेदरूपी भव्यभवनों के द्वार पर ही अटक गये हैं और बाहर ही बाहर चारों ओर अवश्य ही घूम रहे हैं।

इधर तो आर्यजगत् की यह दशा उधर जिनके वंशों में परम्परागत वेदाध्ययन होता रहता था, वे वंश भी नष्ट होते जा रहे हैं। जो थोड़े से बचे हैं, उन वंशों के नवयुवक भी अपनी परिपाटी को छोड़कर नयी शिक्षा-दीक्षा में रंगते जा रहे हैं, परम्पराएं नष्ट होती जा रही हैं। अब यह दशा है कि—

थोड़े से ऋग्वेदी ब्राह्मण प्रायः महाराष्ट्र तथा दक्षिण में अधिकता से मिलेंगे। शुक्ल यजुर्वेदी प्रायः उत्तर भारत में हैं, बंगाल में भी। सामवेदी गुजरात में इने गिने बचे हैं। प्रायः राजस्थान के श्री माली ब्राह्मणों में सामवेदी मिलेंगे। बंगाल में भी दो-एक घराने हैं। अथर्ववेदी ब्राह्मणों के ३-४ वंश बचे हैं समस्त भारत में। सुना है तीन बम्बई में ही हैं। कृष्ण यजुर्वेदी मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक में मिलेंगे। तैलंगाना में भी यत्र-तत्र हैं। पर इन लोगों में प्रायः परम्परागत वेद एवं उनकी शाखा एवं याज्ञिय पद्धतियों का ही संचालन रहा है। अर्थज्ञान पूर्वक वेद अथवा वेद शाखाओं के अध्ययन की ओर किसी की भी प्रवृत्ति नहीं है।

वेदोद्धार कैसे हो ?

पाश्चात्य संस्कृतज्ञ विद्वान् तथा उनके पद-पद्धति पर चलने वाले यहां के पाश्चात्य शिक्षा में लालित-पालित-पोषित-परिवर्द्धित विद्वान् एक निराली ही पद्धति का अवलम्बन करके वेदार्थ के स्वरूप को विकृत करने में संलग्न है। इनका निरुक्त, इनकी भाष्य क की शैली विचित्र ही है। ये वैदिक शब्दों की लौ धातुओं द्वारा तोड़-फोड़ करते रहते हैं—हमारी वेद वेदाङ्ग पद्धति को नहीं अपनाते। वेदों में इतिहास आदि का विचित्र रूप में दिग्दर्शन कराते रहते हैं। इनकी पद्धति हमारे काम की नहीं। आर्यसमाज उनकी इस वेदों को विकृत करने की पद्धति को कदापि

स्वीकार नहीं करेगा। इस वर्तमान विज्ञान युग में यह भी विचारणीय है कि हम इस पाश्चात्य विज्ञान की ओर जायेंगे कि वह पाश्चात्य विज्ञान ही हमारे वैदिक विज्ञान की ओर झुकेगा। हमारी तो यह प्रतिज्ञा है कि वेद में जो कुछ है उसी की आभा सर्वत्र है 'यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'।

विदेशी सम्पर्क तथा विदेशी शासन काल में हमारे भारत की वैदिकों की परम्परा ने किसी प्रकार वेद-वेदांगों की रक्षा की थी। बीच के व्यामोह काल में भी किसी प्रकार वेदादि सुरक्षित रहे। और हमारी पूर्वजों की परम्परा ने 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति' इस महाभाष्य के वचनानुसार निष्कारण धर्म पालन द्वारा वेद शास्त्र परम्परा की रक्षा की। जो वेद परम्परा क्रूर यवन काल में भी किसी प्रकार बची रही थी वह परम्परा गौराङ्ग महाप्रभुओं के काल में अधमरी हो गई और यह मानना ही पड़ेगा कि यदि स्वामी दयानन्द न आते अथवा न होते तो यह परम्परा सर्वथा निःशेष हो जाती। स्वामी दयानन्द ने अनुभव किया कि यह भारतवर्ष यदि जीवित रह सकता है तो वह वेदाश्रय से ही रह सकता है, इस का धर्म, इस की संस्कृति इसी के आश्रय से बच सकती है। उन का हम पर बड़ा ऋण है, हम इस ऋण से उऋण हो सकेंगे कि नहीं यह समय ही बतलायेगा।

वेदों की महत्ता

वेदों की महत्ता के विषय में हम क्या हैं ? मनु भगवान् स्वयं कहते हैं—

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाः ।
चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ॥
भूतं भव्यं भविष्यं च ।
सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति ॥

सैनापत्यं च राज्यं च ।
दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च ।
वेदशास्त्रविदर्हति ॥ (अध्याय १२)

वैदिक वर्णाश्रम धर्म की महत्ता को समझना हो, तीनों लोकों की बात जाननी हो, भूत-वर्तमान तथा भविष्य का ज्ञान प्राप्त करना हो तो यह सब कुछ वेदों से ही भली भांति जाना जा सकेगा।

वेदज्ञ पुरुष सेनापति बन सकता है, राज्य-शकट चला सकता है, न्यायाधीश बन सकता है, समस्त लोकों का अधिपति हो सकता है।

या तो हम इन वाक्यों में श्रद्धा नहीं रखते अथवा हम इतने अनन्यगतिक हो रहे हैं कि हम कुछ नहीं कर सकते। या तो हम "वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है" इस परम धर्म को समझे ही नहीं अथवा समझे हैं तो तदनुरूप श्रद्धा, त्याग, तपस्या नहीं। कोई बात तो अवश्य है ही।

जिन वेदों की महत्ता को स्वयं वेद अपने सुन्दर शब्दों में प्रकट करते हैं। ब्राह्मण, अनुब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, समस्त शास्त्र, समस्त इतिहास पुराणादि एक स्वर से जिन की महिमा को गाते हैं, उस वेद पुरुष की महिमा को दिग्-दिगन्तरों में प्रसारित करने के लिए ही तो आर्यसमाज की स्थापना हुई थी, ऐसा प्रतीत होता है। दर्शनों का आनन्द दर्शनानन्द के साथ गया और श्रद्धा का आनन्द श्रद्धानन्द के साथ गया। इसी लिए तो गुरुकुलों की स्थापना हुई हैं किन्तु श्रद्धा के न होने से ही हम मर रहे हैं—

जब गुरुकुलों के अधिकारी एवं ब्रह्मचारी निष्कारण धर्म की महत्ता को समझ कर तप-त्याग-पूर्वक वेदाध्ययन करेंगे तभी आर्यसमाज का उद्देश्य

सफल हुआ समझिए। यदि हम अल्पश्रुत ही बने रहेंगे तो वेद हम से डरते रहेंगे क्योंकि—

'बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति'

वेद अल्पश्रुतों से डरते रहते हैं, इस लिए कि इन अल्पश्रुतों के हाथों में पड़ कर कहीं हमारा नाश न हो जाय, वेदों को अनुचित रिति से तरोड़-मरोड़ने से ही तो वेद विकृत हो जाते हैं। इसलिए अब यह दशा है कि हम वेदों से डरते है और वेद हम से डर रहे हैं।

वेद हम से इसलिए डरते हैं कि हम निष्कारण धर्म के तत्व को नहीं समझ रहे हैं। हम वेदों से इस लिए डर रहे हैं कि मानने लगे हैं कि वेद हमें रोटी नहीं दे सकता।

वेदों के विषय में ऐसा पाठ्यक्रम रहना चाहिये कि प्रति १० वर्ष पीछे ४०—५० वेद तत्वज्ञ समाज को मिलते रहें। पर हम को तो पेट पूजा की चिन्ता पड़ रही है। इस अनन्त उदरदरी को भरने की चिन्ता हम को मारे डाल रही है।

सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मी: ।
उपरिपतन्त्वथवा कृपाणधारा: ।।
परिहरतुतरां शिर: कृतान्तो।
मम तु मतिर्नमनागपैतुधर्मात् ।। इस तत्व का ध्यान नहीं। पेट का प्रश्न हमारे सम्मुख विकराल रूप धारण कर के खड़ा हुआ है।

एक गुरुकुल के उच्च कोटि के स्नातक (जो कि वेदों में अच्छी प्रगति रखते हैं) मुझ से मिले और बोले कि मुझे ३५०) की नौकरी एक मिल में मिल रही है, मैं वहीं जाने की चिन्ता में हूं। मुझे आश्चर्य हुआ, मैंने उन से पूछा कि ऐसा क्यों कर रहे हो तो उत्तर मिला कि जब वेद रूपी गौ ने दुग्ध देना छोड़ दिया है तब मैं क्या करूं। किसी प्रकार कुटुम्ब पोषणता करना ही है। अवश्य ही यह बात विचारणीय है साथ यह दयनीय भी है। यह तो हुई एक स्नातक की बात। इसी प्रकार के विचार कितने स्नातकों के मन में न उठते होंगे।

वस्तुत: हमारी विचारधारा ही परिवर्तित होती जा रही है—देश की परिस्थिति ही बदलती जा रही है। वेदों की रक्षा की बात तो दूर रही, संस्कृत विद्या भी अपने स्वरूप में स्थित रहेगी कि नहीं यही एक चिन्ता का विषय हो बैठा है।

आर्यसमाज के शिक्षणालयों को चाहिए कि अपने यहां एक ऐसा वेद विभाग खोले जिस में वेदाध्यायी ब्रह्मचारियों के लिज पूरी पूरी व्यवस्था हो और इतनी अच्छी व्यवस्था हो कि वेदाध्यायी समस्त चिन्ताओं से मुक्त हो कर जीवन भर उसी पवित्र कार्य में जुटे रहें और समझ लें कि यही हमारा जीवनोद्देश्य है और 'इहासने शुष्यतु मे शरीरम्'—अर्थात् इसी आसन पर बैठे बैठे मेरा शरीर भले ही सूख जाय मैं इसी में जीवन को व्यतीत करूंगा। प्रति वर्ष ऐसे दस-दस बीस-बीस छात्र प्रविष्ट हों और दस वर्ष के पश्चात् भी इन में से दो-दो चार-चार आस्तिक, श्रद्धालु वेदज्ञ निकलते रहे तो भी हमारे शिक्षणालय सफल समझिए।

यदि हम और हमारा प्रिय समाज मृत्यु से तरना चाहते हैं तो हम को अथर्ववेद के मृत्युतरण सूक्त का अध्ययन करना होगा—उस आनन्द को जानना होगा जिस से मृत्यु से बच सकते हैं। अथर्ववेद चतुर्थ कांड सूक्त ३५–४ को ध्यानपूर्वक पढ़िए।

'तेनोदनेनातितराणी मृत्युम्'—इन छह मन्त्रों को पढिये। अत्यन्त सुन्दर भावभरित मन्त्र हैं।

लगभग २०० वर्ष हुए हमारे पूर्वज ऋग्वेद का ही अध्ययनाध्यापन करते थे। किन्तु कालवशात् हमारे पूर्वज निजामशाही में नौकरी करने पर विवश हुए। वेद की परम्परा छूटी, नौकरी की परम्परा चली—तब

से वह परम्परा बिगड़ी। वैसे हम ऋग्वेदी ब्राह्मण हैं, हमारी संहिता है आश्वलायन। हमारा श्रौतसूत्र है आश्वलायन श्रौतसूत्र। हमारा गृह्यसूत्र आश्वलायन सूत्र गृह्य। हमारा ब्राह्मण है ऐतरेय, हमारी उपनिषद् है ऐतरेयोपनिषद्। हमारा आरण्यक है ऐतरेयारण्यक। हमारा गोत्र है श्रीवत्स, हमारे पञ्च प्रवर हैं। १-आप्लव, २-औद्व, ३-जामदग्नय, ४-च्यवन, ५-पाराशर। यह हमारी परम्परा है। उन में मेरे गुरु कृष्णाचार्य ने मुझ से यह सब कण्ठस्थ कराया था। उपनयन के पश्चात् मेरे काशी जाने का अभिनय भी मैंने देखा था। ब्रह्मचारी रूप में आर्यसमाज की ही कृपा हुई कि हम आस्तिक बने रहे, शास्त्री बने, वेद-तीर्थ हुए और ऋग्वेदी कहलाने योग्य हुए। जब हम ने ऋग्वेद में परीक्षा दी थी १६०६ में तब हम अकेले ही इस विषय के परीक्षार्थी थे समस्त भारत में। स्वर्गीय पं० भक्तराम शास्त्री (डा० ए० वी० कालेज के) यजुर्वेद में थे। अब तो आर्यसमाज में अनेक वेद तीर्थ उपाधिधारी हो गये हैं। इस परीक्षा के निमित्त से हम स्वर्गीय आचार्य सत्यव्रत सामश्रयी, फेलो एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल तथा कलकत्ता युनिवर्सिटी के लेक्चरार के शिष्य बनें। 'शास्त्री' होने पर भी हम को फिर गुरुमुख से निरुक्त (साङ्गोपान्त) पढ़ना पड़ा। ऋग्वेद सम्बन्धी सभी पुस्तकों का अध्ययन करना पड़ा, तब हम जान सके कि यह वेदविज्ञान कितना विस्तृत है। यदि हम इसी अध्ययन को स्वाध्याय द्वारा परिपक्व करते रहते तो हम अपना तथा समाज का बहुत बड़ा उपकार कर सकते थे, वह कर न सके इस का हम को खेद है वह क्यो, यह मत पूछिए। 'व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ति / रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहं। आयुः स्रवतिभिन्नघटादिवाम्भो'—यह दशा है। इस क्षीण पश्चिम अवस्था में कुछ हो भी नहीं सकता। किन्तु हम यह अवश्य चाहते हैं कि भगवान् गुरुकुलों के ब्रह्मचारियों को बल देवे जिस से वे आर्यसमाज की कमी को पूरा करें—आर्यसमाज का भूत महान रहा है, वर्तमान ढीला चल रहा है किन्तु भविष्य भी महान् हो यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है।

आप के गुरुकुल में वेदानुसन्धान का काम हो रहा है, कतिपय विद्वान् स्वाध्यायशील रह कर वेद विषय में ग्रन्थ निर्माण करते रहते हैं यह प्रसन्नता की बात है। इस विषय में श्री रामनाथ जी, आचार्य श्री प्रियव्रत जी, श्री भगवद्दत्त जी का नाम उल्लेख योग्य है। आप के भूतपूर्व आचार्य देवशर्मा जी ने भी अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखी हैं, मैं यह सब कुछ इस गुरुकुल को अपना गुरुकुल समझ कर ही लिख रहा हूं। इस गुरुकुल का बड़ा नाम है। धाक भी बड़ी है। इस के सुयश को चिरकाल तक सुरक्षित रखने का समुद्योग होना चाहिये।

मैं चाहता हूँ कि इस गुरुकुल द्वारा वेदों शास्त्रों का अधिक से अधिक प्रचार तथा प्रसार हो। आशा है गुरुकुलों से सम्बन्ध रखने वाले सभी लोग गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे। आप लोगों ने, यहां के आचार्यादि ने मुझे अपने विचारों को प्रकट करने का यह अवसर दिया है इस शुभ महोत्सव पर। यह क्यों न समझ लीजिए कि मैं इस व्यासपीठ से समस्त आर्यसामाजिक गुरुकुलों के लिए ही बोल रहा हूँ।

इस अवसर पर एक आंग्ल महाकवि की मार्मिक कविता का भाव सम्मुख आता है—वह स्थान कहां है जहां से कि हमारा जहाज चल पड़ा था—वह तो बहुत दूर पीछे रह गया, वह तो बहुत दूर पीछे रह गया।

वह उद्दिष्ट स्थल आगे कितनी दूर है जहां कि हमें पहुँचना है—वह उद्दिष्ट स्थल भी बहुत दूर आगे

उत्तिष्ठत जाग्रत

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

उत्तिष्ठत, जाग्रत ! उठो, जागो ! प्रभात में ईश्वर का प्रकाश आकर हमारी ऊंघ को उड़ा देता है। समस्त रात्रि की गहरी निद्रा एक पल में चली जाती है। परन्तु सन्ध्या वेला के उस मोह को कौन भगायेगा ? समस्त दिवस के विचारों और कर्मों से हमारे चहुँ ओर जो एक प्रकार की धूमिलता छा जाती है, उस से मुक्त हो कर चित्त को निर्मल और उदार शांति में किस प्रकार स्थापित करेंगे ? इतना बड़ा दिवस एक मकड़ी की तरह अपना जाल विस्तृत करता हुआ, हमें चारों ओर से फंसा रहा है ! चिरन्तन को भूमा को अपनी छाया द्वारा आवृत कर रहा है। इस समस्त जाल के विस्तार को तोड़ कर के, हमें अपनी चेतना को सजग करना चाहिए। सब के उठने का, जागने का समय हो गया है

जिस समय दिवस अनेक कर्मों, विविध विचारों और नाना प्रकृतियों द्वारा हमें चक्र पर चढ़ा रहा होता है, जब वह निखिल विश्व और हमारे आत्मा के बीच में एक प्रकार का आवरण खड़ा कर देता है तब यदि हम अपनी चेतना को बारम्बार 'उत्तिष्ठत, जाग्रत' कह कर के उद्बोधित न करें, यदि इस जागरण के मन्त्र को, व्यावहारिक कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी प्रतिपल अपने अन्तरात्मा से ध्वनित न करें तो फिर एक के बाद दूसरे चक्कर में, एक के बाद दूसरे जाल में हम अवश्य फंस जायेंगे। फिर तो उस तमस् में से, उस जड़ता में से, बाहर निकलने की इच्छा तक हम में नहीं जागेगी। फलतः आसपास की परिस्थिति को हम अत्यन्त सत्य रूप में मान लेंगे और उस से भी परे जो उन्मुक्त, विशुद्ध और शाश्वत सत्य विद्यमान है, उस के प्रति हमारा विश्वास नहीं रहेगा। और सब से विचित्र बात तो यह होगी कि उस सत्य के प्रति संशय अनुभव करने जितनी सजगता भी हम में से निकल जायगी। इस लिए जब समस्त दिवस के अनेक विश्व कर्मों का कोलाहल मच रहा हो, तब अपने मन की गम्भीरता में 'उठो, जागो' की ध्वनि अस्खलित रूप में उठती रहे, यही प्रार्थना है !!

है, वह बहुत दूर आगे है, वह बहुत दूर आगे है।

ईश्वर की कृपा से हम उद्दिष्ट स्थान पर पहुँच सकें—तथाऽस्तु, एवमस्तु सर्वथा सर्वतो मंगलं विभायत् मंगलेशः।

[गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के ५२ वें वार्षिक महोत्सव के अवसर पर वेद सम्मेलन में दिये गये श्री नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ के भाषण का सार]

★

लेखन एवं मुद्रण में अशुद्धियां और नागरी लिपि में सुधार

—श्री चन्द्रकिशोर शर्मा

व्यञ्जन और संयुक्ताक्षर

जिस प्रकार मात्रादि चिन्हों का अक्षर के ऊपर, नीचे, दायें, बायें, लगना दोषपूर्ण है उसी प्रकार व्यञ्जनों में युक्ताक्षरों के अवयव ऊपर-नीचे और ज्यों त्यों कर के लिखा जाना भी एक अनुपेक्षणीय दोष है। इस से भी कई प्रकार की असुविधायें होती हैं. इस कारण बहुत से युक्ताक्षर विकृत रूप लेते हैं और कई एक निराले ही बनते हैं। क्ष त्र ज्ञ तो अब वर्ण माला का अंग ही माने जाने लगे हैं और व्यञ्जनों की संख्या ३६ बतलाई जाने लगी है, यदि यह क्रम नहीं रोका गया तो अन्देशा हो सकता है कि क्त, द्य, श्र आदि युक्ताक्षर भी आगे-आगे वर्णमाला में सम्मिलित न हो जांय, क्योंकि अक्षरों की तरह ही उन के रूप आकारादि भी सीखने और याद रखने की आवश्यकता होती है।

दूसरी बात यह कि नागरी अक्षर पहले ही घूम-मरोड़ वाले काफी घने हैं पर जब उन के द्वारा युक्ताक्षर बनाये जाते हैं और मात्रादि चिन्हों का संयोग भी आ पड़ता है तो वे चारों ओर से लद कर बहुत घने हो जाते हैं और नेत्रों पर विशेष भार तथा खिंचाव डालते हैं। अल्प शिक्षित और नव सिखुए विकट युक्ताक्षरों में बहुधा चक्कर खाते हैं और स्कूलों के विद्यार्थी दुविधाओं वश अक्षरी (स्पेलिंग) वर्णन करने में उलझ जाते हैं तथा प्रश्न-पत्रों के उत्तर लिखने में अनेक प्रकार की भद्दी अशुद्धियां कर जाते हैं। इस के अतिरिक्त कुछ अक्षरों के आकार भ्रामक एवं असुविधाजनक भी हैं। युक्ताक्षरों को ठीक प्रकार न समझ सकने के कारण ही प्रायः पठन, लेखन एवं मुद्रण में अशुद्धियां हो जाती हैं। हमारी लिपि की दुरूहता और मुद्रण के टाइपों की संख्या बढ़ाने में यह दूसरा कारण है और उस के सुविधा-पूर्वक यन्त्र सुलभ न होने देने में भारी रोड़ा है।

ङ छ ट ठ ड्र ढ द र ह—नौ व्यञ्जन नागरी में ऐसे हैं जिन के अन्त में पाई नहीं है। मुख्यतः इन्हीं की बनावट के कारण इन से बनने वाले युक्ताक्षरों के अवयव ऊपर नीचे कर के संयुक्त लिखने पड़ते हैं—अन्यथा शब्दों में जब निःस्वर दिखाने या संयुक्त होने का भाव व्यक्त करना होता है और टाइप केसों में बना-बनाया संयुक्ताक्षर नहीं मिलता है तो इन में हल चिह्न का प्रयोग होता है। क्योंकि अन्य अक्षरों के अर्द्धकों की भांति इस के अर्द्धक नहीं बन सकते और न अब तक निश्चित ही किये गये हैं। लिखने छापने में बार-बार, अथवा किसी-किसी के सुझाव के अनुसार सर्वत्र हल हल् चिह्न का प्रयोग पठन में अटक और विलम्ब का कारण बनता है और लेखन में समय और स्थान भी अधिक चाहता है। आगे चल कर इस के द्वारा किन्हीं शब्दों के उच्चारण विकृत भी हो जायं तो कुछ ताज्जुब नहीं। ऐसी कतिपय लिपियां, जिन में युक्ताक्षर बहुत कम या बिल्कुल नहीं बनते अथवा हल् से लिखे जाते हैं, इस बात को पुष्ट करती हैं। क्योंकि दो या तीन अक्षरों की युक्ताक्षर तो अक्सर काम आते हैं परन्तु कभी-कभी ४ अक्षरों के संयोग का अवसर भी आ जाता है, यथा—सन्ध्या, दारिद्र्य, अर्द्ध्व आदि। यद्यपि बने-बनाये युक्ताक्षर ढलते तो अन्य अक्षरों के भी हैं किन्तु इन नौ से बनने वाले तो अवश्य ही ढालने पड़ते हैं। मुद्रण के टाइपों की संख्या इसी तरह बढ़ी हुई है। र का एक अन्य रूप (‸) जो ट्र

ड्र आदि में लगता है और य का एक विकृत रूप (य) जो नाट्य, ड्योढ़ा आदि में काम आता है इन्हीं नौ के कारण बनाना पड़ा है।

विकृत एवं निराले युक्ताक्षरों के द्वारा कुछ और भी भ्रम होते हैं। कभी-कभी अन्य प्रकार से शुद्ध लिखे को अशुद्ध समझ लिया जाता है। जबकि नियत युक्ताक्षरों से भिन्न अन्य प्रकार क्त को क्त, द्य को द्‍य, श्र को श्र् आदि लिख दिया जाता है। क्योंकि क्+त= क्त, द्+य=द्य, श्+र=श्र बनना सिखलाया जाता है। अतः उसके अनुसार क्त द्य श्र आदि को ही शुद्ध समझा जाता है अन्य प्रकार लिखे को नहीं। (परन्तु अब यह भावना धीरे-धीरे कम होती जा रही है) एक और बात, ऊपर नीचे संयुक्त लिखे जाने के कारण युक्ताक्षरों में अन्य विकृताक्षरों और खण्डाक्षरों को अर्द्ध समझ लेने की मिथ्या धारणा भी बन रही है जबकि कहते सुना जाता है कि 'प्र में आधा र लगाओ,' 'द्ध में आधा ध जोड़ो,' 'ड्य में आधा य मिलाओ,' 'ह्न में आधी न लिखो' आदि-आदि। ऊपर नीचे संयुक्त करने के दोष के कारण कभी-कभी कम्पोजिङ्ग में अड़-चन भी पड़ जाती है और शब्द ठीक प्रकार बन नहीं पाते, जबकि किसी अक्षर में कोई अक्षर और मात्रादि चिन्ह ऊपर भी लगते हों और नीचे की ओर दो-दो तीन-तीन चिन्ह एक साथ ही आ जाते हों। अर्द्ध का अर्ध कदाचित इसी कठिनाई के कारण हो रहा है। संस्कृत की एक पाठ्य पुस्तक में 'ऊद्ध्र्व' छपा देखने में आया है उस में रेफ का चिन्ह द के बजाय व पर लगा है यह भी उल्लिखित अड़चन का एक प्रमाण है। इस शब्द में अन्तिम चारों अक्षरों के संयुक्त होने का अवसर है यदि वे ठीक प्रकार संयुक्त कर के लिखे जांय तो द्ध में ऊपर रेफ और नीचे व लगना चाहिये। परन्तु बिना स्पेशल टाइप बनवाये हुए मुद्रण में सरलता पूर्वक यह सम्भव नहीं है, क्योंकि ऐसे युक्ताक्षर तो कभी-कभी ही काम आते हैं और टाइप फाउण्ट में साधारणतः नहीं मिलते हैं इस कारण किन्हीं शब्दों के रूप बदल जाते हैं। उक्त शब्द हिन्दी में उर्ध्व शायद इसी कारण हो गया है। 'दारिद्र्य' शब्द छः प्रकार से लिखा जा सकता (इस का एक प्रकार तो साधारण टाइपों से छपना असम्भव ही है) एक जगह यह शब्द दारिद्र छपा मिला है बस अब यही रह जाता दीखता है।

कोई-कोई ह्न द्ध द्व प्रभृति युक्ताक्षर लिखने में नीचे जोड़ा जाने वाला अक्षर अक्षर के पहले ही लगा देते हैं उनकी दृष्टि में इस में कोई हानि नहीं है। लिपि सम्बन्धी चर्चा में 'शद्ब' लिख कर एक मेट्रिक पास को पढ़ने को कहा गया, उसने उसे चट से शब्द पढ़ दिया। फिर शब्द लिख कर पढ़ने को कहा तो उसको भी उसने शब्द ही पढ़ा। इस पर उस से पूछा गया कि दोनों प्रकार लिखने में कुछ अन्तर नहीं है क्या? उस ने तपाक से कह दिया नहीं। पश्चात् उसे वैसे ही अन्य कई शब्दों के उदाहरण दिये गये तब कहीं वह अपनी भूल को समझ पाया। यह तो हाथ से लिखने की बात है किन्तु एक दैनिक में शब्द के बदले शद्ब ही बहुत बार छपा देखने में आता है। कभी-कभी लिखने, छापने की सरलता के विचार से ऐसा कर लिया जाता हो तो आश्चर्य नहीं। क्योंकि अन्य कुछेक अक्षर ऊपर नीचे संयुक्त करने में जितनी आसानी समझी जाती है उस से कहीं अधिक कठिनाई द ह आदि में नीचे लगाने में महसूस होती है और घसीट लिखने में उस विलम्ब से बड़ी खिन्नता होती है। 'चिह्न' का कदाचित इसी कारण चिन्ह बन गया है. 'आह्वान' का कहीं-कहीं 'आव्हान' होने लगा है। एक पोस्टर में 'ह्रास' का 'ह्रास' दिखाई दिया है। 'ब्राह्मण' कहीं ब्राम्हण बन जाता है और प्रह्लाद प्रल्हाद के रूप में उपस्थित होता है।

बने बनाये युक्ताक्षरों के सम्बन्ध में एक अन्य बात यह भी है कि मुद्रण में उनके द्वारा प्राय: पूर्ण निर्वाह नहीं होता और न सादृश्य ही रह पाता है। उदाहरणतः कहीं-कहीं एक ही पाठ में द्य से बनने वाला शब्द विद्युत्, विद्य ुत, विदयुत, विद्‌युत कई प्रकार देखने में आता है और क्त वाला रक्त, रक्त पर उतर आता है, ऐसी अवस्था में बने बनाये युक्ताक्षरों की उपयोगिता भली प्रकार सिद्ध न होने से उनका भार वहन करते रहना युक्ति-युक्त नहीं कहा जा सकता। अतएव इन सब असुविधाओं दुविधाओं और नियम विविधताओं को मिटाने तथा लिपि दोष से होने वाली अशुद्धियों को दूर करने और यान्त्रिक लेखन मुद्रण को सरल-सुगम बनाने के लिए उक्त नौ व्यञ्जनों के (र को बदल देने पर शेष ८ के) ऋ द जैसे अर्द्धक निश्चित कर देना, युक्ताक्षर लेखन में एक नियमता लाने और लिपि को उच्चारण क्रम देने के विचार से उपयुक्त जान पड़ता है कुछ आगे बढ़ा जा सके तो उन्हें ग ण श जैसा या ऋ द जैसा पायन्त कर देना पड़ता है, ताकि उनके अर्द्धक अन्य अक्षरार्द्धकों की भांति ही पाई छोड़ कर बनाये जा सकें। अर्द्धक निश्चित करने में उन अक्षरों में संयोजक चिन्ह जैसी छोटी पड़ी रेखा जोड़नी पड़ती है। इस उपाय में उक्त अक्षरों के पूर्णाकार ज्यों के त्यों रह सकते हैं। र के लिए यह उपाय बाधक होता सो उसको बदलने के लिए पहले ही लिख दिया गया है। समस्त व्यञ्जन पायन्त कर देने पर उन में अकार का विद्यमान होना प्रत्यक्ष किया जा सकता है और पाई को अ की स्पष्ट मात्रा माना जा सकता है।

इन दोनों में से कोई भी उपाय काम में लाने से युक्ताक्षर लेखन की जटिल समस्या का सहज ही हल हो जाता है और कोई भी युक्ताक्षर, उसके अवयव आगे-पीछे रख कर सरलता से लिखा और सुगमता से पढ़ा जा सकता है। तब न किसी अक्षर को विकृत करना पड़ता है न हल् चिन्ह की ही यहां आवश्यकता रहती है। इस प्रकार शब्दों के मध्य किसी अक्षर को अर्द्ध प्रदर्शित करने में, अक्षर और हल् दो चिन्हों द्वारा लिखने के भार से मुक्ति मिल सकती है।

उक्त नौ व्यंजनों में ङ का आकार कुछ खटक रहा है इस आकार के कारण इसका प्रयोग समुचित न हो कर घट रहा प्रतीत होता है। कहीं-कहीं से इसको बहिष्कृत करने की चर्चा भी सुन पड़ती है। यदि इस को बदल दिया जाता है तो वह विवाद समाप्त हो सकता है और उस को संयुक्त करने की कठिनाई दूर हो सकती है। इसके लिए अर्द्ध च (द) का पलटा हुआ अर्थात् पीठ की ओर दिखाई देने वाला जैसा या ज्ञ में और श्र में बनी। जैसी घुण्डी रेफा बनने वाला आकार लिया जा सकता है। पायन्त बनाने में उस में पाई जोड़ देनी पड़ती है। यदि केवल किया जाना है तो उसमें लगने वाले बिन्दु के बदले, ड को ऋ द जैसा बनाते हुए, अक्षर और पाई के बीच में एक घुण्डी दे दी जा सकती है।

ख र व—नागरी व्यंजनों में ख भ्रमपूर्ण है क्योंकि इस में वर्ण माला के दो अन्य अक्षर र और व स्पष्ट दीखते हैं। माना कि छापे का ख उनको समीप रख कर बनाया गया है किन्तु घसीट लिखने में वैसा कहां विचार रहता है। फलतः कभी ख को र व, और कभी र व को ख पढ़ लिया जाता हैं। गलत पढ़ा जाने से फिर मुद्रण में अशुद्धि हो जाती है। नवीन अथवा अल्प व्यवहृत शब्दों में तो वैसी सम्भावना रहती ही है। एक समाचार पत्र में शेरवानी को शेखानी छपा हुआ देखा गया है और एक जगह रस-खान को रसरवान भी, खाना तो अक्सर रवाना हो जाता है पर खाद में कभी कभी स्वाद आने लगता है। अतएव भ्रम और अशुद्धियों से बचने के लिए ख र व में से किसी एक को बदल देना आवश्यक

होता है। यह लेखक विशेषतः र को बदलने के पक्ष में है। (स्वर खण्ड में भी ऐसा संकेत किया जा चुका है। र भिन्न-भिन्न प्रयोगों में भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है, अर्थात् रस, प्रद, द्रव्य. ट्राम में प्रयुक्त (र ्र ॣ ्) चार पूर्ण रूपों में और कर्म, गिट्टाई (मराठी में क्वचित्) में प्रयुक्त (ॅ व ॖ) दो अर्द्ध रूपों सहित छः रूपों में काम आता है। एक अक्षर के इतने अधिक रूप लेखन एवं मुद्रण के यान्त्रिक साधनों के लिए असुविधाजनक होते हैं। इसके अतिरिक्त र आकार अत्यन्त क्षीण है इसमें चौड़ाई अन्य अक्षरों की अपेक्षा बहुत कम है, इस लिए लेखन यन्त्र में सब अक्षर समान बॉडी म बनाये जाने से इसके द्वारा शब्दों के अक्षरों में जगह-जगह साधारण से अधिक अन्तर आ जाता है और जब आ की मात्रा के आगे या पीछे आता है तो बीच का अन्तर और भी अधिक हो जाता है जो देखने में बहुत खलता है। माना कि ऐसे क्षीण-काय अक्षर आई, एल (i l) आंग्ल लिपि में भी हैं। परन्तु वहाँ उन्हें कुछ लम्बे सेरिफ देकर निभा लिया गया है।

र को बदलने के लिए वह आकार लिया जा सकता है जो मराठ में क्वचित प्रयुक्त होने वाले अर्द्ध र (चन्द्राकार चिह्न) में पाई जोड़ कर बनता है। इस से मिलता-जुलता आकार हम आज भी र के एक अन्य रूप में म+र=म्र, घ+र=घ्र आदि में काम में लाते हैं। वह आकार युक्ताक्षर बनाने में इस प्रचलित आकार से कहीं अच्छा है और सर्वत्र काम दे सकता है। इस कल्पक द्वारा एक नवीन आकार भी कल्पित किया गया है जो ज में नीचे आने वाले घुमाव की तरह ऊपर को घुमाव देकर लेखनी की एक ही लाग द्वारा पाई में मिला देने से बनता है। लिपि के अत्यल्प सुधार में इन में से कोई भी (और विशेष सुधार में अन्तिम) आकार लेने पर र के अनेक रूपों की आवश्यकता नहीं रहती। अन्य पाई वाले अक्षरों के अर्द्धकों की भांति ही पाई छोड़ कर इन के अर्द्ध क बनते हैं। यदि अर्द्ध र के ' ॅ ' और ' ॖ ' रूप में कुछ अन्तर समझा जाता हो और आवश्यक ही हो तो प्रचलित रेफ के तौर पर किसी अक्षर में मिलाने में उस अक्षर के द्वित्व द्वारा रेफ वाला भाव व्यक्त किया जा सकता है। संस्कृत में तो रेफ वाले प्रायः सभी सभी अक्षरों का द्वित्व होता है परन्तु हिन्दी में यह क्रम धीरे धीरे छूट रहा है।

यदि ख के सम्बन्ध में ही कुछ किया जाना अभीष्ट हो तो उसके संशोधनार्थ मध्य का ' ० ' अंश (अर्द्ध व जैसा आकार) पाई से न मिला कर र में लगा कर बनने वाला आकार लिया जा सकता है। परिवर्तनार्थ वह रूप उपयुक्त है जो ख को बार-बार जल्द-जल्द लिखने से र और व के मिलने से अनायास ही बन जाता है। द्रुत लेखन में लोग वैसा लिखते भी हैं और कैथी और गुजराती में प्रचलित भी है। इस अवस्था में र को बदलने की आवश्यकता नहीं रहती। केवल उस के अर्द्ध रूप के लिए कोई आकार निश्चित करना शेष रहता है। सो उस के लिए मराठी वाला चिन्ह सर्वत्र प्रयोग के लिए लिया जा सकता है।

क झ फ—नागरी लिपि में ये ३ अक्षर ऐसे हैं जिनकी पीठ की ओर अंकुश जैसा चिह्न लगा है और पाई अन्त में न हो कर मध्य में है। फ में लगा हुआ अंकुश तो प से सम्बन्ध बतलाता है अर्थात् प अल्प प्राण से फ महाप्राण बनाया गया है किन्तु क झ के सम्बन्ध में ऐसा कुछ नहीं है। झ अक्षर ज का महाप्राण है किन्तु बना है वह भ में अंकुश देकर अर्थात् यहां एक अंकुश विहीन भी महा प्राण है और अंकुश-युक्त भी।



भारतीय संस्कृति का स्वरूप

श्री विश्वनाथ त्यागी

अंग्रेज़ी भाषा में दो शब्द कल्चर और सिविलीज़ेशन पाये जाते हैं। इन दो शब्दों का प्रयोग किन्हीं निश्चित अर्थों में योरुप की समस्त भाषाओं में पाया जाता है। मानसिक जागृति एवं रोम के पोप के सम्पूर्ण प्रभुत्व के पतन के पश्चात् राजनीतिज्ञों द्वारा घड़े गये एक तीसरे शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। वह शब्द नेशन था। चौदहवीं शताब्दी से ले कर आज तक सभी देशों ने राष्ट्रवाद का प्रचार किया है। अपनी अपनी राजनैतिक होड़ में प्रत्येक देश के राजनीतिज्ञों ने अपने राष्ट्र की नींव को स्थापित करने के लिये कुछ आधार भूत सिद्धांतों में उन्होंने कल्चर और सिविलीज़ेशन को भी स्थान दिया है।

भारतवर्ष ने अपने शताब्दियों के दासत्व काल में कोई मौलिक विचारधारा देशवासियों के सम्मुख नहीं रक्खी। अपितु यहां के शिक्षित समुदाय ने विदेशी लोगों का विचारधारा का अक्षरशः अनुकरण करने ही में गौरव अनुभव किया है। इसी लहर के फल स्वरूप हमारे देश में कुछ शब्दों का अधिकांश प्रचार हुआ है। हमने बिना सोचे विचारे नेशन शब्द का अनुवाद राष्ट्र शब्द से कर दिया। परन्तु मेरा विश्वास है कि समस्त नेशनहुड का विचार तथा शब्द भारतीय धार्मिक आकांक्षाओं तथा परम्पराओं के विपरीत है।

हमारे संस्कृत भाषा के पण्डित भी इन्हीं दूषित अर्थों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग कर रहे हैं।

जिस प्रकार हमारे धर्म, यज्ञ और श्रद्धा शब्दों का अनुवाद दूसरी भाषाओं में नहीं हो सकता, इसी तरह नेशन, कल्चर, सिविलीजेशन का अनुवाद भी असम्भव है। इन पिछले २०, २५ वर्षों में संसार के विद्वानों ने धर्म और राष्ट्रवाद के स्थान पर संस्कृति और सभ्यता का प्रयोग अधिकांशतः करना प्रारम्भ कर दिया है। परन्तु इन दो शब्दों का वास्तविक अर्थ क्या है वह प्रयोगकर्त्ताओं को भी पता नहीं। कल्चर और सिविलीज़ेशन का अनुवाद हमने अपनी भाषा में संस्कृति और सभ्यता के शब्दों से किया है। जहा तक अनुवाद करने का प्रश्न है ये दोनों शब्द ठीक प्रकार से कलचर और सिविलीज़ेशन का प्रतिनिधित्व करते हैं। मेरे अपने विचारानुसार संस्कृति संस्कृ (संस्कार करना) से और सभ्यता, सभा से लिए गये हैं। परन्तु संस्कृति और सभ्यता दोनों शब्दो का प्रयोग भारतीय साहित्य में मिलना कठिन है।

भारतवर्ष में हजारों वर्षों की सड़ी गली प्रथाओं, परम्पराओं एवं दूषित संस्कारों को संस्कृति और सभ्यता के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया जा रहा है। और इसी आधार पर हिन्द राष्ट्र की स्थापना का स्वप्न देखा जा रहा है। आज हमारे नवयुवक इस दूषित मनोवृत्ति के शिकार होते जा रहे हैं। इस का एक कारण संस्कृति और सभ्यता के वास्तविक अर्थों को न समझना है। विदेशी भाषाओं में ये दोनों शब्द क्रमशः प्रगति के उन चिन्हों अथवा परिणामों से सम्बन्ध रखते हैं जिन को एक शब्द से वर्तमान प्रगति कहा जाता है। इस आधुनिक प्रगति की भी आधार शिला डारविन का 'विकासवाद' है।

इन दो शब्दों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हमारे साहित्य में विद्यमान है।

किसी देश या प्रांत के रिति रिवाजों, निवासियों का वहां की संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसा कि आजकल सर्वत्र माना जा रहा है।

मेरे विचारानुसार संस्कृति शब्द से व्यक्ति की उस उच्चतम उन्नति से मतलब है जो उस का उच्चतम ध्येय है। इस संस्कृति शब्द में व्यक्ति की न्यूनतम

प्रारम्भिक अवस्था की उन्नति से अन्तिम ध्येय तक पहुँचने के तक समस्त साधनों का समावेश है जो उस आदर्श की प्राप्ति में उस को सहायता प्रदान करते हैं। संस्कृति मानव जीवन का सार है। और जीवन के विकास का सम्पूर्ण क्रम भी इसी में निहित है। यह वैयक्तिक है, सामाजिक नहीं। यह व्यापक तो है किन्तु प्रांतीय नहीं। यह आत्मा के विकास की साधिका है न कि बाह्य स्थूल आकार की पोषिका। संस्कृति का क्षेत्र व्यक्ति अथवा है और सभ्यता का क्षेत्र शरीर अथवा समाज है।

जिस प्रकार किसी वृक्ष की जड़ ले कर फूल तक उस का बाहरी आकार—उस वृक्ष की सभ्यता है, और उस वृक्ष के फल की सुगन्धि उस की आत्मा। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के जीवन का वैयक्तिक स्वरूप जो प्रतिक्षण उस के नैतिक आचार विचार में प्रगट होता है उस व्यक्ति की संस्कृति है। संस्कृति का कार्य किसी वस्तु को स्थूल से स्थूल बना कर उत्तरोत्तर बहुमूल्य बना देना है। इन्हीं अर्थों में कल्चर शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ी भाषा में होता है। सल्फ कल्चर एग्रीकल्चर हार्टीकलचर फिजीकलचर शब्दों में कल्चर शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृति शब्द संस्कार से निकला है। जो कार्य व्यक्ति के जीवन में संस्कार करते हैं वही संस्कृति करती हैं। बिना संस्कारों के व्यक्ति अथवा जाति उन्नति नहीं कर सकते। परन्तु जब किसी मनुष्य समुदाय में संस्कारों के रूप की पूजा अधिक होने लगती है और उस की आत्मा को भुला दिया जाता है तो वह मनुष्य समुदाय रूढ़ियों का दास बन कर अधःपतन को प्राप्त होने लग जाता है।

उस आदर्श की प्राप्ति के लिए जितने साधन प्रयोग में लाये जाते हैं, वे सभी संस्कृति के अन्तर्गत है। आंतरिक उन्नति के लिए जैसे खाद और पानी आवश्यक है उसी प्रकार मनुष्य की आत्मिक उन्नति के लिए सदाचार रूपी भोजन और परमात्मा के प्रति श्रद्धांजली नितांत आवश्यक है। समस्त धर्मों में जितना भी आध्यात्मिक अथवा नैतिक साहित्य है वह एक संस्कृति की उन्नति और रक्षा के लिए है। जहां भारतीय आदर्श सादा जीवन तथा उच्च विचार के बदले पेचीदा जीवन तुच्छ विचार का पाठ पढ़ाती हैं। आज कल के समाज की भित्ति केवल हिंसा और शोषण पर निर्भर है वहां हमारे ऋषियों ने समाज का आदर्श जैसा कि मन्त्रों में वर्णित हैं, अहिंसा और व्यक्ति का आदर्श (नियमों में वर्णित) पवित्रता बताया है जीवन की पवित्रता तथा जनता की सेवा यह साधन बताये हैं।

यदि दूसरे प्रकार से संस्कृति और सभ्यता को समझाने का प्रयत्न करूं तो वह वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत कर सकता हूं। आश्रम व्यवस्था सीधी संस्कृति की साधक है और वर्ण व्यवस्था सभ्यता की साधक है। आधुनिक अर्थशास्त्र में सभ्यता की परिभाषा इन शब्दों में की गई है—सभ्यता का अर्थ है आवश्यकताएं बढ़ा कर उन की पूर्ति का उपाय करना अर्थात् जितना ही कोई व्यक्ति अथवा समाज विलास प्रिय होगा उतना ही वह अधिक सभ्य कहलायेगा। यहां सभ्यता, संस्कृति के अर्थ में प्रयोग किया है। परन्तु लगभग १००० वर्ष पूर्व समस्त धर्मों में वे ही व्यक्ति सम्मान और प्रतिष्ठा के योग्य समझे जाते थे जिन का त्याग और तप से ओतप्रोत होता था। योरुप में ईसाई धर्म का इतिहास त्यागी और तपस्वी पादरियों की कथाओं से भरा पड़ा है।

जिस प्रकार व्यक्ति और समाज का निश्चय करते समय भारतीय ऋषियों ने वैयक्तिक उन्नति को साधन माना है इसी प्रकार संस्कृति को साध्य और सभ्यता को साधक मानना चाहिए। आज व्यक्ति और समाज का, संस्कृति और सभ्यता का परस्पर संघर्ष ही संसार

उलझनों का मुख्य कारण हैं।

जर्मनी देश के परम विख्यात दार्शनिक श्री स्पैंगलर ने अपनी एक प्रसिद्ध पुस्तक में इस बात का बलपूर्वक मण्डन किया है कि संस्कृति की केवल एक विशेषता यही है कि हमें शरीर के आत्मा की पूजा का पाठ सिखाती हैं।

जितना ही अधिक संसार के लोग धर्म के बाहरी आडम्बरों रीति रिवाजों और शरीर की पूजा पर बल देंगे—संस्कृति का उतना ही पतन होता जायेगा।

अन्य कई देशों के स्त्री पुरुषों के दैनिक जीवन में सत्य, न्याय तथा दया आदि गुणों का हम भारतीय लोगों से कहीं अधिक समावेश है। वास्तव में किन्हीं बातों को छोड़ कर हम से अधिक अच्छे आर्य हैं और सुसंस्कृत हैं, जब जब मैं योरुप अमेरिका से लौटे हुए [अ]पने मित्रों के मुंह से वहां के लोगों के दैनिक जीवन [के] सम्बन्ध में बातें सुनता हूँ तो भारत के आर्य की याद आ जाती है और ऐसा लगता है कि सच्चे अर्थों में ये ही लोग आर्य हैं। परन्तु जब उन की सामाजिक व्यवस्था और अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक और आर्थिक चालों को देखता हूं तो एक बड़ा पारस्परिक विरोध मेरे सामने आ कर खड़ा हो जाता है और एक भीषण समस्या उपस्थित हो जाती है कि किस प्रकार और क्यों ये आर्य लोग अपने राजनैतिक जीवन में इतने घोर राक्षसी कामों के करने के लिए उतारु हो जाते हैं। मैंने इस समस्या पर गम्भीर विचार किया है और इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि इन देशों की उच्चतम संस्कृति एक दूषित सभ्यता के लिए बलिदान की जा रही है और इसी लिए संसार में महान् अशांति है और एक महायुद्ध के पश्चात् दूसरे महायुद्ध की तैयारियां होने लगती हैं।

इस समस्त अशांति और संसार की भुखमरी को दूर करने के लिए केवल एक ही उपाय है और वह यह कि आधुनिक कुत्सित सभ्यता को जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया जाए और उस के स्थान पर प्राचीन सभ्यता को खड़ा किया जाये जिस का आदर्श होगा 'जिओ और जीने दो।' इस व्यवस्था में व्यक्ति अथवा समाज द्वारा शोषण करने का कोई स्थान न होगा पूर्ण अहिंसा पर समाज की नींव रक्खी जायेगी।

लाखों वर्षों के पश्चात् ऋषि दयानन्द ने संसार को सुमार्ग दिखाया और वैदिक ज्ञान के आधार पर इस आधुनिक पैशाचिक सभ्यता को नष्ट करने के लिए सर्व प्रथम चुनौती दी।

भारतीय समाज की आधार शिला यज्ञ पर निर्भर हैं, जिस से व्यक्ति और समाज को नितात अहिंसावादी और परमार्थी बनना चाहिए। ये दो सिद्धांत अहिंसा और त्याग, भारत की आधार शिला हैं। वैदिक वर्ण व्यवस्था के ये ही दो मूल सूत्र हैं। इस व्यवस्था की स्थापना से वैदिक सभ्यता का बोलबाला होगा और तब उस संस्कृति का जो सदैव सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। सच्चा स्वरूप संसार के सामने आयेगा। वह आज भी प्रत्येक देश में विद्यमान हैं परन्तु भिन्न-भिन्न देश की भिन्न-भिन्न सभ्यताओं पर इस को बलिदान किया जा रहा है।

यदि हम भारतवासी संस्कृति और सभ्यता के वास्तविक अर्थों को समझलें और फिर उस के प्रचार के लिए क्रियात्मक रूप से कटिबद्ध हो जायें तो संसार में शांति स्थापना के अग्रदूत बन सकते हैं।

[गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर दिया गया भाषण।]



आम के उपयोग

श्री सोमदेव शर्मा

साधारणतया प्रत्येक गृह में आम का उपयोग, अमचूर, चटनी, अचार, मुरब्बा, शर्बत, पानक (पना) हलुआ, अमाँवट (आम्रावर्त) के रूप में हुआ करता है। मुरब्बों को संस्कृत में रागषाडव या रागखांडव कहते हैं।

निर्माणविधि—कच्चे आमों को छील कर दो-दो या तीन-तीन टुकड़े कर कुछ घृत में भून कर खांड की चासनी में पकावें और फिर शीतल होने पर उस में काली मीरच, छोटी इलायची और कपूर मिला कर किसी मिट्टी के चिकने बर्तन में रख दे।[1]

आम्रवर्त—पके आम के रस को किसी मोटे कपड़े, टाट या बोरी पर बार-बार डाल कर धूप में सुखाने से आम्रावर्त या आम पपड़ी बनती है।[2]

आम का औषधि रूप में उपयोग

महर्षि चरक ने आम का उपयोग, हृद्य[3], छर्दि-निग्रह[4], पुरीष[5] संग्रहणीय (ग्राही) और मूत्र[6] संग्रहणीय रूप में लिखा है तथा महर्षि सुश्रुत ने न्यग्रोधादिगण[1] में मूत्रशोधक एवं प्रमेह नाशक रूप में निर्देश किया है।

पित्तज[2] वमन नाशक क्वाथ

आम और जामुन के समान भाग कोमल पत्तों का क्वाथ, शीतल होने पर शहद मिला कर पीने से पित्तज वमन को नष्ट करता है।

आचार्य वाग्भट ने उपर्युक्त चरक संहिता के प्रयोग में खस और वट जटाङ्कुर (बरगद की लटकती हुई दाढ़ा) यह दो वस्तुयें और मिला कर 'क्वाथ' अथवा 'हिम' बना कर पीने का निर्देश किया है। आचार्य शार्गंधर ने वाग्भट के प्रयोग को 'फाण्ट' बना कर देने का निर्देश किया है और वमन के साथ ज्वर, प्यास, अतिसार और भयंकर मूर्च्छा का नाशक इसको लिखा है। आचार्य चक्रपाणि ने इस प्रयोग में धनिया खस, सुगन्धबाला और गवेधुक (एक जंगली कुधान्य) यह वस्तुयें मिला कर 'हिम' बना कर देने का निर्देश किया।

पित्तातिसार नाशक प्रयोग

आम की मज्जा (गुठली के भीतर की मींग),

---

१ आममाम्रं त्वचाहीनं द्विस्त्रिर्वा खण्डितं ततः।
भृष्टमाज्ये मनागस्तं खण्डपाकेऽथ युक्तितः॥
सुपक्वं च समुत्तीर्य मरीचैलेन्दुवासितम्।
स्थापितं स्निग्धमृद्भाण्डे रागखाण्डव सम्मितम्॥
(योग रत्नाकर)।

२ पक्वस्य सहकारस्य पटे विस्तारितो रसः।
घर्मशुष्कोमुहुर्दत्त आम्रावर्त इति स्मृतः॥
(भावप्रकाश)।

३ आम्राम्रातक ··· मस्तुलुङ्गानीति दशेमानि हृद्यानि भवन्ति।

४ जम्ब्वाम्रपल्लव ··· मृल्लाजा इति दशेमानि छर्दि निग्रहणानि भवन्ति।

५ प्रियंग्वनन्ताम्रास्थि ··· पद्मकेशराणितिदशेमानि पुरीषसंग्रहणीयानि भवन्ति।

६ जम्ब्वाम्रप्लक्ष ··· सोमवल्का इति दशेमानि मूत्रसंग्रहणीयानि भवन्ति।
(चरक० सूत्र० अ० ४)।

१ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षमधुककपीतनककुभाम्र ··· नन्दी वृक्षश्चेति।
न्यग्रोधादिर्गणोवृष्यः संग्राही भग्नसाधकः।
रक्तपित्तहरो दाहमेदोघ्नो योनिदोषहृत्॥
(सुश्रुत० सूत्र अ० ३८। ४७-४८)।

२ जम्ब्वाम्रयोः पल्लवजं कषायं।
पिबेत्सुशीतं मधुसंयुतंवा॥
(चरक० चिकि० अ० १६। ६०-६१)

कायफल, सोंठ, पाठा, जामुन की मज्जा और जवासा इन सब वस्तुओं को सम भाग लेकर तण्डुलोदक (चावल के धोवन के पानी) के साथ पीस शहद मिला कर पीने से पित्तातिसार नष्ट हो जाता है।[1]

महर्षि सुश्रुत[2] ने भी आम की मज्जा को मुलहठी, बेलगिरी, नील कमल, सुगन्धवाला, खस और सोंठ के साथ जौ कुट कर क्वाथ बनावे। शीतल होने पर शहद डाल कर पीने से पित्तातिसार नाशक माना है। आचार्य चक्रपाणि और शार्गंधर ने भी आम्र की मज्जा और बेलगिरी के क्वाथ में शहद और मिश्री डाल कर पीना, सब प्रकार के अतीसार और वमन में हितकर माना है।

पक्वातिसार नाशक प्रयोग

सम भाग आम की मज्जा (गुठली के भीतर की मींग), लोध, बेलगिरी और प्रियङ्गु को चावल के धोवन के पानी के साथ २ माशा की मात्रा में शहद के साथ पीने से पक्वातिसार नष्ट होता है।[3]

रक्तातिसार नाशक प्रयोग

आम, जामुन और आमले के कोमल पत्तों को कूट कर निकाला हुआ स्वरस और बकरी का दूध समान भाग मिला कर शहद डाल कर पीने से यह रक्तातिसार को नष्ट करता है।[1]

रक्तपित्त नाशक आम्रादि हिम

समान भाग आम, जामुन और अर्जुन की छाल के चूर्ण के हिम-क्वाथ में शहद डाल कर प्रातःकाल पीने से रक्त पित्त नष्ट हो जाता है।[2]

प्रमेह नाशक न्यग्रोधादि चूर्ण

वट जटा (बरगद की जटा) के लटकते हुए अंकुर, गूलर, पीपल, सोनापाठा, अमलतास, विजयसार, आम और जामुन की मज्जा, कैथ का फल, चिरौंजी, अर्जुन, धव, महुआ, मुलहठी, लोध, वरुण, फरहद, पटोलपत्र, मेढासिंगी, दन्ती, चित्रक, अरहर, करञ्ज (वञ्जा का फल), त्रिफला, इन्द्र जौ, भिलावा इन सब वस्तुओं को समान भाग लेकर बनाये गये इस न्यग्रोधादि चूर्ण को शहद के साथ चाट कर त्रिफला का क्वाथ पीने से मूत्र शुद्ध होता है और बीस प्रकार प्रमेह नष्ट होते हैं।[3]

---

१ कट्फलं नागरं पाठा जाम्ब्वाम्रास्थि दुरालभाः।
योगाः षडेते सक्षौद्रास्तण्डुलोदक संयुताः ॥
पेयाः पित्तातिसारघ्नाः श्लोकार्धेन निदर्शिताः।
(चरक चिकि० अ० १६। ६०-६१)

२ मधुकोत्पल बिल्वाम्रह्रीवेरोशीरनागरैः।
कृतः क्वाथो मधुयुतः पित्तातिसारनाशनैः ॥
(सुश्रुत० उत्तर अ० ४। ३-६)।

३ आम्रास्थिमध्यं लोध्रं च बिल्वमध्यं प्रियङ्गु च।
चत्वार एते योगाः स्युः पक्वातीसारनाशनाः।
उक्ता ये उपयोज्यास्ते सक्षौद्रास्ताण्डुलाम्बुना ॥
(सुश्रुत उत्तर अ० ४०। ६७-६८)

---

१ जम्ब्वाम्रामलकीनां तु पल्लवानथ कुट्टयेत्।
संगृह्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत् ॥
तं पिबेन्मधुना युक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥
(चक्रदत्त अतीसार चि०)

२ आम्रजम्बू च ककुभं चूर्णीकृत्य जले क्षिपेत्।
हिमं तस्य पिबेत्प्रातः सक्षौद्र रक्तपित्तजित् ॥

३ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ श्योनाकारग्वधाशनम्।
आम्रजम्बू कपित्थं च पियालं ककुभं धवम् ॥
मधूको मधुकं लोध्रं वरुणः पारिभद्रकम्।
पटोलं मेषशृङ्गी च दन्ती चित्रमाढकी ॥
करजं त्रिफला शक्रभल्लातकफलानि च।
एतानि समाख्यातानि श्लक्ष्णा चूर्णानि कारयेत्।
न्यग्रोधाद्यमिद चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ॥
(सिद्धयोग)

प्रदर नाशक पुष्यानुगचूर्ण

चरक संहिता के प्रसिद्ध प्रदरनाशक पुष्यानुगचूर्ण में आम की मज्जा उपयुक्त होती है।[1]

पूति कर्णनाशक आम्रादि तैल

आम्र, जामुन, महुआ और बरगद (बट) के कोमल पत्तों के स्वरस से पकाया हुआ सरसों, करञ्ज या नीम का तैल 'पूतिकर्ण रोग' में होने वाले पूय के स्राव को नष्ट कर देता है।[2]

मुखपाक नाशक क्वाथ

पटोल (परवल), नीम, जामुन, आम और मालती के नवीन कोमल पत्तों के क्वाथ से मुख धोने से मुखपाक (छाले) दूर हो जाते हैं।[3]

वृष्य आम्रपाक

पके आम का स्वरस १२ सेर १२ छ० ४ तोला, मिश्री ३ सेर ३ छ० १ तो०, घृत १२ छ० ४ तो०, सोंठ ६ छ० २ तो०, काली मिरच ३ छ० १ तो०, छोटी पीपल १ छ० ३ तो०, जल ३ सेर ३ छ० १ तोला। प्रक्षेप की औषधियां—धनियां, जीरा, चित्रक, तेजपत्र, नागरमोथा, दालचीनी, कलौंजी, पीपरमूल, नागकेशर, छोटी इलायची, जावित्री, लौंग, कायफल प्रत्येक ४ तोला, शहद ६ छ० २ तोला।

एक मिट्टी के बड़े बर्तन में आम का रस, मिश्री, घृत, सोंठ, मिर्च, पीपल और जल डाल, मिला कर चूल्हे पर मध्यम अग्नि से पकावें और लकड़ी के एक चमचे से चलाता जाय, गाढ़ा होने पर चूल्हे पर से पृथ्वी पर उतार कर रख लें और उस में धनियां से जायफल तक की प्रक्षेप की औषधियों का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला कर मिलावें और शीतल होने पर उस में शहद डाल के चला कर रख दे।

मात्रा—१ तोला से २ तोला तक भोजन के दो घण्टे पीछे खावे।

गुण—यह आम्रपाक अत्यन्त वाजीकरण है और ग्रहणी, क्षय, श्वास, अरुचि, अम्लपित्त, कुष्ठ और पाण्डुरोग का नाशक है।[1]

---

१ पाठा जम्ब्वाम्रयोर्मध्यं पटलभेदं रसाञ्जनम्।
चूर्णं पुष्यानुगनाम हितमात्रेय पूजितम्॥
(चरक चिकि० अ० ३०)

२ आम्रजम्बुप्रवालानि मधुकस्य वटस्य च।
एभिः संसाधितं तैलं पूतिकर्णोपशान्तिकृत्॥
(शा० सं०, उ० खण्ड, अ० ११)

३ पटोलनिम्बजाम्बाम्रमालतीनवपल्लवाः।
पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने॥
(चक्रदत्त)

---

१ पक्वाम्रस्य रसद्रोणे सितामाढकसम्मिताम्।
घृतं प्रस्थमितं दद्यान्नागरस्य पलाष्टकम्॥
मरिचं कुडवोन्मानं पिप्पलीं द्विपलोन्विताम्।
सलिलस्याढकं दत्वा सर्वमेकत्र कारयेत्॥
पचेतन्मृन्मये पात्रे दारुदर्व्या प्रचालयेत्।
चूर्णान्येषां क्षिपेत्तत्र घनीभूते ऽयाणरिते॥
धान्याकं जीरकं चित्रं पत्रकं मुस्तकं त्वचम्।
बृहज्जीरकमप्यत्र ग्रन्थिं नागकेशरम्॥
एलां पत्रीं लवङ्गं च पृथग्जातीफलं पलम्।
सिद्धशीतेप्रदद्याच्च मधुनः कुडवद्वयम्॥
भक्षयेद्भोजनादर्वाक् पलमात्राभिदं नरः।
अथवा नियता नात्र मात्रा खादेद्यथानिलम्।
मानवः सेवनादस्य वाजिवत्सुरते भवेत्।
समर्थो बलवान् पुष्टो हृष्टो नित्यं निरामयः।
ग्रहणीं नाशयेदेष क्षयं श्वासमरोचकम्॥
(योगरत्नाकर)

मोहन्जोदड़ो के मकान और प्रणाली व्यवस्था

श्री हरिदत्त वेदालङ्कार

एक भवन २२० फीट लम्बा ११५ फीट चौड़ा है, इस की दीवारें कई स्थानों पर ५ फीट मोटी हैं। इस में दो विशाल आंगन, नौकरों के घर तथा सामान रखने के कई कमरे हैं। हड़प्पा की सब से प्रसिद्ध इमारत विशाल अन्नागार है। यह १६६ फीट लम्बा १३५ फीट चौड़ा है इस के पास ही अनाज पीसने का फर्श और मज़दूरों के रहने के बहुत से मकान पाये गये हैं। इन दोनों शहरों में सामान्य मकान बहुत सुविधा पूर्ण थे, इन सब में आंगन, कुंआ, स्नानगृह, नालियां बनीं होती थीं। आंगन प्रायः पक्का होता था और उस के चारों ओर गोदाम, कुंआ, रसोई तथा स्नानागार होते थे। स्नानागार प्रायः सड़क की ओर पक्के ढालदार फर्श का बना होता था, इस का सारा पानी एक पक्की नाली से बाहर की ओर सड़क की नाली में मिला दिया जाता था। घरों के दरवाज़े आज-कल की भांति प्रायः दीवार के बीच में न हो कर सिरे पर होते थे। बाहर की ओर खिड़कियां नहीं होती थी। मकान प्रायः दुमञ्जिले होते थे। छतें चपटी और शहतीरों से बनी होती थीं। घर का मुख्य द्वार गली में होता था और उस के पास पहरेदार की व्यवस्था होती थी।

प्रणाली व्यवस्था

मोहेञ्जदड़ो में गन्दा पानी निकालने के लिए प्रणालियों की बड़ी सुन्दर व्यवस्था थी। प्रत्येक गली और सड़क में एक या दो पक्की ईंट की १ फीट से २ फुट तक गहरी ९ इञ्च से १॥ फीट चौड़ी नालियां होती थीं। इन में मकानों का पानी आता था उपरली मञ्जिलों के पानी के निकास के लिए पकी मिट्टी के बम्बे मकानों की दीवारों में लगाये जाते थे। नालियां प्रायः ईंटों से ढकी होती, जहां ये अधिक चौड़ी होती थीं वहां इन्हें पत्थरों से ढका जाता। घरों की नालियों का पानी सड़क की नाली में जाने से पहले एक गढ़े में भरता रहता था. इसके तीन चौथाई भरने पर ही यह पानी सड़क की नाली में पड़ता था। इस व्यवस्था का यह लाभ था कि नालियों का पानी कभी उन से बाहर नहीं बहता था। बड़ी नालियों में थोड़ी दूरी पर ईंटों के पक्के चहबच्चे बने होते थे, इन में नीचे उतरने के लिए सीढ़ियां भी होती थीं। ये सामान्य रूप से लकड़ी के तख्तों से ढके रहते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि नियमित रूप से इन की सफाई होती थी क्योंकि उन के पास रेत के ढेर पाये गये हैं। जहां एक नाली ऊंचाई से दूसरी नाली में मिलती थी वहां

आम्रकल्प

ग्रहणी रोग की चिकित्सा में पर्पटियों के प्रयोग के समय अनुपान एवं भोजन के रूप में पके आमों का रस तथा दूध का प्रयोग करना सब वैद्यों को विदित ही है।

उपसंहार

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि आम अनेक रोगों का नाशक है और स्वस्थावस्था में चूसने से सब इन्द्रियों को तृप्त करने वाला, बलदायक, अत्यन्त वृष्य, कामशक्ति वर्धक और मन को प्रिय लगने के कारण तथा अपने गुणों के द्वारा यह आम्र का फल वास्तव में फलाधिराज ही है।[1]

---

१ संतर्पणो यः सकलेन्द्रियाणां
बलप्रदो वृष्यतमश्च हृद्यः।
स्त्रीषु प्रहर्षं प्रचुरं ददाति
फलाधिराजः सहकार एव॥
(योग रत्नाकर)

ईंट का छोटा गढ़ा पानी को बाहर बहने से रुकने के लिए बनाया जाता था। जहां नाली मुड़ती थी वहां उसे काट से बचाने के लिए गोलाई दे कर बनाया जाता था और इसके लिए पचराकार ईंटें लगायी जातीं। ऐसा प्रतीत होता है कि यहां इमारतें बनाने की अपेक्षा प्रणाली निर्माण की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। इस दृष्टि से कोई प्राचीन सभ्यता इस का मुकाबला नहीं कर सकती।

इस प्रकार की प्रणाली व्यवस्था, योजनापूर्वक नगर निर्माण इस बात को सूचित करते हैं कि यहां का नगर प्रबन्ध बहुत सुव्यवस्थित और उन्नत था। कुछ अन्य बातें भी इस का पोषण करती हैं। मोहेञ्जोदड़ो में एक दूसरे के ऊपर सात स्तर पाये गये हैं, इनकी निचली तहों में कहीं भी मकान वालों ने सड़क का सार्वजनिक हिस्सा नहीं दबाया, लैम्प के खम्भे यह सूचित करते हैं कि वहां राज्य की ओर से सड़कों पर रोशनी की सुव्यवस्था थी। यद्यपि अन्तिम काल में नगर प्रबन्ध में कुछ शिथिलता आ गयी थी किन्तु कई शतियों तक यह पूर्ण क्षमता के साथ कार्य करता रहा। पहले यह माना जाता था कि यह प्रजातन्त्रीय प्रबन्ध था किन्तु अब इसे सुदृढ़ राजतन्त्र का परिणाम समझा जाता था।

गुरुकुल समाचार

[बत्तीसवें पृष्ठ का शेष अंश]

स्नातक मण्डल का चुनाव

उत्सव पर चुनाव इस प्रकार हुआ—प्रधान श्री अर्जुनदेव विद्यालङ्कार, अम्बाला। उपप्रधान—श्री आत्मानन्द विद्यालंकार, देहली। श्री यशपाल सिद्धांतालङ्कार, जालन्धर। श्री दानदयालु शास्त्री गुरुकुल। मन्त्री—श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, देहली। उपमन्त्री—श्री विद्यासागर, देहली। श्री शंकरदेव, गुरुकुल। श्री हरिप्रकाश अम्बाला। कोषाध्यक्ष—श्री मनोहर विद्यालङ्कार, देहली। विद्यासभा के प्रतिनिधि—श्री विद्यासागर, श्री हरिप्रकाश।

संरक्षक सभा का चुनाव

१४-४-५२ को संरक्षक सभा का नया चुनाव इस प्रकार हुआ—प्रधान—श्री बिहारीलाल जी, देहली। उपप्रधान—श्री सत्यदेव जी, घनौरा। मन्त्री—श्री देवराज जी, लुधियाना। विद्यासभा के प्रतिनिधि—श्री रमेशचन्द्र, देहली।

प्रकृति विज्ञान संग्रहालय

उत्सव पर लगभग ४००० व्यक्तियों ने लाभ उठाया। दर्शकों ने इसे देख कर बहुत सराहना की है। सहारनपुर जिले के एक सज्जन श्री काशीराम आर्य ने अपने भाव इस प्रकार व्यक्त किये हैं—'संग्रहालय को देख कर ईश्वर की अद्भुत कारीगरी का ज्ञान होता है। वस्तुतः यह प्रकृति की दर्शनीय चीज़ों का अपूर्व संग्रह है जो वैज्ञानिक विधि से सजाया गया है।'

असिस्टेन्ट डाईरेक्टर आफ एजुकेशन सौराष्ट्र सरकार ने लिखा है—'यह बहुत वैज्ञानिक है। मुझे प्रसन्नता है कि विद्यार्थियों ने स्वयं ही वस्तुएं तैयार की हैं। यह विधि बहुत ही अच्छी है। जनता तथा सरकार दोनों का कर्तव्य है कि ऐसी संस्थाओं की अधिक से अधिक सहायता करें।'

इस ऋतु में पक्षियों के तथा अन्य जन्तुओं के घोंसले तथा अण्डों का संग्रह तेज़ी से बढ़ रहा है। गिलहरी, बसन्ता कौए तथा अन्य छोटी चिड़ियों के घोंसले संग्रहालय में आ चुके हैं।



मघवा कौन ?

श्री मनोहर विद्यालङ्कार

प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।
उतस्वे न शवसा शूशुवुनर उतक्षियन्ति सुक्षितिम् ॥

ऋ० ७-७५-६

ऋषिः वसिष्ठः । देवता अश्विनौ । छन्दः सतोबृहती ।

ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुव यशश्छर्दिरस्मभ्यं नासत्या ॥

ऋ० ७-७५-५

जब मनुष्य काम या कामना के वश में होता है, तो वह दूसरे के अधिकार का अपहरण करता है और जिस के अधिकार का अपहरण होता है वह क्रोध करता है, बदला लेने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार अधिकार के अपहरण से काम और क्रोध की उत्पत्ति होती है; समाज में मानवता का ह्रास प्रारम्भ होता है। इस के विपरीत जो लोग दूसरों के अधिकारों को नहीं छीनते, और अतएव मनुष्यों की मानवता की रक्षा करते हैं। रथ की तरह सुगमता और शीघ्रतापूर्वक सदा गतिशील बने रहते हैं, कर्मण्य हैं, कभी आलसी बन कर नहीं बैठते।

अपने बल और पराक्रम से बढ़ते हैं अर्थात् दूसरों पर आश्रित नहीं या अपने माता पिता की कमाई पर जीवित नहीं; अथवा राष्ट्र के लिए बोझ न बन कर, उत्पादन के द्वारा उत्तम स्थिति को प्राप्त करते हैं।

उन के कामों में रात दिन कोई समय और द्यावा-पृथिवी का कोई स्थान बाधक नहीं बनता। उन के सब काम अप्रतिहत रहते हैं। वे कभी शुभकार्यों को समय और स्थान की बाधा का बहाना बना कर नहीं टालते। जिस काम को करने का निश्चय करते हैं, उसे अवश्य पूरा करते हैं। सामान्य मनुष्य को द्वन्द्व सताते हैं, लेकिन जो मनुष्य वशिष्ठ (संयमी, कर्मण्य व पालक बन चुके है, उन के निश्चय और कर्म में द्वन्द्वों की भी पार नहीं बसाती।

इन निश्चय और कर्म रूपी मघ (धन) के धनियों के लिए तो रात दिन, द्यावा पृथ्वी और द्वन्द्वमय जगत् में सर्वत्र यश और आश्रय प्राप्त है।

वे निरीह और निष्काम हैं, परिणामतः उन्हें किसी वस्तु की कमी नहीं।

अर्थ—(अवृकासः) दूसरों के अधिकारों को न छीनते हुए (जनानांनृपातारः) मनुष्यों की मानवता की रक्षा करने वाले (रथा इव) सुगम और शीघ्र गामी सवारी की तरह (प्रययुः) प्रकर्ष से गति करते हैं। और (स्वेन शवसा) अपने बल से (शुशुवुः) बढ़ते हैं तथा (सुक्षिति उतक्षियन्ति) उत्तम स्थिति को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार (वसिष्ठः) संयम, कर्मण्यता और रक्षा के द्वारा (मघवद्भ्यः) धनी बने हुए हम लोगों को (नासत्या अश्विनौ) दिन रात, द्यावा पृथ्वी व द्वन्द्वात्मक जगत् (यशः) अन्न, धन, सौन्दर्य व कीर्ति और (छर्दिः) आश्रय (यंसतः) देते हैं।



गुरुकुल समाचार

ऋतु

गुरुकुलोत्सव समाप्त होते ही ग्रीष्म काल अपने पूरे प्रभाव के साथ प्रारंभ हो गया है। दिवस खूब तप रहे हैं। रात्रियां शीतल हैं। धूल भरी आंधियाँ प्रारम्भ हो गई हैं। शिवालक की पर्वतमाला पर दावानल के दृश्य दिखाई देने लगे हैं। जामुन, नीम, शिरीष, गुलमोर आदि वृक्षों की मीठी सुवास से गुरुकुल नगरी की पथ-वीथियां महक उठी हैं। वाटिका में ग्रीष्मकालीन गुलाब और मोतिया शीतल और सुहावने प्रभात को आमोदित करने लगे हैं। ब्रह्मचारियों के नहर-स्नान और तैरी की सरगर्मियों से प्रातः सायं नहर के किनारे गूंज उठते हैं। अभी तक प्यालों के लिए पर्वत यात्राएँ प्रारम्भ नहीं हुई हैं। छात्रों का स्वास्थ्य अच्छा है।

नया सत्र और दीर्घावकाश

उत्सव के पश्चात् सभी विभागों की नए वर्ष की पढ़ाईयां नियमित प्रारम्भ हो गई हैं। नए सत्र की पुस्तकें वितीर्ण हो चुकी हैं। महाविद्यालय विभाग का दो मास का दीर्घावकाश १४ मई से प्रारम्भ हो जायगा विद्यालय विभाग की डेढ़ महीने की छुट्टियां २५ मई से प्रारम्भ होंगी। विद्यालय के छात्रों के लिए किसी स्वास्थ्यप्रद पर्वत स्थान की ज्ञान-यात्रा का प्रबन्ध किया जा रहा है। महाविद्यालय के छात्रों की एक मंडली काश्मीर यात्रा का आयोजन कर रही है। एक मंडली गंगोत्री जा रही है।

विशेष व्याख्यान

उत्सव के पश्चात् मान्य पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार कुल में एक सप्ताह रहे। इस बीच में महाविद्यालय वाग्वर्धिनी सभा की अध्यक्षता में आपने विकासवाद, अध्यात्मवाद और मोक्षवाद विषयों पर तीन विचारोत्तेजक व्याख्यान देते हुए भारतीय विचारधारा की मौलिकता और सर्वगामिता का सुन्दर प्रतिपादन किया।

गुरुकुलीय आर्यसमाज की संरक्षा में अरविन्द आश्रम के विख्यात विद्वान् श्री अम्बालाल पुराणी जी ने श्री अरविन्द के जीवन-कर्म और उन की दार्शनिक पृष्ठ भूमिका को समझाने वाला एक ज्ञानप्रद व्याख्यान दिया।

मान्य अतिथि

ग्रीष्मावकाश होने से आजकल भारत के विभिन्न प्रान्तों के यात्रियों का आगमन हरिद्वार, ऋषिकेश आदि स्थानों में विशेष रूप से होता है। इन में गुरुकुल दर्शनार्थ भी बहुत से शिक्षा-प्रेमी जन आते रहते हैं। सौराष्ट्र सरकार के शिक्षा विभाग के सहायक संचालक श्री चन्दुलाल पटेल उस दिन गुरुकुल पधारे। आपने वेदाध्ययन की श्रेणी में बैठ कर श्री आचार्य जी का प्रवचन सुना और वैदिक अध्ययन की गुरुकुलीय पद्धति का बहुत गुणगान किया। पुस्तकालय और दोनों संग्रहालयों को देख कर आपने बहुत प्रसन्नता प्रकट की। मुँबई के स्वर्गीय गुरुकुल प्रेमी सेठ शूरजी वल्लभदास के सुपुत्र और सुपुत्रियों ने परिवार सहित गुरुकुल के सब विभागों का अवलोकन किया। एक दिवस आप लोगों ने गुरुकुल के समस्त छात्रों को प्रीतिभोज कराया।

रवीन्द्र-जयन्ती

साहित्य-गोष्ठी की ओर से ७ मई को कवीन्द्र रवीन्द्र जी का जन्मोत्सव श्री शंकरदेव विद्यालंकार के सभापतित्व में मनाया गया। जिस में छात्रों ने गुरुदेव की विशिष्ट और नमूनेदार साहित्यिक कृतियों का वाचन और विवेचन किया। सभापति जी ने कवीन्द्र की प्रतिभा को बताने वाले जीवन प्रसंगों को सुनाते हुए उनकी कुछ एक उत्तम रचनाओं का स्पष्टीकरण और महत्त्व समझाया। कविराज श्री हरिदास शास्त्री ने कवीन्द्र के विषय में अपने निजू संस्मरण सुना कर उन को श्रद्धांजलि अर्पित की।

आश्रम सभाओं के चुनाव

नवीन सत्र के प्रारम्भ होते ही आश्रम की विविध सभाओं के चुनाव हो गए हैं। नए कार्यकर्ता इस प्रकार है—

कुल मन्त्री—ब्र० नरपति १४ श।
कुल उपमंत्री—ब्र० सत्यव्रत १३ श।
वाग्वर्धिनी सभा—मन्त्री—ब्र० सत्यव्रत १३ श।
उपमंत्री—ब्र० विश्वबन्धु १२ श।
साहित्यपरिषद्—मंत्री-ब्र० राजीव १४ श।
उपमंत्री—ब्र० भगतसिंह १३ श।
साहित्यगोष्ठी—मंत्री—ब्र० राजीव १४ श।
उपमंत्री—ब्र० अनन्त कुमार १३ श।
कॉलेज यूनियन—मंत्री—ब्र० वीरेन्द्र १३ श।
उपमत्री—ब्र० धर्मदेव १२ श।
संस्कृतोत्साहिनी—मंत्री—ब्र० महावीर १३ श।
उपमंत्री—ब्र० जयपाल १२ श।
क्रीडामत्री—ब्र० शीलकांत १४ श।
उपमत्री—ब्र० अनन्त कुमार १३ श।
गद्यदल नायक—ब्र० सुधाकर १४ श।
उपनायक—ब्र० महेन्द्र कुमार १३ श।

महोत्सव के वृत्त

गुरुकुल का ५२ वाँ वार्षिक महोत्सव ११, १२, १३, १४ एप्रिल के दिनों में आनन्द और उल्लास के साथ मनाया गया। पहले दिन प्रभात में यज्ञ के पश्चात् मण्डप के पूर्व द्वार के सन्मुख श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने ओम् की पताका फहराई और इस ध्वजा के महत्व पर संक्षिप्त प्रवचन किया। इसके पश्चात् उत्सव की शुरूआत के लिए श्री स्वामी अभेदानन्द जी का मांगलिक धर्मोपदेश हुआ। भजनोपरांत श्री आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ की अध्यक्षता में वेद सम्मेलन संपन्न हुआ जिसमें महाविद्यालय के छात्रों में ब्र० सत्यव्रत, विश्वबन्धु, जयपाल और ओम्प्रकाश ने विविध वैदिक विषयों पर निबन्ध पाठ किया। वेदोपाध्याय श्री पं० रामनाथ वेदालंकार ने 'ऋषि दयानन्द द्वारा वेदार्थ में क्रान्ति' इस विषय पर समालोचनात्मक निबन्ध पढ़ा। सभापति जी का भाषण अन्यत्र दिया गया है।

अपराह्न में भजनों के पश्चात् श्रीयुत पं० प्रकाश वीर जी का ओजस्वी भाषण हुआ। तत्पश्चात् रामजस कालेज दिल्ली में संस्कृत साहित्य के उपाध्याय श्री नरेन्द्रनाथ चौधरी एम. ए. शास्त्री की अध्यक्षता में संस्कृत में सरस्वती सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। जिसमें विद्यालय और महाविद्यालय विभाग के छात्रों ने 'सांप्रतं भारतस्य आर्थिक समास्यायाः समाधानं साम्यवाद कार्यक्रमेणैन संभवति' इस विषय पर एक मनोहर वाद-विवाद हुआ। सभापति जी ने छात्रों की संस्कृत भाषिता की सराहना और अभिनन्दन किया। वाद-विवाद में इन छात्रों ने भाग लिया—

ब्र० जयवीर १० म, सुरेश १० म, देवेश्वर ११ श प्रशान्त ९ म, गोपाल ११ श, विश्वबन्धु १२ श, जयपाल १२ श, नरपति १४ श।

रात्रि को श्री स्वामी अभेदानन्द जी महाराज की बोधक धर्मकथा हुई और श्री प० धमदेव जी विद्यावाचस्पति (सम्पादक सार्वदेशिक) का मनोहर भाषण हुआ।

दूसरे दिवस यज्ञ और भजन-कीर्तन के अनन्तर श्री स्वामी व्रतानन्द जी ने भूलोकोत्थान के साधन विषय पर एक प्रेरणात्मक उपदेश दिया। इसके पश्चात् श्रीयुत महाशय कृष्ण जी के सभापतित्व में सरस्वती सम्मेलन हिन्दी में प्रारम्भ हुआ। इसमें वाद-विवाद का विषय रक्खा गया था—वर्तमान समय में भारत में उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हितकर है या नहीं।

सभापति जी ने बताया कि आज संसार दो समूहों में बंटा हुआ है—अमेरिका और रूस। भारत इन दोनों की विचारधारा को मध्य मार्ग पर लाना चाहता

है। अमेरिका का जोर इस बात पर है कि मनुष्य के जीवन स्तर को नीचे लाकर आर्थिक विषमता दूर करनी चाहिए। भारत स्वेच्छापूर्वक त्याग की नैतिक भावना पर बल देकर आर्थिक विषमता को दूर करना चाहता है। यह धार्मिक भावना ही समस्या का हल ला सकती है। अपराह्न में भजनों के बाद श्री पं० विश्वनाथ त्यागी ने वैदिक वर्णव्यवस्था की महत्ता प्रदर्शित करने वाला एक अध्ययनपूर्ण और विचारोत्तेजक भाषण दिया। आपने अनेक पाश्चात्य विद्वानों के प्रमाण देकर बताया कि किस प्रकार समाज की संघटना का वैदिक सिद्धान्त ही विश्व की समस्याओं को हल कर सकता है। उनके पश्चात् श्री प्रकाशवीर जी ने 'भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान' विषय पर मनोहर भाषण दिया। श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक ने अपने भाषण में इस बात पर बल दिया कि स्वराज्य तो मिल गया है। पर उसे सुराज्य बनाने पर ही हमारे कष्ट दूर हो सकेंगे।

रात्रि को मेरठ कालेज के प्रोफेसर श्री धर्मेन्द्रनाथ जी तर्क शिरोमणि ने संस्कृत विद्या का भविष्य इस विषय पर तथ्यपूर्ण भाषण दिया। गत शता में पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत विद्या की खोज और अनुशीलन के लिए कैसा भागीरथ प्रयत्न किया है इसका आपने विस्तार से दिग्दर्शन कराया। उनके पश्चात् श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार ने अपनी ओजपूर्ण भाषा में आर्यसमाज में कार्यकर्ताओं की आवश्यकता इस विषय पर भाषण किया।

तीसरे दिन प्रभात के कार्यों से निवृत्त होते ही समस्त गुरुकुलवासी कार्यालय के सामने झंडा चौक में एकत्र हुए। गुरुकुल की स्वामिनी सभा के सदस्यगण संन्यासी महात्मा और अन्य माननीय मेहमान भी झंडा चौक की रौनक बढ़ा रहे थे। सब ने मिलकर कुल-पताका-गीत गाया और उसके अनन्तर स्वामिनी सभा के प्रधान (चांसलर) श्री पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा ने कुलपताका का आरोहण किया। वाद्य निर्घोषों के साथ अनेक जयकारे बोले गए और सदा की भाँति शोभायात्रा (जुलूस) में व्यवस्थित होकर उत्सव मंडप की ओर प्रस्थित हुए। आगे-आगे विश्वविद्यालय के वाद्य बज रहे थे। उत्सव मंडप लता-पल्लवों से सजा हुआ था। वहाँ पर सब शिष्ट-वरिष्ठ जनों के यथा स्थान बैठ जाने पर कुलवंदना का गीत गाया गया। शंखनाद द्वारा दीक्षान्त-विधि का प्रारंभ घोषित किया। होमाग्नि प्रदान करके नव-स्नातकों ने मंत्र-पाठ द्वारा व्रत ग्रहण किया। नवस्नातकों को वाद्यध्वनि के साथ चोले पहनाए गए और श्री आचार्य जी ने उनको प्रमाणपत्र प्रदान करके उपनिषद् के प्रख्यात वचनों द्वारा उपदेश दिया। इसके पश्चात् मान्यवर श्री विजन कुमार मुखोपाध्याय ने पहले अंगरेजी में दीक्षान्त-प्रवचन किया बाद को अपने भाषण का सार भाग संस्कृत भाषा में सुनाया। दीक्षान्त भाषण के मुख्य २ अंश श्री पं० सुखदेव जी ने जन-सामान्य के लिए पढ़ सुनाये। सौभाग्य से इसी समय श्रीयुत गुरु जी (श्री माधवराव गोलवलकर जी) उत्सव मण्डप में पधारे। आपने नवस्नातकों का स्वागत और अभिनन्दन करते हुए कहा—आज इस शुभ अवसर पर महर्षि दयानन्द का वह ओजपूर्ण वचन याद आ रहा है—'वयं साम्राज्यवादिनः'। आर्य साम्राज्य के नाम से भय खाने की जरूरत नहीं है। क्योंकि हम उस के द्वारा सत्य, श्रेष्ठ और अटल सिद्धान्तों को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। आत्म विश्वास के बल पर ही महान् आर्य साम्राज्य स्थापित किया जा सकता है। आज स्थिति क्या है। चारों ओर से वातावरण भीतिग्रस्त है। कहा जाता है धीरे बोलो, कम बोलो या मत बोलो। सर्वत्र दब्बूपन की भावना दीख रही है। ऐसी निकृष्ट भावना के सामने आत्म-विश्वास को बुलन्द करने वाला भारत है—'वयं साम्राज्य वादिनः'। उसे पुनर्जाग्रत करने की आवश्यकता है।

स्वयं पर श्रद्धा रख कर आगे बढ़ने का मार्ग निकालना हमारा कार्य होना चाहिए। इन दिनों अपनेपन का भाव दिन प्रतिदिन कम हो रहा है। परानुकरण का भयावह वातावरण बढ़ रहा है—उसे दूर करना आपका काम है। आधुनिकतम कहाने वाले वादों में श्रेष्ठवाद जो वह प्राचीन मार्ग है—वही आत्मविश्वास का मार्ग है। दृढ़ विश्वास के साथ मानवता के प्रति अपने को समर्पित करने से ही यह महान् कार्य सिद्ध हो सकेगा। मानव-जीवन को समुज्ज्वल करने के लिए संघर्ष का मुकाबला करने के लिए आपको निमन्त्रित करता हूं।

तत्पश्चात् पुराने स्नातकों की ओर से तपस्वी राष्ट्र-कर्मी स्नातक श्री पूर्णचन्द्र जी विद्यालंकार ने नवस्नातकों का बड़े सरल और सौम्य शब्दों में स्वागत किया। (वह वक्तव्य अन्यत्र छपा है)। नव-स्नातकों की ओर से श्री श्रुतिकांत विद्यालंकार ने बड़ी भावनापूर्ण भाषा में गुरुजनों, शिष्ट-वरिष्ट पूज्यजनों और स्नातकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए उस का उत्तर दिया। विनम्र भावुकता के इन उद्गारों से श्रोतवृन्द के नयन भीने हुए जा रहे थे।

संन्यासी महात्माओं की ओर से श्री स्वामी अभेदानन्द जी ने आशीर्वाद में नवस्नातकों के प्रति कहा—श्रद्धा और तप के बल से आप स्नातक बने हैं। उसी के बल से अब आप कार्यक्षेत्र में आईए। आपका स्वागत है।

स्वामिनी सभा के प्रधान (चांसलर) श्री पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा ने वैदिक मंत्रों द्वारा नव-स्नातकों को आशीर्वाद दिया। इन आशीर्वचनों का समस्त देव-मंडली ने अनुवचन किया। पश्चात् विश्व-विद्यालय के प्रस्तोता श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार ने राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद जी का तार द्वारा भेजा हुआ आशीर्वाद सदेश पढ़ सुनाया—इसके बाद कुल-वन्दना गाई गई और दीक्षान्त समारोह समाप्त हुआ।

अपराह्ण में श्री पं० यशपाल जी सिद्धान्तालंकार का भाषण हुआ और फिर आचार्य श्री प्रियव्रत जी का व्याख्यान और धन संग्रह के लिए अपील हुई। दान में प्राप्त एक लाख दस हजार की राशि घोषित हुई।

रात को श्री पूज्य आनन्द स्वामी जी महाराज की बहुत सात्विक और रसपूर्ण धर्मकथा हुई और बाद में श्री प० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा का बोधप्रद व्याख्यान हुआ।

चौथे दिन प्रभात में श्री आचार्य जी ने नव-प्रविष्ठ ब्रह्मचारियों का उपनयन किया तथा वेदारम्भ संस्कार करके ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। इस साल ६० नए ब्रह्मचारी प्रविष्ट हुए हैं।

अपराह्ण में श्री पं० सुखदेव जी विद्यावाचस्पति का का आर्यसमाज का महत्व और उसकी आवश्यकता पर आलोचनात्मक भाषण हुआ। इसके अनन्तर हिन्दूकोड बिल के पक्ष और विपक्ष के विचारों का स्पष्टीकरण करने वाला एक दिलचस्प वाद-विवाद सम्मेलन श्री स्वामी अभेदानन्द जी के सभापतित्व में हुआ। जिसमें निम्नलिखित विद्वानों ने भाग लिया—

श्री प० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय, श्री आचार्य प्रियव्रत जी, डॉक्टर सत्यकेतु विद्यालंकार, श्री पं० भीमसेन विद्यालंकार, श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति, श्री पं० विश्वनाथ जी त्यागी, श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, श्री पं० हरिदत्त जी वेदालंकार।

रात को श्री पं० दीनदयालु जी शास्त्री की अध्यक्षता में व्यायाम-सम्मेलन हुआ जिसमें गुरुकुल के छोटे-बड़े सभी छात्रों ने व्यायाम, कवायद और अंगबल के अनेक प्रयोग किए। श्री आचार्य जी द्वारा उत्सव की सफलता के लिए सब सहकर्मियों और सहयोगियों का कृतज्ञता ज्ञापन किया गया। परम पिता परमात्मा का धन्यवाद और कुलमाता व भारत-माता के जयकारों के साथ उत्सव समाप्त हुआ।

[शेष पृष्ठ २७ पर]

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

ग्रीष्म ऋतु में सेवन कीजिये

भीमसेनी सुरमा

आंखों के लिए इस से बढ़ कर कोई दूसरा सुरमा नहीं है। यह आंखों के सब रोगों पर विशेष लाभ करता है। बालक वृद्ध सभी को समान उपयोगी है।

मू० नमूना ॥=) शीशी

ब्राह्मी बूटी

बुद्धि को बढ़ाने व मस्तिष्क की दुर्बलता को दूर करने में इससे अच्छी दूसरी बूटी नहीं है। हमारे यहां हर समय ताज़ी मिलती है। मू० ३) सेर

भीमसेनी दन्तमञ्जन

मञ्जन के बढ़ते हुए रिवाज को देख कर यह देशी मञ्जन तैयार किया गया है। यह मूल्य में भी सस्ता है और दांतों को मज़बूत व चमकदार भी बनाता है। मू० ॥≡) शीशी

पामाहर

खुजली व चम्बल रोग को इस का प्रयोग जड़मूल से उखाड़ देता है। मूल्य भी साधारण है। मू० ।=) शीशी

ब्राह्मी तेल

यह तेल शुद्ध ब्राह्मी के द्वारा बनाया गया है। दिमाग को ठण्डक व तरावट देकर ताज़गी लाता है। दिमाग की कमज़ोरी वालों को यह तेल विशेष हितकर है।

मू० ।=) शी० छोटी

ब्राह्मी शर्बत

ब्राह्मी तेल की तरह यह शर्बत भी इस मौसम में सेवन करने योग्य उत्तम चीज़ है। प्रातः काल एक गिलास शर्बत सारे दिन ताज़गी रखेगा। मू० ३) बोतल

भीमसेनी नेत्र बिन्दु

यह औषधि दुखती आंखों के लिये अक्सीर है। कुकरे व दर्द भी इस से दूर होते हैं। मू० १) शीशी

आमला तेल

यह तेल बालों को रेशम की तरह मुलायम कर काला करता है।

मू० १।) शीशी

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

गुरुकुल पत्रिका

आषाढ़
२००९



वर्ष ४
अङ्क

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ४
पूर्णाङ्क ४७

जून
१९५२

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी ।

सम्पादक
श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार ।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

भारतीय दर्शन के आधारभूत तत्व	श्री उदयवीर शास्त्री
दान की महिमा	श्री ओम्प्रकाश
संस्कृति निर्माण के लिये शिक्षणालयों की रूप रेखा	स्वामी शिवानन्द सरस्वती
भोजन में इमली के बीज	डॉक्टर पी. एस. राव

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं ।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक-पत्रिका]

भगवद्गीता का सन्देश

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

कुरुक्षेत्र के मैदान में, कौरवों और पाण्डवों की सेनायें, विजय प्राप्त करने की अभिलाषा से एक दूसरे के सामने खड़ी थीं। कौरवों की सेना में अधिक सैनिक थे, और पाण्डवों की सेना में कम, परन्तु पाण्डवों का नेतृत्व योगिराज कृष्ण और गाण्डीवधारी अर्जुन के हाथ में था, और कौरवों के सेनापति वृद्ध पितामह भीष्म थे, इस कारण दोनों ओर की शक्ति सन्तुलित सी हो गई थी।

युद्ध आरम्भ होने का समय आया, तो अर्जुन ने अपने सारथि मित्र कृष्ण से कहा कि हे अच्युत मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में ले चलो जिस से मैं अपने शत्रुओं पर दृष्टि डाल सकूं। कृष्ण ने वैसा ही किया। कुशल सारथि का संकेत पाकर पाण्डव के विशाल श्वेत घोड़े कपि चिह्न वाले महान् रथ को लेकर रणक्षेत्र के मध्य में जा पहुँचे। वहां जाकर अर्जुन ने अपने शत्रुओं पर दृष्टि डाली तो उस का दिल काँप गया, डर से नहीं अपितु धर्म-भीरुता से। उस ने कौरवों की सेना में पितामह, आचार्य, मातुल और भाइयों को शत्रु बन कर खड़ा पाया। इस दृश्य ने अर्जुन के हृदय को हिला दिया और वह 'न योत्स्य इति गोविन्द मुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह' 'हे गोविन्द मैं युद्ध नहीं करूंगा' यह कह कर चुप हो गया। इस पर योगिराज कृष्ण ने उसे कायर कह कर फटकारा तो संशयात्मा अर्जुन ने हथियार रथ में रख कर कृष्ण के सम्मुख आत्म-समर्पण करते हुए कहा—

> कार्पण्य दोषोपहतस्वभावः,
> पृच्छामि त्वां धर्म-सम्मूढचेतः
> यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे,
> शिष्यस्तेहं शाधिमान्त्वाप्रपन्नम्।

इस सन्देह ने मेरी स्वभावसिद्ध वीरता को निर्बल कर दिया है। मैं धर्म संकट में पड़ गया हूँ। हे जनार्दन, मैं शिष्यभाव से तुम्हारी सेवा में उपस्थित हो कर पूछता हूँ, मुझे कल्याण का मार्ग बताओ।

जनार्दन ने अपने प्रिय सखा और शिष्य को ठीक मार्ग पर लाने के लिये उपदेश दिया। जनार्दन ने घबराये हुए सखा और शिष्य अर्जुन को दिलासा देते हुए कहा—

> 'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः
> तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।

क्या करना चाहिये और क्या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर देने में बड़े-बड़े विद्वान् चकरा जाते हैं। हे अर्जुन, मैं तेरे सामने कर्म की ऐसी विशद व्याख्या करूंगा, जिस से तू सन्देह के भंवर से पार निकल जायगा।

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को संशय के गढ़े में से

निकाल कर कर्तव्य के मार्ग पर लाने के लिए कर्म की जो विशद व्याख्या की है, उस के तीन सूत्र हैं। पहला सूत्र यह है—

कर्मैव कुरुतस्मात् त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः
शरीर-यात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः।

हे अर्जुन ! तू संशय में पड़ कर सोचता है कि मैं क्षत्रिय के कर्म, धर्मयुद्ध को छोड़ कर और अकर्मा हो कर चुपचाप बैठ जाऊं, इस से पाप से बच जाऊंगा, यह तेरा भ्रम है।

मनुष्य कर्महीन हो ही नहीं सकता। यदि जीता है तो उसे मन, वाणी और शरीर से कर्म करना ही पड़ेगा। यदि वह सोच समझ कर भले कर्म न करेगा तो प्रकृति उस से बुरे कर्म करायेगी। मनुष्य का कल्याण इसी में है कि वह सदा अपने योग्य कर्म करने में तत्पर रहे। कर्म रहित मनुष्य मृत मनुष्य से भी बदतर है।

मान लिया कि मनुष्य को कर्तव्य कर्म करना चाहिये अर्थात् क्षत्रिय को युद्ध करना चाहिये। उस र अर्जुन के मन पर दूसरी आशङ्का उत्पन्न हुई। उस ने कहा—

न चैतद् विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।

हम नहीं जानते कि जीत किसकी होगी। हम जीतेंगे, या हमारे शत्रु विजयी होंगे। दूसरे रूप में उस की आशंका यह है कि जब कार्य की सफलता अनिश्चित है तो उस में हाथ ही क्यों डाला जाय। इस आशंका का समाधान करते हुए योगिराज ने बतलाया है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन,
मा कर्मफल हेतुर्भू मा तेऽसंगोस्त्वकर्मणि।

तुम अपना कर्तव्य कर्म करने के ही अधिकारी हो, फल की प्राप्ति के नहीं, वह तुम्हारे बस की बात नहीं। क्योंकि कर्म-फल देना विधाता के हाथ में है। उसका चिन्तन न करते हुए अपना कर्तव्य कर्म करते जाओ, यही तुम्हारा धर्म है। हां, इतना विश्वास रखो कि—

नहि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।

जो अपने कर्तव्य का पालन करता है, अन्त में उसकी दुर्गति नहीं होती।

जो दशा युद्ध के आरम्भ में अर्जुन की हुई थी, वह अपने जीवन में कभी न कभी प्रत्येक मनुष्य की होती है। उस के सामने दो रास्ते आ जाते हैं, वह निश्चय नहीं कर सकता कि किधर जाय और सोचने लगता है कि—'किं कर्म, किं च अकर्म' क्या करू और क्या न करू। उस समय उसे अपने मन को जो उत्तर देना चाहिये, वही योगिराज कृष्ण ने अर्जुन को दिया है, उन्होंने अर्जुन से कहा है—

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय
सिध्य सिध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।

हे अर्जुन तू योग में स्थित हो कर कर्म कर। कर्म करता हुआ फल की चिन्ता मत कर। सिद्धि या असिद्धि का ध्यान छोड़ कर और कर्तव्य समझ कर कर्म करने का नाम ही योग है। कहीं जिज्ञासु यह समझ जाय कि सिद्धि की इच्छा छोड़ कर भूडेपन से कर्म करने का नाम योग है, इस कारण भगवन् ने दूसरे स्थान पर कहा है—

'योगः कर्मसु कौशलम्'

कर्म को बुद्धि पूर्वक कुशलता से करना योग कहलाता है, मूर्खता से हाथ पांव मारने का नाम योग नहीं है। अर्जुन ने युद्ध करने के पक्ष में जो युक्तियां दी थीं, उनका आमूलचूल समाधान करते हुए योगिराज कृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में जो प्रेरणा की है, वह इस संसार की रङ्गस्थली पर अवतीर्ण हुए प्रत्येक मनुष्य के लिए लागू होती है। जब अनेक विघ्न

बाधा रूपी शत्रुओं से घिरे हुए मनुष्य के सामने 'किं कर्म, किंमकर्मेति' यह प्रश्न आये तब भगवद् गीता के निम्नलिखित वाक्यों को अपना मार्ग-दर्शक बनाना चाहिये—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः
अनाशिनो ऽप्रमेयस्य तस्माद् युद्धस्व भारत।

यह शरीर अनित्य है और इस का स्थायी आत्मा नित्य है और अनश्वर है। हे भारत, अपने आप को अमर मान कर अपने कर्तव्य कर्म रूपी युद्ध में निर्भय हो कर कूद पड़। और यदि उस समय यह ध्यान आये कि मालूम नहीं कि हम सफल होंगे या हार जायेंगे तो भगवान् का निम्नलिखित आह्वान स्मरण करना चाहिये—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्,
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

तू असफल होने से क्यों डरता है। हे क्षत्रिय पुत्र, तेरे तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। यदि लड़ता हुआ मारा जायगा, तो स्वर्ग प्राप्त करेगा और यदि विजयी होगा तो पृथ्वी पर शासन करेगा। तुझे किसी तरह भी घाटा नहीं। कर्तव्य का सौदा ही ऐसा है। कर्तव्य पालन करते हुए मर जाने से स्वर्ग की और असफलता होने से ऐश्वर्य की प्राप्ति निश्चित है। सम्भव है तुझे पाप से भय हो। तुम समझते हो कि यदि तुम शत्रुओं से युद्ध करोगे तो तुम्हें पाप लगेगा। इस पर भगवान् कहते हैं—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ,
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।

हे अर्जुन सुख और दुःख को, और लाभ और हानि को, तथा सांसारिक जय और पराजय को समान भाव से देखते हुए पाप की शक्तियों से युद्ध करने में जूझ जाओ, तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा।

यह मनुष्य-जीवन एक लम्बा संग्राम है और यह संसार कुरुक्षेत्र की रणभूमि है। इस में प्रायः ऐसे समय आते हैं, जब परिस्थितियां मनुष्य को चौराहे पर लाकर खड़ा कर देती हैं। उसे एक ओर श्रेय का मार्ग दिखाई देता है तो दूसरी ओर प्रेय का। एक ओर सुख की फूलों से भरी राह दृष्टिगोचर होती है तो दूसरी ओर कठोर कर्तव्य की कण्टकाकीर्ण पगडण्डी। उस समय वह किंकर्तव्य-विमूढ़ हो कर खड़ा हो जाता है और सोचता है कि मैं किधर जाऊं। उस समय किं कर्तव्य विमूढ़ अर्जुन को भगवान् ने जो उपदेश दिया है, वह प्रत्येक व्यक्ति का मार्गदर्शक बन सकता है—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्
अनार्यजुष्ट मस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ, नैतत्त्वय्युपपद्यते,
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥

विघ्न बाधाओं से घबरा कर हथियार फेंक देना कायरता है, संग्राम से भागना आर्यजनों के योग्य नहीं, वह परलोक में दुःख का कारण होता है, और इस लोक में अपयश का। मनुष्य को चाहिये कि वीरता और दृढ़ता से अपने कर्तव्य के मार्ग में आने वाली बाधाओं से संग्राम करे। उस संग्राम का नाम ही कर्म है। कर्म स्वयं अपना पारितोषिक है, लाभ पर आंख रख कर कर्म करने वाला कभी सन्तुष्ट नहीं रह सकता, ज़रा सी हानि होने पर वह कर्तव्य-पथ से गिर जाता है। जो मनुष्य फल की आकांक्षा को त्याग कर धर्म समझ कर अपने कर्तव्य का पालन करता है, वही अन्त में विजयी होता है। भगवद् गीता में कहा है—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।

ऋषि दयानन्द की वेदार्थ में क्रान्ति

श्री रामनाथ वेदालङ्कार

प्रारंभिक युग की बात

वेद सृष्टि के आदि काल से आर्यजाति के लिये ज्ञान के स्रोत रहे हैं। एक युग था जब कि वेदरूपी सूर्य की प्रकाशमय किरणें साधक के अन्तःकरण में सीधी प्रवेश कर उसे आलोकित कर सकती थीं, उस का हृदय उस भाषा द्वारा ज्ञान को साक्षात् ग्रहण करने के योग्य था। वेद की भाषा ही उस युग की बोलचाल की भाषा थी। उस युग के मनुष्य वेदमन्त्रों में कहे ज्ञान को वैसी ही आसानी से हृदयंगम कर सकते थे जैसे आज का पाठक मैथिलीशरण गुप्त की किसी कविता के हृद्गत भाव को ग्रहण कर सकता है। उस समय इस बात को आवश्यकता नहीं थी कि वेदों पर बड़े बड़े भाष्य रचे जायें।

नया युग और वेदार्थों का ह्रास

किन्तु शनैः-शनैः समय ने पलटा खाया। मनुष्यों की बोलचाल की भाषा वैदिक भाषा से बहुत भिन्न हो गई। वेदों को गुरु-मुख से पढ़ने की आवश्यकता होने लगी। फिर एक समय ऐसा भी आया जब कि वेद का ज्ञान कुछ ही पण्डितों तक सीमित रह गया। सर्व-साधारण यज्ञों में उनका पाठ तो करते थे किन्तु उनके अर्थ से सर्वथा अनभिज्ञ रहते थे। यहां तक कि कर्मकाण्डी लोगों ने यह कहने तक का साहस किया कि वेदमन्त्रों का अर्थ कुछ होता ही नहीं। ये निरर्थक रचनायें हैं। यज्ञ में इन के पाठमात्र से स्वर्गादि फल विशेष की प्राप्ति हो जाती है। यास्ककृत निरुक्त में कौत्स नाम के एक ऐसे ही पण्डित का उल्लेख मिलता है। उसने युक्तियों से सिद्ध करने

वही सच्चा संन्यासी है और वही सच्चा योगी है जो फल की चिन्ता न कर के अपने कर्तव्य कर्म का पालन किए जाता है, उसे योगिराज कृष्ण ने कर्मयोगी की उपाधि से विभूषित किया है।

योगिराज कृष्ण ने कर्म भूमि से भागते हुए गाण्डीवधारी अर्जुन को प्रोत्साहित करने के लिए जो सन्देश दिया था, उसे मनुष्यमात्र के कल्याण के लिए व्यास मुनि ने भगवद् गीता के रूप में ग्रन्थित कर दिया। वह मनुष्यों के लिए अमर सन्देश है।

आज न केवल भारतवासियों के लिए अपितु मनुष्यमात्र के लिये सन्देश को सुनना अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य जाति के एक ओर प्रमाद की, कर्म-हीनता की, और साम्यवाद की खाई है तो दूसरी ओर भोग, की विषयाशक्ति की, वास्तविकता की क्षुधा है। योगिराज कृष्ण ने सब शास्त्रों का समन्वय कर के अर्जुन को कुए और खाई के बीच में से गुजरता हुआ कर्मयोग का जो सच्चा मार्ग दिखलाया था आज भी मनुष्य जाति के लिये वह उतना ही उपयोगी है जितना महाभारत के समय था। वह सन्देश यह है कि 'युद्धस्व विगत-ज्वरः' जीवन में सदा आगे बढ़ते चलो। मार्ग में जो विघ्न बाधायें आवें उन से घबरा कर रुको नहीं, उन पर हावी होने की चेष्टा करो परन्तु इस सारे कार्य में विगत-ज्वर बने रहो। मन में अभिमान या क्रोध न आने दो, और न कर्मफल में आसक्त हो। सब कर्म कर्तव्य समझ कर करो और उन का फल ईश्वरार्पण कर दो।

[अखिल भारतीय रेडियो से प्रसारित]



का प्रयत्न किया है कि वेद मन्त्र अनर्थक हैं।

वेदों पर भाष्य

जब ऐसा समय आ गया तब यह आवश्यकता हुई कि वेदों पर भाष्य रचे जायें। अपनी २ मति के अनुसार समय-समय पर तत्कालीन विद्वान् भाष्यों का प्रणयन करते रहे। वर्तमान में वेदों पर जो टीकाएं उपलब्ध होती हैं उन में यास्क का प्रयत्न सर्व प्रथम समझा जा सकता है। यास्क का निरुक्त यद्यपि आद्योपान्त वेद का भाष्य नहीं है तो भी वेदार्थ की दिशा दिखाने में परम सहायक है। प्राचीन आचार्यों को निघण्टु, वेदाङ्ग, वेद भाष्य आदि लिखने की क्यों आवश्यकता हुई इसे बताते हुए वह लिखता है—

'साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः, तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च।"

अर्थात् प्राचीन काल में जो ऋषि होते थे उन्हें वेद के अर्थ स्वयमेव हस्तामलकवत् भासित होते जाते थे, वे उन अर्थों को ऐसे व्यक्तियों को पढ़ा देते थे जो वेदार्थों का साक्षात् अनुभव करने योग्य नहीं होते थे। इस प्रकार गुरु-शिष्य-परम्परा द्वारा बहुत काल तक मौखिक ही वेदों का अध्ययन-अध्यापन होता रहा। किन्तु बाद में यह समझा गया कि यदि वेदों को लेखबद्ध कर दिया जाये तथा उनका अर्थ समझने के लिये निघण्टु, निरुक्त आदि वेदाङ्गों की रचना हो जाये तो भावी सन्तति को वेदार्थों का ज्ञान सुगमता से हो सकेगा। इसी लिये वैदिक कोषों, भाष्यों आदि की रचना हुई।

वेद-भाष्यकारों में सब से अधिक उल्लेखनीय भाष्यकार सायण हैं। इन्होंने चारों वेदों पर भाष्य लिखा है। ऐतिहासिकों के अनुसार इनका काल १४ वीं सदी है। ये दक्षिण भारत में विजय नगर साम्राज्य के संस्थापक हरिहर और बुक्क के मन्त्री रहे थे और उन्हीं के संरक्षण में इन्होंने अन्य पंडितों के सहयोग से अपना वेद-भाष्य तैयार किया। वेद भाष्यकार के रूप में इनकी महत्ता इसी लिये है क्योंकि एक मात्र ये ही भाष्यकर्ता हैं जिनका चारों वेदों पर भाष्य मिलता है। न केवल चारों वेदों पर ही, किन्तु उन से सम्बद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों और आरण्यकों पर भी इनका भाष्य है। परन्तु काल की दृष्टि से सब से पहले भाष्यकार ये नहीं हैं। इन से पहले भी माधवभट्ट, स्कन्द स्वामी, वेंकट-माधव, आनन्दतीर्थ, आत्मानन्द, भरत स्वामी आदि अनेक भाष्यकार हो चुके हैं।

पाश्चात्य विद्वानों का प्रयत्न

इधर जब से पाश्चात्य विद्वानों की संस्कृत के अध्ययन की ओर रुचि हुई है तब से उनका भी ध्यान वेदों की ओर आकृष्ट हुआ है। यूरोपियन तथा अमेरिकन संस्कृतज्ञों ने बड़े परिश्रम से हमारे वैदिक साहित्य का अध्ययन किया है तथा वैदिक ग्रन्थों के शुद्ध संस्करण भी प्रकाशित किये हैं। इस विषय में सब से पहला नाम प्रो० मैक्समूलर का है जिन्होंने सन् १८४६ से लेकर १८७५ तक अर्थात् लगभग छब्बीस वर्षों में ऋग्वेद का सायण भाष्य के साथ अत्यन्त विशुद्ध संस्करण ६ जिल्दों में निकाला। डा० वेबर ने यजुर्वेद की दोनों संहिताओं का, डा० बेनफ़ी ने सामवेद का तथा डा० राथ और ह्विटनी ने मिल कर अथर्व संहिता का प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किया। वैदिक ग्रन्थों के अनुवाद भी प्रचुरता के साथ किये गये। सब से पहले डा० विलसन ने ऋग्वेद का अनुवाद १८५० ई० में सायण-भाष्य के आधार पर करना आरम्भ किया, परन्तु इसे पूरा नहीं किया। इसके अनन्तर जर्मन भाषा में ऋग्वेद के दो अनुवाद निकले। सन् १८७६–७७ में डा० ग्रासमान ने दो जिल्दों में ऋग्वेद का पद्यात्मक अनुवाद भारतीय टीकाकारों की उपेक्षा

करके शुद्ध पाश्चात्य पद्धति पर किया। उसी समय डा० लुडविग ने गद्यात्मक अनुवाद छः जिल्दों में १८७६-८८ के बीच उपयोगी व्याख्या के साथ प्रकाशित किया। काशी के क्वीन्स कॉलेज के अध्यक्ष डा० ग्रिफिथ ने भी चारों वेदों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त डा० कीथ ने तैत्तिरीय संहिता का डा० विटनी और लैनमैन ने अथर्व संहिता का टिप्पणीयुत अनुवाद किया है।

इन भाष्यों के दोष

इस प्रकार प्राचीन भारतीय विद्वत्ता तथा वर्तमान यूरोपियन पांडित्य दोनों ने वेदार्थ की खोज के लिये अपनी ओर से भरसक प्रयत्न किया है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या इन भाष्यकारों ने हमारे हाथ में वेदार्थ की सही कुञ्जी दे दी है। इसका उत्तर हमें नकार में ही देना पड़ता है।

सायणादि के जो प्राचीन संस्कृत भाष्य हैं उन्हें पढ़ने से पाठक के मन में यही धारणा पैदा होती है कि वेदों में यज्ञ और कर्मकाण्ड के सिवा कुछ है ही नहीं। यज्ञों में भिन्न २ देवताओं के मन्त्र पढ़े जाते हैं और उन से प्रसन्न होकर देवता बदले में हमें अन्न, धन, सोना-चांदी, सन्तान, गाय, घोड़े, दीर्घायुष्य आदि प्रदान करते हैं। उनकी दृष्टि में केवल यही वेदों का प्रयोग है और यहीं तक उन का माहात्म्य परिमित है।

वेदार्थ की पाश्चात्य पद्धति तो और भी दोषयुक्त है। पाश्चात्य विद्वानों को तो वेद के एक-एक शब्द में इतिहास बोलता हुआ दिखाई देता है। भारतीय-साहित्य के विषय में भारतीय ऋषि क्या कहते हैं, भारतीय परम्परा क्या कहती है, इस सब को एक किनारे रख कर वे अपनी ही विचारधारा में निमग्न हैं। उदाहरणार्थ ऋग्वेद के 'शिश्नदेव' शब्द से वे यह परिणाम निकालते हैं कि प्राचीन काल में लिङ्ग पूजा चल पड़ी थी जब कि निरुक्तकार ने इस शब्द का सीधा अर्थ 'अब्रह्मचारी' ही किया है। यह तो एक उदाहरण है, ऐसे अनर्गल अर्थ पाश्चात्य विद्वानों ने प्रायः किये हैं। हमारा कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि पाश्चात्यों ने वेद के विषय में जो कुछ किया है वह सब निन्दनीय ही है। उन से हम बहुत कुछ सीख भी सकते हैं। किन्तु यहां तो सामान्यतः भाष्य-शैली का प्रश्न है।

ऋषि दयानन्द का प्रयत्न

इस प्रकार जब विविध भारतीय और पाश्चात्य विद्वान् अन्धेरे में टटोल कर वेदार्थ की खोज में लगे हुए हैं उस समय भारतीय गगन में एक दिव्य ज्योति चमकती है जिस से धुन्धले पड़े हुए वेद फिर प्रकाश में आ जाते हैं. वह दिव्य ज्योति है ऋषि दयानन्द। ऋषि दयानन्द ने लुप्त हुई वेदार्थ पद्धति का पुनरुद्धार किया है, ऋषि दयानन्द ने विस्मृत हुए वेदों के सच्चे गौरव को पुनः हमारे सम्मुख प्रकट किया है, ऋषि दयानन्द ने पूर्वजों द्वारा अज्ञानवश छोटे से चोबच्चे में डाल दिये गये वेदों को पुनः अजस्र स्राविणी निर्मल धारा के रूप में प्रवाहित कर दिया है. ऋषि दयानन्द ने वेदार्थ के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है।

ऋषि दयानन्द ने सन् १८७६ में भाष्य करना प्रारम्भ किया था। वे चारों वेदों का भाष्य नहीं कर पाये। उन का भाष्य ऋग्वेद तथा यजुर्वेद पर ही है। यजुर्वेद सम्पूर्ण का तथा ऋग्वेद के १० में से प्रथम ६ मण्डल और ७ वें के कुछ भाग का भाष्य उन्होंने किया है। किन्तु इतने से ही भाष्य की एक नवीन शैली उन्होंने हमारे सामने रख दी है।

ऋषि भाष्य की विशेषता—वैदिक देवों पर विचार

ऋषि दयानन्द की शैली की पहली विशेषता है

वैदिक देवों के स्वरूप पर विचार करना। वेदों से थोड़ा भी परिचय रखने वाले जानते हैं कि वेदों में अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, सोम, रुद्र, मरुत, बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, अश्विनौ आदि अनेक देवों की स्तुति है। इन देवों का स्वरूप क्या है, ये कौन हैं, इस विचार में प्राचीन भाष्यकर्ता नहीं पड़े। उनकी दृष्टि में तो बस ये स्वर्ग के देवता हैं जो हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होते हैं और यज्ञ में अपना हविर्भाग लेने के लिए उपस्थित होते हैं। उनके भाष्यों से यह भी भ्रान्ति होती है कि ये वेदक्त सब देव स्वतन्त्र हैं और वेद की दृष्टि में विश्व के सञ्चालक अनेक ईश्वर हैं। चतुर्वेद-भाष्यकार सायण ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि प्रकृति में आग, हवा, सूरज, नदी आदियों के अपने २ पृथक् देवता हैं जो इनका अधिष्ठातृत्व करते हैं। किन्तु ऋषि दयानन्द ने बताया कि वेदों के ये देव पृथक् २ स्वतन्त्र ईश्वर नहीं हैं, अपितु एक ही ईश्वर के गुण-कर्मानुसार विविध नाम हैं, जैसा कि वेद स्वयं कह रहा है—

> इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहु रथो
> दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
> एक सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं
> यमं मातरिश्वान माहुः ॥
>
> ऋग्० १. १६४. ४६

साथ ही ऋषि ने यह भी बताया कि ये देव ईश्वर तक ही सीमित नहीं हैं, इनके अपने दूसरे आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थ भी हैं। जैसे 'इन्द्र' का अर्थ जहां परमेश्वर है वहां इसके अन्य अर्थ विद्युत्, सूर्य, राजा या जीवात्मा भी हैं, 'अग्नि' का अर्थ जहां परमेश्वर है वहां इसके दूसरे अर्थ आग, यज्ञाग्नि, सेनापति, आत्मिक अग्नि आदि भी हैं; 'रुद्र' का अर्थ जहां परमेश्वर है वहां इसके दूसरे अर्थ वायु, प्राण, विद्युत्, चिकित्सक, सेनापति, राजा आदि भी हैं। इन देवों के प्राकृतिक अर्थ तो पुराने भाष्यकारों ने भी कहीं २ किये हैं, किन्तु ये देव मनुष्य भी हो सकते हैं यह ऋषि के ही दिमाग़ की सूझ थी. यद्यपि शतपथ आदि में इसके बीज पहले से ही विद्यमान हैं। ऋषि ने शतपथ के ही प्रमाण से उद्घोषित किया कि विद्वान् लोग ही देव हैं, "विद्वांसो वै देवाः"। इस प्रकार ऋषि ने वेदों को केवल कर्मकांड तक ही सीमित नहीं रखा किन्तु इसके आध्यात्मिक, राजनैतिक, याज्ञिक, प्राकृतिक आदि अन्य अर्थ भी हमारे सामने रखे और यह बतलाया कि मनुष्य जीवन के लिए उपयोगी सब सन्देश, प्रेरणायें और ज्ञान विज्ञान वेद में विद्यमान हैं।

दूसरी विशेषता—यौगिकवाद

ऋषि की शैली की दूसरी विशेषता है यौगिकवाद। ऋषि ने वेद का स्वाध्याय करने वालों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि वेदों के शब्द यौगिक या योगरूढ़ हैं। इस यौगिकता के सिद्धांत को प्राचीन भाष्यकारों ने स्वीकार न किया हो ऐसी बात नहीं है, किन्तु स्वीकार कर के भी वे इसका अपने भाष्यों में समुचित प्रयोग नहीं कर सके। अनेक शब्द ऐसे हैं जो वेदों में भी प्रयुक्त हुए हैं और लौकिक संस्कृत में भी। शब्द एक से होते हुए भी उनके अर्थों में आकाश-पाताल का अन्तर है। लौकिक संस्कृत में 'अश्व' शब्द केवल घोड़े के लिए आता है किन्तु वेद में बादल, अग्नि. सूर्य आदि को अश्व कहा गया है। लौकिक संस्कृत में घृत का अर्थ घी ही है, किन्तु वेद में उसके 'घी' के साथ 'पानी' और 'तेज' अर्थ भी हैं। लौकिक संस्कृत में 'समुद्र' का अर्थ सागरमात्र है, किन्तु निघण्टु के अनुसार वेद में यह 'सागर' तथा 'अन्तरिक्ष' दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। लौकिक संस्कृत में अद्रि, 'गिरि' आदि शब्द

केवल पर्वत के वाची हैं, किन्तु निघण्टु में ये मेघवाची नामों में पठित हैं। 'विष' शब्द का अर्थ लौकिक संस्कृत में 'ज़हर' है, किन्तु निरुक्त के अनुसार इसका अर्थ पानी है। 'पुरीष' शब्द लौकिक संस्कृत में 'मल' के लिए आता है, किन्तु वैदिक कोषानुसार इस का अर्थ भी पानी है। ये कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिन के विषय में किसी को भी विप्रतिपत्ति नहीं है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक शब्दों के अर्थ करते हुए यह आग्रह करना कि लौकिक संस्कृत में किसी शब्द का जो अर्थ है वही वेद में भी किया जाये दुराग्रह ही कहा जायेगा। वेद में किसी शब्द का अर्थ प्रकरणानुसार उसके यौगिक अर्थों में से कोई भी हो सकता है। जैसे 'अग्नि' शब्द का अर्थ लौकिक संस्कृत में तो 'आग' ही लिया जायेगा, किन्तु वेद में अग्निपदवाच्य कई वस्तुयें हो सकती हैं, क्योंकि 'अग्नि' का यौगिक अर्थ 'अग्रणी' या 'गतिमान्' है जो कई वस्तुओं में घटता है।

वेदों में अनेक शब्द ऐसे आते हैं जो ऐतिहासिक से प्रतीत होते हैं। विश्वामित्र, जमदग्नि, कश्यप, अत्रि, अङ्गिरा, कण्व, प्रस्कण्व, च्यवन आदि ऋषियों के नाम; पुरुरवा, नहुष, ययाति, यदु, तुर्वश, शन्तनु, इक्ष्वाकु आदि राजाओं के नाम; अयोध्या, गान्धार, मगध आदि देशों के नाम-वेदों में हैं। सायणादि भाष्यकार यौगिकवादी होते हुए भी ऐसे स्थलों में यौगिकवाद को मानो भूल ही गये हैं और प्रायः सर्वत्र उन्होंने पौराणिक इतिहास उद्धृत कर के ही सन्तोष कर लिया है। किन्तु शताब्दियों बाद ऋषि दयानन्द ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हुए जिन्होंने इन शब्दों के भी यौगिक अर्थ दिखाये और वेद के गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखा। ऋषि के बताये हुए इस यौगिकता के मार्ग को यदि हम अपने सामने रखे रहें तो पाश्चात्यों की वेदार्थ की इतिहास प्रधान शैली के आगे भी हमारी आंखें चौंधियायेंगी नहीं और हम धर्यपूर्वक सच्चे वेदार्थ की खोज करने में सफल हो सकेंगे।

कुछ अन्य विशेषतायें

इन विशेषताओं के अतिरिक्त ऋषि दयानन्द के भाष्य की कुछ अन्य विशेषतायें भी हैं। ऋषि ने अपने भाष्य से पहले एक विस्तृत भूमिका लिखी है जिसमें उन्होंने वेदों पर किये जाने वाले प्रहारों का तर्क से मुकाबला किया है। वेदानुयायी विद्वान् यह तक भूल चुके थे कि 'वेद' नाम किस का है, वे ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद की श्रेणी में ही रखते थे, "मन्त्रब्राह्मणयो र्वेद नामधेयम्"। ऋषि ने बताया कि वेद नाम की अधिकारी चार संहितायें ही हैं, ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। इसी प्रकार मूर्ति पूजा, मृतक श्राद्ध, स्त्री शूद्रों के लिए वेदाध्ययन का अधिकार न मानना आदि अनेक वेद विरुद्ध बातें वेदों के नाम से प्रचलित हुई २ थीं। ऋषि ने सच्चा वेदार्थ करके उन वेद विरुद्ध बातों का खण्डन किया, और ब्रह्मविद्या, सृष्टि विद्या, ज्योतिषविद्या, गणित विद्या, भौतिक विद्या, चिकित्सा शास्त्र, गार्हस्थ्य शास्त्र, राजनीति शास्त्र आदि विज्ञानों का मूल सप्रमाण वेद में दिखलाया।

ऋषि की भाष्य शैली की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने कहीं भी वेदमन्त्रों के अश्लील अर्थ नहीं किये हैं। सायण, महीधर आदि प्राचीन भाष्यकार इस दोष से मुक्त नहीं रह सके थे। सायण ने बहुत से स्थलों पर वेदार्थ को ऐसा कलुषित कर दिया है कि उन अर्थों को देखते हुए वेद को धर्मशास्त्र कहना भी लज्जास्पद मालूम होता है। महीधर उस से भी आगे बढ़ गया है और वह यजुर्वेद के २३ वें अध्याय की व्याख्या में मनघड़न्त अश्लील अर्थ करने में सीमा को ही पार कर गया है। किन्तु ऋषि ने पवित्र पुस्तक वेद की पवित्रता में कहीं भी कलंक नहीं लगने दिया है

मैं गा न सका

श्री सत्यव्रत सुगम

अपने मन की मनहर कविता
मैं गा न सका।

वीणा के जब तार मिले थे,
तब मुझको स्वर-ज्ञान न था।
जब पंख न थे, तब उड़ न सका,
यह माना, कुछ अनुमान न था।
अब हाय! विकल वीणा मेरी,
स्वर-ज्ञान हुआ, दो पंख मिले-
पर तेरे विस्तृत प्रांगण की,
कुछ थाह अभी मैं पा न सका।
मैं गा न सका।

तेरे स्वर की मधुरिम लहरी,
क्षण ही क्षण में है छा जाती।
मीठी मुसकान अरे तेरी,
मृदु कलिका को विकसा जाती।
मन करता है मेरा, तेरे,
स्वर में अपना स्वर भर डालूँ-
मेरे प्राणों में टीस भरी—
क्यों तेरे इस विस्तृत नभ में-
मैं अपनी मस्ती छा न सका।
मैं गा न सका।

धन्य धन्य तेरा प्रकाश,
तेरे प्रकाश की मधुर किरण।
तेरे दर आशा लिये बैठा,
होगा मुझ से कब मधुर-मिलन।
'पूजा करना मैं क्या जानूं'
फिर भी लाया कुछ भाव देव!
पर, बीत गई अर्चन-वेला
दो बोल प्रेम के गा न सका।
मैं गा न सका।

सागर में जाकर मिल जाते,
सरिता के दो प्यासे कगार।
मेरे अन्तर से बार बार,
यह दर्द भरी उठती पुकार।
मेरे से क्या क्या पाप हुए
जो दे न सके अपना दुलार
सदियों से मैंने यत्न किये-
पर, पास तुम्हारे आ न सका।
मैं गा न सका।

[कविवरेण्य श्री रवीन्द्र के एक गीत के आधार पर]

★

और पुराने भाष्य-कारों के कलङ्कित अर्थों का सप्रमाण खण्डन किया है।

ये ऋषि के भाष्य की कुछ असाधारण विशेषतायें हैं, वैसे तो पग २ पर उनके भाष्यों की नूतनता और विलक्षणता पाठकों को देखने को मिलती है। उन सब विलक्षणताओं को हम थोड़ी देर के लिए दृष्टि से ओझल भी कर दें तो भी केवल इन परिगणित विशेषताओं के आधार पर ही हम कह सकते हैं कि ऋषि ने वेदार्थ में एक नवीन युग का प्रवर्तन किया है, अद्भुत क्रान्ति पैदा कर दी है।



जो स्त्री है वही तो श्री है

श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

आज कितना सुन्दर समय है जब कि यहां प्राचीन शिक्षा-दीक्षा प्रथा की झलक देख रहे हैं। गुरु-शिष्य भावपूर्वक विद्याध्ययन की समाप्ति के पश्चात् उसी ढंग का दीक्षान्त समारोह देख रहे हैं। इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली का निर्देश इस युग में सब से पूर्व महर्षि स्वामी दयानन्द ने किया था। बात वही प्राचीन, किन्तु भारतवर्ष को नयी सी जँची। सब से पूर्व उपहास काल आया और लोगों ने इस प्रणाली की खिल्ली उड़ाने का प्रयत्न किया। इस प्रणालिका के संचालक तथा पोषक अपने अदम्य समुत्साह के साथ आगे बढ़ते ही गये। जब विरोधियों का उपहास काल निष्फल सिद्ध हुआ तब उन्होंने प्रकट तथा संगठित रूप में विरोध करना प्रारम्भ किया। पर इस विरोध ने इस प्रणालिका के पोषकों का उत्साह द्विगुणित किया और उस द्विगुण उत्साह से वे और आगे बढ़े। इस के पश्चात् सहानुभूति काल आया और लोग केवल वाचिक सहानुभूति ही नहीं, अपितु तन-मन-धन और जन से सहायक हुए। जब कोई व्यक्ति, समाज, समुदाय, संस्था, देश, राष्ट्र आगे बढ़ने लगते हैं, तब उनको उपहास, विरोध तथा सहानुभूति इन तीनों कालों में से निकलना पड़ता है। आज इस प्रणाली की विजय दुन्दुभि बज रही है। आज लोग इस शिक्षा-प्रणाली का अनुकरण करने के लिये तैयार हैं। अथवा यह भी कह सकते हैं कि विधाता अनुकूल रहे तो असम्भव भी सम्भव हो सकता है। हो सकता है क्या, 'असम्भव' का अ जाता रहता है अर्थात् सम्भव हो जाता है।

स्वप्नेऽपि यदसंभाव्यं यत्र भग्ना मनोरथाः।
हेलया तद्विदधतो, नासाध्यं विद्यते विधेः॥

(राजतरङ्गिणी)

ईश्वर कृपा हो तो सभी प्रकार के साधन जुट जाते हैं, सभी काम बन जाते हैं। किन्तु सब साधन सामग्री विद्यमान हो और ईश्वर की कृपा न हो तो सब कुछ विफल हो जाता है। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा भी है कि किसी कार्य की सिद्धि के लिए अधिष्ठान, कर्ता, करण अर्थात् साधन-सामग्री, विविध प्रयत्न और दैव इन पांचों की आवश्यकता रहती है। इस लिए जो यह समझ बैठता है कि मैं ही कर्ता हूँ, यह उसकी नासमझी है।

अधिष्ठानं तथा कर्ता, करणं च पृथक्विधम्।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्॥
तत्रैवं सति कर्तारम्, आत्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृत बुद्धित्वान्, न स पश्यति दुर्मतिः॥

मेरी समझ में ये पांचों वस्तुएँ इस गुरुकुल के लिये अनुकूल पड़ीं, इस लिए सफलता मिली।

हमारे वेद, पुराण, इतिहास तथा स्मृति ग्रन्थों में स्त्रियों को सदा सम्मानपूर्वक स्मरण किया गया है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः॥

(मनुः)

जिस घर में स्त्रियों की यथारीति सत्कार पूजा होती रहती है, वहां देवताओं का वास रहता है। आजकल स्त्रियों तथा पुरुषों के अधिकार का प्रश्न उठा कर व्यर्थ ही अशान्ति की जा रही है। स्त्री तथा पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। इस लिए अधिकार का प्रश्न उठाना ही अनुचित है। स्त्रियें विद्या-बुद्धि, धर्मभाव आदि में कभी पुरुषों से पीछे नहीं रहीं। वेद मन्त्रों के ऋषियों पर दृष्टि डालने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अन्य ऋषियों की भांति स्त्रियें भी मन्त्रद्रष्ट्री हुई हैं। संसार में आर्य जाति को छोड़ कर किस अन्य जाति ने स्त्रियों को इतना उच्च अधिकार दिया है? भगवान् कृष्ण ने गीता में—

कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां, स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमाः।

मैं स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा हूँ, यह बतलाकर स्त्रियों को ऐसे उच्च आसन पर बैठा दिया है कि जहां कोई आज तक बैठा ही नहीं। जो स्त्री है वहाँ तो श्री है। जहां तक मेरा संस्कृत साहित्य तथा कोषों का अध्ययन है, मैं कह सकता हूँ कि जितने अच्छे से अच्छे भाव वाले शब्द हैं, उनमें स्त्रीवाचक शब्द ही अधिक हैं। पुरुषों के गुणों में कठोरता का आवास रहता है, स्त्रियों के गुणों में सरसता, कोमलता, सुन्दरता का प्रवेश रहता है। जो स्त्रियें अधिकार का प्रश्न उठा कर पुरुषों जैसा बनना चाहती हैं, वे अपनी नैसर्गिक सभ्यता को खो बैठेंगी। आर्यों ने अनन्तकाल से—न जाने कब से—कदाचित् सृष्टि जब से बनी तब से ही, स्त्रियों के प्रति सम्मान का भाव रखा है। इनकी प्रगति में कभी भी किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली। बीच के अर्वाचीन अन्धकार युग की बात को छोड़ दीजिए, ऐसे तो उलट-फेर संसार के सभी राष्ट्रों में होते चले आए हैं—

काँश्चिदुत्थापयन् नूनं, काँश्चिदन्याँश्चपातयन्।
वेधा विदधत्येव कन्दूक क्रीडितभ्रमम् ॥
(राजतरङ्गिणी)

विधाता प्राणियों के साथ गेंद का सा खेल खेलता रहता है। जैसे गेंद पटकने पर ऊपर जाती है, कभी नीचे आती है, फिर उठती है, इसी प्रकार प्राणियों की जीवन घटना है। वे कभी उभरते हैं, कभी गिरते हैं, कभी फिर उठते हैं। महात्मा विदुर कहते हैं—

पुनर्नरो याचति, याच्यते च।
पुनर्नरो जायते म्रियते च ॥
लाभालाभौ मरणं जीवितञ्च।
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति।
तस्माद्धीरो न हृषेन्न शोचेत् ॥

मनुष्य कभी किसी के सन्मुख हाथ फैलाता है, और कभी ऐसा समय आता है कि दूसरे उसके सामने हाथ फैलाते हैं। आज मरता है तो कल फिर जन्म लेता है, आज लाभ है तो कल घाटे का सौदा रहता है। बारी-बारी से सब को सब कुछ देखना पड़ता है। इस लिए धीर पुरुष न बहुत हर्ष करते हैं, न किसी वस्तु का शोक करते हैं।

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा, चक्रनेमिक्रमेण ॥
(कालिदास)

जल के रहट की तरह सब की ऊपर-नीचे दशा होती रहती है। भारतवर्ष ही इस नियम का अपवाद क्यों बना रहता। इसने भी पराधीनता, हीनता के दृश्य देखे और अब इसका ग्रहण छूटकर पुनः स्वतन्त्र हो गया है। इस स्वतन्त्रता की प्राप्ति में देवियों का भी बड़ा हाथ रहा है। योगवासिष्ठ कहता है कि जैसे एक पंख से पक्षी उड़ नहीं सकता, गाड़ी एक पहिये से चल नहीं सकती, इसी प्रकार यह संसार-शकट स्त्री पुरुष के परस्पर सहयोग के बिना चल नहीं सकता।

आप यथाविधि इस छोटे से विश्वविद्यालय में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके बाहर संसार रूपी बड़े विश्वविद्यालय में जा रही हो। अब तक आप के परीक्षकों की सख्या दस पांच हो रहती रही है, पर अब समस्त संसार ही आपका परीक्षक हो जायगा। बाहर जाकर देखोगी तो एक नया संसार बन गया है। यह विश्वामित्र का नया संसार है, जिसमें सशरीर ही सीधे स्वर्ग जाने का प्रयत्न किया जा रहा है। एक ओर देखोगी कि विज्ञान-शून्य धर्म सांस ले रहा है तो दूसरी ओर धर्म शून्य विज्ञान सृष्टि का संहार करने की चिन्ता में है। समस्त विज्ञानवादी इस चिन्ता में, इसी प्रयत्न में हैं कि स्वल्प से स्वल्प समय में अधिक से अधिक प्राणियों का संहार कैसे किया जाय। कोरे भौतिकवाद का नग्न नृत्य हो रहा है और पांच सहस्र वर्ष पश्चात् भी भगवान् कृष्ण के वचनों का ध्यान आ रहा है कि यत्र तत्र सर्वत्र आसुरी संपद का साम्राज्य है। नवीन

शिक्षा में लालित-पालित-पोषित-परिवर्द्धित भारतीय उसी की ओर दौड़ रहे हैं, अपनी दैवी संपद् को भुला बैठे हैं। ईश्वर की कृपा हुई. हमारे पुण्य शेष थे, दयानन्द आये. तिलक आये और आये गांधी, जिनकी त्याग तपस्या से भारतवर्ष आसुरी संपद द्वारा ग्रस्त होने से बाल बाल बच गया।

सावधान ! बाहर जाकर इस आसुरी सम्पद् के जाल में मत फँसना, इसके सम्पर्क से बचे रहना। भारतीय दैवी संपद् का सदैव ध्यान रखना। सात स्वों की रक्षा करने में सन्नद्ध रहना। (१) स्वधर्म, (२) स्वराष्ट्र, (३) स्वराज्य, (४) स्ववेष, स्वभूषा, (५) स्वाभिमान, (६) स्वशिक्षा-स्वदीक्षा और (७) स्वसंस्कृति। अपने गुरुजनों के प्रति भक्तिभाव बनाए रखना। अपने मातृ-कुल के प्रति कृतज्ञ रहना। बाहर जाकर ऐसा रहना, ऐसे बर्तना जिससे आपके कारण किसी को किसी प्रकार का क्लेश न हो। आपके किसी कृत्य से स्वय आपका तथा आपकी मातृसंस्था का किसी प्रकार से किसी प्रकार का भी उपहास न हो। संसार में जाकर किस प्रकार बर्तना, यह भगवान् कृष्ण तथा भगवान् व्यास ने बतलाया है—

अनभिद्रोहेण भूतानां, अल्पद्रोहेण वा पुनः।

अर्थात् प्रत्येक व्यवहार में ऐसे दक्ष रहो कि आप के कारण पहले तो किसी को किसी प्रकार का क्लेश न हो, यदि असम्भव हो तो ऐसे ढंग से बर्तो कि आपके व्यवहार के कारण अन्यों को न्यूनतम से न्यूनतम क्लेश पहुँचे।

स्मरण रहे यह पुण्यभूमि भारतभूमि धर्मभूमि है। इस में धर्म तत्वों को भुला कर काम नहीं चल सकता। भारतवर्ष के अभ्युदय तथा निःश्रेयस के तत्व का सदैव मनन करती रहो। प्राचीन समय में देवियों में कई बड़ी २ ब्रह्मवादिनिएं हुईं, जो स्पष्ट रूप में कहती थीं कि—

साहं तस्मिन् कुले जाता, भर्तर्यसति मद्विधे।
विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम्॥

मैं मोक्ष धर्म का अभ्यास कर रही हूँ इत्यादि। हमारे धर्म के चार मुख्य भाग हैं, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष धर्मानुसार ही अर्थ की प्राप्ति, धर्मानुसार ही विविध इच्छाओं की पूर्ति, धर्म करते २ ही मोक्षप्राप्ति यह निदर्शन है। इस लिये महाभारत के पुण्य पवित्र शब्दों में मेरा यही आशीर्वाद है कि—

धर्मे वो धीयतां बुद्धिः, मनो वा महदस्तु च

आपकी बुद्धि सदा धर्म में रहे और आपका मन उदार रहे, क्योंकि

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानाम्,
स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।

धर्म इहलोक में साथ देने वाला है ही, किन्तु परलोक में भी बन्धु है।

आपकी आचार्या ने आपको आर्योचित कर्तव्य मार्ग का निर्देश किया ही है। उन आदेशों का, निर्देशों का, अनुशासनों का पालन करना भी आप का धर्म है।

हमारे इन आर्यों की संस्थाओं में से प्रति वर्ष कई स्नातकों तथा स्नातिकाओं में ऐसे-ऐसे स्नातक तथा स्नातिकायें निकलती रहनी चाहियें, जो महर्षि के उद्देश्य की पूर्ति के लिए दृढ संकल्प होकर जीवन ही इस कार्य के लिए अर्पण कर देवें, तभी हम और हमारा समाज संसार में कुछ कर सकेगा।

मैं यह देख रहा हूँ और अनुभव कर रहा हूँ कि अन्य धर्मों के संस्थापकों को जिस प्रकार का शिष्य-समुदाय मिला, उस प्रकार का भक्त तथा शक्त शिष्य-समुदाय स्वामी दयानन्द को नहीं मिला। इस त्रुटि की पूर्ति हो जाय तो फिर आर्य-समाज किसी प्रकार भी घाटे में नहीं रह सकता। गुरुकुल के स्नातक-स्नातिकाओं का परम अथवा प्रथम कर्तव्य है कि स्वामी

दयानन्द की जगाई हुई ज्योति की सर्वात्मना रक्षा करते रहें। हमारे गुरुकुल एक प्रकार से दयानन्द के ही दीपक हैं। लोग इन दीपकों से अपने २ दीपक जला कर अपना काम चला रहे है, और घर में अपना दीपक रहते भी हम अन्धकार में मारे २ फिर रहे हैं। यह सब अपनी ही अनास्था, अश्रद्धा का फल है।

ब्रह्मचारी में बड़ी शक्ति होती है, वह क्या कुछ नहीं कर सकता ? स्वामी दयानन्द ही इसका निदर्शन है। वेद भगवान् कहते हैं—

तानि कल्पत् ब्रह्मचारी सलिलस्य-
पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे ।
स स्नातो, बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यामधिरोचते ।।

ब्रह्मचारी की जल, स्थल, नभ में अव्याहत गति रहती है। वह अद्भुत कार्य कर सकता है जिसको देख कर संसार चकित रह जाता है। संसार ब्रह्मचारी से प्यार करता है। इस समय संसार बहुत दुःखी है। एक प्रकार से 'जल बिच मीन प्यासी' का दृष्टान्त बन रहा है। संसार की आध्यात्मिकता ही नष्ट हो रही है फिर सुख कहां से मिले। हम—

अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः
अन्धों के पीछे अन्धों की तरह चल रहे हैं।

पुरुष समाज इस प्रकार अन्धानुकरण कर रहा है और अब देखा देखी महिला समाज भी उधर ही जा रहा है। यह भारत का दुर्दैव है। मैं तो मानता हूं कि भारतवर्ष की सहस्त्रों वर्ष की पराधीनता में भारतीय धर्म-कर्म की किसी ने रक्षा की तो वह देवियों ने ही की। किन्तु आजकल उनकी अटल श्रद्धा का बांध टूट गया और उनकी विपरीत प्रवृत्ति के कारण अब सन्देह होने लगा है कि कहीं भारतवर्ष को अधिक दुर्दिन तो नहीं देखने पड़ेंगे। उर्दू के कवि सम्राट् अकबर ने क्या ही अच्छा कहा है—

बातें तो बन रही है, पर घर बिगड़ रहे है।

स्वार्थ की आधार-शिला पर खड़ी हुई भौतिकवाद की भीत्ति के कारण हम पार की बात जान नहीं सकते हैं, मनुष्य को सचा मनुष्य बनाने की किसी को चिन्ता नहीं है। ऐसे घोर समय में प्राचीन शिक्षा-दीक्षा में पालित पोषितों का जो कर्तव्य होना चाहिये, वही कीजिए संक्षेप से मैं इतना ही कहना चाहता हूं। शमोऽम्।

[कन्या गुरुकुल देहरादून के २७ वें वार्षिकोत्सव पर ११-४-५२ को दिये गये दीक्षान्त भाषण का सारांश।]



लंका की एक स्मृति

श्री चन्द्रमणि विद्यालंकार

पुराने कागज़ों को देखने पर मेरी डायरी के पन्ने में लंका की एक विशिष्ट स्मृति की ओर ध्यान गया। उस समय लंका भारत के साथ था, परन्तु अब एक विदेश बन गया है। दोनों देशों की संस्कृति अब भी एक है। हो सकता है कभी गुरुकुल का, वहां की शिक्षा संस्थाओं व वहां के निवासियों के साथ, वास्ता पड़ जावे, अतः उस सम्बन्ध को जोड़ने के लिये लंका की पुरानी स्मृति का यहां उल्लेख किया जाता है।

सन् १९१४ को स्नातक होते ही मैं गुरुकुल मुलतान के मुख्याधिष्ठाता पद पर नियुक्त हो कर वहां चला गया और कुछ मास रह कर उसकी स्थिति को सम्भाला। मै क्योंकि एक इतिहास का विद्यार्थी था, और उसी विषय पर एक निबन्ध लिख कर प्रतिष्ठित स्नातक भी बना था, पुनः भारतीय बौद्धकालीन इतिहास के अन्वेषण के लिए पाली--अध्ययन की उत्कट इच्छा थी, उन दिनो भारत में पाली-अध्ययन का कहीं प्रबन्ध नहीं था, इसलिये जनवरी १९१५ के प्रारम्भ में गुरुकुल की ओर से कोलम्बो पाली पढ़ने के लिये भेजा गया। वहां कोटहेन स्ट्रीट के परमानन्द विहार में पढ़ने का प्रबन्ध हुआ।

शायद पूर्वजन्म का कोई सम्बन्ध था कि प्रथम मिलन पर ही वहां के वयोवृद्ध आचार्य का मेरे प्रति असीम प्रेम उमड़ पड़ा और मैं निहाल हो गया। उनकी उम्र ८० के करीब थी, और कुछ अस्वस्थ भी रहते थे। शुभ नाम पूज्यपाद महास्थविर श्री 'धम्मक्खन्ध' था। लंका द्वीप के चार उत्तम कोटि के मुख्यतम बौद्ध गुरुओं में से एक ही थे। इन चारों की सम्मति पर ही लंका का बौद्ध जगत् चलता था। पाली भाषा और बौद्ध साहित्य के तो ये माने हुये अद्वितीय प्रकांड पण्डित थे ही। अस्वस्थता के कारण ये पढ़ाने में असमर्थ थे, परन्तु फिर भी उन्होंने मुझे अपना ही शिष्य बना कर अत्यन्त सम्मानास्पद गौरव प्रदान किया, जिस से मेरी कठिनाइयां अपने आप दूर हो गईं और सर्वत्र मेरा सम्मान बढ़ा।

विधि पूर्वक पाली-अध्यापन का कार्य प्रारम्भ कर के फिर उन्होंने अपने उत्तराधिकारी योग्यतम शिष्य महास्थविर श्री पूज्य कल्याणतिस्स के सुपुर्द किया और उन्हें कहा कि वे मुझे अन्य सब काम छोड़ कर भी नियमपूर्वक उन के स्थान पर पढ़ावें। तदनुसार उन्होंने मुझे नित्यप्रति चार घण्टे पढ़ाने का कार्य-क्रम चलाया।

४ फरवरी १९१५ की रात को अचानक परमानन्द विहार के आचार्य पूज्यपाद श्री धम्मक्खन्ध स्वर्गलोक सिधार गये। मैं वहां से डेढ़ मील की दूरी पर लंका की राज्य कौंसिल के प्रतिष्ठित मेम्बर श्री रामनाथन के अतिथि भवन में रहा करता था। अन्त समय में उन्होंने मुझे बहुत स्मरण किया, परन्तु मैं सौभाग्य लाभ न कर सका। उन्होंने अन्तिम सन्देश देते हुए महास्थविरों से कहा कि उन के अन्त्येष्टि कर्म में मुझे वही अधिकार प्राप्त हो जो कि महास्थविरों को प्राप्त है। जो भिक्खु नहीं है, उसे इस अधिकार का मिलना बिलकुल एक अनोखी बात थी, इसीलिए क्या बौद्ध गृहस्थ और क्या भिक्खु सब का ध्यान मेरी ओर खिंचा कि यह कौन पञ्जाबी पण्डित है जिसे कि यह अभूतपूर्व अधिकार मिला है। मुझे कहा गया कि इन स्वर्गगामी बौद्ध गुरु के सम्बन्ध में श्मशान भूमि में कुछ कहना पड़ेगा। यह महाप्रस्थान यात्रा मील से ऊपर लम्बी थी। मृत्यु के तीसरे दिन यह यात्रा हुई थी, लंका भर के प्रमुख भिक्षु, और गृहस्थ

पहुँच गये थे। सारा मार्ग बेहद सजाया हुआ था और सुगन्धि से भरपूर था। उपस्थिति दो लाख से कम न थी, अधिक ही होगी।

श्मशान भूमि में अपना हृदयगत भाव अभिव्यक्त करने के लिये संस्कृत में कुछ श्लोक बना लिए थे, जो कि हजारों की संख्या में सिंहल लिपि में छपवा कर उस समय बांटे गए, और लंका के अनेक समाचार-पत्रों में मोटे मोटे शीर्षकों के साथ उसे स्थान दिया गया। इन पत्रकारों ने ही लंका में मुझे 'पञ्जाबी पण्डित' कह कर प्रसिद्ध किया। वे श्लोक एक स्मृति विषय हैं, जो कि इस प्रकार हैं—

यो धर्मसंघपरिषत्सदनस्य चारोः
स्तम्भः प्रकृष्टतरतां गत आप्रायाय ।
आसीदिवैक इह सौगतधर्मधुर्यो
विद्याप्रसारणरतो यततां वरिष्ठः ॥ १ ॥

हा हाऽधुना नु गतः खलु धर्मकांडः,
आचार्यवर्यपदवीमधिरोहमाणः ।
सर्वान्विहाय शतसंघजनान् स्वशिष्यान्
सेवारतानमलधर्मपिपासुकांश्च ॥ २ ॥

घोरातिघोरतरदुःखमयं हि विश्वं
तुच्छातितुच्छतरसारमिदं निरीक्ष्य ।
आनन्दसागरमयं परमात्मलोकं
यातो नु किं विमलजीवनयापनाय ॥ ३ ॥

आनन्दपश्चिमगते परमे विहारे
मुख्येषु मुख्यतमतां गत आर्यवर्यः ।
धर्मामृतानि वचनानि पिबन्स एव
प्राणान् विहाय मरुतां सदनं प्रयातः ॥ ४ ॥

लंकापुरीमुदधिवेष्ठित चारुशोभां
प्रायेण बौद्धमतवादिनिवासभूमिं ।
तेजोमयो ऽमलयशाश्च सुभासमानः
अस्तंगतः किमिह सौगतधर्मसूर्यः ॥ ५ ॥

हे भिक्षुनाथवर ! सौगतधर्ममूर्ते !
मान्यातिमान्यवर ! साधुविहारशील !
क्व तान् गतः पुरनिवासिजनान्विहाय
सेवापरानिह तु विह्वलमानसांश्च ॥ ६ ॥

कारुण्यहीन विकरालकरालकाल !
कार्पण्यपापपरिपूरितकाय जाल्म !
यत्यत्पयं विमलसौगतधर्मभानुं
तेषां त्वया हि हरता वद किं हृतं न ॥ ७ ॥

दयास्वामिन्स्वामिन् प्रभुवर कृपालो भवपते
नरेन्द्राणां राजन् विमलपरमात्मन् नरपते
अशोका मानस्का खलु भवतु लंकाजनगणाः
सुचित्तः शान्तात्मा यतियतिवरो यातु सुगतिं ॥ ८ ॥



[पृष्ठ सोलह का शेष]

६ राजा, राष्ट्र व व्यक्ति के बुद्धिपूर्वक किये हुए कार्य की ही रक्षा करे। राग, द्वेष व स्वार्थ आदि किसी भावना के वश प्रेरित हो कर किये कार्यों की रक्षा न करे।

७ ब्रह्मणस्पति—अर्थ मन्त्री, अन्न मन्त्री, सेना मन्त्री, शिक्षा मन्त्री तथा श्रम मन्त्री के लिए एक ही शब्द का प्रयोग हुआ है।

अर्थ—ब्रह्म=अन्न, धन, बल, बुद्धि स्तुति। सुवृक्तिः= आदान=प्रबन्ध, वृक आदाने। (धियः आविष्टं) कार्यों की रक्षा करो (पुरंधीः जिगृतम्) नगर धारक संस्थाओं का सिंचन करो (गृ सेचने)। (वनुषां) नेताओं के (अर्यः) प्रगतिशील, ऋगतौ (अरातीः) शत्रुओं को (जजस्तम्) नाश कर दो।



जन सेवक वनुः

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मे इन्द्राय वज्रिणे अकारि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामराती ॥

ऋ० ७-९७-९ ।

ऋषिः वसिष्ठः । देवता इन्द्रा ब्रह्मणस्पती । छन्दः त्रिष्टुप् ।

मैं वसिष्ठ हूं। अपनी इन्द्रियों व वृत्तियों को वश में कर चुका हूं। मैंने दूसरों के वास का प्रबन्ध किया है। दुर्गुणों का संहार किया है।

आप राष्ट्र में ऐश्वर्यशाली हैं। दुष्टों का दमन करने के लिए वज्र धारण करते हैं। अन्न, धन, बुद्धि, स्तुति और बल के रक्षक तथा वितरक, आप के सहयोगी हैं। अपने सहयोगियों के लिए आपने ब्रह्म का प्रबन्ध किया है, ताकि सारे राष्ट्र में वितरण ठीक प्रकार होवे।

इस तरह आप का कोष सब तरह से पूर्ण है। आप के प्रबन्ध में किसी चीज की कमी नहीं। इस लिए अब आप अपने सहयोगियों सहित हमारे बुद्धि-पूर्वक किये हुए कार्यों की रक्षा करें तथा उन में प्रगति देवें। नगर को धारण करने वाली प्रवृत्तियों व संस्थाओं का सिंचन करें। वे कभी धन या जन की कमी न अनुभव करें। इस के साथ समाज की सेवा करने वाले (वनुः) नेताओं के प्रगतिशील शत्रुओं का नाश कर दें, क्योंकि जो शत्रु प्रगतिशील नहीं हैं, वे तो स्वयं ही नष्ट हो जायेंगे।

परिणाम

१ इन्द्र=परमात्मा व राजा से प्रार्थना करने का अधिकारी बनने के लिए वसिष्ठ बनना आवश्यक है अर्थात् वह (क) जितेन्द्रिय हो. (ख) परोपकारी हो (ग) बुराई से हमेशा लड़ता रहता हो।

२ चारों वर्ण अर्थात् सम्पूर्ण समाज राजा के सहयोगी हैं। उन के सहयोग से ही वह उन का प्रबन्ध करता है। अन्न धन (वैश्य) बल (क्षत्रिय) बुद्धि स्तुति (ब्राह्मण) के रक्षक व वितरक।

३ राजा को अन्न, धन इत्यादि के साथ दण्ड का प्रबन्ध भी बहुत आवश्यक है। अन्यथा व्यवस्था नहीं रह सकती।

४ नेता (वनुः) वही सच्चा है जो—

[क] जनता के लिए बोलने वाला हो, जनता के कष्टों की आवाज़ अधिकारियों तक पहुँचावे। (वन शब्दे)।

[ख] जनता की अच्छी प्रकार सेवा करने वाला, न कि उन की भावनाओं को उभाड़ कर अपना महत्व बढ़ाने वाला। (वण सम्भक्तौ-भज सेवायाम्)।

[ग] जनता के लिए मांगने वाला, अर्थात् जनता के अधिकारों को मांगने वाला तथा उस की सेवा के लिए भीख मांगने में भी न हिचकने वाला। (वनु याचने)।

[घ] जनता को प्रेरणा देने वाला—नया रास्ता दिखाने वाला; कर्तव्य विमूढ़ अवस्था में निश्चित मार्ग दिखाने वाला। (वण प्रेरणे)।

[ङ] जनता की बुराइयों की ओर उस से पहिले अपनी बुराइयों, कमियों की हिंसा करने वाला। (वन हिंसायाम्)।

५ राजा का कर्तव्य है कि पुरन्धी संस्थाओं का तो सिंचन करे लेकिन वैयक्तिक स्वार्थ को सिद्ध करने वाली प्रवृत्तियों व संस्थाओं का सिंचन न होने देवे।

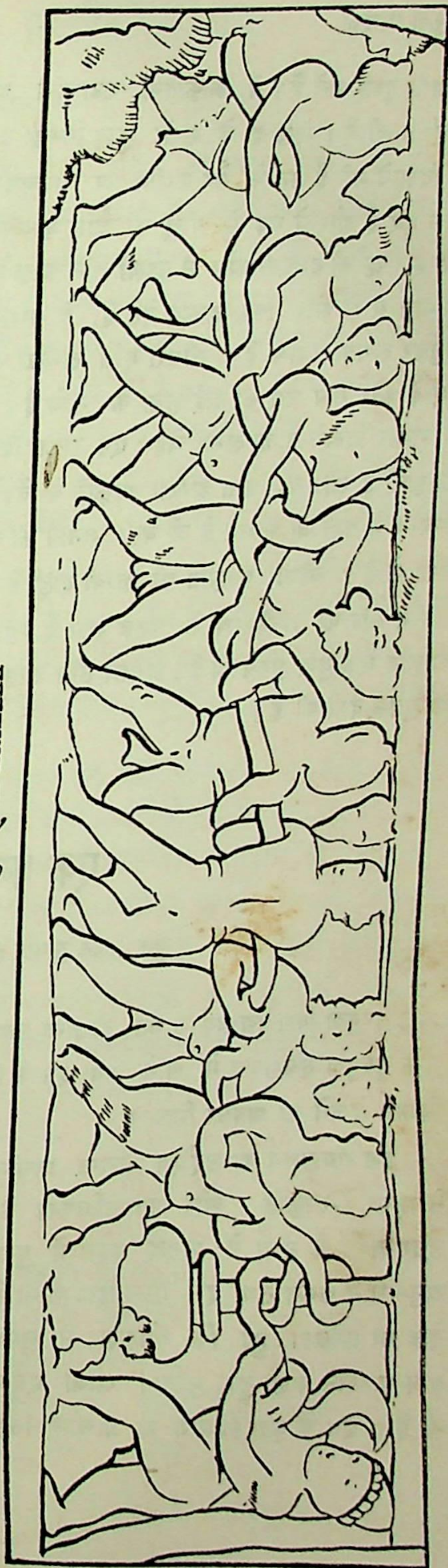
[शेष पन्द्रह पृष्ठ पर]

गुरुकुल संग्रहालय की समुद्रमन्थन की एक मूर्ति

श्री वासुदेव शरण अग्रवाल एम. ए., पी. एच. डी.

समुद्र मन्थन की यह सुन्दर सरदल हरिद्वार से १६ मील दक्षिण पश्चिम में झबरहेड़ी ग्राम ज़िला सहारनपुर से उपलब्ध हुई है। दो वर्ष पहले जब इस गांव के तालाब का पानी आषाढ़ महीने में बिल्कुल सूख गया तो गांव के लड़कों ने कौतुकवश इसे तालाब से निकाला था। अब यह मूर्ति गुरुकुल कांगड़ी संग्रहालय हरिद्वार में सुरक्षित है। यह ऐसी कला शैली में शुभ वृद्धि करती है जिस शैली के उत्तर भारतीय मूर्ति कला में थोड़े से ही नमूने मिलते हैं। यह मटियाले रंग के बलुए पत्थर पर उत्कीर्ण है जिस की पूरी लम्बाई अढ़ाई फुट, चौड़ाई तथा मोटाई ११ इञ्च है। जितने अंश में दृश्य उकेरा गया है उस की लम्बाई, चौड़ाई २१×५ इञ्च है। समूचा दृश्य बहुत ही सजीव है और आकृतियों का संपुंजन बहुत पटुता और सफलता के साथ किया गया है। इस मूर्ति के प्रत्येक अंश में समुद्र मन्थन के अवसर के उपयुक्त अनन्त शक्ति और उस के प्रयोग को सुस्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया गया है। यह बात विशेषतः मूर्ति के दायें पार्श्व की आकृतियों के आसनों और मुद्राओं से स्पष्ट है।

दृश्य में अंकित विषय देवताओं और असुरों द्वारा किया गया समुद्र मन्थन है। इस में उन्हों ने वासुकि को मन्थन रज्जु बनाया था और मदराचल पर्वत को मन्थन दंड, जो कूर्म पृष्ठ पर टिका हुआ था। पौराणिक कथा के अनुसार देवताओं को कनिष्ठ स्थान दिया गया था और उन्होंने सांप के पूंछ वाले पिछले हिस्से को पकड़ा था, क्योंकि असुरों ने ज्येष्ठ होने के कारण सांप के शिरोभाग को थाम लिया था। इस चित्र में हम आठ देव मूर्तियों को सांप का लम्बा शरीर पकड़े हुए और उसे अपनी ओर खींचने के लिये शक्ति



समुद्रमन्थन का रेखाचित्र

लगाता हुआ पाते हैं। ये आकृतियां जटाधारी और दाढ़ी वाली हैं। पहले दो के शरीर कुछ तिरछी दशा में दिखाये गये हैं उन के पैर ज़मीन पर मजबूती से टिके हुए हैं और वे धड़ से पीछे की ओर ज़ोर लगा रहे हैं। पट्ट की दाहिनी ओर से पहली तीन आकृतियों के बीच में दो और सिर दिखाई देते हैं, ये सम्भवतः अनुचर अथवा दर्शक हैं। तीसरी मूर्ति लंगोटी पहने हुए है और सांप उस की दाईं भुजा के नीचे है। इस का गंभीर दिखने वाला लम्बा चेहरा एक उत्कृष्ट शिल्पी की कृति है और यही बात अगली आकृति के चेहरे के सम्बन्ध में कही जा सकती है जो बड़ी तनाव की दशा दशा में है। चौथी आकृति की लम्बी दाढ़ी है और उस ने सांप को दोनों हाथों से पकड़ रखा है। पांचवीं आकृति एक युवा पुरुष की है। अगली तीन आकृतियां भी युवक देवों की हैं।

मूर्ति के बांयें सिरे पर केवल एक मूर्ति असुर की है। उस ने सांप का फण पकड़ा हुआ है। यह तिकोनी कुलह टोपी पहने हुए हैं और इस की इसी आकार की छोटी दाढ़ी है एवं सासानी आकृतियों की भांति नोकदार जबड़े की नोकदार हड्डियां हैं। अन्य आकृतियों के चेहरे सुरक्षित नहीं रहे। इस ओर की पहली और दूसरी आकृतियों के बीच में एक लम्बी सी वस्तु है जिस के चारों ओर सांप का शरीर लिपटा हुआ है यह मन्थन दण्ड है जो घट में रक्खा होता है और ऐसा जान पड़ता है कि यह नीचे एक पर्वत पर टिका हुआ है।

यह मूर्ति आकृतियों के बाहुल्य और इन की सजीव मुद्राओं से अत्यन्त उत्कृष्ट कला का नमूना है। शैली के आधार पर मैं इस मूर्ति को पिछले गुप्त युग लगभग छठीं या सातवीं शती ईस्वी की समझता हूं।



एक प्रगतिशील संस्था

श्रीयुत विजन कुमार मुखोपाध्याय, जज सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली।

गुरुकुल विश्वविद्यालय के गत दीक्षान्त उत्सव पर मुझे गुरुकुल संग्रहालय में आने तथा इस के विविध विभाग देखने का अवसर मिला।

इस संग्रहालय का उद्देश्य अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय-संस्कृति और आध्यात्मिकता के केन्द्र उत्तर खण्ड के नाम से प्रसिद्ध प्रदेश में पुरातत्वीय अनुसन्धान करना तथा इसे प्रोत्साहित करना है। यह देख कर प्रसन्नता हुई कि संग्रहालय ने गुप्तकाल से सम्बन्ध रखने वाली कुछ मूर्तियां खोजी एवं सगृहीत की हैं। इस के मुद्रा विभाग में प्राचीन सिक्कों का प्रचुर संग्रह है, मैं ने इस में सिन्धु-घाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता को प्रदर्शित करने वाली अनेक प्राचीन और मनोरञ्जक वस्तुयें देखीं। संग्रहालय में संग्रहीत ऐतिहासिक मानचित्र और नक्शे बड़ी संख्या में हैं और ये प्राचीन भारतीय इतिहास के क्षेत्र में अन्वेषण तथा इसका अध्ययन करने वालों के लिये अत्यधिक उपयोगी हैं। यह एक प्रगतिशील संस्था है और इस से संबद्ध सभी व्यक्ति मुझे उत्साही कार्यकर्ता प्रतीत हुए।

मैं इस संग्रहालय के दीर्घ जीवन तथा भविष्य में सर्वतोमुख विकास की शुभ कामना करता हूं।



महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित पत्र

श्री हरिदत्त वेदालंकार

पिछले दिनों श्रीयुत मामराज जी आर्य खतौली निवासी के सौजन्य से गुरुकुल संग्रहालय को महर्षि दयानन्द के दो महत्वपूर्ण पत्र उपलब्ध हुए हैं। इन में से पहले पत्र से स्वामी जी के हरिद्वार में ठहरने के स्थान पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस से यह ज्ञात होता है कि स्वामी जी यहां पर मूला मिस्तरी के बाग में ठहरा करते थे। स्वामी जी ने अपने पत्र में इस का पूरा पता 'कनखल और ज्वाला-के बीच नहर के पुल पर बड़ी सड़क' पर लिखा है। अनुसन्धान करने पर ज्ञात हुआ कि यह बाग अब भी विद्यमान है और ज्वालापुर से हरिद्वार को रेल लाइन के ऊपर नया पुल बना कर जो सड़क १६५० के कुम्भ पर निकाली गयी थी, उसी पर ज्वालापुर से आते हुए पुल का उतार समाप्त होने पर बांये हाथ पर है। आजकल इस बाग के स्वामी मूला मिस्तरी के पौत्र महाशय आशाराम जी हैं जो महर्षि के परमभक्त, सस्कृत के अनुरागी तथा दृढ़ आर्य-समाजी हैं। उन से मिलने पर ज्ञात हुआ कि उन के पितामह महर्षि के अनन्य प्रेमी थे और स्वामी जी हरिद्वार आने पर इस बाग में बनी कोठी में ठहरा करते थे। यह कोठी अब तक जीर्णावस्था में है, इस स्थान पर स्वामी जी का कोई स्मारक बन सके तो उत्तम है। यह स्मरण रखना चाहिये कि स्वामी जी हरिद्वार में प्रचार कार्य रेलवे स्टेशन के पास मूला मिस्तरी के खेतों में किया करते थे, यहां आजकल मकान बन चुके हैं। स्वामी जी यहां रहते हुए प्रायः शरीर पर गाचनी मिट्टी का लेप किया करते थे, जब उन से इस का कारण पूछा गया तो उन्होंने अपनी सहज विनोद प्रियता से यह कहा कि मच्छरों से रक्षा के लिए, काटने पर मच्छरों को पहले मिट्टी खानी पड़ेगी। इस पत्र पर दिये नम्बर १००७ तथा मिति माघ शु० १० आदित्यवार सम्वत् १६३५ से यह सूचित होता है कि स्वामी जी अपने पत्र व्यवहार में न केवल संख्या और तिथि किन्तु वार का उल्लेख करने में भी बड़े सतर्क रहते थे।

दूसरा पत्र मिति भाद्रसुदी ४ मंगलवार सम्वत् १६३७ का है। इस में बलदेव सिंह नामक व्यक्ति के सम्बन्ध में स्वामी जी ने अपना रोष प्रकट करते हुए ऐसे असत्यवादी पुरुषों से असन्तोष प्रकट किया है जो बहुत अधिक वचन देते हैं और समय आने पर कुछ नहीं करते। दोनों पत्र जंगलात महकमे के श्री स्वामी कृपाराम जी को लिखे गये हैं। दोनों का अविकल रूप निम्न है।

पहला पत्र

नं०
१००७

श्रीयुत कृपाराम स्वामी आनन्द रहो

ता० १ फरवरी सन १८७६ का लिखा रजष्टर पत्र पहुँचा दे
ख कर आनंदित हो के समाचार जान के प्रत्युत्तर लिख
ता हूँ वहां रहने वालों से मेरा आशीर्वाद कहना
वहां आने में मुज को बहुत प्रसन्नता है परन्तु
मैं अनुमान करता हूँ कि जो बन सकेगा
तो सं० १६३६ वैशाख······आने का संभव है

यहां सहारनपुर से ता० ६ फरवरी रुड़की को जा के वहां ८ या १५ दिन रह के हरद्वार में जाके कन ख (ल) और ज्वालापुर के बीच नहर के पुल पर बड़ी सड़ (क) पर मूला मिस्तरी के बाग में डेढ महिना ठ हरने का विचार है, पीछे आप लोगों के यहां आने का विचार है सो जानिये क्या आप लोगों से मैं नहीं मिला चाहता ऐसा सभव है

संवत् १९३५ मिति माघ शु० १० आदित्यवार
(दयानन्द सरस्वती)

दूसरा पत्र (कार्ड)

स्वामी कृपाराम जी आनन्दित रहो
इस पत्र का उत्तर हम लिख चुके हैं हम यहां छः सात दिन रहेंगे जो तु म शनिवार को आओगे तो मिल जा येंगे और एक चिठी बलदेवसिंह के विषय में हमने भेजी है तुमारे पास जो पहुँची होगी उसी में बाकी जब तुम यहां आके मिलो तब सब नि श्चय होगा और हम पहिले लिख चुके हैं कि मनुष्यों का आत्मा कपटी पहिले कहते हैं कि हम ऐसा २ करे गें पीछे वखत परे पर कुछ भी नहो

मिती भाद्र सुदी ४ मंगलवार संवत् १९३७
(दयानन्द सरस्वती)

आर्य जनता से यह निवेदन है कि उन के पास स्वामी दयानन्द जी, श्रद्धानन्द जी तथा अन्य महत्व-पूर्ण व्यक्तियों से सम्बद्ध जो पत्रादि तथा अन्य सामग्री हो, उसे गुरुकुल संग्रहालय के मन्त्री के पास भेजने की कृपा करें। इस से यह सामग्री सुरक्षित हो जायगी तथा प्रकाशित हो सकेगी। इस प्रकार सहा-यता देने वाले सज्जन आर्यसमाज के इतिहास तथा महर्षि के जीवन पर नवीन प्रकाश डाल सकेंगे।



लेखन एवं मुद्रण में अशुद्धियां और नागरी लिपि में सुधार

श्री चन्द्रकिशोर शर्मा

क बनाने में व में अंकुश लगता है। यहां भी अंकुश का कुछ अर्थ नहीं है अर्थात् एक अंकुश वाला अक्षर भी अल्प प्राण है और अंकुश विहीन की गिनती भी अल्प प्राणों में ही है। फिर यही चिह्न ऊ में दीर्घीकरण का काम भी देता है और रु में उ की मात्रा है। इसी प्रकार एक अन्य चिह्न (ि) इ को ई बनाने में दीर्घीकरण है किन्तु आगे चल कर व्यञ्जनों में वही र का अर्द्ध रूप भी बन जाता है। ये कैसे उलझाव हैं। सम्भवतः इनका कुछ उत्तर नहीं है। अब क फ रह गये हैं। भले ही ये पायन्त न होते हुए, संयुक्ताक्षर लिखने में निर्बाध एवं निर्भ्रम हैं किन्तु 'सब व्यञ्जन पायन्त' योजनान्तर्गत एक ही नियम में लाने और व्यञ्जनों के अर्द्धक मात्र से यन्त्र लेखन कार्य चल सकने की सम्भावना के विचार से क फ को बदल कर अन्त्य पाई वाले आकार बनाये जा सकते हैं। क के लिए च जैसा, नीचे का छोर द की तरह न खींच कर ठ की तरह मिला देने से बनने वाला आकार लिया जा सकता है और फ को, प के प्रथमांश में पाई से पहले एक शोशा देकर या ऊपर की ओर उल्टे अर्द्ध ल (ल) में पाई जोड़ कर बनाया जा सकता है।

नागरी लिपि में व्यञ्जन सम्बन्धी 'अक्षराधिक्य की समस्या जो विशेषतः लेखन यन्त्र, लाइनो टाइप यन्त्र, आदि के कारण उत्पन्न हुई है—हल करने के लिए कोई-कोई सज्जन प से फ बनाने में लगे हुए अंकुश द्वारा ही सब महाप्राण व्यञ्जन बनाने का सुझाव देते हैं। इस उपाय में अल्प प्राण व्यञ्जन माला नये सिरे से, पाई वाले ऐसे अक्षरों वाली निश्चित करनी पड़ती है कि जिन के अक्षरांश पाई को छूते रहें—अलग न हों। इस में क के बदले व लेना होता है और प्रचलित क आकार ख बनता है तब व को बदलना पड़ता है अन्यथा क के लिए ही कोई नया आकार कल्पित करना पड़ता है, यदि चाहते हैं कि झ का यही आकार बने तो भ को ज मानना पड़ता है। इस प्रकार लिखने छापने की सरलता और निर्विघ्नता के लिए कुछ और परिवर्तन भी आवश्यक होता है और उक्त महाप्राण चिह्न के भी अर्द्ध और पूर्ण दो रूप अथवा नये बनने वाले महाप्राणों के अर्द्धक रखने पड़ते हैं क्योंकि युक्ताक्षरों में अर्द्धाक्षरों की आवश्यकता होती है। फिर यह उपाय लेखन यन्त्र के लिए ही उपयोगी है मुद्रण के लिए उस विचार से नहीं। कदाचित इतना परिवर्तन मान्य नहीं हो सकेगा। यदि स्थितिवश ऐसा आवश्यक ही समझा गया तो यह लेखक फ वाले अंकुश के बदले, लेखन और मुद्रण दोनों में एक समान काम देने वाला अपेक्षाकृत कम परिवर्तनकारी अक्षर और पाई के मध्य एक शोशा देकर महाप्राण बनाने का उपाय अधिक उपयुक्त और सरल समझता है जैसा कि ऊपर प से फ बनाने में बतलाया गया है। इस अवस्था में र के लिए, पीछे बतलाये दो आकारों में से अन्तिम आकार लेना होता है। एक अन्य उपाय रोमन और उर्दू की भांति ह द्वारा महाप्राण बनाने का है। इसमें महाप्राण चिह्न रखने और उसके दो रूप बढ़ाने की आवश्यकता नहीं होती। यदि शोशे वाला उपाय महाप्राण बनाने में न लिया जाय तो उसको अल्पप्राण द्वित्व के लिए नियत किया जा सकता है। पांचों वर्गों के महाप्राणों का, ङ ञ का और ष ह का द्वित्व नहीं होता। शेष सब का द्वित्व काम आता है। लेखन यन्त्र में इसको लेना आवश्यक नहीं है।

झ ध भ—नागरी लिपि में ये तीन अक्षर ऐसे हैं जिनकी शिरोरेखायें अखण्ड नहीं हैं। इनके द्वारा लेखन में असुविधा रहती है शब्दों में शिरो रेखा देने

में अधिक सावधानी रखनी पड़ती है जिस से रवाँ लिखने में अटक पड़ती है अन्यथा अशुद्धि होने का डर रहता है। घ ध के प्रयोग में भी विद्यार्थीगण क्षण भर को तो चकरा ही जाते हैं और 'धन' को 'घन' और 'घड़ी' को 'धड़ी' बना देते हैं। इसके अतिरिक्त यद्यपि उच्चारणक्रम में भेद नहीं है किन्तु 'छद्म' की तरह 'सद्भाव' नहीं बनता और जिस प्रकार 'उद्धार' किया जाता है 'उद्घाटन' नहीं किया जा सकता वैसा करने पर तो लोग उसका 'उद्धाटन' (उद्घाटन) ही करेंगे। अतएव आवश्यक है कि घ को भी अखण्ड शिरोरेखा वाला आकार दिया जाय। इसके लिए संशोधित आकार वह हो सकता है जो घ के आरम्भ में घुण्डी देने या पाई में मिलाने से पहले एक शोशा देने से बनता है। परिवर्तित करने की अवस्था में उसे वह आकार दिया जा सकता है जो अङ्क (६) के निचले छोर को आगे बढ़ा कर पाई मिला देने से बनता। ऐसे आकार शिरोरेखा मुक्त लेखन के लिए भी निर्भ्रम रहते हैं।

ग ण श—नागरी लिपि में ये तीन अक्षर ऐसे हैं जिनके प्रथमांश पाई को नहीं छूते। श लिखने में उसका प्रथमांश पाई में मिल जाता तो कुछ विशेष हर्ज नहीं है। श का दूसरा रूप जो श्र में है सम्भवतः इसी प्रकार बना है किन्तु ग जल्दी में म बन जाता है और ग म से बना हुआ शब्द गम मग मम कुछ भी पढ़ लिया जा सकता है अतः ग भी कुछ संशोधन चाहता है। र के आगे दो पाई वाले ण का अर्द्धक (ए) भ्रामक है सो ण के बदले, र और प्रथम पाई के मिल जाने से बनने वाला, ण वर्णमाला में लिया जा सकता है।

त ल—लेखन को उच्चारण क्रम देने में त के द्वारा त्त और त्न लिखने में ल का भ्रम हो सकता है और लिखने में रुकना, संभलना पड़ता है। सो अत्यल्प सुधार में तो पायन्त ल न लेकर बम्बइया ल लिया जा सकता है। किन्तु पायन्त अक्षरों वाली व्यञ्जन माला के लिए त ल में से किसी एक में कुछ संशोधन आवश्यक होता है। अतः या तो ल के प्रथमांश में नीचे (बगला की तरह) घुण्डी दी जा सकती है अथवा त के बदले त्त लिया जा सकता है क्योंकि तब यह त का द्वित्व नहीं रह सकता। बहुत से व्यक्ति त को उस प्रकार लिखते भी हैं।

व ब—के सम्बन्ध में भी शिकायत रहती है। मुद्रण के छोटे टाइपों में तो इनका जल्द पहचानना प्रायः कठिन ही होता है फलतः हस्त-संग्रथन (कम्पोजिंग में कभी-कभी व की जगह ब और ब की जगह व लग जाता है। हस्त-लेखन में तो ब की जगह व लिखा जाना साधारण सी बात हो गई है भले ही इन अक्षरों वाले शब्दों को विद्वज्जन शुद्ध पढ़ लेते हैं किन्तु सर्व साधारण के द्वारा तो उनके उच्चारण कभी-कभी विकृत भी हो जाते हैं और जल्द ही यह भी पता नहीं चलता कि शुद्ध क्या हैं, परन्तु प ष के विषय में वैसा नहीं होता अतः ब को बदलना उचित जान पड़ता है उसके लिए व लिखने में पाई से पहले एक शोशा दिया जा सकता है या ब के बीच की आड़ी रेखा को लेखनी की एक ही लाग में लेते हुए कुछ आगे बढ़ा कर पाई मिला देने से बनने वाला आकार लिया जा सकता है।

नागरी के प्रथम २५ व्यञ्जन, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तवर्ग और पवर्ग पांच वर्गों में बँटे हुए हैं, और अन्त के, ४ अन्तस्थ तथा ४ ऊष्म कहलाते हैं। पांचों वर्गों में अन्तिम अर्थात् पञ्चम वर्ग सानुनासिक हैं। लिखने में सानुनासिकवर्ग और अनुनासिक (अनुस्वार) के प्रयोग सम्बन्धी कुछ नियम हैं। मोटे तौर पर, किसी वर्ग के अक्षर के पहले अनुनासिक ध्वनि आती है तो उस अक्षर में उसी वर्ग का पञ्चम वर्ग मिलाया जाता

है, यथा—अङ्क, पञ्च, कण्ठ, पन्थ, खम्भ आदि और अन्तस्थ तथा ऊष्म के किसी वर्ण के पहले अनुनासिक ध्वनि आती है तो उस से पहले अक्षर में अनुस्वार लगाया जाता है—इनके पञ्चम वर्ण नहीं हैं। इस से भिन्न, किसी वर्ग का पञ्चम वर्ण अनुनासिक ध्वनि के लिए किसी अन्य वर्ग और अन्तस्थ व ऊष्म के अक्षरों में नहीं लगाया जाता और वैसा करना नितान्त अशुद्ध माना जाता है। किन्तु परिस्थितिवश मुद्रणादि में पञ्चम वर्ण के बदले अनुस्वार से काम चला लेना विकल्प स्वरूप चल पड़ा है। परन्तु देखने में आता है कि इस छूट के कारण नियमादि की परवाह किए बिना अनुस्वार का प्रयोग खुल कर होने लगा है। यही नहीं पांचों सानुनासिक वर्णों के प्रयोग में भी नियमोल्लङ्घन आज खूब जोरों पर है, जिसके परिणाम स्वरूप रन्क, व्यन्जन, पन्डित, सम्वाद आदि लिखा छपा मिलता है। कभी-कभी अर्द्ध ञ (ञ) का अनुचित प्रयोग भी पाया जाता है। सच पूछिये तो अर्द्ध न का प्रयोग इतना अधिक बढ़ गया है कि कुछ ठिकाना नहीं और द्रुतगति से वह अब अनुस्वार का स्थान भी लेने लगा है, क्योंकि मुद्रण में इसका प्रयोग अनुस्वार की अपेक्षा सरल है। ङ ञ पञ्चम वर्णों के स्थान में यह इस लिए अधिक वर्ता जाने लगा है कि टाइप केसों में इन से बने युक्ताक्षर कभी-कभी नहीं मिलते हैं और इस लिए भी, कि उन्हें ढूँढने के झंझट से छुट्टी मिलती है। कदाचित पूर्ण रूप में इनका काफी उपयोग न होने और तथा कथित कठिनाई सन्मुख आने के कारण ही ङ ञ को वर्णमाला में से निकाल देने की चर्चा चल पड़ी है जिसका अर्थ है कवर्ग, चवर्ग को लँगड़ा बना देना, वर्णमाला के क्रम में विघ्न डालना और तत्सम्बन्धी लेखन नियमों को बेकार कर देना। यदि इन वर्णों का प्रयोग किसी कारण घट गया है तो उस कारण को दूर करना चाहिए न कि इनको ही बहिष्कृत कर देने का विचार लाया जाना चाहिये, इस प्रकार तो एक दिन ण को छोड़ देने की बारी भी आ सकती है।

पञ्चम वर्ण को छोड़, प्रत्येक वर्ग के वर्ण अल्पप्राण और महाप्राण के क्रम से हैं। अल्प प्राणों के द्वित्वाक्षर तो काम आते हैं परन्तु महाप्राणों का द्वित्व नहीं होता। जहां ऐसा प्रतीत होता है वहां उस महाप्राण में उस से पहला अल्पप्राण ही संयुक्त होता है, यथा—रक्खा, बग्घी, अच्छा झज्झर, कत्था, शुद्ध, गुप्फा, भब्भर आदि परन्तु इस नियम के विरुद्ध बघ्घी, गुफ्फा आदि भी लिखा देखने में आता है। अल्प शिक्षित अथवा नव सिखुए ही ऐसी भूल करते हों सो बात नहीं। बल्कि कोई टाइप फाउण्ड्री भी अल्पप्राणों के द्वित्वाक्षरों की भांति ही महाप्राणों के द्वित्वाक्षर भी ढाल रही है और आवश्यकता अनावश्यकता का बिना विचार किये क्र प्र आदि की भांति ही न के साथ संयुक्त, प्रायः सभी व्यञ्जनों के युक्ताक्षर बना रही है।

महाजन महोदय ने सरस्वती नवम्बर ५१ में अशुद्धियों के विषय में क्या ही अच्छा लिखा है कि पाठक अब इतने समझदार हो गये हैं कि वे संकेत मात्र से ही लेखक का अभिप्राय ताड़ जाते हैं अशुद्धियों की कुछ परवाह नहीं करते। इसी लिए त लेखकों और प्रकाशकों को मुफ्त की सिर दर्दी से छुटकारा मिला है और प्रेसों में प्रूफ रीडर रखने के व्यय को अपव्यय समझा जाता है, कम्पोज़ीटरों को भी अधिक सावधानी की आवश्यकता नहीं रही। ऐसी अवस्था देख कर कहा जा सकता है कि साधारण क्षेत्रों में हिन्दी मुद्रण का स्टैण्डर्ड निम्न स्तर पर जा रहा है। क्योंकि कौशल-हीनता और नियम विहीनता के अनेक उदाहरण सन्मुख आते रहते हैं।

नागरी का क्षेत्र हिन्दी भाषा और कुछ प्रदेश तक

सीमित न रह कर अब अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक एवं टेक्निकल शब्दों और अन्य भाषाओं को लिखने तक विस्तृत हो रहा है। हमें बहुत से नये शब्द घड़ने हैं सम्भवतः उन में कुछ नये युक्ताक्षर भी आ सकते हैं। 'उद्जन' का विस्तार कम करने के लिए द ज संयुक्त और न मालूम क्या-क्या बनाना पड़ जाय। तब तो हम नागरी का टाइप फॉण्ट बढ़ा-चढ़ा कर फाउंड्रियों और प्रेस कर्मचारियों का सिर दर्द बढ़ाते ही जायेंगे। यदि हम युक्ताक्षरों की विविधताओं और जहां तहां मात्रादि चिह्न लगा देने के चक्कर में फँसे रहे और यांत्रिक सुभीतों के विचार से लिपि सुधार की ओर शीघ्र ही सजग न हुए तो हिन्दी भाषा और विशेषतः नागरी लिपि का प्रचार-प्रसार बहुत समय तक सम्भव न हो सकेगा और कदाचित हो सकता है कि कोई सरल यन्त्र सुलभ विदेशी लिपि इसका स्थान ले ले। यह मान लिया गया है कि नागरी लिपि में सुधार आवश्यक है परन्तु यदि उसके लिए कुछ किया नहीं जाता है तो लिपि सुधार का प्रश्न उठाया जाना निरर्थक ही है।

प्रस्तुत लेख में लिपि दोष से होने वाली अशुद्धियों और कठिनाइयों की ओर संकेत मात्र किया गया है। पढ़ने-लिखने और छापने वालों के सन्मुख ऐसी बातें अक्सर आती रहती हैं। भले ही कुछ बातें छोटी है परन्तु वैसा समझ कर उन्हें उपेक्षित नहीं कर दिया जाना चाहिये। फिर तो बड़ी बातों को भी उपेक्षित कर देने की बारी आ सकती है।

लेखन एवं मुद्रण में सादृश्य लाने; अशुद्धियां दूर करने और कौशल-हीनता मिटाने में निम्नलिखित उपाय हितकर हो सकते हैं—

नागरी वर्णमाला के प्रचलित अक्षरों, मात्राओं, अंकों आदि पर पुनर्विचार कर, आवश्यक संशोधन व परिवर्तन के पश्चात् एक चार्ट तैयार किया जाय जिस में प्रत्येक अक्षर का एक ही सरल एवं निर्भ्रम आकार हो जिसका मूल रूप संयुक्ताक्षर लिखने में विकृत करने की आवश्यकता न रहे। प्रत्येक व्यञ्जन के पूर्ण और अर्द्ध केवल दो रूपों से काम चल सके। अन्य भाषाओं को यथाशक्य शुद्ध-स्पष्ट लिखने के लिए जिन नये ध्वनि चिह्नों की आवश्यकता हो—कल्पित किये जांय। विराम चिह्न, गणित चिह्न व्यापारिक चिह्न आदि सभी चिह्न जो एक फाण्ट में आवश्यक हों इस चार्ट में सम्मिलित किये जांय। इस चार्ट के अनुसार ही टाइप फाउण्ड्रया टाइप निर्माण करें।

लेखन नियम सम्बन्धी एक अन्य चार्ट बनाया जाय। नियम में बँध कर चलना चलाना सदैव अच्छा होता है, नियम विहीनता में कृत-कार्यता नहीं होती।

ये दोनों चार्ट शिक्षण-संस्थाओं, प्रेसों, टाइप फाउंड्रियों, नामपट्ट लेखकों आदि सभी की सुलभ जानकारी के लिए प्रचारित किये जांय और पुस्तक-विक्रेताओं के यहां विक्रयार्थ रख दिये जांय ताकि लेखन, मुद्रण में मनमानी न होने पावे।

प्रेसों में प्रूफ रीडर ऐसे व्यक्ति रक्खे जांय जो शैक्षणिक योग्यता वाले ही नहीं प्रेस सम्बन्धी सभी कामों का क्रियात्मक ज्ञान भी रखते हों।

जब तक कर्न्ड टाइपों के छोड़ने का उपाय निकले कम्पोज़ीटरों को चाहिए कि वे कर्न्ड टाइप की जगह पूरी बॉडी वाला टाइप न लगायें। अन्यथा उन्हें हिन्दी का सर्वाङ्गपूर्ण टाइप फॉण्ट कभी भी प्राप्त नहीं हो सकेगा और ऐसी कौशलहीनता बढ़ती ही रहेगी। इस कौशल हीनता के दोषी वही समझे जाते हैं। ज्यों त्यों काम चला लेने की नीति इस कला को नीचे गिराने वाली है।



वैदिक शब्दों का सही अर्थ

श्री भगवद्दत्त वेदालंकार

वैदिक शब्दों का सही अर्थ क्या है? इस की छानबीन करना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि शब्दों का ठीक २ अर्थ निर्धारण न होने पर शब्दों के मनघड़न्त अर्थ किये जाते हैं। जिस का परिणाम यह है कि मनुष्य अपनी मति व रुचि के अनुकूल वेद के अर्थ कर लेते हैं। इसलिए इस दोष के निराकरण के लिए शब्दों पर पूर्ण रूप से विचार होना चाहिये। हमने इस लेख में दो तीन वैदिक शब्दों पर विचार कर उन के स्वरूप निर्धारण का प्रयत्न किया है। यह आवश्यक नहीं कि इस प्रकार शब्दों के सही अर्थ के निर्धारण में हम पूर्ण सफल हो सकेंगे, परन्तु इस दिशा में प्रयत्न अवश्य होना चाहिये। अब हम क्रमशः दो तीन शब्दों पर विचार करते हैं।

प्रसव—उत्पत्ति

लौकिक व्यवहार में हम प्रसव और उत्पत्ति को एक ही समझते हैं। परन्तु वेद की दृष्टि से इन में महान् अन्तर है। प्रसव का सम्बन्ध सविता से है और उत्पत्ति का सम्बन्ध अग्नि से है। उत्पत्ति का अर्थ है ऊपर को गति होना उत् + पत्=आरोहण=रोहण=रोहित। यह आरोहण अग्नि का धर्म है। पृथिवी में बीज डालें कुछ समय पश्चात् अंकुर रूप में उत्+पत् अर्थात् ऊपर को गति प्रारम्भ हो जाती है। यह ऊपर को गति अर्थात् आरोहण करना अग्नि का धर्म है। परन्तु प्रसव में यह प्रक्रिया नहीं है। और प्रसव का सम्बन्ध अग्नि से न हो कर सविता से है। यह ठीक है कि वृक्ष वनस्पति आदि की उत्पत्ति सूर्य और पार्थिव अग्नि के मेल का परिणाम है। इसी प्रकार शरीरधारी अन्य प्राणियों की उत्पत्ति नर मादा के संयोग से है। यह सब प्रजनन सविता के अधीन तो है परन्तु प्रसव का पर्यायवाची शब्द उत्पत्ति नहीं हो सकता। प्रसव का मुख्य भाव निचुड़ने से है। आयुर्वेद के सिद्धांत के आधार पर मनुष्य के शरीर में व्यापक वीर्य प्रसूत हो कर शिश्न में पहुँचता है और वहां से स्त्री गर्भ में यह प्रसव है। इस अवस्था में प्रसव की प्रक्रिया समाप्त हो गई। प्रसवोन्मुखी स्त्री के लिये जो प्रसव शब्द का प्रयोग रूढि हो गया है वह भी शिशु के मातृ गर्भ से नीचे पृथिवी पर आने की प्रक्रिया व सादृश्य के कारण है। इसी प्रकार हमारे शरीर में से शरीर के अन्य नीचे के अंगों को जो आदेश पहुँचते हैं वे सविता के प्रसव हैं। इस प्रकार ऊपर से नीचे को आना सविता के अधीन है और नीचे से ऊपर को जाना अग्नि का धर्म है। तालिका में इसे हम इस प्रकार रख सकते हैं।

सविता	अग्नि
प्रसव	उत्पत्ति
अवरोहण	आरोहण
सूर्य	पृथिवी
पुरुष	स्त्री
वीर्य	रज

इस प्रकार हम ने यह तालिका दिखाई। कहने का भाव यह है कि प्रसव शब्द के उत्पत्ति अर्थ कर देने से ही काम न बनेगा। उस का विशिष्ट स्वरूप व व्युत्पत्ति जन्य भाव हमारे सामने आ जाना चाहिये। इस से हम प्रत्येक क्रिया में यह जान सकते हैं कि प्रसव का कितना अंश होगा और अन्य क्रियाओं आदि का कितना होगा।

गीः—(वाणी)

अगला शब्द 'गीः' है। धातु पाठ में दो धातुएं हैं, गॄ शब्दे और गॄ निगरणे। प्रतीत ऐसा होता है कि वैदिक युग में 'गॄ' निगरणे एक ही धातु होगी। गॄ धातु से उत् और नि उपसर्ग लगा कर उद्गिरण

व निगरण ये दो शब्द बनते हैं जो कि दो क्रियाओं को बताते हैं। जिन को हम भाषा में उगलना व निगलना कह सकते हैं। ध्वनि व शब्द में भी यही निगलने व उगलने की प्रक्रिया होती है। वाणी मन में विद्यमान विषय को निगल कर फिर बाहिर उगल देती है। शतपथ ब्राह्मण १।४।५ में मन और वाणी की श्रेष्ठता का विवाद चला है। वहां पर मन ने अपनी श्रेष्ठता का जो हेतु दिया है वह यही है कि जो मन में होता है उसी को लेकर वाक् सेविका की तरह बाहिर उगल देती है। इसलिए हमारी धारणा यह है कि वास्तविक धातु गॄ निगरणे है। शब्द को विशेषता देने के लिए सामान्य गॄ धातु से उसे पृथक् करके दिखा दिया है। इस रहस्य को न समझने के कारण होता यह है कि वेद में जिस स्थल पर 'गी' शब्द आता है, वहां पर हम उस का वाणी अर्थ कर देते हैं। इस से कई मन्त्र अत्यन्त अस्पष्ट व असगत से रह जाते हैं। उदाहरण के तौर पर दो एक मन्त्र हम यहां दिखाते हैं।

यदग्ने दिविजा अस्यप्सुजा वा सहस्कृत।
तं त्वा गीर्भिर्हवामहे।

हे बलशालिन् अग्नि! जो तू द्युलोक में उत्पन्न हुई अथवा जल में उत्पन्न हुई है उस तुझ को हम वाणियों द्वारा आह्वान करते हैं। अब इस मन्त्र पर जरा विचार कीजिये कि जो द्युलोक में उत्पन्न होने वाली अग्नि है और जल में पैदा होने वाली अग्नि है वह कौनसी हो सकती है? हमें यह मानना पड़ेगा कि द्युलोकस्थ अग्नि सूर्य से उत्पन्न होने वाली अग्नि है, ताप है, और जलीय अग्नि विद्युत् है अर्थात् जल से पैदा होने वाली बिजली। अब विचारणीय यह है कि इन को वाणी से कैसे बुलावें? वाणी से बुलाने का मतलब ही कुछ नहीं। परन्तु यदि 'गी' का अर्थ हम निगलने उगलने वाली कर लेवें तो सब समस्या हल हो जाती है। ये निगलने उगलने वाली तारें हैं जिन के द्वारा बिजली एक स्थान से दूसरे स्थान को जाती है। और सूर्य से आने वाली अग्नि किरणों द्वारा निगली व उगली जाती है। इस से मन्त्र सुसगत व स्पष्ट हो जाता है। इसी दृष्टि से 'गीः' के अनेकों क्षेत्रों में विभिन्न अर्थ हो सकते हैं। ये नस नाड़ियां (नर्वस सिस्टम सरकुलेटरी सिस्टम) आदि भी 'गीः' नाम से कही गई हैं। ये भी मस्तिष्क से आज्ञा ले कर अन्य अंगों के पास पहुँचाती हैं। हृदय से रक्त लेकर सर्वत्र पहुँचाती हैं।

ऋ० ८।३।२० में कहा गया है कि 'निः सोम इन्द्रियो रसः' अर्थात् ऐन्द्रियिक रस सोम है। यह ऐन्द्रियिक सोम जब 'गीः' में भरा हुआ कहा गया हो तो वहां 'गीः' से नस नाड़ियां अर्थ ले सकते हैं। एक मन्त्र है—

त्यमु सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्।
आच्यावयस्यूतये।

हे इन्द्र! तू उस सोम को जो (विश्वासु गीर्षु) सम्पूर्ण नस नाड़ियों में व्याप्त है उस को (ऊतये) हमारी रक्षा के लिए (आच्यावयसि) च्युत व प्रवाहित करते हो।

जराबोध

'जराबोध' शब्द वेद में इन्द्र का विशेषण हो कर आया है। इसका अर्थ प्रायः विद्वान् यह करते हैं कि 'जरास्तुतिर्जरतेः स्तुतिकर्मणस्तां बोध तयाबोधयितारिति वा' नि० १०।८ अर्थात् वह इन्द्र भक्त की स्तुति को जानता है और स्तुति से अपने आप को भक्त के प्रति प्रकाशित करता है।—इत्यादि अर्थ जराबोध के किये जाते हैं। परन्तु 'जराबोध' में जरापद के अर्थ बदलने पर और भी अर्थ हो जाते हैं। जरा पद क्षीणता व बुढ़ापा (जॄ वयोहानौ) आदि के लिए भी प्रयुक्त होता है। उपर्युक्त अर्थ होने पर 'जराबोध' का भाव यह होगा कि वह इन्द्र बुढ़ापे व क्षीणता में जागृत होता

कवि से

श्रीरामप्रताप आर्य

छेड़ अपनी तान रे कवि !

गीत गा जिस से कि होवे, राष्ट्र का उत्थान रे कवि !

मत सुना शृंगार रस का, गान हम को आज कोई,
शान्त, करुणा का सुना मत, भाव अपना आज कोई,
व्योम की ऊंची उड़ानों—का समय अब जा चुका है,
वेदनामय-विरह गीतों का समय अब जा चुका है,
आज हम तुझ से सुनेंगे, एक विप्लव गान रे कवि !

देख, पर-शोषण से पुष्टि कर रहा है आज कोई,
लूट की सम्पत्ति से घर भर रहा है आज कोई,
देख दीनों की दशा क्या मन दुखित होता नहीं है ?
यन्त्रणायें देख उन की क्या कभी रोता नहीं है ?
आज उन का दुःख मिटाने की हृदय में ठान रे कवि !

गान तेरे सुन सभी में प्राण का सञ्चार होगा,
दूर होगी यह विषमता, साम्य का विस्तार होगा,
कर भला इस देश का अब गीतिकाओं को सुना कर,
भर हृदय में राष्ट्र भक्ति देश की सेवा सिखा कर,
समय आने पर करें सब, प्राण भी बलिदान रे कवि !



है। जवानी की गरमी उस परमैश्वर्यवान् भगवान् का बोध होने नहीं देती, परन्तु ज्योंही जवानी ढलती है, जोश ठंडा पड़ता है त्योंही मनुष्य पछताया करता है कि जवानी यूं ही खो दी। भगवान् का भजन तक नहीं किया। इसी प्रकार क्षीणता, कष्ट व आपत्ति में मनुष्य भगवान् को स्मरण करता है पर सुख में नहीं।

सन्त के उद्गार हैं—

दुःख में सुमिरन सब करें सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करें तो दुःख काहे होय॥

हमारा उपर्युक्त कथन को देने का भाव यह है कि स्तुति परक 'जृ' धातु और क्षीणता वार्धक्य को बताने वाली 'जृ' (वयोहानौ) धातु ये दोनों धातुएं किसी प्राचीन समय में एक ही होंगी क्योंकि क्षीणता, बुढ़ापा व दुःख का स्तुति से स्वाभाविक सम्बन्ध है। ये एक अवस्था के दो पहलू हैं। इसका यह भाव नहीं है कि जवानी में भगवान् की स्तुति नहीं हो सकती, जवानी में भगवान् की भक्ति करने वाले विरले ही पुरुष होंगे। और वह भी उन के विगत जन्म में सञ्चित प्रारब्ध का पुण्य प्रताप होगा कि जो जवानी में भी भगवान् के अनन्य भक्त बने।



व्यायाम

श्री ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य

किसी प्रकार की कसरत अथवा एक्सरसाईज़ करने को व्यायाम कहते हैं। व्यायाम के बिना कोई भी स्वस्थ और बलवान नहीं हो सकता। बालकों को छोटी आयु से ही इसे आरम्भ कर देना चाहिए। १६ वर्ष की आयु से २४ वर्ष तक खूब व्यायाम करें तो शरीर आयु भर के लिए गठ जाता है।

हमारे शरीर की बनावट ही ऐसी है कि यह काम काज करने और हिलने-जुलने के लिए बनाया गया है। नन्हें बालक को लिटा दो तो वह स्वयं ही हाथ-पैर मार कर व्यायाम कर लेता है। जब कुछ बड़ा होता तो खूब भागता, कूदता और खेलता है। जिस समय लड़के-लड़कियां और भी बड़े हो कर बातों को समझने बूझने लगते हैं तो यदि वे व्यायाम छोड़ बैठें उनके शरीर निर्बल हो जाएंगे, भद्दे हो जाएंगे, रोगी रहा करेंगे। पढ़ने में चित्त नहीं लगेगा और पढ़ा हुआ याद भी जल्दी न कर सकेंगे।

व्यायाम करने से शरीर सुडौल और सुन्दर बनता है। बहुत पतला मोटा हो जाता है और बहुत कमज़ोर तगड़ा हो जाता है। व्यायामी का शरीर कठोर और बलपूर्ण होने पर भी हल्का और लचकदार होता है। व्यायामी खूब परिश्रम कर सकता है और काम-काज को भली प्रकार सम्पन्न कर डालता है। थकावट और सुस्ती का उसके पास नाम नहीं। वह वृद्धावस्था में भी नवयुवकों के समान काम कर सकता है। वस्तुतः में वह बूढ़ा होता ही नहीं। श्वास की गति लम्बी और नियमित हो जाने से उसकी आयु भी बढ़ जाती है और सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुख-दुःख आदि को समान रूप से सहन कर सकता है।

व्यायाम करने से प्राण वायु अधिक मात्रा में अन्दर जाती है जिस से रक्त अधिक बनता है और देह दोष जल कर बाहर निकल जाते हैं। मुख के ऊपर लालिमा आती है और पाचनशक्ति बढ़ जाती है। इस का परिणाम यह होता है कि देह में रक्त, मांस, हड्डी आदिक वस्तुएं ठीक-ठाक बनती हैं और फालतू अंश मल, मूत्र, पसीने आदि के द्वारा ठीक-ठाक निकलता रहता है। कब्ज़ कभी नहीं होती जोकि बहुत से रोगों की जड़ है। व्यायामी पुरुष वा स्त्री यदि किसी समय भूल से गला-सड़ा और कच्चा भोजन भी खा ले तो हज़म कर लेता है।

व्यायामी मनुष्य से जिस प्रकार रोग परे रहते हैं, उसी प्रकार उसके शत्रु भी डरते रहते हैं। व्यायामी में तीव्र उत्साह होता है और अधिक सामर्थ्य से लोक सेवा कर सकता है। डूबे हुए को बचाना, लगी आग को बुझाना, चोर डाकू को भगाना, व्यायामशील साहसी वीर का ही काम है।

व्यायाम प्रति दिन करने का अभ्यास डालो। किन्तु बहुत अधिक भी व्यायाम न करो इस से आयु और बल क्षीण होते हैं और खांसी, दमा (श्वास), वमन आदि रोगों के उभरने का भय है। जो घोड़ा सारा दिन गाड़ी में जुता हुआ चलता रहता है तो वह जल्दी बूढ़ा हो जाता है। एक समय व्यायाम करते करते जब इतना सांस चढ़े कि मुंह खोल कर श्वांस लेने की आवश्यकता होने लगे तो व्यायाम बंद कर दो। छाती पर जब पसीना आ जाए तो रुक जाओ और अपनी शक्ति से थोड़ा कम ही व्यायाम करो, अधिक मात्रा में करके शरीर को थका मत डालो।

व्यायाम का समय प्रातःकाल अथवा सायंकाल कोई भी नियत कर लो। जब पेट भर कर खाया हुआ हो अथवा भूख बहुत लग रही हो तब व्यायाम न करो व्यायाम करने के पश्चात् तत्काल ही खुली हवा में स्नान न करो। जिस समय शरीर की गर्मी और श्वास की गति कम हो जाय उस समय स्नान करो। व्यायाम करने के पश्चात् ठंडा जल और शर्बत आदि न पिओ। दूध, मलाई, मक्खन, बादाम, घी आदि पौष्टिक

[शेष पृष्ठ ३२ पर]

साहित्य-परिचय

[प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं। एक पुस्तक प्राप्त होने पर केवल प्राप्ति स्वीकार दिया जा सकेगा। —सम्पादक]

वैदिक कर्तव्य शास्त्र—लेखक पं० धर्मदेव विद्या-वाचस्पति। प्रकाशक, प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल विश्व-विद्यालय कांगड़ी, जि० सहारनपुर, उत्तर प्रदेश। पृष्ठ संख्या २६०, मूल्य १ रुपया ८ आना।

श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति विरचित वैदिक कर्तव्य शास्त्र का आद्योपान्त अवलोकन किया। मुझे यह लिखते हुए हर्ष होता है कि पुस्तक में मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के कर्तव्यों का निर्देश वेद एवं शास्त्रों के आधार पर बड़ी सुन्दरता एवं रोचक रीति से किया गया है। मानवता के पूर्ण विकास के लिए जो अपरिहार्य तत्व हैं जैसे विश्वबन्धुत्व, निर्भयता सामाजिक एवं वैयक्तिक कर्तव्य, अध्यात्मता, आत्म संयम, वर्णाश्रम धर्म, राष्ट्र के प्रति कर्तव्य, स्वतन्त्र संरक्षण, सर्व समविकास आदि उन समस्त अमूल्य वैदिक उपदेशों का उत्तम एवं प्रशस्त सकलन इस ग्रन्थ में हुआ है। इस प्रकार की वैदिक सस्कृति एवं परम्पराओं के दिग्दर्शन से वेद एवं भारतीय शास्त्रों का महत्व तथा गौरव की छाप मानव हृदय पर अवश्यम्भावी है। पण्डित जी स्वय आर्य जगत् के प्रतिष्ठित विद्वान् एवं प्रवक्ता हैं। तदनुरूप ही यह ग्रन्थ भी है, इस में किंचित भी सन्देह नहीं। वैदिक आदर्शों एवं भावनाओं के जिज्ञासुओं के लिए यह एक अपूर्व ग्रन्थ है। आशा है जनता इस से पूर्ण लाभ उठायेगी।

—द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री।

प्रतिभाशाली देशभक्त—लेखक डॉक्टर राम प्रताप सिंह और ठाकुर उदयवीर सिंह। प्रकाशक-- उदयवीर प्रकाशन, पो० पड़ाना, बीकानेर। आकार २०×३०/१६, पृष्ठ सख्या २४६। सजिल्द, सचित्र, मूल्य ४)।

पुण्य भूमि भारत की आजन्म सेवा करने वाले देश भक्तों के उज्वल चरित्र देशवासियों के सामने रखने के उद्देश्य से इस पुस्तक की रचना की गई है। सर्व श्री महात्मा गांधी, सुभाषचन्द्र बोस, बाल गगाधर तिलक, गोखले, मदन मोहन मालवीय, जवाहर लाल नेहरु, सरोजनी नायडू, लाजपतराय, स्वामी रामतीर्थ आदि प्रसिद्ध राष्ट्र कर्मियों के साथ-साथ महाराजा फतहसिंह, महाराजा गंगासिंह, जाम साहिब और प्रसिद्ध लेखिका तोरुलता के चरित्रों का सजीव चित्रण हम इस पुस्तक में पाते हैं लेखन शैली सरस और सुन्दर है। हमारे लोकनायकों के चरित्रों को ऐसे रोचक तथा हृदयग्राही तरीके से प्रस्तुत किया गया है कि पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ कर के समाप्त किये बिना छोड़ने को मन नहीं करता। कल जिन के हाथों में हमारे देश की बागडोर आनी है राष्ट्र की निधि उन बच्चों को स्कूलों में ही भारतीय इतिहास की विमल कर्ति के इन पत्रों को पढ़ने के लिए देना चाहिये। इस पुस्तक को देश विदेश की बारह भाषाओं में प्रकाशित करने के विचार का और अन्य देश भक्तों के शब्द चित्रों को दूसरे भागों में प्रकाशित करने के आयोजन का हम स्वागत करते हैं। हम चाहते हैं कि इस पुस्तक का अधि-काधिक पठन-पाठन हो।

—रामेश बेदी।



गुरुकुल-समाचार

ऋतु

ज्येष्ठ मास के पूर्वार्ध में खूब गर्मी पड़ती रही। धूल भरी आंधियां भी बीच-बीच में आती रहीं। बाद को मौसम में अद्भुत परिवर्तन आ गया। रह-रह कर वर्षा की झपटें आती रहीं। जिस से वातावरण बहुत शीतल और सुहावना हो गया। धूप-छांह का खेल होता रहा। वर्षा के कारण वन-बाग और मैदानों में हरियाली छा गई है। रामदेव मार्ग की अमलतास-वीथी के वसन्ती फूलों की अपूर्व शोभा और सुवास फैल रही है। ग्रीष्मकाल के विविध पखियों से कुल-उपवन गूञ्ज उठे हैं। कोयल और पपीहे के मधुर आलाप खूब सुनाई देते हैं।

मान्य अतिथि

आजकल गर्मी की छुट्टियाँ होने से गुरुकुल में अतिथियों का आवागमन विशेष रहता है। पिछले दिनों निम्नलिखित विशेष अतिथि गुरुकुल में पधारे। आगरे के प्रसिद्ध कवि और आर्यमित्र के सम्पादक श्री पं० हरिशंकर जी शर्मा कविरत्न, आर्यविद्वान् श्री बाबू पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट, नागरिक सम्पादक स्नातक उमेशचन्द्र जी आगरा। पोरबन्दर आर्य कन्या गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री चतुरभाई बी० पटेल तथा वहां की चालीस छात्राएँ व अध्यापिकाएँ। लखनऊ ट्रेनिङ्ग कालेज के अध्यापक श्री लक्ष्मी नारायण जी गुप्त इन दिनों गुरुकुल में रह कर आर्यसमाज के साहित्य का अनुशीलन कर रहे हैं।

सरस्वती-यात्रा

ग्रीष्मावकाश में महाविद्यालय विभाग के छात्रों की दो मंडलियाँ काश्मीर यात्रा के लिए गई हैं। विद्यालय विभाग के ९ म से १० म श्रेणी तक के छात्र देहरादून जिले के प्रसिद्ध पर्वतीय स्वास्थ्यप्रद स्थान चकरौता गए हैं। छुट्टियों भर ये सब छात्र चकरौता को केन्द्र रख कर समीपस्थ पर्वतों का परिभ्रमण करेंगे। छात्रों के साथ उन के गुरुजन और चिकित्सक भी गए हैं।

तैरी प्रतियोगिता

गत १० मई को गुरुकुल के बड़े छात्रों की तैरी प्रतियोगिता आयोजित हुई थी। इस में गुरुकुल के सप्तम श्रेणी से ले कर उच्चतम कक्षा के छात्रों ने भाग लिया था। उस दिन गुरुकुल घाट पर प्रेक्षकों की बड़ी रौनक रही। प्रतियोगिताओं में विशेष कौशल प्रदर्शित करने वाले छात्रों को नहर विभाग के स्थानीय उच्चतम अधिकारी द्वारा पारितोषिक वितीर्ण किए गए। यशस्वी छात्रों का विवरण इस प्रकार है।

तीन मील की लम्बी तैरी में पुरस्कार विजेता—

ब्र० ब्रह्मदेव ८ म श्रेणी

ब्र० कृष्णचन्द्र ७ म श्रेणी

ब्र० मूलशंकर ८ म श्रेणी

सिंह तैरी के विजेता—

ब्र० बलराज ८ म

ब्र० राजेन्द्र (बलिया) ११ श

ब्र० ब्रह्मदेव तथा ब्र० दयाकर।

लम्बी डुबकी में ब्र० राजेश्वर १० श्रेणी प्रथम आया। खड़ी डुबकी में ब्र० नरपति १४ श प्रथम रहा। ब्र० नरपति दो मिनिट चालीस सैकण्ड जल में रहा। तैरी के विविध प्रकार के कलाबाजीपूर्ण प्रदर्शन में ब्र० प्रह्लाद कुमार ४ श्रेणी ने पुरस्कार पाया। लम्बी कूद में ब्र० धर्मदेव १२ श पुरस्कार-भागी रहा।

पुनः २३ मई को छोटे छात्रों (प्रथम श्रेणी से ले कर ६ ष्ठ श्रेणी तक) की तैरी प्रतियोगिता हुई। जिसका वृत्तान्त इस प्रकार है—

आधे मील की लम्बी तैरी में निम्नलिखित छात्र

पुरस्कारभागी हुए।

१ ब्र० सुरेन्द्रकुमार (कलकत्ता) ६ ब

२ ब्र० कृपाकर ८ म

३ ब्र० अश्विनीकुमार ६ ब

सिंह तैरी के विजेता—

ब्र० कृपाकर ५ म

ब्र० अश्विनीकुमार ६ ष्ठ

ब्र० बद्रीनाथ ६ ष्ठ

लम्बी डुबकी में ब्र० दीनानाथ ६ ष्ठ और खड़ी डुबकी में ब्र० राजनारायण ६ ष्ठ पुरस्कारभागी हुए। लम्बी कूद में ब्र० अश्वनी कुमार तथा कलात्मक कूद में ब्र० ओम् प्रकाश को पुरस्कार प्राप्त हुआ।

स्वर्गीय स्नातक चन्द्रकांत जी

गुरुकुलीय जगत् और आर्य जगत् में यह समाचार बड़े दुःख से सुना जायगा कि गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक श्री प० चन्द्रकांत जी वेदवाचस्पति (सूपा गुरुकुल के आचार्य) का गत १२ मई को बम्बई के हरकिसन हास्पिटल में हार्निया के आपरेशन के पश्चात् देहावसान हो गया। स्वर्गीय पं० जी आर्य ससार के चमकदार व्याख्याता और अध्ययनशील विद्वान् थे। अपने छात्रकाल में भी अपना भाषण-कला में विशेष यशस्वी रहे थे। गुरुकुल से शिक्षा समाप्त करके आप सोनगढ़ गुरुकुल (सोराष्ट्र) के आचार्य बने थे। वहां पर कई वर्षों तक योग्यता-पूर्वक कार्य करने के पश्चात् आपको सूपा गुरुकुल (जि० सूरत) का आचार्य बनाया गया था। गुजरात में व्याख्यान और लेखन द्वारा आपने आर्यसमाज, वैदिक धर्म और गुरुकुल की अपूर्व सेवा की थी। अनेक विद्वत् परिषदों में आपने अपनी अध्ययन प्रचुर विद्वत्ता का अच्छा सिक्का बैठाया था। आप के अकाल और विस्मय-जनक अवसान से आर्यजगत् को विशेषतः गुजरात प्रांत की आर्य सामाजिक कार्यप्रवृत्तियों को तथा गुरुकुल सूपा को बड़ी भारी क्षति पहुँची है। गुरुकुल विश्वविद्यालय के समस्त ब्रह्मचारी, गुरुजन, कार्यकर्ता और स्नातक-बन्धु उनकी विविध सेवाओं के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन के समस्त आत्मीय-जनों और मित्रों के साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति और समवेदना व्यक्त करते हैं। अपनी बन्धु-संस्था गुरुकुल सूपा के कार्यवाहकों और ब्रह्मचारियों के दुःख में विशेष रूप से समभागी होते हैं। परमपिता परमात्मा दिवंगत पंडित जी की आत्मा को चिर शांति प्रदान करें।

श्रद्धानंद सेवाश्रम

वैशाख मास में श्रद्धानन्द सेवाश्रम के चिकित्सालय में कुल १७६० रोगियों ने लाभ उठाया। चिकित्सालय में प्रविष्ट रोगियों की संख्या ५६ थी। आपरेशन भवन में छोटे-बड़े कुल २३ आपरेशन किए गए। प्रविष्ट रोगियों में २६ औषध विभाग के तथा ३० शल्य-विभाग के रोगी रहे। रोगियों का विवरण इस प्रकार है—

६६६ पुरुष, ५५३ स्त्रियां, ५३८ बच्चे।

एक्स रे तथा निदान प्रयोगशाला का क्रमशः ३६ और ४३ व्यक्तियों ने लाभ उठाया।

गुरुकुल संग्रहालय

भूगर्भ की नई सामग्री—गत मास संग्रहालय में बहुत महत्वपूर्ण सामग्री की वृद्धि हुई है। लखनऊ विश्वविद्यालय के भूगर्भ विभाग के सौजन्य से चट्टानों, खनिजों तथा प्रस्तरीभूत अवशेषों (फासिल्स) का एक सुन्दर प्रतिनिधि संग्रह प्राप्त हुआ है, इसके लिए संग्रहालय उक्त भूगर्भ विभाग का, इसके अध्यक्ष श्री एस० आर० नारायण तथा डा० रमेशचन्द्र जी मिश्र का अत्यधिक आभारी है जिन के सौजन्य से यह वस्तुयें मिली हैं। इन से संग्रहालय देखने आने वालों का भूगर्भ विषयक ज्ञान का स्तर ऊंचा उठेगा।

मध्य भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग के संचालक श्री डी. आर. पाटिल के सौजन्य से संग्रहालय को मध्य भारत के पुरातत्त्वीय अवशेषों के बड़े साइज के १० फोटो प्राप्त हुए हैं। गतवर्ष भी इन्होंने कुछ नागवंशी सिक्के भेजकर संग्रहालय की सहायता की थी। संग्रहालय इस कृपा के लिए इन का अनुगृहीत है।

श्री राय कृष्णदास जी संचालक भारतकला भवन हिन्दू विश्वविद्यालय काशी तथा डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल के सौजन्य से हमें ऐतिहासिक महापुरुषों के २० प्रामाणिक प्रतिकृति चित्र प्राप्त हुए हैं। ये प्राचीन मूर्तियों, सिक्कों और चित्रों के आधार पर तय्यार किये गये हैं। इन में सम्राट् चन्द्रगुप्त, महाक्षत्रप नहपान, गुजरात के राजा कुमारपाल, अहमदनगर की वीर सम्राज्ञी चांद सुल्ताना, छत्रपति शिवाजी, भरतपुर राज्य के संस्थापक राजा सूरजमल जाट सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग के चित्र उल्लेखनीय हैं। संग्रहालय इन चित्रों के लिये उक्त महानुभावों तथा भारतकला भवन के कलाकार श्री दुबे जी का आभारी है।

हिमाचल विभाग—संग्रहालय के हिमाचल विभाग में श्री रामेश बेदी के सौजन्य में गत मास उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इस में सब से उल्लेखनीय वस्तु ताम्बे का बना हुआ अनाज नापने का एक बर्तन (पाथा) है, यह २५० वर्ष प्राचीन है, इस पर टिहरी गढ़वाल के तत्कालीन शासक प्रदीपशाह, उसके मन्त्री का तथा राजगुरु हसनाथ का और उत्कीर्ण करने वाले का नाम तथा राजकीय मुद्रा अंकित है। इस के अतिरिक्त हिमाचल के आर्थिक जीवन में अत्यधिक महत्वपूर्ण भाग लेने वाले एक वृक्ष भीमल की लकड़ी के नमूने हैं, जिस के रेशों से मजबूत रस्सी बंटी जाती है और जिस की पतली शाखाओं को अन्धेरे में मशाल की भांति जलाया जाता है। इसके साथ ही पहाड़ में खाये जाने वाले कोदों गहत आदि अनेक ऐसे अनाज हैं जिन का प्रचलन मैदानी भाग से बिल्कुल उठता जा रहा है। आशा है श्री बेदी जी के सत्प्रयत्न और सहयोग से संग्रहालय का हिमाचल विभाग निरन्तर समृद्ध होता रहेगा।

अप्रैल मास में दर्शकों की संख्या ५४६४ थी। सब से अधिक दर्शक गुरुकुल उत्सव तथा वैशाखी के पर्व पर १४ एप्रिल को आये। इन की संख्या ११२८ थी।



व्यायाम [२८ पृष्ठ का शेष]

पदार्थ खा सकते हो।

व्यायाम करते समय तंग वस्त्र शरीर पर न होने चाहिएं। जितना थोड़ा और ढीला वस्त्र हो उतना ही अच्छा है। व्यायाम कमरे से बाहर खुली हवा में करना चाहिए। इस से वायु स्नान भी हो जाता है। यदि धूप तेज़ न हो तो हल्की धूप में भी व्यायाम करो, इस से सूर्य्य स्नान हो जायगा।

जिस व्यायाम में मन लगता हो और वह आपकी सामर्थ्य के अनुसार हो, वही व्यायाम करो। ऐसा व्यायाम करना चाहिए कि जिस से सारा शरीर हिल जाय। जो भी व्यायाम हो अपना चित्त उस में लगाए रखो और यह धारणा करो कि आप अमुक अंग को बलवान बना रहे हैं। गहरा श्वास लेकर और उसे भीतर ही थोड़ा रोक कर धीरे-धीरे बाहर निकालो, इस से श्वास का व्यायाम भी हो जायगा—इसे प्राणायाम कहते हैं। अच्छी लम्बी सैर (वायु सेवन के लिए टहलने निकलना) भी व्यायाम है। व्यायाम जब कर चुको तो सीधे लेट जाओ और शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दो, किसी भी अंग में अकड़ाव न हो। इस से रक्त शरीर के कोने-कोने में पहुँच जायगा और शरीर को आराम मिलेगा और मन प्रसन्न होगा।



मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

ग्रीष्म ऋतु में सेवन कीजिये

भीमसेनी सुरमा

आंखों के लिए इस से बढ़ कर कोई दूसरा सुरमा नहीं है। यह आंखों के सब रोगों पर विशेष लाभ करता है। बालक वृद्ध सभी को समान उपयोगी है।

मू० नमूना ॥=) शीशी

ब्राह्मी बूटी

बुद्धि को बढ़ाने व मस्तिष्क की दुर्बलता को दूर करने में इससे अच्छी दूसरी बूटी नहीं है। हमारे यहां हर समय ताज़ी मिलती है।

मू० ३) सेर

भीमसेनी दन्तमञ्जन

मञ्जन के बढ़ते हुए रिवाज को देख कर यह देशी मञ्जन तैयार किया गया है। यह मूल्य में भी सस्ता है और दांतों को मज़बूत व चमकदार भी बनाता है। मू० ॥≡) शीशी

पामाहर

खुजली व चम्बल रोग को इसका प्रयोग जड़मूल से उखाड़ देता है। मूल्य भी साधारण है।

मू० ।=) शीशी

ब्राह्मी तेल

यह तेल शुद्ध ब्राह्मी के द्वारा बनाया गया है। दिमाग को ठण्डक व तरावट देकर ताज़गी लाता है। दिमाग़ की कमज़ोरी वालों को यह तेल विशेष हितकर है।

मू० ।=) शी० छोटी

ब्राह्मी शर्बत

ब्राह्मी तेल की तरह यह शर्बत भी इस मौसम में सेवन करने योग्य उत्तम चीज़ है। प्रातः काल एक गिलास शर्बत सारे दिन ताज़गी रखेगा।

मू० ३) बोतल

भीमसेनी नेत्र बिन्दु

यह औषधि दुखती आंखों के लिये अक्सीर है। कुकरे व दर्द भी इस से दूर होते हैं।

मू० १) शीशी

आमला तेल

यह तेल बालों को रेशम की तरह मुलायम कर काला करता है।

मू० १।) शीशी

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

गुरुकुल पत्रिका

श्रावण
२००९



वर्ष ४
अङ्क १२

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ४
पूर्णाङ्क ४८

गुरुकुल-पत्रिका

जुलाई
१९५२

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

ब्रिटिश पालियामेण्ट में आन्दोलन विषयक ऋषि दयानन्द का पत्र	श्री हरिदत्त वेदालंकार
वेदों का स्वाध्याय	श्री अरविन्द
दृषद्वती—गंगा का अपर नाम	श्री उदयवीर शास्त्री
राजा और प्रजा का नूतन नगरी में प्रवेश	श्री रामनाथ वेदालङ्कार
हमारी गौण वन सम्पत्ति	श्री अनुकूल चन्द्र

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक-पत्रिका]

भारतीय दर्शन के आधारभूत तत्त्व

श्री उदयवीर शास्त्री

भारतीय संस्कृति के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रतीकों में दर्शन का भी मुख्य स्थान है। समस्त दर्शनों में जिन तत्त्वों का विवेचन किया गया है, उनको यदि कुछ अधिक संक्षेप की दृष्टि से देखा जाय, तो वह सब दो प्रकार के तत्त्वों में सन्निविष्ट हो जाता है। ये दो वर्ग हैं—एक चेतन और दूसरा जड़ अथवा अचेतन। भारतीय समस्त दर्शनों का यह अन्तः स्वारस्य है, कि इन में चेतन वर्ग अपरिणामी तथा जड़ परिणामी अथवा परिवर्तनशील है समस्त विश्व का अधिष्ठाता व भोक्ता चेतन तत्त्व रहता है, और अचेतन की सतत परिणति से विविध सृष्टि का निर्माण हुआ करता है। यह क्रम इतना लम्बा है, कि इसका न कहीं आदि है न अन्त। न केवल भारत अपितु संसार का समस्त दर्शन शास्त्र उलट-फेर कर इन्हीं दो तत्त्वों के विवेचन में पर्यवसित होता है।

जगत् का मूल उपादान अचेतन है, चेतन तत्त्व जगत् का उपादान न होकर उसका प्रेरयिता, अधिष्ठाता व भोक्ता है, यह भारतीय दर्शन का सार है। अचेतन तत्त्व जगत् का उपादान क्यों हो सकता है? इसका निर्णय करने के लिये प्रथम यह जानना आवश्यक है, कि स्वयं जगत् का स्वरूप क्या है। संसार में दो प्रकार के ऐसे तत्त्व अनुभव में आते हैं, जिनको एक नहीं कहा जा सकता। वे परस्पर इतने विभिन्न और विलक्षण हैं. जैसे प्रकाश और अन्धकार। हम उन में से एक को चेतन और दूसरे को अचेतन अथवा जड़ कहते हैं। चेतन के जो चिह्न अथवा लक्षण विद्वानों ने निर्धारित किये हैं, उनका जहां सर्वथा अभाव है, उन तत्त्वों को अचेतन अथवा जड़ कहा जाता है। इस प्रकार जगत् में मूल रूप से दो वर्ग अथवा दो भिन्न जाति के तत्त्वों की उपलब्धि होती है। चेतन को आत्मा और अचेतन को प्रकृति कहा जाता है।

यदि यह बात स्पष्ट हो जाती है, कि चेतन आत्मा के अतिरिक्त शेष समस्त जगत् जड़ है, तब हमें उसके ऐसे ही उपादान को मानने के लिये झुकना पड़ेगा। पर इसके साथ एक अन्य विचारधारा भी है, जहां यह स्वीकार किया गया है, कि चेतन और अचेतन मूल रूप से सर्वथा दो भिन्न वर्ग नहीं हैं, चेतन, अचेतन के रूप में अथवा अचेतन, चेतन के रूप में परिवर्तित हो सकते हैं। इसका फल यह होता है कि मूल में एक ही तत्त्व मानने की आवश्यकता रह जाती है या वस्तु-स्थिति में एक ही तत्त्व मूल रूप में होना चाहिये। इस आधार को लेकर विद्वानों के दो संघ संसार में देखे जाते हैं। एक का कहना है कि मूल तत्त्व चेतन है। वही चेतन तत्त्व इस विलक्षण जगत् के रूप में परिणत होता या भासता है। यह विचारधारा भारतीय दर्शन शास्त्र में वेदान्त एवं अनेक उपनिषदों की समझी जाती है। इस रूप में वेदान्त और उपनिषदों की सर्वश्रेष्ठ

व्याख्या भगवान् आदि शंकराचार्य ने की है। यह नहीं कहा जा सकता कि शंकराचार्य से पहले वेदान्त और उपनिषदों की इस प्रकार की व्याख्या नहीं की जाती थी। निश्चित ही यह विचार परम्परा पर्याप्त प्राचीन है, पर इसके परिमार्जित असन्दिग्ध उल्लेख उतने प्राचीन आज उपलब्ध नहीं हैं। अतएव इस विचारधारा के साथ आचार्य शंकर का नाम जुड़ गया है। इसका यह अभिप्राय न समझना चाहिये कि भगवान् शंकर इनका उपज्ञ है, अथवा उस से पूर्व इन विचारों का सर्वथा अस्तित्व न था।

विद्वानों का दूसरा संघ यह कहता है कि मूलतत्त्व अचेतन अथवा जड़ है। यह विचारधारा पहली से प्राचीन है। भारतीय प्राचीन इतिहास से यह ज्ञात होता है कि इसका आदि प्रवर्त्तक आचार्य बृहस्पति था। उसने समस्त चेतनाचेतन जगत् के मूल में एक ही तत्त्व को स्वीकार किया है और वह जड़ अथवा अचेतन है। उसका ही नाम अन्यत्र प्रकृति अथवा अधिभूत है। वही तत्त्व किसी अवस्था में आकर एक ऐसे विशेष अस्तित्व को प्राप्त कर लेता है, जो उसकी पहली वास्तविक अवस्था से अति विलक्षण प्रतीत होता है, अधिभूत की उसी अवस्था के नाम चेतन, अध्यात्म आदि रख लिये जाते हैं। पहले विचार में जिस प्रकार चेतन, मूल एवं वास्तविक तत्त्व है और यह अचेतन उसी का अवास्तविक विनाशी विकार अथवा परिणाम समझा जाता है इसी प्रकार दूसरे विचार में मूल वास्तविक तत्त्व जड़ है. उसका ही एक विशेष परिणाम अथवा विकास या विकार चेतन है, जो कुछ काल तक उस अवस्था में टिमटिमा कर बुझ जाता है और अपनी इस अवास्तविक स्थिति को छोड़ कर फिर उसी मूल वास्तविक अवस्था जड़ रूप में चला जाता है। इस प्रकार परस्पर विलक्षण इन दोनों मान्यताओं को स्वीकार करने वाले विद्वान् एक दूसरे से सर्वथा विपरीत अर्थ का प्रतिपादन करते हुए देखे जाते हैं।

तत्त्वानुसन्धान की इन दोनों विचारसरणियों में जब गहराई से पैठा जाता है, तो यह स्पष्ट हो आता है, कि इन दोनों की विभिन्नता ऊपर से ही प्रतीत होने वाली है। वस्तुतः इन दोनों का आधार एक है, और और वह यह है कि समस्त चेतन अचेतन जगत् का मूलतत्त्व एक है। यह आगे का विचार है कि उस मूलतत्त्व का स्वरूप क्या माना जाय, या मूलतत्त्व क्या हो सकता है। वस्तुतः उसका स्वरूप तो एक ही संभव है, केवल विभिन्न रूप में हमारे विचार करने से वस्तु-स्थिति में कोई अन्तर नहीं आ सकता। हां! हम उस के नाम अलग अलग अवश्य रख सकते हैं और उन नामों का आधार हमारे विचारों की विलक्षणता समझा जा सकता है। मान लीजिये, कि हमने उस मूल तत्त्व को 'चेतन' नाम दे दिया है। चेतनवादी विद्वानों ने उसके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये जो निष्कर्ष मालूम किये हैं उनके आधार पर यही कहा जा सकता है कि वह मूलतत्त्व, चेतन और अचेतन समस्त जगत् का उपादान है। मूलतत्त्व का यही स्वरूप दूसरे संघ के विद्वान् भी कहते हैं। उनकी भी यही धारणा है कि इस समस्त चेतन जड़ जगत् का एक ही मूल उपादान है और वास्तव में वह जड़ है। इस विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले संघ के विद्वानों को 'चेतन-वादी' या आत्मवादी केवल इस आधार पर मान लिया जाता है कि उन्होंने मूलतत्त्व का नाम चेतन अथवा आत्मा रख लिया है। इसी प्रकार दूसरे संघ के विद्वानों को जो अनात्मवादी अथवा अधिभूतादि या जड़वादी कहा जाता है, उसका केवल यह कारण है कि उन्होंने मूल तत्त्व का नाम जड़ अथवा अनात्मा बताया है। उसके वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में दोनों ही विचारों के अनुसार कोई विभेद नहीं कहा जा

सकता, जब कि दोनों यह कहते हैं कि चेतन और अचेतन समस्त जगत् उस एक ही मूल तत्त्व का विकार या परिणाम है। चेतन, अचेतन रूप में अथवा अचेतन, चेतन रूप में परिणत हो जाता है, ये दोनों कथन उक्त विचारधाराओं को एक ही स्तर पर ला पटकते हैं। ऐसी स्थिति में इनको परस्पर इतना विलक्षण नहीं माना जा सकता, जैसी कि ये आपाततः कहने में प्रतीत होती हैं।

इस प्रसंग में वास्तविक विवेचनीय अर्थ यह है कि इन दोनों प्रकार की अनुभूतियों का जो चेतन और अचेतन को विभिन्न रूप में उपस्थित करती हैं, क्या यह विभेद वास्तविक है? अर्थात् इन दोनों प्रकार के तत्त्वों का मूल रूप में वास्तविक अस्तित्व है? अथवा ये किसी एक ही तत्त्व के दो रूप हैं जो विभिन्न अनुभूतियों के आधार हैं।

इस स्थिति को मान लेने पर कि संसार में दो विलक्षण प्रकार के तत्त्वों की अनुभूति होती है, निर्बाध रूप में यह नहीं कहा जा सकता, कि मूल में भी इन दोनों का अस्तित्व है; क्योंकि एक मूल तत्त्व दोनों विलक्षण रूपों में प्रतीत हो सकता है। तब मूल में एक ही तत्त्व माना जाना चाहिये, यह अभी ऊपर निर्देश किया गया है कि इस सिद्धान्त के आधार पर संसार में विद्वानों की दो विभिन्न विचार धारा अति प्राचीन काल से प्रचलित है, जिन में कुछ विद्वान् मूल तत्त्व का स्वरूप चेतन बताते हैं, जब कि दूसरे उसी मूल तत्त्व को अचेतन अथवा जड़ कहते हैं। पर यह निश्चित है कि वह एक ही मूलतत्त्व जड़ और चेतन दोनों रूप नहीं हो सकता। वे विद्वान् स्वयं भी ऐसा नहीं मानते। प्रत्युत उस तत्त्व के मूल रूप को एक ही मान कर अन्य स्थिति को उसका विकार या परिणाम बताते हैं। केवल चेतनवादी मूलतत्त्व को चेतन स्वरूप मान कर समस्त जड़ जगत् को उसी का विकार कहता है, जबकि भौतिकवादी मूलतत्त्व को जड़ बता कर संसार में प्रतीयमान चेतन अनुभूति को भी उसी का विकार अथवा विकास-प्रतिपादित करता है।

इस स्थिति के सामञ्जस्य के लिये दो बातें सम्मुख आती हैं, या तो इन विचारों की केवल आंशिक सत्यता स्वीकार की जाय अन्यथा दोनों में से कोई एक अवश्य असत्य सिद्ध होगा। समस्त प्राकृत जगत् जड़ तत्त्व का विकार है, यह ठीक है। पर यह अनुभूयमान चेतना भी जड़ का ही विकार है, इसकी वास्तविकता को भौतिकवादी अभी तक स्पष्ट नहीं कर पाये हैं। उनका यह कहना कि चेतना के अंश जड़ तत्त्वों में ही विद्यमान रहते हैं अथवा अनन्त जड़ प्रकृति के गर्भ में ही चेतन का भण्डार भरा पड़ा है और अवसर पाकर प्रकट रूप में आ जाता है; इस बात को स्पष्ट करता है कि जड़ तत्त्व ही स्वयं चेतन का स्वरूप ग्रहण नहीं करता, प्रत्युत उसकी सत्ता प्रकृति के साथ स्वतंत्र रूप में सदा बनी रहती है। आज तक किसी भी आधिभौतिक वादी वैज्ञानिक ने इस प्रकार के आधार प्रस्तुत नहीं कर पाये हैं जिस से यह स्पष्ट किया जा सके कि जड़ तत्त्व ही चेतन का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इस लिये आधिभौतिकवाद का इतना अंश सत्य है कि समस्त जड़ जगत् मूल उपादान जड़ प्रकृति है। चेतन तत्त्व जड़ का विकार नहीं है।

इसी प्रकार केवल चेतनवाद में, चेतन के अस्तित्व पर अधिक बल देने का यह कारण प्रतीत होता है कि चेतन के बिना अकेला अचेतन किसी प्रकार की प्रवृत्ति कर नहीं सकता। उसी के आश्रय अथवा प्रेरणा में प्रकृति के समस्त विकार हुआ करते हैं। इतने अंश में इस विचार को वास्तविक कहा जा सकता है। पर चेतनवादी चेतन से अतिरिक्त तत्त्व की सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सके हैं। माया नाम से उन विद्वानों ने प्रकृति के अस्तित्व को स्वीकार किया है।

दान की महिमा

श्री ओम्प्रकाश

बृहदारण्यकोपनिषद् में एक कथा आती है। एक बार देवता, मनुष्य और राक्षस तीनों प्रजापति ब्रह्मा के पास उपदेश लेने गये। तीनों ने ही निरन्तर कई वर्षों तक प्रजापति की उपासना और आराधना की थी, अतः प्रजापति उन से प्रसन्न थे। राक्षसों ने जब उपदेश की प्रार्थना की तो प्रजापति ने कहा 'द'। मनुष्यों को भी इसी 'द' अक्षर का उपदेश दिया देवताओं के लिए भी उपदेश में 'द' अक्षर ही कहा। तीनों प्रकार के व्यक्ति अपने २ अनुसार सोचने लगे कि आखिर प्रजापति ने हमें इस द अक्षर से क्या उपदेश दिया है। राक्षसों ने सोचा कि हम स्वभाव से क्रूर

उन के विचार से माया एक ऐसा तत्त्व है, जो चेतन ब्रह्म का स्वरूप नहीं हो सकता। चेतन का जो वर्णन उन विद्वानों ने किया है, वही वर्णन वही स्वरूप माया का नहीं है। फलतः उन के विचार के अनुसार भी वे दोनों परस्पर विलक्षण तत्त्व हैं, यह निर्भ्रान्त रूप में कहा जा सकता है। इस प्रकार अचेतन तत्त्व को चेतन का विचार नहीं माना जा सकता। इस का परिणाम यह निकलता है, कि मूल में चेतन और जड़ दोनों ही तत्त्वों के अस्तित्व को स्वीकार किया जाना चाहिये। कपिल ने दार्शनिक विवेचन के इसी प्रकार के आधार को स्वीकार किया है।

कपिल की विचार धारा, जो वास्तविक तत्त्व-निर्देश का एक मूलभूत आधार है केवल इसलिए सच नहीं मानी जानी चाहिये. कि उपर्युक्त दोनों परस्पर विरोधी विचारों में से किसी एक को असंदिग्ध रूप में स्वीकार किया जाना अशक्य है, इस लिए किसी मध्यमार्ग का आश्रय लेना आवश्यक होगा, प्रत्युत चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के तत्त्वों के अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का यह एक रहस्य है, जिस को उद्घाटन करने के स्पष्ट संकेत कपिल ने किये हैं।

जब परस्पर विरोधी उपर्युक्त दोनों विचार धारा एक दूसरे का प्रत्याख्यान करती हैं, तब उन से दो परिणामों पर पहुँचा जा सकता है। प्रथम तो यह कि दोनों का एक दूसरे के प्रत्याख्यान द्वारा, वास्तविकता का शून्य में पर्यवसान मान लिया जाय, और यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया जाय, कि किसी तत्व का वास्तविक अस्तित्व नहीं है। परन्तु संसार में होने वाली वास्तविक अनुभूतियां के परिणाम इस के विपरीत जाते हैं. इस लिये केवल अन्धानुकरण रूप में इस स्थिति का स्वीकार कर लेना वास्तविकता से दूर जा पड़ना है। तब दूसरा परिणाम यह हो सकता है, कि मूलभूत तत्वों की स्वीकृति में उन के पारस्परिक विरोध की कल्पना का ही अवसर न हो। दार्शनिक विचारों के आदि उदय काल में कपिल ने इस वास्तविकता को गहराई तक समझा, और उस के फलस्वरूप प्रतिपादन किया, कि चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के तत्वों का वास्तविक अस्तित्व भी परस्पर विरोधी न हो कर सहानुभूतिपूर्ण रहता है, तथा इसी सहयोग के आधार पर समस्त संसार चक्र चालू है। इस प्रकार समूचे जड़ जगत् का मूल उपादान अचेतन प्रकृति है, और उस के सहयोग में चेतन अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है, यह अधिक युक्तियुक्त और वास्तविक सचाई के अधिकाधिक समीप है। यह कहना कठिन एवं अप्रामाणिक होगा, कि एक ही जड़ अथवा चेतन, समस्त चेतन अचेतन जगत् का मूल है। फलतः भारतीय दर्शन के विवेच्य आधार भूत तत्व चेतन और अचेतन उभय हैं।



होते हैं, अतएव हमें 'द' से दया करने का उपदेश दिया होगा। मनुष्यों ने सोचा कि हमारे में स्वभाव से कंजूस वृत्ति विद्यमान होती है, अतएव हमें दूसरों को दान करते रहना चाहिये। देवों ने भी विचार किया कि हमें 'द' से दमन अर्थात् इन्द्रियों को वश में करने के लिये कहा होगा। तीनों इस प्रकार अपने २ अनुसार एक ही अक्षर द' से उपदेश लेकर चले गये। विचारणीय यह है कि प्रजापति ने मनुष्यों को 'द' से दान करने का ही उपदेश क्यों दिया।

संसार में मनुष्य जब पैदा होता है तब से उस की स्वाभाविक वृत्ति होती है कि वह पदार्थों का अपने पास खूब सञ्चय करे। मनोवैज्ञानिक इस वृत्ति को ममता या स्वामित्व यह नाम देते हैं। ज्यों ज्यों वह बढ़ता जाता है त्यों त्यों सञ्चय करने की उसकी यह प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है। १००) मासिक वेतन पाने वाला व्यक्ति २००) मासिक वेतन की इच्छा करता है। २०० हो जाने पर ४००, फिर ८०० इस प्रकार हमेशा अधिक से अधिक धन संग्रह को उस की यह प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती जाती है। धन कमाने की यह प्रवृत्ति वेद की दृष्टि में बुरी नहीं, वेद का कहना ही है कि 'वसुमान् भूयासम्' अर्थात् हे मनुष्य तू खूब धन कमा। परन्तु केवल पदार्थों और ऐश्वर्यों का सञ्चय कर के उसे किसी सुयोग्य पात्र को दान न देना, किसी शुभ कर्म में न लगाना, दीन, दुखियों, निराश्रितों, भूखों और नंगों की सेवा में खर्च न करना एक महान् दोष और दुर्गुण है जो मनुष्य में स्वभाव से घर किये होता है। इसीलिये ब्रह्मा ने मनुष्यों को 'द' अक्षर से और किसी वस्तु का उपदेश नहीं दिया। उन्होंने यह नहीं कहा कि वह संसार में मोटरों, हवाई जहाजों पर बैठ कर सैर करे और बड़े बड़े आलीशान भवनों में मौज करे। निस्सन्देह वह भी करे, परन्तु उस के साथ साथ उसे याद रखना चाहिये कि दान के अभाव में यह सब वस्तुएं सुख देने के स्थान पर दुखदायक सिद्ध हो सकती हैं।

हमारे आदि पवित्र ग्रन्थ वेद हैं। चारों वेदों में मनुष्य को स्थान स्थान पर दान करने की प्रेरणा की गई है, मानो परमेश्वर भी मनुष्य को इस सहज जान प्रवृत्ति से रोकने के लिये पहले ही उन्हें सचेत कर देना चाहता हो। वेद का सन्देश है—

'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर'
(अथर्व० ३ । २४ । ५)

अर्थात् हे मनुष्य! तू धन कमा और खूब कमा। धन कमाते हुए तू सैकड़ों हाथों से उन एश्वर्यों का सञ्चय कर। परन्तु दान करते समय तेरे वे सौ हाथ एक या दो नहीं रह जाएं अपितु वे हजार हो जायें। हजारों हाथों से निरन्तर तू दान करता रह। तेरे द्वार से कोई भूखा बिना भोजन के लौटने न पाए, कोई नंगा बिना वस्त्र के जाने न पाये, कोई निराश्रित बिना घर के न रहने पाये। कितना सुन्दर उपदेश है वेद का।

वेद के इसी सत्य और सन्देश को आज से कई हजार वर्ष पूर्व हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों और राजाओं ने समझा था और इसे अपने जीवन में अपनाया था। रावण को चाहे हम कितना ही बुरा कहें, परन्तु उसने वेद की इस आज्ञा को क्रियात्मक रूप में अपने जीवन में स्थान दिया था। इसी दान के कारण कुन्ती पुत्र कर्ण, सूत पुत्र कर्ण हो कर भी अपनी कीर्ति पताका इस संसार क्षेत्र में सदा लहराता रहेगा। राजा हरिश्चन्द्र भी इसी कारण सदा अमर बने रहेंगे। वेद की इसी वाणी को ईसाइयों के धर्म गुरु ईसा ने भी समझा था। तभी तो वह पुकार पुकार कर कहता था कि 'यदि तेरा पड़ौसी नंगा है और तेरे पास दो कुर्ते हैं तो एक उसे दे दे। आज का शिक्षित वर्ग

उस के इस उपदेश पर हंस सकता है, तानें कस सकता है और केवल कोरी कल्पना और आदर्श कह कर टाल सकता है परन्तु जिस दिन और जिस समय वह वेद की इस वाणी को अपने जीवन में क्रियात्मक रूप में अनुभव कर लेगा, तब उसे पता चलेगा कि सचमुच वेद की वाणी में कितना महान् सत्य और आनन्द छिपा था।

दान करने का यह उपदेश वेद में गौण नहीं है, अपितु स्थान-स्थान पर लोगों को वेद यही संदेश देता दीखता है। यह देखिए अथर्ववेद के ही ७ वें काण्ड के २६ वें सूत्र के ८ वें मंत्र में वेद भगवान् फिर बोल उठे हैं—

हे मनुष्य ! दांए, बांए दोनों हाथों से भर भर कर दान कर। तथा—

तू घनों का दान कर और खूब भर भर कर दान कर। आज सर्वत्र वेद की इसी भावना को समझने की आवश्यकता है। अनेक कल्पों और युग-युगान्तर से वेद भगवान् मनुष्य की इस प्रवृत्ति से बार-बार उसे सचेत कर रहे हैं।

यहां पर प्रश्न होता है कि आखिर दान न करने से हानि क्या है? क्यों न सब अपना-अपना कमाएं और खाएं और क्यों बेफायदा किसी को कुछ देकर उसे अपने प्रति कृतज्ञ बनाए जाए। यहां हम इसी प्रश्न पर वेद के ही दृष्टिकोण से कुछ विचार करेंगे।

दान न करने से कुछ हानियां तो ऐसी है जिन्हें मनुष्य स्वयं अपने जीवन में अनुभव कर सकता है। भिक्षा पाने, सञ्चय करने तथा उस का दान न करने से मनुष्य के अन्दर एक कंजूसी का भाव आ जाता है। ऐसे समय वह अपने ऊपर भी धन खर्च करना फिजूलखर्ची समझता है। बौद्ध ग्रन्थ जातकों में इस सम्बन्ध में एक बड़ी मनोरञ्जक कथा आती है कि एक बार वाराणसी नगर में एक बड़ा भारी सेठ रहा करता था जो जितना धनवान् था उतना ही कंजूस भी था। एक बार उस की मधु पीने की बड़ी इच्छा हुई परन्तु यदि वह पिए तो घर में इस के पुत्र स्त्री आदि को भी देना पड़े, इस से खर्च बेफायदा दुगना और तिगुना हो जाने की सम्भावना थी। कुछ दिनों तक उन्होंने आत्म-नियन्त्रण रक्खा, आखिर जब इच्छा बहुत बलवती हो गई और उन्हें अपने पर नियन्त्रण रखना दुष्कर हो गया, तब उन्होंने अपनी स्त्री से चुपचाप इस का प्रबन्ध करने को कहा और उसे लेकर वे दूर कहीं सुनसान स्थान पर एक घनी झाड़ी के नीचे हो कर डरते-डरते पीने लगे। कहानी लम्बी है परन्तु यहां उस का इतना ही तात्पर्य है कि जिस प्रकार वह सेठ दान न करने से एक छोटी सी चीज़ के स्वयं उपभोग करने में भी डरता रहा, वैसी ही प्रवृत्ति प्रायः दान न करने वालों की हो जाती है। इसी कंजूसी के बारे में वेद कहता है—

'वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते।'

(अथ० ५. ७. ७.)

अर्थात् हे कंजूसी ! मैं तुझे जानता हूँ कि तू विनाश करने वाली और व्यथा देने वाली है। इस लिए मैं चाहता हूं कि—

'उत्तिष्ठाराते प्रपत मेह रस्थाः।'

(अथ० १४. २. १६.)

तू उठ भाग और हमारे पास न रह।

इस प्रवृत्ति के अतिरिक्त सञ्चित धन की रक्षा में जो परिश्रम और कष्ट होता है वह भी कुछ कम व्यथा-दायक नहीं है। अधिक धनी व्यक्तियों को रात्रि में नींद आराम से नहीं आती, चोरों का डर सताता रहता है। अपनी स्त्री और पुत्रों से भी डर लगा ही रहता है कि कहीं वे धोका न दे दें। भारतवर्ष के कुबेर हैदराबाद

के निजाम के बारे में सुना जाता था कि उन के पास सोने से भरी चार कोठरियां थीं जिन में वे रात को बारी बारी से दो दो घण्टे सोया करते थे। इस के विपरीत दान करने वालों की दशा का वर्णन भी जरा वेद के ही मुख से जानने की कृपा करें। वेद कहता है—

'सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो, बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति। यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति' (ऋग्वेद १।१२५।२)

अर्थात् प्रभात वेला में अपने द्वार पर अन्य किसी अतिथि या भिक्षुक को जो अपनी दान रस्सी से अच्छी प्रकार जकड़ लेता है वह खूब उत्तम २ गाएं वाला हो जाता है अर्थात् खूब ऐश्वर्यवान् बन जाता है और उस की आयु भी खूब लम्बी हो जाती है। कैसा चमत्कार है वेद का यह! दीजिए आप दान में अपनी सब ऐश्वर्य सम्पत्ति, बदले में आप को उस से दुगना और तिगुना ऐश्वर्य मिलेगा। दे दीजिए अपना घोड़ा आदि सब वाहन, उसके बदले में और भी उत्तम २ वाहन आप को प्राप्त होंगे। लगाए अपना सब समय निरन्तर दान चर्चाओं में, आप को संसार भर में काम करने का और भी अधिक समय मिलेगा, आप की आयु लम्बी होगी, सुख समृद्धि बढ़ेगी और समाज में जो आप की प्रतिष्ठा और यश होगा, उस का तो कहना ही क्या—

दक्षिणावान्प्रथमो हूत एति, दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय॥
(ऋग्वेद १०।१०७।५)

अर्थात् सब समाजों में, सभाओं में दानी मनुष्य सब का नेतृत्व करता है। विशाल जन-समुदाय का नेता भी दानी ही बनता है। सच पूछो तो दानी मनुष्य ही वास्तव में सब का हृदय सम्राट् होता है।

बहुधा दान करने वाला मनुष्य अपने सञ्चित ऐश्वर्य के बल पर सोचा करता है कि मैं अमर हो जाऊँगा। इतिहास बताता है कि मुहम्मद गौरी और शहाबुद्दीन ने भी यही सोचा था। परन्तु मरते समय उन्होंने देखा—

'न वा उदेवा क्षुधामिद्वधं ददुरुताशितम् उपगच्छन्ति मृत्यवः' (ऋग्वेद १०।११७।१)

कि मृत्यु भूखों और नंगों के पास ही नहीं अपितु खाने पीने वाले अमीर मनुष्यों के पास भी अवश्यमेव आती है। भेद केवल इतना ही है कि कोई आज कराल-काल के जबड़ों में है तो किसी की कल बारी है। अतएव आइए! वेद की आज्ञानुसार अपने इस थोड़े से समय में दान करने का महान् व्रत लेकर अपने जीवन को सुफल कर लें। ये सम्पत्तियां तो बड़ी चञ्चल हैं—

'ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमुपतिष्ठन्त रायः।'

रथ के पहियों के समान यह लक्ष्मी का चक्र बड़े वेग से सदा घूमता रहता है। तब फिर क्यों न दान कर स्थायी सुख और ऐश्वर्य का सञ्चय करें?

दान की महिमा और ऐश्वर्य के पश्चात् यह भी एक अत्यन्त आवश्यक विचारणीय विषय रह जाता है कि दान तो करना चाहिए परन्तु किन को? क्या कुम्भ या ऐसे दूसरे अवसरों पर आए असंयमी साधुओं को दान करें जो संसार में शान्ति और सदाचार के स्थान पर निरन्तर दुःख और दुराचार का बीज बोने में तत्पर हैं अथवा क्या आज की अधिकांश हिन्दू जनता के विश्वास के अनुसार उन बेफायदा घूमते हुए कुत्तों, चीटियों और सांपों को जा कर रोटी, दूध आदि का दान करें, जब कि देश में मनुष्यों तक को खाने के लिए अनाज उपलब्ध नहीं होता है। क्या वेश्याओं, चोर बाज़ारी करने वाले बड़े बड़े दुष्ट पुरुषों, चोर, लुटेरे डाकुओं को जी खोल कर दान करें? तो फिर किस को दान करें? वस्तुतः आज हमारा देश इसी प्रश्न को

मीमांसा में डुबकी लगा रहा है। उसे पता नहीं कि वह दान किस को करेगा, दान देना हमारे देश में प्रारम्भ से ही एक महान् और ऊंचा कर्तव्य समझा जाता रहा है, परन्तु दान देते समय सदा हम ने गलती की। प्राचीन समय में महारानी सीता ने रावण को (भिक्षा) दान दे कर गलती की थी. पाण्डवों ने कौरवों को बार-बार क्षमा दान दे कर उसी गलती को दोहराया, परशुराम को भी कर्ण को अपनी विद्या देकर बाद में कुपात्र विचार कर पश्चात्ताप करना पड़ा। इसी गलती के कारण पृथ्वीराज ने मुहम्मद गौरी को बार बार क्षमादान देकर भारतवर्ष को अनेक वर्षों के लिए गुलाम और पराधीन बना दिया था और इसी गलती को आज फिर हमारा समस्त देश दुहराने में लगा हुआ है, उसी का परिणाम है कि देश में भुखमरी और बेकारी निरन्तर घर किए जा रही है। इसी लिए वेद दान देने की प्रेरणा के साथ साथ प्रत्येक मनुष्य को इस बात के लिए भी सचेत कर देना चाहता है कि वह दान के समय कुपात्र और सुपात्र का अवश्य विचार कर ले, उस का सन्देश है—

'रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय'

(अथ० १८. ३. ४३)

कि हे मनुष्य ! तू दान तो कर पर उन्हें ही जो परोपकारी हों, जो सदैव समाज के उपकार में संलग्न रहते हैं। तेरा दान चाणक्य जैसे उन तपस्वी और निरीह ब्राह्मणों और साधुओं को जाए, जो एक महा-साम्राज्य के महा मन्त्री हैं। तथापि जिन के घर की दशा है—

'उपलकलमेतद्भेदकं गोमयानाम्
वटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतम्।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणभिराभि-
र्विनमित पटलान्तं दृश्यते जीर्ण कुड्यम् ॥

(मुद्राराक्षस ३। १५)

जीर्ण पर्णकुटी के एक कोने में पाथियों को तोड़ने के लिए एक हथौड़ा रक्खा है, दूसरे कोने में बटुओं द्वारा लाई कुशाओं का एक बण्डल पड़ा हुआ है। पर्ण कुटिया की छत सुखाई गई लकड़ियों के बोझ से झुक गई है और जिस के अन्दर अनेक शिष्यों से घिरे महामात्य चाणक्य का आसन विराजमान है। तभी तो वह त्यागी ब्राह्मण एक बड़े साम्राज्य का मन्त्री पद सम्भाल सका। इस लिए आज आवश्यक है कि हमारी भावना इस प्रकार की हो कि—

'न पाप त्वाय रासीय'

(अथ० २०. ८२. १)

मैं पाप कर्म के लिए कभी दान न दूं।

वेद की दान की इस भावना का आज सब कहीं प्रसार करने की आवश्यकता है। देश में सुपात्र के दान के अभाव में भयङ्कर परिणाम प्रति दिन सुरसा के मुंह की तरह या जंगल में लगी आग की तरह बड़ी तेज़ी से और बड़े व्यापक रूप में बढ़ते जा रहे हैं। आज हमारी इस संकुचित और कुमार्गगामी प्रवृत्ति के परिवर्तन की अविलम्ब आवश्यकता है। आइए ! परम पिता परमात्मा से यही प्रार्थना करें कि—

'अदित्सन्तं दापयतु प्रजानन्।'

(अथ० ३. २०. ८)

हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानने वाले हैं। अतएव हम में जो दान नहीं करता उसे निरन्तर दान करने की अधिकाधिक प्रेरणा प्रदान करें। [गुरुकुल वार्षिक उत्सव पर वेद सम्मेलन में पढ़ा गया निबन्ध]।



चिकित्सा विज्ञान के हिन्दी पारिभाषिक शब्द

डा० सुरेन्द्रनाथ गुप्ता एम० बी० बी० एस०[1]

अवश्यम्भावी परिवर्तन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की दबी हुई आत्मा और स्वाभाविक प्रवृत्तियां पुनः जाग उठी हैं। देश को भारतीयता अंग्रेजी भाषा की दासता से उन्मुक्त हो चुकी है, अब शीघ्र ही उस की रही सही शृंखलायें भी टूटने वाली हैं। देश के प्रायः सभी विद्वानों और नेताओं का ध्यान राष्ट्रभाषा की समस्या की ओर गया और इस प्रश्न पर काफी गम्भीरता के साथ विचार किया गया। अंग्रेजी के स्थान पर किसी देशी भाषा को ही राष्ट्रभाषा बनाने के प्रश्न पर प्रायः सभी एकमत हैं। केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद् में प्रबल बहुमत द्वारा भारत के संविधान में हिन्दी ने अपना यह स्थान प्राप्त कर लिया है। प्रांतीयता तथा संकीर्ण साम्प्रदायिकता से परिचालित कुछ नेताओं का विरोध और उन की ढलमटोल नीति सत्य की गति को अधिक रुद्ध नहीं कर सकती। आज नहीं तो कल हमारे विश्वविद्यालयों और कालेजों में हिन्दी अपना वास्तविक स्थान ग्रहण करेगी। इस लिए दूरदर्शिता तथा बुद्धिमत्ता इसी में है कि हम इस अवश्यम्भावी परिवर्तन के लिये अभी से तैयारी कर चलें।

शुभ लक्षण

इस दिशा में सब से प्रमुख प्रश्न पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का है। इधर कुछ प्रांतीय सरकारें और कुछ गैरसरकारी संस्थायें इस ओर प्रयत्नशील हुई हैं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन तथा नागपुर के डाक्टर रघुवीर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उत्तरप्रदेशीय सरकार के विभिन्न विभाग भी अपना हिन्दीकरण करने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। उत्तरप्रदेश का चिकित्सा तथा स्वास्थ्य विभाग भी तत्परता से काम कर रहा है। किन्तु खेद का विषय है कि विभिन्न मेडिकल कालेजों के प्रधानाध्यापकों की उदासीनता अभी भी अपने उसी रूप में दिखाई पड़ रही है। उन की इस उदासीनता का कारण हिन्दी के प्रति उपेक्षा अथवा अंग्रेजी से विशेष प्रेम नहीं है, अपितु उन की अकर्मण्यता ही अधिक है। अब अपने बुढ़ापे में सहसा ये परिवर्तन करने की क्षमता वे अपने में नहीं पा रहे हैं और न उस के लिए प्रयत्न करना ही उन्हें अंगीकार है।

थोड़ी देर के लिए हम मान भी लें कि अभी चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा हिन्दी में नहीं दी जा सकती, फिर भी सर्वसाधारण जनता को उस के लिए आवश्यक साहित्य तो देना ही होगा और वह केवल हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में ही दिया जायेगा। इस लिए कम से कम इस के लिए चिकित्सा विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता तो है ही।

फिर भी पारिभाषिक शब्दों के निर्माण के लिए जो कुछ हो रहा है, वह हमारी कर्मण्यता, जागरूकता और तत्परता का पर्याप्त द्योतक है। पर जल्दी में नशे की सी व्यग्रता से काम करने में जो हानि हो सकती है उसे भी सोच लेना आवश्यक है।

वर्तमान प्रयत्नों में कमी

पारिभाषिक शब्दों को गढ़ने के इन सभी प्रयत्नों में एक महत्वपूर्ण कमी दिखाई पड़ती है, जिसके कारण यह कार्य दोषपूर्ण और अधूरा होगा। प्रायः ये

१ हिन्दी में चिकित्सा सम्बन्धी अनेक पुस्तकों के लेखक, राजकीय चिकित्सालय में डॉक्टर हैं।

सभी ऐसे व्यक्तियों द्वारा हो रहे हैं जो हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी प्रभृति भाषाओं के पण्डित तो अवश्य हैं और शब्दों की खोज एवं उन के निर्माण का कार्य भी कुशलतापूर्वक कर सकते हैं, परन्तु जिस विषय के पारिभाषिक शब्द वे बनाने जा रहे हैं उस से नितान्त अनभिज्ञ हैं। अतः भाषा के इन विद्वानों से पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में भ्रान्तियां हो जाना बहुत सम्भव है।

पारिभाषिक शब्दों की उत्पत्ति के आधारभूत सिद्धान्त

किसी भी आधुनिक भाषा और विज्ञान के पारिभाषिक शब्द किसी एक काल, देश और स्कूल द्वारा ही निर्मित नहीं होते, अपितु उस विज्ञान की उन्नति और विकास के साथ-साथ विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न स्थान पर देश-देशान्तरों के विविध वैज्ञानिकों द्वारा रचे जाते हैं। इनकी रचना में इनके निर्माता की व्यक्तिगत रुचि, तत्सम्बन्धी घटना के इतिहास आदि का विशेष प्रभाव होता है। इस लिये पारिभाषिक शब्दों की उत्पत्ति के आधारभूत सिद्धान्तों को शब्दों की सीमा से बांधा नहीं जा सकता। वास्तविकता तो यह है कि प्रायः प्रत्येक पारिभाषिक शब्द का अपना इतिहास और उसकी रचना का अपना ही सिद्धान्त होता है। फिर भी कुछ स्थूल सिद्धान्त तो गिनाये ही जा सकते हैं।

१. बहुत से पारिभाषिक शब्द किसी विशेष ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेकर बनते हैं। ये ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देश, काल और व्यक्ति से सम्बन्धित हो सकती है अथवा उस पदार्थ विशेष या विषय के आविष्कार या अनुसन्धान सम्बन्धी किसी घटना को लेकर बनी हुई हो सकती है। 'सिनकोना', 'माल्टा फ़ीवर', 'रॉकी माउन्टेन फ़ीवर', 'क्यू फ़ीवर', 'मदुरा फुट', 'एम बी ६९३' आदि अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। कुनीन उत्पन्न करने वाले पेड़ का 'सिनकोना' नाम 'काउन्टेस सिनकोना' पीरू के स्पेन देशवासी काउन्ट सिनकोना की पत्नी के नाम पर रखा गया था। उसकी चिकित्सा के लिये इसका प्रयोग किया गया था।

२. बहुत से नाम और पारिभाषिक शब्द उस रोग, वस्तु विशेष अथवा क्रिया के किसी विशेष गुण या स्वभाव के द्योतक होते हैं। उदाहरणतः 'येलो फीवर', 'रिकेट्स' (अस्थिविकृति), 'ऑस्टियोमेलेशिया' (मृदुलास्थि), 'ऑस्टियोपोरोसिस' आदि।

३. तत्सम्बन्धी आविष्कार और अनुसन्धान करने वाले महान् वैज्ञानिकों के नाम पर भी अनेक पारिभाषिक शब्द बनाये जाते हैं। इस प्रकार के सहस्रों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

४, कुछ शब्द किसी देश और काल विशेष की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर भी बनते हैं। 'हाईजीन' और 'पेनेशिया' ऐसे ही शब्द हैं। ये दोनों शब्द दो यूनानी देवी देवताओं के नाम पर बने हैं।

५. बहुत सी औषधियों, द्रव्यों और रासायनिक पदार्थों के नाम उनकी उत्पत्ति के परिचायक होते हैं। जैसे कि 'पेनेसिलिन', 'स्ट्रेप्टोमाइसिन', 'ऑरियोमाइसिन', 'फोलिक एसिड' आदि।

६. अनेक रासायनिक द्रव्यों के नाम उन की रासायनिक रचना के आधार पर बनाये जाते हैं।

७. बहुत से शब्द ऐसे भी प्रयुक्त होते हैं जिन के नामकरण करते समय जो तत्सम्बन्धी धारणायें थीं और जिनके आधार पर वे नाम दिये गये थे, आगे चल कर वे ही धारणायें गलत साबित हुईं और इस प्रकार उन पर आधारित पारिभाषिक शब्दों का मूल अभिप्राय भी गलत हो गया। पर क्योंकि लम्बी अवधि तक प्रयोग होने के पश्चात् सर्वसाधारण उस शब्द की उत्पत्ति के इतिहास और उस में निहित मूल अभिव्यक्ति को भूल कर केवल उस से इंगित होने वाले

रूढ़ीगत सच्चे भाव को ही समझने लगा और इस लिए वैज्ञानिक जगत अब भी ऐसे नामों का प्रयोग करता जा रहा है। 'मलेरिया' तथा विटामिन' ऐसे ही शब्द हैं। जब मलेरिया ज्वर का सही कारण विदित नहीं था तब यह समझ कर कि यह रोग दूषित वायु के कारण होता है, इसे मलेरिया कहा गया। विटामिन शब्द की व्याख्या हम आगे करेंगे

८. इन के अतिरिक्त अन्य अनेक सिद्धांत भी हो सकते हैं, जिन की पूर्ण सूची गिनाना कठिन है। कभी कभी तो पारिभाषिक शब्दों की रचना करते समय अन्य सब बातें भूल कर अपना सुविधा का ही ध्यान अधिक रक्खा जाता है। जैसे कि विभिन्न विटामिनों के नाम 'ए', 'बी', 'डी'; 'ई'. 'के' 'एम', 'जी', 'एच', 'पी', आदि। इन अक्षरों का प्रयोग किसी सिद्धांत के आधार पर नहीं हुआ है। जैसे जैसे विटामिनों की खोज होती गई, वैज्ञानिक सुविधा की दृष्टि से अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षरों का प्रयोग उन के नामकरण के लिए होता गया। यदि आगे चल कर किसी विटामिन के अन्तर्गत विभिन्न प्रभेद पाये गये तो उस के नाम के आगे अंकों का प्रयोग कर के इन प्रभेदों का नामकरण भी कर दिया। जैसे कि. 'बी १', 'बी २', 'बी ३', 'बी ४', 'बी ५', 'बी ६', 'बी ७', आदि।

एक शब्द है 'डोपा' (DOPA)। यह छोटा सा नाम केवल सुविधा के दृष्टिकोण से इस पदार्थ के असली पूरे नाम का संकुचित रूप बना लिया गया है। इस पदार्थ का पूरा नाम है 'डिसऑक्सी फिनाइल एलेनिन' (Desoxy Phenyl Alanin) कितना लम्बा और कठिन है। इस लिए इन चारों पदों के प्रारम्भिक अक्षरों को मिला कर यह छोटा सा सरल नाम बना लिया गया।

इस प्रकार इन शब्दों को बनाते समय सुविधा का ध्यान ही सर्वोपरि रक्खा गया है।

पारिभाषिक शब्दों की भाषा

आजकल जहां एक ओर हिन्दी के प्रति अदम्य उत्साह है वहां कुछ व्यक्तियों में इस की आलोचना एक फैशन बन गई है। इन्हीं व्यक्तियों का कहना है कि हिन्दी के पारिभाषिक शब्द कठिन बनाये जा रहे हैं। इन के अनुसार पारिभाषिक शब्दों की भाषा रोजमर्रा का हिन्दी होनी चाहिये। किन्तु रोज़मर्रा की बोलचाल में केवल दैनिक जीवन, आहार-विहार, व्यवसाय आदि सम्बन्धी छोटी मोटी बातों का ही काम चल सकता है। इस भाषा में 'भूख लग सकती है'; 'हाजत महसूस होती है' 'बुखार चढ़ता है', और 'दवा पी जाती है', पर सर्वसाधारण को वैज्ञानिक विषयों से दैनिक जीवन में कोई प्रयोजन नहीं होता। इसलिए इन के रोज़मर्रा की भाषा में शब्द भी नहीं हैं। 'केमिकल' के लिए या तो 'कीमीयावी' लिखना होगा अथवा 'रासायनिक' दोनों ही समान रूप से कठिन हैं। 'क्वायटस' इन्टरप्टस' रोज़मर्रा की बोल चाल की अंग्रेज़ी का शब्द नहीं है और न आसान ही है, तो फिर यदि इसके लिये 'विशृंखल मैथुन' लिखा जाय तो अनुचित न होगा।

पारिभाषिक शब्द बनाते समय एक विशेष ध्यान और रखना पड़ता है। वह यह कि शब्द या पद छोटा हो, तथा विभिन्न उपसर्गों और प्रत्ययों आदि के प्रयोग से उसी एक शब्द से अनेक सम्बन्धित पारिभाषिक शब्द बनाये जा सकें। इस प्रकार स्वभावतः पारिभाषिक शब्दों में सन्धि और समास एवं उपसर्ग और प्रत्यय का प्रयोग अनिवार्य है, और इसलिये रोजमर्रा की भाषा के स्थान पर मूल भाषा और व्याकरण का प्रयोग अपरिहार्य है।

अंग्रेज़ी के अधिकांश पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं जो लैटिन और ग्रीक भाषाओं (योरोप की मूल भाषायें)

से बने हैं, पर साधारण व्यक्ति इन्हें अंग्रेजी का मानता है और अब वास्तव में ये अंग्रेजी हो भी गये हैं, पर वे निश्चय ही रोजमर्रा की अंग्रेजी के नहीं हैं. और न वे सरल हैं। पर क्योंकि अब हम इनके अभ्यस्त हो गये हैं इस लिये वे कठिन नहीं मालूम होते, और क्योंकि संस्कृत जनित हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों से अभी हमारे कान अपरिचित हैं इसलिये वे अपेक्षाकृत सरल और कोमल होते हुये भी कठिन मालूम होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दों का निर्माण करने के लिये मूल भाषा संस्कृत का प्रयोग अनिवार्य और अपरिहार्य है। हां, इसके अतिरिक्त विभिन्न जनपदीय भाषाओं में प्रचलित अनेक सुन्दर शब्द भी विद्यमान हैं, जिन्हें हम छोड़ नहीं सकते। इनके उदाहरण आगे दिये जायेंगे।

पारिभाषिक शब्दों के हिन्दीकरण की वर्तमान दशा

परिभाषिक शब्दों को बनाते समय आज कल सब से अधिक दूषित प्रवृत्ति प्रत्येक शब्द अथवा पद का अक्षरशः अनुवाद करने का प्रयत्न है। यहां हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि अनुवाद किया ही न जाये। पर मक्खी के स्थान पर मक्खी मार कर चिपकाना हास्यास्पद ही होगा। जिन अधिकांश शब्दों के अनुवाद से सुन्दर और उपयुक्त शब्द बन सकें, उनका अनुवाद तो करना ही चाहिये। 'रिकेट्स' के लिये 'अस्थिविकृति' और 'ऑस्टियोमेलेशिया' के लिये मृदुलास्थि बहुत सुन्दर उपयुक्त और समानार्थी अनुवादित शब्द हैं। 'अल्ट्रावायलेट रे' के लिये 'पराकासनी रश्मि' भी ठीक है। पर अनुवाद की इस प्रवृत्ति को अपनी मर्यादा नहीं लांघनी चाहिए। यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि अनुवादित शब्द उपयुक्त, शुद्ध और सुन्दर भी है या नहीं। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

विटामिन शब्द से सर्वसाधारण परिचित हैं और उसमें निहित भावार्थ को भी अधिकांश व्यक्ति समझते हैं। प्रारम्भ में जब इन पदार्थों का पता लगा ही था और उनके बारे में कोई विशेष खोज नहीं हो पाई थी, जब लोगों का ध्यान था कि यह पदार्थ 'एमाइन' Amine वर्ग के हैं, और क्योंकि यह जीवन के लिये 'वाइटल' Vital आवश्यक पाये गये, इस लिये सन् १९१२ ई० में फंक' Funk नामक वैज्ञानिक ने इनका नामकरण 'वाइटल' का अन्तिम अक्षर 'एल' हटा कर उसमें 'एमाइन' जोड़कर 'विटामाइन' Vitamine किया। परन्तु बाद की खोजों से यह सिद्ध हुआ कि यह धारणा कि यह सभी पदार्थ 'एमाइन' वर्ग के हैं मिथ्या है। इस भांति तब तो 'विटामाइन' ही बिलकुल गलत हो गया। परन्तु फिर भी इस शब्द के अन्त से केवल 'ई' हटाकर उसमें निहित भावार्थ के द्योतकस्वरूप उसे रहने दिया गया। इस भांति 'विटामिन' शब्द का इतिहास शब्दार्थ उसमें निहित भाव से सर्वदा भिन्न है।

अब यदि इस इतिहास को भुला कर हिन्दी में उसी भाव को इंगित करते समय वही गलती फिर दोहराई जाय त क्षम्य नहीं हो सकती। बनारस आयुर्वैदिक कालेज के डाक्टर घाणेकर ने 'एमाइन' का हिन्दा अनुवाद 'तिक्ति' किया है और 'विटामाइन' तथा 'विटामिन' दोनों के लिये 'जीवतिक्ति' शब्द का प्रयोग किया है। इस भांति 'जीवतिक्ति' में पुनः वही गलती दोहराई गई है जो 'विटामाइन' में हुई थी। 'विटामाइन' शब्द सन् १९१२ में बनाया गया था और अब 'विटामिन में निहित भाव इतना प्रचलित और सर्वविदित हो गया है कि प्रायः सभी लोग इस शब्द के शब्दार्थ को भूलकर उसके सच्चे भावार्थ के लिये ही इसका प्रयोग करने लगे हैं। 'जीवतिक्ति' में शब्दार्थ की ही गलती नहीं अपितु भावार्थ का भी अभाव है। —:०:—

संस्कृति के नवनिर्माण के लिए शिक्षालयों की रूपरेखा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती[1]

२० वीं शताब्दि के प्रारम्भ होते ही अमेरिका ने सभ्यता की समाधि में एक मुहरबन्द पत्र रख दिया है, जिस में आधुनिक मनुष्य के सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक कार्यों का रहस्य सुरक्षित है। यह निधि अभी मुद्रांकित है। वह अब से दो सहस्र वर्षों के पश्चात् ही उन्मुक्त की जायगी तथा मनुष्य को प्राप्त हो सकेगी। भावी विश्व के मानव के लिए वार्तमानिक मूल्यवान् सूचनाएँ तथा बातें सुरक्षित रखने की यह आधुनिक प्रणाली है। भौतिक-संस्कृति तथा मांसारिक सूचनाएँ इस प्रकार सुरक्षित रह सकतीं हैं, क्योंकि उन का विकास किसी सीमा तक ही हो सकता है और वे देश, काल और परिच्छेद पर निर्भर रहती हैं।

मानवता के लिए इस से अभिमाननीय तथा महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य है, उस जाति की आध्यात्मिक (आन्तरिक मनोवैज्ञानिक) मूलभूत-संस्कृति के आदर्शों के सारांश, ज्वलन्त आदेश, उत्साहप्रद तथा नवजीवन सञ्चारक विचार और सत्यसिद्धान्त, जो उस जाति के समुदाय ने जीवन में पूर्णता प्राप्त करने के उद्देश्य से अभ्युदयित किए थे। इस प्रकार जो अद्वितीय परम्परा प्राप्त होती है, वह उस जाति की अमूल्य सम्पत्ति है और वह सांस्कृतिक परम्परा उस देश के सर्वतोमुख अस्तित्व के लिए अत्यावश्यकीय है। कालान्तर में प्रत्येक पीढ़ी का कर्तव्य तथा उस की पवित्र-परम्परा हो जाती है कि वह शतियों तक उस अमूल्य निधि को सुरक्षित और अक्षुण्ण रखे।

भारत ने यह कार्य कैसे किया ? भारतीय साम्राज्य के महासंकटों में भी किस प्रकार पैतृक आदर्श सिद्धान्त अक्षुण्ण तथा जीवित रखे गए ? इस का उत्तर हम तत्कालीन शिक्षा-संस्थाओं मे पाते है, जिन्हें आरण्य विश्वविद्यालय की संज्ञा दी गई थी। भारत की प्रतिभा ने न तो प्रतिरोधी तत्वों को ही सम्मान दिया और न सिमेन्ट तथा पत्थर की समाधि के विचार को ही उचित समझा। उस के महामहिमशाली अतीत के तपस्वी आचार्यों ने, जो विश्व में आत्म-विज्ञान के सर्वप्रथम वैज्ञानिक हुए, गुरुकुलवास की पद्धति हमें प्रदान की। प्राकृतिक अरण्य के शान्त दृश्यों के सुन्दर वातावरण में, उन तपस्वी आचार्यों ने अपनी शिक्षण पद्धति द्वारा ब्रह्मचारियों में (विद्यार्थी का तत्कालीन पर्याय) परम्परानुगत आदर्श तथा गौरवमय विचारों को स्थापित किया, जो सावधानतया सुरक्षित, अर्जित तथा प्रसारित कर दिये जाते थे। इस के अतिरिक्त वे उत्सुक नागरिक उन विचारों में पूर्णतः तल्लीन रहते हुए व्यवहारतः अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के कार्यों में सदा सफल और उत्तीर्ण रहे। उस प्रणाली में यही विशेषता थी अतः वे विचार बलशाली विचारो तथा जीवित आदर्शों के रूप में जीवित रहे।

भारतीय संस्कृति की स्थिरता की उस प्रणाली को प्रत्येक प्रकार के समाजागम जीवन तथा आर्थिक, राजनैतिक नवनिर्माण की प्रणाली में ग्रथित किया गया। इस प्रकार हम हिन्दू समाज-पद्धति के दो छोरों में पहुँचते हैं। एक तो ब्रह्मचारी, पवित्र छात्र के रूप में, सर्वतोमुख ज्ञान की प्राप्ति तथा निपुणता के लिए सतत प्रयत्नशील तथा दूसरा आदर्श गुरु, वीतराग और परम तपस्वी आचार्य।

अतः उन उज्ज्वल नेत्र ब्रह्मचारियों के विकासोद्यत मस्तिष्क तथा वीतराग आचार्यों के परम गम्भीर

१ उत्तराखण्ड के एक साधक। अंग्रेज़ी में सौ से अधिक पुस्तकें लिखी हैं।

हृदय, भारतमाता के सांस्कृतिक जीवन के अचल तथा युगानुजीवी स्मारक बन गए। ये दोनों विभाग हिन्दू समाज के प्रधान अंग हो गए। इस प्रकार यह निश्चित हो गया कि जब तक समाज जीवित रहेगा, तब तक यह प्राचीन ज्ञान तथा संस्कृति अस्त नहीं हो सकती। उन का सांस्कृतिक इतिहास सुरक्षित हो गया। यद्यपि समय प्रबल प्रवाह की भांति प्रवाहित होता गया, शताब्दियां भी व्यतीत होती गईं, तथापि ब्रह्मचारियों को यही शिक्षा मिलती रही कि माता, पिता, आचार्य और अतिथि तेरे लिए देवतुल्य पूज्य होवें। सत्य बोलना, धर्माचरण करना, इत्यादि...... और आज भी वे वीतराग तपस्वी गुरु इस पर ही व्यवहार तथा अनुभव करना चाहते हैं। अहिंसा, सत्य, आत्म त्याग, आत्म बलिदान और एकता इस का एक पक्ष है। इस का दूसरा पक्ष भी है, जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस के ही समान महत्वपूर्ण है और जिस का ध्यान रखना हमें आवश्यकीय है।

समत व्यतीत होते ही महान् परिवर्तन हुए। एक बार हमारे समाज का आधार पूर्णतः आध्यात्मिक (आन्तरिक, अभौतिक) था, परन्तु अब आर्थिक-दृष्टिकोण को यह महत्व प्रदान किया गया। मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य भी परिवर्तित हो गया। आत्मपूर्णता और आत्मानुभव के स्थान पर अत्यन्त भौतिक समृद्धि तथा लौकिक सुख इस का लक्ष्य हो गया। इस का परिणाम यही हुआ कि अरण्यस्थ-पवित्र गुरुकुलों की पद्धति अप्रचलित हो गई...... क्योंकि इस का लक्ष्य ऐसी संस्कृति की रक्षा करना था, जो व्यावसायिक अथवा व्यापारिक मूल्यों से भी अधिक चिरस्थायी रहने वाले आधारों पर प्रतिष्ठित थी। क्रमशः विद्यार्थियों को इस बात की आवश्यकता आ पड़ी कि वे अपने को इस प्रकार से शिक्षित करें कि वे सांस्कृतिक-निर्माण के प्रतिनिधि होने के स्थान पर धन सञ्चय करने में समर्थ हों। अतः आर्थिक संस्कृति का उदय हुआ और तत्फलतः गुरुकुलों और तदस्थ ब्रह्मचारियों के अत्यन्ताभाव में उस प्रणाली का निर्माणकारी विभाग अस्त-व्यस्त हो गया।

आधुनिक ब्रह्मचारी विश्वविद्यालयों तथा व्यापारिक संस्थाओं में स्थान पाने के लिए संघर्ष करते हैं। आधुनिक समस्या के भूत से पीड़ित होने के कारण आरण्य शिक्षालय त्याग दिए गए। किन्तु इस का परिणाम क्या हुआ? छात्रों के मस्तिष्क निर्जीव अङ्क तथा आंकड़ों से परिपूर्ण हो गए। जब छात्र शिक्षण केन्द्रों से निकल कर, सामाजिक जीवन में प्रवेश करता है तो सञ्चित विश्वविद्यालयीय ज्ञान केवल नाम-मात्र के लिए उस में निर्लिप्त रहता है। आधुनिक विद्यापीठों के आचार्य तथा स्नातक वर्ग में गुरुकुल सम्पर्कजनिक, जीवन को पलट देने वाली बौद्धिकता सर्वथा अनुपस्थित रहती है। परन्तु वे वैदिक तपस्वी आचार्य अपने सभी विद्यार्थियों को उचित मार्ग की ओर पलट भी देते थे। गुरु का व्यक्तित्व (आचार-विचारादि) उन गुरुकुलों का एक आवश्यक अंग था तथा वे स्वयं विचारशील एवं उत्थान-परायण वातावरण को, समुचित अवस्था तथा अनुकूल परिस्थिति प्रदान करते थे, जिन में युवक छात्रों की प्रतिभा स्वाधीनतापूर्वक विकसित हो सके और जो कुछ उसमें पवित्र, उत्तम और श्रेष्ठ है, निर्बन्ध अभ्युदय को प्राप्त हो।

कहा जाता है कि इंग्लैंड के युद्ध ईटन की क्रीडा-भूमि पर विजित हुए। ऐसा सचमुच हुआ कि नहीं, हम कह नहीं सकते। किन्तु इस में सन्देह नहीं कि हमारा सांस्कृतिक विजय और उस विजय स्तम्भ का निर्माण भारत की सुरम्य-वन्यस्थलियों में हुआ, न कि रणक्षेत्रों में। उस का आदर्श अहिंसा की ही भूमि

पर पदस्थित रहा न कि नरसंहार पर। हमारी सभ्यता का अभ्युदय तथा विकास ऐसे स्थानों में हुआ, जहां उस के विकास में कोई बाधाएँ नहीं थी, जो प्रकृति की परम पवित्रता से सम्परिवेष्टित थे, जो आज के नगरों के समान कृत्रिम जीवन की धूर्तता तथा नैतिक पतन की दुर्वासना से—नाममात्र की शिक्षित समुदायान्तर्गत-भ्रष्टता तथा निर्लज्ज व्यवहार-परायणता से सुरक्षित और निर्लिप्त थे।

वहां छात्र कैसी शिक्षा पाते थे? वहां व्यवहारिक ज्ञान की शिक्षा मिलती थी, जहां आज एक कालेज का विद्यार्थी परीक्षा में अस्पष्ट उत्तर देने या प्रतियोगिता-मूलक परीक्षाओं में स्थान प्राप्त कर लेने की योग्यता भर ही रखता है। अतः छात्रों की संख्या का ही महत्व विस्तृत होता जा रहा है। जहां वह विद्यालयों में सर्वोच्च गुण सम्पन्न शिक्षा से विस्तृत, वातावरण की रचना के योग्य होकर, प्रतिभासम्पन्न, तर्क विवेक तथा न्यायशक्ति से सुदृढ़, आचरण में पवित्र, कार्यक्षम साहसी, बलवान् तथा आत्मनिर्भर निकलता था, वहां आज का विद्यार्थी-वातावरण किसी अमानुषिक कार्य की दृष्टि करता रहता है। देखिए, एक ही वस्तु के दोनों दृष्टिकोण में कितना भेद अतिव्याप्त है?

प्रश्न उठता है कि क्या अब आशा नहीं है? क्या वह आश्चर्यजनक-प्रणाली लुप्त हो गई? मैं कहूंगा कि नहीं, वह अब भी जीवित है। परन्तु हां, हमने समय के अनुकूल हो उसकी रूपरेखा को संवारना होगा। शान्ति निकेतन की विश्वभारती-सदृश शिक्षा संस्थाओं ने हमारे सांस्कृतिक-निर्माण के अङ्ग विशेष के विकाश के हेतु अविस्मरणीय कार्य किया है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय-सदृश अल्पसंख्यक-शिक्षणस्थानों ने विद्यार्थी जीवन के आध्यात्मिक-आदर्शों को पूर्ण करने में तथा उन पूर्ण आदर्शों की व्यवहारिक कार्य पद्धति के रूप में संपारिणत करने का जो वर्चस्वतेजसमुज्ज्वल कार्य किया है, भारत उसका ऋणी तो होना ही चाहिए, अपितु उसके आदर्शों का अनुमार्गी भी होना ही चाहिए, क्योंकि इन्हीं-सदृश भारत के आश्रमस्थ-विद्यालयों ने भारत के सांस्कृतिक उत्तराधिकार को जीवित रखा है, जिस प्रकार मनुष्य-स्मृति किसी भी अमूल्य ज्ञान को आवश्यक-समय के लिए सुरक्षित रखती है, उसी प्रकार, यदि हमारे देश में ऐसे विद्यालयों का बहुमूल्य होवे तो जाति के उत्तराधिकार के अद्वितीय भाग को, जिसको हम संस्कृति कहते हैं. अक्षुण्ण बनाया जा सकेगा किसी भी जाति की प्रतिभा का वास्तविक मूल्य उसके व्यवहारों की सफलता द्वारा ही निश्चित किया जा सकता है।

भारत का हृदय अभी भी जीवित है, जिसमें संस्कृति प्रगति स्पन्दित हो ही रही है। हमें दिन-प्रति-दिन इसी आवश्यकता का अनुभव हो रहा है। कि किस प्रकार अपने देश की संस्कृति को वैदिक काल के स्वर्णयुग के समान दिगन्तोज्ज्वल कर दिया जाय। अभी एक प्रश्न है, जिसका उत्तर भारत के प्रत्येक व्यक्ति ने देना है, विशेषतः हमारे बालकों ने ब्रह्मचारियों ने, विद्यार्थीसमुदायेने, आगामी नागरिकों ने। उस उत्तर का स्वरूप भी निश्चित है, जो उनके जीवन चरित्र में अंकित की हुई विचार धारा के अनुसार ही निर्णीत किया जायेगा, क्योंकि यह अक्षरशः सत्य है कि जैसा बीज बोया जायगा, तदनुसार ही फल की प्राप्ति होवेगी। यदि शिक्षा के सुगठित-अङ्गों को व्यवहारिक-आचार और ज्ञान से सम्मिश्रित करेंगे तो कौनसी ऐसी शक्ति है, जो दुःखमय फल का निर्णय करेगी?

हां इतना और कि हम न तो प्राचीन परम्परा की अवहेलना ही करें और न केवल आधुनिक-विकाश-वाद को ही सराहें जहां हमारी प्राचीन-शिक्षा-प्रणाली हमें सच्चरित्रता, सत्यता, मैत्री, अरागद्वेषपरायणता,

शांति, उद्यमी और कर्मकौशल का उपदेश देती आई है, वहां आधुनिक शिक्षा पद्धति ने हमें या तो मिलों में कलर्क बनाया है, या सचिवालयों में टायपिस्ट, या विद्यालयों में अल्प वेतनभोगी दीन और कृश अध्यापक अथवा प्रधान। यह क्या मनुष्य जीवन के सच्चे सुख का लक्षण है? क्या किसी ने ऐसी अवस्था में सामाजिक-उत्थान की दीवार को खड़ी होते देखा है। मैं तो कहता हूँ कि इन परिस्थितियों ने ही हमारे विचारों, कर्मों तथा समस्त जीवन के सांस्कृतिक सौन्दर्य को विकृत कर दिया है। हमारी आर्थिक कठिनाइयों के कारण ही तो हम सांस्कृतिक निर्माण में योग नहीं दे पाये। यदि हम विधानानुसार, जैसा कि आदि से बतलाते आये हैं, इस राष्ट्रीय-निर्माण में सहयोग देवें तो आर्थिक अथवा सामाजिक-क्लेशों, कठिनाइयों और दुर्विपाकों का अन्त हो सकेगा।

स्मरण रखो कि हमें कभी भी अपने देश की शिक्षण-पद्धति का तिरस्कार नहीं करना है। हमारा इस से यह तात्पर्य नहीं कि आप सीमित दृष्टिकोण वाले बनें, अथवा आधुनिक सभ्यता के मनुष्योपयोगी या सांस्कृत्युपयोगी उचित सिद्धांतों का त्याग कर दें। हम तो आप से यह कहना चाहते हैं कि आज परम्परा की सुदृढ़-आधारशिला पर अपनी वार्तमानिक शिक्षा प्रणाली की प्राण प्रतिष्ठा करें, जिस से अर्वाचीन और प्राचीन, धर्म और व्यवहार, पदार्थ विज्ञान और आध्यात्मिक संस्कृति, मनुष्य और मनुष्य का मधुर समन्वय हो, जिस से हम भारतवासियों को अमेरिका की भांति सभ्यता की समाधि में अपने देश की सभ्यता और संस्कृति, सदाचार और सद्-विचार और अन्यान्य श्रेष्ठतम मानवोचित निष्ठाओं को मुद्रांकित न करना पड़े। किन्तु हमारा कर्तव्य होना चाहिए कि हम अपने देश के आध्यात्मिक-स्तर को, सद्विचार, सत्कर्म, सद्भाषण रूप गुणों को, विश्वविद्यालयों की रूपरेखा में किंचितमात्र परिवर्तन कर तथा अन्य कलात्मक शिक्षा-केन्द्रों के सुन्दर और पवित्र मार्ग से उत्थान की ओर ले चलें और अपनी-अपनी निर्मल-जीवनचर्या द्वारा, अपनी-अपनी पारिवारिक संस्कृति को विमल करते हुए, अपनी वैदिक संस्कृति को अमर, सर्वव्यापक, सर्वतोमुख और सनातन कर दें।



गुरुकुल संग्रहालय हरिद्वार का सम्वत् २००८ का वार्षिक विवरण

श्री हरिदत्त वेदालंकार, एम. ए., मन्त्री गुरुकुल संग्रहालय।

संवत् २००८ में गुरुकुल सग्रहालय में अनेक नये विभाग स्थापित हुए तथा पुराने विभागों में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई।

सिन्धु घाटी के दुर्लभ अवशेष

नये विभागों में प्रागैतिहासिक युग का श्रीगणेश विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पांच हज़ार वर्ष पुरानी मोहेन्जोदड़ो तथा हड़प्पा की सभ्यता पर प्रकाश डालने वाली मुहरों, मिट्टी के खिलौनों, पशु-पक्षियों की मूर्तियों, मनकों, चित्रित मृत्पात्रों, सूत कातने की चकतियों आदि उत्खनन में प्राप्त सामग्री से इस वर्ष संग्रहालय समृद्ध हुआ है। सिन्धु सभ्यता के प्रधान स्थानों के पश्चिमी पाकिस्तान में चले जाने से इस प्रकार के संग्रह देश में दुर्लभ हो गये हैं, अतएव इन का महत्त्व पहले की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गया है। ये हमारी प्राचीनतम अत्युन्नत सभ्यता के अवशेष हैं और इस प्रकार की दुष्प्राप्य सामग्री आ जाने से गुरुकुल सग्रहालय के गौरव में वृद्धि हुई है।

ऐतिहासिक महापुरुषों के चित्र

इस वर्ष का दूसरा नया महत्वपूर्ण विभाग ऐतिहासिक महापुरुषों के प्रामाणिक चित्रों के संकलन का था। दुर्भाग्यवश अभी तक प्राचीन महापुरुषों के जो चित्र पाये जाते हैं, वे प्रायः काल्पनिक हैं। इस विभाग में इस वर्ष प्राचीन मूर्तियों सिक्कों और शबीह (छवि) चित्रों के आधार पर भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण भाग लेने वाले व्यक्तियों के चित्र तैयार कराये गये हैं। इन में गुप्तवंश के संस्थापक सम्राट् चन्द्रगुप्त, प्रसिद्ध दिग्विजयी समुद्रगुप्त (३४०-८०), महाराणा प्रताप, अहमद नगर की वीर सम्राज्ञी चांद



मोहेञ्जोदड़ो की खुदाई से प्राप्त सामग्री

बीबी (१६०० ई०), सम्राट् अकबर (१५५६-१६०५), प्रसिद्ध चीनी यात्री युआनच्वांग (६२६-६४५ ई०), गोस्वामी तुलसीदास, हरिदास, नरसी मेहता, समर्थ गुरु रामदास के चित्र उल्लेखनीय हैं। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल तथा श्री रायकृष्ण दास संचालक भारत कला भवन हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के सौजन्य से हमें ये चित्र प्राप्त हुए हैं, संग्रहालय एतदर्थ इन का आभारी है।

प्राचीन कला के चित्र

गत वर्ष भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के संचालक श्री माधो स्वरूप वत्स १६-८-५१ को गुरुकुल संग्रहालय के निरीक्षण के लिये पधारे, वे इस के कार्य से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने भारतीय पुरातत्व विभाग की ओर से संग्रहालय को भारतीय कला से संबद्ध २६ बड़े फोटो भेंट किये। इन में मोहेन्जोदड़ो से वर्तमान युग तक की अमरावती, मथुरा, अजन्ता, भुवनेश्वर आदि सभी प्रधान कला शैलियों के सुन्दर उदाहरण हैं। संग्रहालय इस के लिये श्री वत्स का तथा पुरातत्व विभाग का ऋणी है।

मध्य भारत ग्वालियर के पुरातत्व विभाग के संचालक श्री पाटिल के सौजन्य से गुरुकुल संग्रहालय को गत वर्ष की भांति बहुमूल्य सहायता प्राप्त हुई।

उन्होंने इस वर्ष मध्य भारत के महत्वपूर्ण शिला लेखों की छापें प्रदान करने के अतिरिक्त मध्य भारत के खम्बाबा, मान मन्दिर, गूजरी महल आदि पुरातत्वीय अवशेषों तथा मन्दिरों के बड़े साइज़ के फोटो भेजने की कृपा की है।

गत वर्ष संग्रहालय के मूर्ति तथा मुद्रा विभाग में भी वृद्धि हुई। मूर्ति विभाग में हारिती आदि अनेक कुशाण और गुप्तकालीन नई मूर्तियां आई तथा कुछ प्रस्तर खण्ड प्रेम नगर देहरादून से प्राप्त हुए। मुद्राओं में मुगल बादशाहों के ताम्बे के दस सिक्के श्री ब्रजमोहन व्यास ऐग्ज़ीक्यूटिव आफिसर बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के सौजन्य से प्राप्त हुए बाबर, हुमायूं, अकबर, शाहजहां, जहांगीर, औरंगजेब की सोने की मुहरों के नमूने भी तैयार कराये गये। इन में जहांगीर की राशि चक्र सम्बन्धी मुहरें विशेष रूप से दर्शनीय हैं। कांगड़ा शैली के कुछ नये चित्र भी संग्रहालय को प्राप्त हुए हैं, भारत के नये पुरातत्वीय और ऐतिहासिक मानचित्रों से संग्रहालय की उपयोगिता और शोभा बहुत बढ़ गई है।

नागरिक शिक्षा के २० चित्र दर्शकों को अपने कर्तव्यों का बोध कराने के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध हुए हैं।

डा० शिवनाथ राय के अनथक उद्योग से न केवल नई मूर्तियां और सिक्के मिले हैं किन्तु डाक तथा अदालती टिकटों का संग्रह साढ़े तीन हज़ार तक पहुँच गया है।

स्वामी दयानन्द के पत्र

इस वर्ष की हस्तलिखित सामग्री में श्री मामराज आर्य, खतौली के सौजन्य से प्राप्त स्वामी दयानन्द के कुछ हस्तलिखित पत्र हैं। इन में से एक पत्र द्वारा स्वामी जी के हरिद्वार में ठहरने के स्थान पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

वैज्ञानिक सामग्री

वन्य अनुसन्धानशाला (फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट) देहरादून के सौजन्य से हमें इस वर्ष कुछ वानस्पतिक सामग्री प्राप्त हुई है। इस में बांस और भाभड़ घास से कागज बनाने की तथा एक विशेष प्रकार की तुलसी से कपूर बनाने की प्रक्रिया समझाई गई है, भारतीय वनों की प्रसिद्ध इमारती लकड़ियों के तथा विविध लकड़ियों से बनाये गये प्लाईवुड के नमूने हैं, इन के लिये संग्रहालय वन्य

अनुसन्धानशाला के प्रकाशन एवं संपर्क अधिकारी श्रीयुत अग्रवाल का आभारी है।

लखनऊ विश्वविद्यालय की कृपा से संग्रहालय को इस वर्ष भूगर्भ विज्ञान सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण सामग्री मिली है। इस में विभिन्न प्रकार की चट्टानों, खनिजों तथा लाखों बरस पुराने जीव जन्तुओं तथा पेड़ों के प्रस्तरीभूत अवशेषों का एक उपयोगी प्रतिनिधि सग्रह है। इस संग्रह के लिये, हम लखनऊ विश्वविद्यालय के भूगर्भ विभाग के अध्यक्ष श्री एस. आर. नारायण तथा डा० रमेशचन्द्र मिश्र के विशेषरूप से आभारी हैं जिनके सौजन्य से यह बहुमूल्य संग्रह प्राप्त हुआ है और जिन्होंने इसे शिक्षा की दृष्टि से उपयोगी बनाने में बहुत प्रयत्न किया है।

हिमाचल विभाग

गत वर्ष हरिद्वार और उत्तराखण्ड के लोकजीवन से संबद्ध वस्तुओं का संग्रह करने की दृष्टि से यह विभाग प्रारंभ किया गया है। देहरादून जिले का जौनसार बावर का प्रदेश एक विशिष्ट संस्कृति का पोषक है। इस वर्ष इस प्रदेश की कुछ पाप निवारक मूर्तियां संगृहीत की गयीं। इस की पैदावार, रहन-सहन, अन्न, धार्मिक-आर्थिक और सामाजिक जीवन अन्य प्रदेशों से नितान्त भिन्न है। इन के कई प्रकार के अन्न, पुराने बर्तन तथा लकड़ियां संग्रहालय में आये। श्री रामेश बेदी के सौजन्य से हमें ये वस्तुयें प्राप्त हुई हैं, तदर्थ हम उन के आभारी हैं। श्री धर्मदेव शास्त्री दर्शन केसरी की की कृपा से जौनसार निवासियों के घर का एक नमूना मिला है।



२५० वर्ष पुराना अनाज नापने का पात्र

मान्य दर्शक

इस वर्ष संग्रहालय देखने के लिये अनेक माननीय दर्शकों का शुभ आगमन हुआ। इन में श्री माधोस्वरूप जी वत्स डायरेक्टर जनरल आफ आर्किलोलोजी, भारत सरकार नई दिल्ली, इस वर्ष के प्राच्य परिषद् के अध्यक्ष श्रीयुत नीलकण्ठ शास्त्री, श्रीयुत कृष्णदत्त वाजपेयी पुरातत्व अधिकारी उत्तर प्रदेश, सुप्रीम कोर्ट नई दिल्ली के विचारपति श्री विजन कुमार मुखोपाध्याय, बम्बई सरकार के आयुर्वेद इन रिसर्च बोर्ड के प्रधान श्री म्हसकर पुदुकोट्टई के पूर्व शिक्षाधिकारी श्री वेंकटरमन, सौराष्ट्र सरकार के शिक्षा संचालक, माननीय श्री चन्द्रभानु गुप्त रसद मन्त्री उत्तर प्रदेश उल्लेखनीय हैं। इन सब ने संग्रहालय के कार्य से प्रसन्नता प्रकट की।

लोक शिक्षण का केन्द्र

उपर्युक्त मान्य अतिथियों के अतिरिक्त हरिद्वार के पावन तीर्थ में हजारों यात्रियों ने इस संग्रहालय से अपनी प्राचीन संस्कृति और वैज्ञानिक विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। यह संग्रहालय शनैः-शनैः इस प्रदेश में लोकशिक्षण का महत्वपूर्ण केन्द्र बन रहा है।

१९५१ में दर्शकों की संख्या १८६०० तथा जन-

वरी १९५२ से ३१ अप्रैल १९५२ तक ८७५२ थी। यह संख्या वेद मन्दिर की दर्शक पञ्जिका में हस्ताक्षर देने वालों की है। संग्रहालय में आने वाले सैंकड़ों अशिक्षित हस्ताक्षर करना नहीं जानते और शिक्षित अपना नाम अंकित करना भूल जाते हैं। यदि इन्हें भी सम्मिलित कर लिया जाये तो यह संख्या क्रमशः बीस और दस हजार होगी। इस तरह गुरुकुल संग्रहालय (वेद मन्दिर) से लाभ उठाने वालों की संख्या ३० हजार है और लगभग इतनी ही संख्या ने आयुर्वेद महाविद्याल यमें अवस्थित वैज्ञानिक संग्रहालय से लाभ उठाया है। इस प्रकार गुरुकुल संग्रहालय से ६० हजार दर्शकों का लोकशिक्षण तथा ज्ञान-वर्धन हुआ है। ये भारत के सभी प्रान्तों से आने वाले थे।

भावी कार्यक्रम

उत्तर प्रदेश के इस क्षेत्र में पुरातत्वीय अनुसन्धान तथा लोकशिक्षण का कार्य करने वाला यही एकमात्र संग्रहालय है इस प्रदेश के अनेक अवशेष खुदाई की बाट जोह रहे हैं, यह कार्य व्यय साध्य है। यह प्रसन्नता की बात है कि उत्तर प्रदेश की सरकार से इस संग्रहालय को गत दो वर्षों से सहायता मिल रही है, इस के लिये हम उन के आभारी हैं किन्तु इस प्रदेश के सांस्कृतिक महत्व एवं अन्वेषण कार्य की गुरुता देखते हुए यह राशि बहुत अल्प है। आशा है इस वर्ष संग्रहालय को अपने कार्यों के लिये सरकार से यथेष्ट अनुदान प्राप्त होगा।

आभार प्रदर्शन

इस वर्ष संग्रहालय के कार्य में विविध रूपों में श्री दीनदयालु शास्त्री एम. एल. ए., डा० शिवनाथ राय, श्रीयुत रामेश वेदी, श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, श्रीयुत मदनमोहन नागर, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, श्री सतीशचन्द्र काला, श्रीयुत ब्रजमोहन व्यास, श्रीयुत राय कृष्णदास, श्रीयुत माधोस्वरूप वत्स, श्रीयुत रमेशचन्द्र मिश्र, श्री पूर्णचन्द्र विद्यालंकार से बहुमूल्य सहायता और सहयोग मिला है। संग्रहालय इन सब का आभारी है और उसे यह आशा ही नहीं अपितु दृढ़ विश्वास है कि भविष्य में भी ये महानुभाव अपने बहुमूल्य सहयोग से संग्रहालय की उन्नति में सहायक सिद्ध होंगे।





महात्मा बुद्ध की यह मूर्ति इस वर्ष ही संग्रहालय में आई है।

भोजन में इमली के बीज

डॉक्टर पी० एम० राव[1]

सरकार के 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन के होने पर भी भारत की खाद्य स्थिति सन्तोषजनक नहीं और आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में शायद भारत को अभी कितने ही वर्ष और लगेंगे। पिछले कुछ वर्षों से सरकार विदेशों से खाद्यान्न मंगाने में करोड़ों रुपये व्यय कर रही है। इस लिए केवल यह आवश्यक नहीं है कि दैनिक प्रयोग में आने वाले खाद्य पदार्थों को अधिक मात्रा में उपजाया जाय। वरन् सहायक खाद्य सामग्रियों की भी खोज की जाय, जो संकट काल में काम आ सकें। ऐसे खाद्य पदार्थों की खोज में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

(१) वह पदार्थ बहुलता से प्राप्त हो, (२) वह संग्रह में सुलभ हो, (३) वह प्रायः न खाया जाने वाला पदार्थ हो तथा और किसी प्रयोग में न आता हो, (४) उसे खाये जाने योग्य पदार्थों में परिवर्तन करने में अधिक परिश्रम तथा धन व्यय न हो।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए तथा इस बात को भली भांति जानते हुए कि प्राचीन काल में साधु सन्यासी अपने जीवनयापन की सभी वस्तुयें इस देश की जंगली उपजों से प्राप्त करते रहे हैं, कुछ जंगली वस्तुओं तथा तत्सम्बन्धित पदार्थों का जो कि वर्तमान काल में व्यर्थ पड़ी रहती हैं या जिनका अभी पूर्णतया उपयोग नहीं होता है, परीक्षण वन अनुसंधान शाला के रासायनिक प्रयोगशाला में किया गया है। इस परीक्षण द्वारा यह पता चला है कि अन्य पदार्थों के अतिरिक्त इमली के बीज की गिरी एक ऐसा पदार्थ है, जिस से सन्तोषजनक सहायक खाद्य पदार्थ बन सकने की आशा है।

[1] वन अनुसन्धानशाला, देहरादून में अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं।

इमली का बीज, जो कि इमली के वृक्ष की उपज है दक्षिणी भारत में अधिकतर पाया जाता है, इमली के गूदे के व्यवसाय में एक बची-खुची वस्तु के रूप में प्राप्त हो जाता है। इमली के बीज में घना भूरापन लिये लाल रंग का बाहरी छिलका और मलाई के समान भीतरी गिरी रहती है। इस गिरी का विश्लेषण भिन्न २ वैज्ञानिकों ने भिन्न २ प्रकार से किया है। यह भिन्नता शायद ऋतु, जलवायु तथा स्थान भेद के कारण हो, परन्तु इस की आदर्शभूत बनावट निम्न है—

नमी या आर्द्रता	१०.२%
तैल	६.४%
टेनिनस्	१.६%
अन्नमयकोष्टक	१५.४%
कच्चा रेशा	२.०%
स्वतंत्र शर्करा	२.६%
बिना रेशे के कर्बोदित जिनमें स्वतन्त्र शर्करा न हो	५८.५%
अप्रांगारिक पदार्थ (भिन्नता से)	३.०%
राख	२.५%

इस संयोजन का चूर्ण निम्नलिखित विधि से किया जा सकता है—

बीजों को इमली के गूदे से पृथक करके, लिपटा हुआ गुदा (यदि हो) दूर करने के लिये किसी बड़े बर्तन में पानी द्वारा अच्छी प्रकार धोया जाता है। इस प्रक्रिया से कीड़ों द्वारा खाये हुए खोखले बीज पानी में तैरने लगते हैं और अच्छे बीज नीचे तली (पेंदी) में बैठ जाते हैं। अच्छे बीजों को खराब बीजों से अलग कर और निथार कर भली प्रकार धूप में सुखाया जाता है। यदि उन्हें कुछ समय के लिये संचय करना हो तो उन्हें शुष्क स्थान में रखा जाता है और कीड़ों द्वारा हानि बचाने से कभी-कभी बरसात में सलफर डाइ-औक्साइड का धुंवा भी दिया जाता है।

अन्यथा उन्हें लगभग आध घंटे तक गर्म बालू के ऊपर या खाई तापवाली गर्म कोठरी में १४५ से १५० डिग्री सेंटीग्रेड तापक्रम तक भूना जाता है। भुने हुये बीजों को छिलका अलग करने के लिये लकड़ी की मूंगरी से हल्के २ पीटते हैं या छिलका उतारने के यन्त्र में रखते हैं। छिलका अलग करने के लिये भूनने के अतिरिक्त दूसरी विधि यह है कि बीजों को पानी में एक या अधिक दिन भिगोया जाता है; तत्पश्चात् एक घंटे तक उन्हें उबाला जाता है और बादाम की गिरी की तरह छिलका दूर कर दिया जाता है। तब मलाई सी श्वेत गिरी को ठंडे पानी में धोये जाने के बाद ३ या ४ घंटे तक ०.५ प्रतिशत सलफर डाइ-औक्साइड के घोल में भिगोया जाता है। यह सूखी हुई गिरियां या तो गर्म पानी के यन्त्र में या गर्म कोठरी में जब तक उनकी आद्र्रता दाह कर ५ प्रतिशत न हो जाय सुखाई जाती हैं। इस क्रिया में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि गिरियों का रंग न उड़ जाय। ये सूखी गिरियां तब कूटी जाती हैं और पीस कर उनका चूर्ण कर लिया जाता है

यह चूर्ण जिसे टी० के० पी० (इमली के गिरियों का चूर्ण) कहा जाता है, प्रयोग द्वारा सूती व जूट के कपड़ों में सरेस लगाने में प्राय: २०००० टन प्रति वर्ष उपयोग में लाया जाता है। इस प्रकार ४०००० टन अन्न मनुष्यों के लिये बच जाता है, अन्यथा यह सूत बुनने के व्यवसाय में २०००० टन स्टार्च बनाने में लग जाता। इस समय टी० के० पी० इस व्यवसाय की आवश्यकता का कुल ४० प्रतिशत है और इसका कारण शायद कुछ सीमा तक इस चूर्ण का मन्द पीला रंग होना तथा अधिकतर टी० के० पी० के प्रयोग के प्रति मिल मालिकों का द्वेष भाव तथा स्टार्च बनाने वालों का निजी स्वार्थ है। इस चूर्ण में २५ प्रतिशत अन्न का श्वेतसार मिला कर बहुत सुधार किया जा सकता है। टी० के० पी० या इस से बनाये पदार्थ बुनने के व्यवसाय में सारे श्वेतसार जो कि सरेस का काम देता है स्थान ले ले, तो इस से कम से कम ७५००० टन अन्न की बचत मनुष्य उपयोग के लिये हो सकती है, जो कि इस अन्न संकटकाल में कम सहायता नहीं है। यह अब सरकार तथा व्यवसाइयों का कर्तव्य है कि तनिक सा भी अन्न श्वेतसार बनाने के व्यवसाय में प्रयोग न हो, क्योंकि इन के स्थान पर टी० के० पी० अच्छी प्रकार काम दे सकता है। इसके लिये प्रचार की आवश्यकता है। यद्यपि टी० के० पी० ८ वर्ष पुरानी हो चुकी है, तो भी यह उपज नियोजकों के लिये बिल्कुल नई सी है और वे इसका उपयोग स्वेच्छा से नहीं करते। अतएव केवल प्रचार से ही काम न चलेगा इसके साथ सरकार के शासन विभाग द्वारा कार्यान्वित कराने की भी आवश्यकता है, जोकि मिल मालिकों के लिये टी० के० पी० का कम से कम ७५ प्रतिशत उपयोग अनिवार्य बना दे।

इमली के बीज द्वारा खाद्य प्रश्न को हल करने में इस अप्रत्यक्ष उपयोग के अतिरिक्त प्रत्यक्ष सहायता भी मिल सकती है। इसकी गिरियां दक्षिणी भारत में अन्न संकट और अकाल के दिनों में गरीबों द्वारा खाई जाती हैं। साधारण काल में ये अन्य लोगों द्वारा भी खाई जाती हैं। कोचीन, ट्रावनकोर और उनके पड़ोसी प्रदेशों में मूंगफली की तरह खाई जाती हैं। उत्तरी भारत में भी जहां इमली अधिक उत्पन्न नहीं होती सूचना मिली है कि कुछ लोग गिरी के आटे में घी और चीनी मिला कर जाड़ों में खाने के लिये लड्डू बनाते हैं। ये लड्डू बड़े स्वादिष्ट और पौष्टिक बताये जाते हैं। यह और पता चला है कि इसका चूर्ण कुछ कारखानों में बिस्कुट बनाने में भी काम आ रहा है। इसे चने के आटे के साथ मिला कर पकोड़ियां आदि बनाने के काम में भी लाते हैं। यद्यपि गिरी के चूर्ण

के विश्लेषण से यह पता नहीं चलता कि इसमें कोई विषैला पदार्थ है तथापि यह कहा जाता है कि अगर यह भली प्रकार न बनाया जाय और अकेले ही खाया जाय तो इस से कब्ज तथा सन्ताप हो सकता है। दूसरी ओर यह बीज दवाइयों के काम भी आता है। इसका चूर्ण आयुर्वेद द्वारा गठिया में तथा यूनानियों द्वारा दुलपित्ति नामक रोग में दिया जाता है। यह भूख बढ़ाने के काम में भी आता है, इस लिये सुझाव है कि सरकार इसकी गिरियों की पौष्टिक तथा मादकत्व दृष्टि से परीक्षा कराये। यदि इसमें कोई विषैला प्रभाव न हो तो इसे गेहूँ के आटे में मिला कर चपातियां, रोटियां, हलवा या अन्य खाद्य पदार्थ बनाने में उपयोग किया जाय। यदि यह ठीक विधि से बनाया जाय तो यह एक अत्युत्तम सहायक खाद्य पदार्थ सिद्ध हो सकता है, इस की अन्न मात्रा गेहूं, मक्का तथा अन्य खाद्य पदार्थों के साथ निम्न सूची के अनुसार भली प्रकार तुलनीय है। तुलना के लिये अन्य खाद्यकों की तालिका भी सम्मिलित कर ली गई है।

टी० के० पी तथा अन्य खाद्य पदार्थों का विश्लेषण

[यह तालिका पदार्थों के आर्द्रता विहीन आधार पर दी गई है]

	अन्नमय कोष्ठक प्रतिशत	वसा प्रतिशत	कर्बोदित प्रतिशत	कच्चा रेशा प्रतिशत	राख प्रतिशत
टी०के०पी०	१५.४०—२०.१२	३.८६—७.२८	६८.०१ ६६.३७	०.७३—८.१३	२.४५—३.२८
गेहूं	१०.३२—२०.२७	१.६६—२.७८	६०.७४—८५.४०	२.३६—१४.७६	१.४०—६.०८
चावल	६.१२—१०.४८	०.२२—०.८३	८४.१६—९६.९०	०.२२—०.४८	०.४५—०.७१
मक्का	९.०२—११.६३	४.४२—७.०९	७७.९६—७९.९५	१.५६—३.३२	१.४६—२.२५
जौ	८.३४—१२.९६	१.५८—२.७४	७७.२१—७८.३५	४.२८—५.५५	२.५०—३.२०
जई	३.५९—१७.३७	४.०७—७.७७	६२.१०—७२.८१	०.९७—४.०६	२.४६—८.२२

टी० के० पी० का चारे के रूप में व्यवहार करने की परीक्षा पशु सम्बन्धी अनुसन्धानशाला आइज़त नगर में की जा चुकी है। यह सिद्ध हो चुका है कि इससे प्राप्त कर्बोदित और खानिजादि अणु की मात्रा जई तथा चने से भली प्रकार तुलनीय है तथा इसका कच्चा तन्तुसर जौ, जई तथा मक्का से कहीं अधिक है।

खाद्य	कच्चे तन्तुसर	ईथर से निकला तत्व	कच्चा रेशा	नत्रजन रहित सत्व	कुल कर्बोदित	कुल राख	चूना	स्फुर
टी० के० पी०	१५.४	३.८९	८.१७	६९.२६	७७.४३	३.२८	०.४३	०.५३
जौ	११.५	१.०६	५.३९	७८.८४	८४.५३	३.२१	०.२५	०.८५
जई	१०.०७	६.५५	१२.७१	६५.८८	७८.५९	४.७९	०.१६	०.९३
मक्का	१०.५५	३.३०	२.२०	८२.१०	८४.३०	१.८५	०.०७	०.१८
चना	१९.६३	४.८४	७.५०	६५.४०	७२.९०	२.६३	०.४३	०.९८

बैलों पर अधिक समय तक इस चारे की परीक्षा करने पर यह पता चला है कि इसका कोई निकृष्ट प्रभाव नहीं होता, परन्तु इससे जानवर का विकास होता है तथा भार बढ़ता है। इस लिये यह सुझाव रखा जाता है कि यह लाभदायक सिद्ध हो सकता है और कुल चारे का एक तिहाई भाग बन सकता है।

—अनुवादक श्री रमेशचन्द्र नैथानी।



प्रामाणिक हिन्दी कोश[1]

श्री रमेश बेदी

श्री वर्मा ने हिन्दी शब्द सागर जैसे महान् कोशों के संकलन में अथक कार्य किया था। उन दिनों हिन्दी में कोश निर्माण का कार्य प्रायः नई बात थी। इस लिए उस कोश में बहुत सी त्रुटियां रह गई थी। श्री वर्मा जी ने अपने पुराने साथियों, स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि के कोश सम्बन्धी ज्ञान का और अपने निजू अनुभव का लाभ उठा कर यह नया प्रामाणिक कोश रचा है। इसमें शब्दो की कुल संख्या ४५८५६ है। नये संस्करण को श्री वर्मा ने अधिक उपयोगी तथा प्रामाणिक बनाने का भरसक प्रयत्न किया है। फिर भी अनेक कमियां रह गई हैं। कुछ का ध्यान हम यहां खींचना चाहते हैं। चिटकनी दैनिक व्यवहार का शब्द है परन्तु इस कोश मे हमें नहीं मिला। राजों और मिस्त्रियों के दैनिक व्यवहार के अनेक शब्द जैसे 'जाली छंवाम', 'जाली बदरूम' मन्दिरों के शिखरों की फाड़ीदार रचना 'आंवला', 'कमरखी आंवला' आदि शब्द हमें इस कोश में नहीं मिले। फणधर और फणी शब्दों का अर्थ 'सांप' दिया है। हमारी सम्मति में ये दोनों शब्द सामान्य सर्पवाची नहीं हैं, 'फन वाले सांपों' के लिए हैं। फन वाले सांप के लिए हिन्दी में प्रयुक्त होने वाला प्रसिद्ध शब्द 'फनियर' या 'फनिहर' इस में नहीं मिलता। गर्मियों में चाव से खाये जाने वाला खट-मिट्ठा फल 'प्याल' इस में नहीं है।

गांव वाले अपनी आवश्यकतानुसार हिन्दी के सरल और ठीक भाव प्रकट करने वाले शब्द बना लेते हैं। उन के दैनिक जीवन में वे शब्द रम गये हैं। उत्तर प्रदेश में प्रचलित इस प्रकार के शब्दों को श्रीयुत क्रुक ने संगृहीत किया था। यद्यपि वह कार्य अधूरा है परन्तु उपयोगी है। उस के बाद बिहार के किसान जीवन के शब्दों का अच्छा सग्रह ग्रियर्सन की पुस्तक (बिहार पेजेण्ट लाइफ) में मिल जाता है। हम श्री वर्मा से निवेदन करेंगे कि इस प्रकार की रच-नाओं को भी देख लें जिस से अगले संस्करण में लोक जीवन से सम्बन्धित हजारों शब्दों का समावेश किया जा सके। कोश का उपयोग करने वालों से भो हम निवेदन करेंगे कि उन्हें जो त्रुटियां दृष्टिगोचर हों वे श्री वर्मा को अवश्य लिख भेजें। अकेले व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं कि वह ज्ञान-विज्ञान की समस्त शाखाओं के शब्दों का भलीभांति ज्ञान रखता हो। कोश को अधिक विस्तृत तथा प्रामाणिक बनाने के लिए पाठकों का जितना अधिक सहयोग प्राप्त हो सके उत्तम है।

दूसरे संस्करण की मुख्य विशेषता यह है कि इस में प्राचीन और आधुनिक कवियों द्वारा प्रयुक्त कोई दस हजार ऐसे नये शब्द, प्रयोग, मुहावरे, उदाहरण आदि बढ़ाये गये हैं जो अब तक हिन्दी के किसी शब्द-कोष में नहीं मिलते। गत दो वर्षों में भिन्न-भिन्न भारतीय राज्यों और राजकीय विभागों के दैनिक कार्य सञ्चालन के लिए जो हजारों नये शब्द बने और समाचार पत्रों में जो नये-नये शब्द प्रचलित हुए हैं वे इस में सम्मिलित कर लिए गये हैं। अन्त में पांच हजार प्रसिद्ध और नित्य काम आने वाले अंग्रेजी शब्द और उन के हिन्दी में अर्थ दिये हैं।

कोश-कला की दृष्टि से हमारी समझ में यह हिन्दी का उत्कृष्ट कोश है। शब्दों की व्याख्या, अर्थ, विवरण तथा निष्पत्ति शुद्ध और स्पष्ट हैं। राजकीय तथा निजू कार्यालयों में समाचार-पत्र कार्यालयों में और शिक्षा-संस्थाओं तथा पुस्तकालयों में यह कोश अवश्य रहना चाहिए।



---

१ सम्पादक श्री रामचन्द्र वर्मा। प्रकाशक साहित्य-रत्न माला कार्यालय, २० धर्म कूप, बनारस। दूसरा संस्करण, २००८। आकार १८×२२/८, पृष्ठ संख्या १६१६, सजिल्द, मूल्य १२॥)।

गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

जुलाई मास प्रारम्भ होते ही कुल पर मेघ राजा की मेहर प्रारम्भ हो गई है। दूसरे-तीसरे दिन वर्षण होता रहता है। अन्तरिक्ष का जल गिरते ही वन, बाग और खेतियां लहलहा उठी हैं। ताल-तलैयाँ और नदी-नाले मचल उठे हैं इस साल आमों का अकाल रहा। हां, जामुनों के कारण कुल-उपवन की जम्बू-वीथियाँ छोटे ब्रह्मचारियों के अभियानों और क्रीड़ा कल्लोल से गूंजती रही। पावस की रौनक के कारण कुलभूमि में सर्वत्र आमोद और उल्लास छा रहा है। गुरुकुल की धान की खेतियां पनप रही है। चातक और कोयल आदि वन पंखियों के कलरवों से वातावरण और भी अधिक आह्लादकारी बना रहता है। कुलवासियों का स्वास्थ्य अच्छा है।

नवीन सत्र

दीर्घावकाश समाप्त होते ही १६ जुलाई से गुरुकुल के तीनों महाविद्यालयों तथा विद्यालय की पढ़ाई नियमित रूप से प्रारम्भ हो गई है। तीस जुलाई से उपसत्र परीक्षा प्रारम्भ होगी।

छुट्टियों में यात्राएँ

दीर्घावकाश में महाविद्यालय के छात्रों की दो मण्डलियाँ काश्मीर यात्रा पर गई थीं। उन्होंने वहाँ के सभी दर्शनीय और महत्वपूर्ण स्थानों का अवलोकन किया। इन में से एक मंडली लौटते हुए कुल्लू घाटी की यात्रा के लिए भी गई थी। विद्यालय के ब्रह्मचारी अपने गुरुजनों सहित चकरौता के स्वास्थ्यप्रद स्थान पर एक महीने तक रहे। उन्होंने समीपस्थ अनेक पर्वतीय स्थानों का परिभ्रमण कर के स्वास्थ्य-लाभ किया।

श्री उपाचार्य जी की विदाई

तैंतीस वर्ष की सतत सेवा के पश्चात् गुरुकुल विश्वविद्यालय के आँग्ल-साहित्य के उपाध्याय और उपाचार्य श्री प्रो० लालचन्द्र जी ने अपना कार्य-काल समाप्त कर के कुल से विदाई ली। इस तिहाई शती के कार्यकाल में मान्य प्रोफेसर जी ने अपनी योग्यता, विद्वत्ता, सरलता, साधुता और सुचरित्रता से कुल-वासियों को अपना वंशवद बना लिया था। ब्रह्मचारियों के चरित्र-निर्माण के विषय में तो आपने अद्भुत योग-दान दिया है। १७ जुलाई को आपकी विदाई की कुल सभा में कुल के उपाध्यायों और ब्रह्मचारियों ने आप के स्नेह, वात्सल्य, औदार्य, सदाप्रफुल्लता, साधक-वृत्त, अध्ययनशीलता, जिन्दादिली और कार्यनिष्ठा आदि प्रोज्ज्वल गुणों के प्रति अपनी भाव-पुष्पांजलि अर्पित की। सभी कुलवासियों के हृदय आपकी विदाई के अवसर पर विषाद से गद्‌गद् हुए जा रहे थे। कुल-की ओर से आपको एक मान-पत्र अर्पित किया गया। सचमुच ही मान्य उपाध्याय जी की ये सुदीर्घ सेवाएँ कुल के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगी। कुल का वर्तमान कार्यकर्तृ मण्डल आपके ही शिष्य-प्रशिष्यों से भरा हुआ है, और कुल से बाहर भी आपके सैकड़ों शिष्य-प्रशिष्य आपके सुयश को गा रहे हैं। प्रशसित प्रोफेसर जी के प्रति हमारे स्नेह, समादर और श्रद्धा के सुमन अर्पित हैं।

मान्य अतिथि

पिछले दिनों कुल में निम्नलिखित मान्य अभ्यागत पधारे। गुरुकुल आयुर्वेद कालेज के भूतपूर्व उपाध्याय श्री डा० इन्द्रसेन जी। शामलदास कालेज, भावनगर (सौराष्ट्र) के सस्कृत के प्रोफेसर श्री रतिलाल जानी तथा शिक्षातत्व-विद् श्री रेवा शंकर सोमपुरा। करनाल के यशस्वी वैद्यराज श्री विद्यानन्द जी विद्यालंकार का गुरुकुलीय आयुर्वेद-पारषद् में व्याख्यान हुआ।

गुरुकुल संग्रहालय

पिछले मास संग्रहालय में महात्मा बुद्ध की अभिलेख युक्त एक सुन्दर मूर्ति श्रीमती हेमन्त कुमारी चौधरी की स्मृति में पी० सी० चौधरी आई० सी० एस० तथा श्रीमती मीरा चौहान के सौजन्य से प्राप्त हुई है।

मई और जून मास में दर्शकों की संख्या क्रमशः २१५१ और २८११ थी। सम्मान्य दर्शकों में नेशनल म्यूज़ियम नई दिल्ली के सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री जितेन्द्र कुमार राय और दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के श्री सुधीर कुमार गुप्ता तथा चांदकरण शारदा और डा० ब्रजमोहन गुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सब ने संग्रहालय के कार्य से बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

जनवरी १९५१ से अप्रैल १९५२ तक वेद मन्दिर के संग्रहालय में दर्शकों की संख्या निम्न थी—

मास	दर्शक संख्या
जनवरी १९५१	४९६
फरवरी	३५८
मार्च	९०६
अप्रैल	४१३३
मई	१२७५
जून	१७१४
जुलाई	१३६१
अगस्त	७०७
सितम्बर	८६०
अक्टूबर	२१९६
नवम्बर	१५७६
दिसम्बर	१०१८
योग	१८६००
जनवरी १९५२	११६३
फरवरी	९०७
मार्च	१२१८
अप्रैल	५४६४
मई	२१५१
जून	२८११

कुल योग १३७१४

गुरुकुल पत्रिका का शुल्क

निम्नलिखित ग्राहकों का चन्दा नाम के सामने लिखे महीने में समाप्त हो रहा है। प्रार्थना है कि अपना चन्दा मनीआॅर्डर से भेजने की कृपा करें।

ग्राहक सं०	ग्राहक का नाम	स्थान	चन्दा समाप्ति का मास
८४५	श्री बालकृष्ण जी	करनाल	श्रावण
८२०	श्री सेक्रेटरी आर्य समाज	जालन्धर	भाद्रपद
८४२	श्री अमिचन्द	फीजी	कार्तिक
५८६	श्री राधाकृष्ण गार्ड	इलाहाबाद	श्रावण
५४७	श्री हरगोविन्द दुबे	मगरोना	आषाढ़
७००	हिन्दी विद्यामन्दिर	उत्तरीय अफ्रिका	श्रावण
७०१	श्री एकलिंग सत्रकार	उदयपुर	आषाढ़
६७६	श्री हैडमास्टर	झालावाड़ राज्य	आश्विन
६१५	श्री जागेराम शर्मा	नई देहली	श्रावण
६५५	श्री ओंकारनाथरेड्डी	हैदराबाद	आषाढ़
५४९	आर्य कुमार सभा	गुजोटी	कार्तिक
५४२	श्री राम आर्य	अलवर	कार्तिक
४३८	श्री विश्वम्भरशरण	बनारस	कार्तिक
४३०	श्री बख्तावरसिंह	खैरताबाद	श्रावण
८२८	श्री आचार्य	गु० कु० झज्जर	आश्विन



गुरुकुल पत्रिका के चौथे वर्ष के लेखकों और उनकी रचनाओं की सूची

पहले अकारादि क्रम से लेखक का नाम है, फिर लेख का शीर्षक, उसके आगे अङ्क की संख्या और फिर पृष्ठ संख्या है।



गुरुकुल पत्रिका के चौथे वर्ष में छपे लेखों की सूची

विषय के अनुसार अकारादि क्रम से। पहली संख्या वर्ष को बताती है, दूसरी पृष्ठ को।



स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत — श्री अभय — २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग ,, २॥), २॥), २॥)
ब्राह्मण की गौ — ,, — ॥)
वैदिक अध्यात्मविद्या — श्री भगवद्दत्त — १।)
वैदिक स्वप्न विज्ञान — ,, — २)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां — श्री रामनाथ — १॥)
वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत — ६)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द श्री चमूपति २), १॥)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या — श्री प्रियरत्न — १॥)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य — श्री विश्वनाथ — २)
धर्मोपदेश १, २, ३ भाग स्वा० श्रद्धानन्द, १), १), १॥)
आत्ममीमांसा — श्री नन्दलाल — २)
प्रार्थनावली ।) — कविता मंजरी ।–)
आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति ।)
कविता कुसुमाञ्जली — ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] ५)
लहसुन : प्याज — श्री रामेश बेदी — २॥)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] ,, ३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] ,, २)
सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] ,, १॥)
देहाती इलाज [दूसरा संस्करण] ,, १)
मिर्च [काली, सफेद और लाल] ,, १)
त्रिफला [तीसरा संस्करण] ,, ३।)
सांपों की दुनियां ,, ५)
स्तूप निर्माण कला सचित्र सजिल्द, ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग — १।)
जल चिकित्सा — श्री देवराज — १॥)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द ७), ६)
अपने देश की कथा — सत्यकेतु १।=)
योगेश्वर कृष्ण — श्री चमूपति ४)
ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार — ॥)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव — ।)
महावीर गेरीवाल्डी — श्री इन्द्र — १।)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] १)
नीतिशतक [संशोधित] =)
साहित्य-दर्पण [संशोधित] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०] ॥=)
,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण] ।=)
अष्टाध्यायी, पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७), ७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] ।)
साहित्य-सुधासंग्रह १, २, ३ बिन्दु १।), १।), १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली ≠)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १।)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] २॥)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] ॥)
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] २॥)
ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ़ संस्कृत ट्रांसलेशन एण्डकम्पोजीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ १)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

ग्रीष्म ऋतु में सेवन कीजिये

भीमसेनी सुरमा

आंखों के लिए इस से बढ़ कर कोई दूसरा सुरमा नहीं है। यह आंखों के सब रोगों पर विशेष लाभ करता है। बालक वृद्ध सभी को समान उपयोगी है।

मू० नमूना ॥=) शीशी

ब्राह्मी बूटी

बुद्धि को बढ़ाने व मस्तिष्क की दुर्बलता को दूर करने में इससे अच्छी दूसरी बूटी नहीं है। हमारे यहां हर समय ताजी मिलती है। मू० ३) सेर

भीमसेनी दन्तमञ्जन

मञ्जन के बढ़ते हुए रिवाज को देख कर यह देशी मञ्जन तैयार किया गया है। यह मूल्य में भी सस्ता है और दांतों को मज़बूत व चमकदार भी बनाता है। मू० ॥=) शीशी

पामाहर

खुजली व चम्बल रोग को इसका प्रयोग जड़मूल से उखाड़ देता है। मूल्य भी साधारण है। मू० ।=) शीशी

ब्राह्मी तेल

यह तेल शुद्ध ब्राह्मी के द्वारा बनाया गया है। दिमाग को ठण्डक व तरावट देकर ताज़गी लाता है। दिमाग की कमज़ोरी वालों को यह तेल विशेष हितकर है।

मू० ।=) शी० छोटी

ब्राह्मी शर्बत

ब्राह्मी तेल की तरह यह शर्बत भी इस मौसम में सेवन करने योग्य उत्तम चीज़ है। प्रातः काल एक गिलास शर्बत सारे दिन ताज़गी रखेगा। मू० ३) बोतल

भीमसेनी नेत्र बिन्दु

यह औषधि दुखती आंखों के लिये अक्सीर है। कुकरे व दर्द भी इस से दूर होते हैं। मू० १) शीशी

आमला तेल

यह तेल बालों को रेशम की तरह मुलायम कर काला करता है।

मू० १।) शीशी

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

गुरुकुल मुद्रणालय।

